BC-12

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

वित्तीय प्रबन्ध के तत्व

BC-12

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

वित्तीय प्रबन्ध के तत्व
(ELEMENTS OF FINANCIAL MANAGEMENT)

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रो. (डॉ.) नरेश दाधीच

कुलपति

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)

संयोजक / सदस्य

संयोजक

डॉ. एम. एल. जैन 'मणि'

(पूर्व उपप्राचार्य, विश्वविद्यालय वाणिज्य महाविद्यालय, जयपुर)

परामर्शदाता : वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सदस्य

- **प्रो.(डॉ.) नवीन माथुर**
  आचार्य एवं प्रशासनिक सचिव, कुलपति
  राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
- **प्रो. आई. वी. त्रिवेदी**
  आचार्य, बैंकिंग एण्ड बिजनेस इकॉनामिक्स
  एम.एल. सुखा. विश्वविद्यालय, उदयपुर
- **प्रो.(डॉ.) एस. जी. शर्मा**
  आचार्य एवं अध्यक्ष ए. बी. एस. टी. विभाग
  राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
- **प्रो.(डॉ.) आर. के. दीक्षित**
  आचार्य एवं अध्यक्ष, ई. ए. एफ. एम.विभाग
  राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
- **डॉ. पुखराज दाधीच**
  वरिष्ठ व्याख्याता
  राजकीय महाविद्यालय, अजमेर
- **डॉ. एस. सी. जोशी**
  पूर्व उपप्राचार्य
  राजकीय महाविद्यालय, बांरा

संपादन एवं पाठ-लेखन

संपादक

प्रो.(डॉ.) आर. के. दीक्षित

आचार्य एवं अध्यक्ष ई. ए. एफ. एम. विभाग

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

इकाई लेखक

- **डॉ. विवेक शर्मा** (इकाई संख्या 1, 2, 3)
  वरिष्ठ व्याख्याता
  एम.एस.जे.राजकीय महाविद्यालय,भरतपुर
- **डॉ. (श्रीमती) मीनू माहेश्वरी** (इकाई संख्या 4, 5)
  आई.सी.डबल्यू.ए. एवं सहायक प्रोफेसर
  कोटा विश्वविद्यालय, कोटा
- **डॉ. अशोक गुप्ता** (इकाई संख्या 6, 7)
  वरिष्ठ व्याख्याता(ए.बी.एस.टी)
  राजकीय वाणिज्य महाविद्यालय,कोटा
- **डॉ. (श्रीमती) नीता आनन्द** (इकाई संख्या 8, 11)
  वरिष्ठ व्याख्याता
  एम.एस.जे.राजकीय महाविद्यालय, भरतपुर
- **डॉ. मनीष जैन** (इकाई संख्या 9, 12)
  व्याख्याता
  एस.एस.जैनसुबोध पी.जी.महाविद्यालय,जयपुर
- **डॉ. ए. के. मिश्रा** (इकाई संख्या 10,16,17)
  व्याख्याता
  एस.एस.जैन सुबोध पी.जी.महाविद्यालय,जयपुर
- **डॉ. (श्रीमती) ममता जैन** (इकाई संख्या 13,14,15)
  सहायक आचार्य(ई.ए.एफ.एम.)
  राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
- **डॉ. एस.एन. गर्ग** (इकाई संख्या 18)
  वरिष्ठ व्याख्याता
  राजकीय वाणिज्य महाविद्यालय,कोटा

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो. नरेश दाधीच	**प्रो. एम. के. घडोलिया**	**योगेन्द्र गोयल**
कुलपति	निदेशक	प्रभारी
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	**संकाय विभाग**	**पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग**

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल

सहायक उत्पादन अधिकारी, **वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा**

पुनः उत्पादन - अगस्त 2010 ISBN No.: 13/978-81-8496-025-9

इस सामग्री के किसी भी अंश को व. म. खु. वि. कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।व. म. खु. वि. कोटा के लिए कुलसचिव व. म. खु. वि. कोटा(राज.) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित

BC-12

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

अनुक्रमणिका

इकाई सं.	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
इकाई- 1	वित्तीय प्रबन्ध : अर्थ एवं परिभाषा	07–22
इकाई- 2	वित्तीय विवरण	23–38
इकाई- 3	वित्तीय विवरणों की तकनीक	39–54
इकाई- 4	अनुपात विश्लेषण	55–91
इकाई- 5	कोष प्रवाह विश्लेषण	92–117
इकाई- 6	कार्यशील पूँजी का प्रबन्ध	118–138
इकाई- 7	रोकड़ का प्रबन्ध	139–150
इकाई- 8	प्राप्यों का प्रबन्ध	151–162
इकाई- 9	स्कन्ध प्रबन्ध/ नियन्त्रण	163–185
इकाई- 10	वित्तीय नियोजन	186–200
इकाई- 11	वित्तीय पूर्वानुमान	201–215
इकाई- 12	लागत मात्र लाभ विश्लेषण अथवा सम विच्छेद विश्लेषण	216–237
इकाई- 13	लाभांश	238–247
इकाई- 14	लाभांश नीति	248–261
इकाई- 15	पूँजी बजटन	262–277
इकाई- 16	वित्त प्राप्ति के अल्पकालीन तथा मध्यमकालीन साधन	278–304
इकाई- 17	वित्त प्राप्ति के दीर्घकालीन साधन	305–338
इकाई- 18	तन्त्र विश्लेषण की प्रविधियाँ : पर्ट एवं सी.पी.एम.	339–372

इकाई -1 : वित्तीय प्रबंध : अर्थ एंव परिभाषा (Financial Management : Meaning & Definition)

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 इतिहास एवं विकास
1.3 अर्थ एवं परिभाषा, उद्देश्य
1.4 महत्व
1.5 प्रकृति
1.6 सीमाएँ
1.7 अवधारणाएँ
1.8 वित्तीय प्रबन्ध के कार्य
1.9 सारांश
1.10 शब्दावली
1.11 अभ्यास प्रश्न
1.12 उपयोगी ग्रन्थ/पुस्तकें

1.0 उद्देश्य

वित्तीय प्रबन्ध व्यवसाय में वित्तीय साधनों का प्रबन्ध, उनके अनुकूलतम उपयोग एवं नियन्त्रण से सम्बन्धित होता है। वित्तीय प्रबन्ध में योजना बनाकर अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा किया जाता है। वित्तीय प्रबन्ध का प्रमुख कार्य संस्था के उद्देश्यों तथा लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु सलाह देना भी है जिसके आधार पर संस्था महत्त्वपूर्ण निर्णय लेने में सफल रहती है। वित्तीय प्रबन्ध के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित है :

(i) संस्था की अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन वित्तीय आवश्यकताओं के आधार पर योजना बनाना

(ii) योजना अनुसार कोषों को प्राप्त करना;

(iii) कोषों का अनुकूलतम उपयोग करना;

(iv) चालू सम्पत्तियों व स्थायी सम्पत्तियों में पूँजी का विनियोजन करना;

(v) वित्तीय नियन्त्रण करना;

(vi) अनुपयोगी कोषों का उपयोग करना;

(vii) लाभांश वितरण सम्बन्धी निर्णय लेना।

1.1 प्रस्तावना

वित्त व्यवसाय का जीवन रक्त है। वर्तमान युग में एक व्यवसाय को प्रारम्भ करने, उसे सुचारू रूप से चलाने एवं विकसित करने हेतु वित्त की आवश्यकता होती है। पर्याप्त वित्त के अभाव में अच्छी से अच्छी परियोजनाएँ भी साकार रूप नहीं ग्रहण कर पाती है। पर्याप्त वित्त की व्यवस्था के साथ-साथ वित्त का सुप्रबन्ध भी अति-आवश्यक है। किसी संस्था का जीवंत रहना एवं उसका विकास करना इस बात पर भी निर्भर करता है कि वह अपने कोषों का सर्वोत्तम उपयोग करें। अत: निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि जिस प्रकार बिना पर्याप्त वित्त के कोई व्यवसाय जीवित नहीं रह सकता ठीक उसी प्रकार बिना प्रभावपूर्ण वित्तीय प्रबन्ध के कोई भी व्यवसाय समृद्ध एवं विकसित नहीं हो सकता।

1.2 इतिहास एवं विकास

बीसवीं शताब्दी से पूर्व वित्त को अर्थशास्त्र का भाग माना जाता था किन्तु बीसवीं शताब्दी के प्रारम्म होने के बाद छोटे उद्योगों के विलीनीकरण से बड़े उद्योग स्थापित होने लगे और उनके समक्ष वित्तीय व्यवस्था करने की समस्यायें उत्पन्न हुई, इन समस्याओं को हल करने में वित्त का विशेष योगदान होने के कारण वित्त का एक पृथक विषय के रूप में अध्ययन किया जाने लगा। बड़े व्यवसायिक उपक्रमों का विकास निगम पद्धति पर होने से 'निगम वित्त' के नाम से अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुई। 'निगम वित्त' पुस्तकों में निगमों के प्रवर्तन, पूंजीकरण, पूंजी ढाँचे का चुनाव, प्रतिभूतियों के विक्रय, वित्तीय अनुबन्धों की शर्तें आदि विषयों को शामिल किया गया। वित्तीय व्यवस्था के विकास में ग्रीन, मीड, डेविंग लिओन आदि विद्वानों का विशेष योगदान रहा है।

तीसा की महान मंदी से पहले निगम वित्त में विभिन्न प्रकार की प्रतिभूतियों से वित्त प्राप्त करने में वित्तीय संस्थाओं की भूमिका महत्वपूर्ण रही। तीसरे दशक में अमेरिका में आधारभूत उद्योगों के विकास के कारण ऊँचे लाभों का महत्व बढ़ गया। लेकिन तीसा की मंदी के परिणामस्वरूप अधिकांश व्यवसायों के सामने तरलता की भयानक समस्या उत्पन्न हो गई थी। दिन प्रतिदिन की वित्त की आवश्यकता को पूरा करने के लिए बैंकों तथा वित्तीय संस्थाओं से वित्त प्राप्त करने में अत्याधिक कठिनाई अनुभव होने लगी थी। तरलता की मांग को पूरा करने के लिए निर्मित माल को शीघ्र तथा ज्यादा मात्रा में बेचने के लिए बाध्य होना पड़ा।

दूसरी और माल के मूल्यों में निरन्तर कमी होने के कारण पर्याप्त वित्त उपलब्ध नहीं हो पाता था। इस अवधि में संस्थाओं के वित्त प्रबन्ध में अनेक परिवर्तन हुए वित्तीय नियोजन एवं नियन्त्रण को अधिक महत्व दिया जाने लगा।

द्वितीय विश्वयुद्ध से भी उद्योगों के समक्ष पुर्नगठन के लिये बड़ी मात्रा में पूंजी प्राप्त करने में अनेक समस्यायें उत्पन्न हुई। वित्तीय विशेषज्ञों द्वारा ऐसे वित्तीय ढाँचे के

चुनाव पर जोर दिया गया जो कि युद्धोपरान्त समायोजनों के दबाव व व्यय के भार को वहन कर सकें।

व्यवसायिक वित्त की यह परम्परागत विचारधारा सन् 1950 तक अत्याधिक लोकप्रिय रही। सन् 1950 के बाद अनेक नवीन परिवर्तन हुऐ जिसके कारण इस परम्परागत विचारधारा का महत्व समाप्त हो गया।

बीसवीं शताब्दी के छठे दशक में अमेरिका के उद्योगों एवं व्यवसायों का तेजी से विकास हुआ किन्तु मुद्रा तथा शेयर बाजार का विकास उस गति से नहीं हुआ, ऐसी स्थिति में लाभ के विश्लेषण के स्थान पर रोकड़ विश्लेषण को अधिक महत्व दिया जाने लगा। वित्तीय विशेषज्ञों को संस्था के रोकड़ प्रवाहों को नियंत्रित करने का दायित्व सौंपा गया ताकि संस्था अपने उद्देश्यों एवं लक्ष्यों को प्राप्त कर सके तथा अपने लेनदारों को समय पर भुगतान कर सके। रोकड़ पूर्वानुमान, रोकड बजट, प्राप्यों का प्रबन्ध क्रय विश्लेषण तथा स्टॉक नियंत्रण आदि को वित्तीय प्रबन्ध में शामिल किया गया।

1.3 अर्थ एवं परिभाषा

वित्तीय प्रबन्ध, वित्तीय तथा प्रबन्ध दो शब्दों से मिलकर बना है। वित्तीय शब्द का अर्थ है- धन प्राप्त करने के स्त्रोतों को ज्ञात करना तथा व्यवसाय की आवश्यकताओं का पूर्वानुमान लगाना तथा उनके आधार पर वित्तीय साधनों का वितरण करना। प्रबन्ध शब्द से आशय किसी भी व्यवसाय के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए मानवीय तथा भौतिक संसाधनों का नियोजन, संगठन, समन्वय एंव नियंत्रण करना होता है। इस प्रकार वित्तीय प्रबन्ध व्यावसायिक प्रबन्ध एक महत्त्वपूर्ण भाग होता है जो संस्था के वित्तीय संसाधनों के नियोजन एवं नियंत्रण से सम्बन्धित है। वित्तीय प्रबन्ध मुद्रा या धन प्राप्त करने के साधनों का निर्धारण, प्राप्ति, वितरण एवं उपयोग होता है। वित्तीय प्रबन्ध में संस्था की अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन वित्तीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर योजना बनाई जाती है ताकि संस्था में वित्त की पूर्ति निरन्तर बनी रहे। वित्त पूर्ति से आवश्यक कार्य पूर्ण किये जाते हैं तथा संस्था के निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है।

जे.एस. मैसी के अनुसार, 'वित्तीय प्रबन्ध व्यवसाय की वह परिचालनात्मक क्रिया है जो उपक्रम के कुशलतापूर्वक संचालन के लिए आवश्यक वित्त प्राप्ति एवं उसके प्रभावशाली उपयोग के लिए उत्तरदायी होता है। "

हावर्ड एवं उपटन के शब्दों में, 'नियोजन एवं नियंत्रण कार्य को वित्तीय कार्यो पर लागू करना वित्तीय प्रबन्ध है। "

जोसेफ एक ब्रेडले के अनुसार, "वित्तीय प्रबन्ध व्यवसायिक प्रबन्ध का वह क्षेत्र है जिसका सम्बन्ध पूंजी के विवेकपूर्ण उपयोग एवं वित्तीय स्त्रोतों के सतर्कतापूर्ण चयन है ताकि व्यवसाय को इसके उद्देश्यों की दिशा में निर्देशित किया जा सके। '

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि वित्तीय प्रबन्ध, प्रबन्ध का एक महत्वपूर्ण भाग है। इसका सम्बन्ध संस्था में सर्वाधिक उपयुक्त विधि द्वारा कोषों की प्राप्ति, कोषों का लाभप्रद उपयोग, भावी क्रियाओं का नियोजन तथा वित्तीय लेखांकन, लागत लेखांकन, बजटन, सांख्यिकी व अन्य विधियों द्वारा वर्तमान निष्पत्तियों के नियंत्रण से होता है। अत: यह कहा जा सकता है कि वित्तीय प्रबन्ध व्यवसायिक प्रबन्ध का एक प्रमुख कार्यात्मक क्षेत्र होता है।

वित्तीय प्रबन्ध के उद्देश्य

वित्तीय प्रबन्ध का उद्देश्य व्यवसाय का विकास, उसके लाभों में वृद्धि एवं सम्पदा मूल्य को अधिकतम करना होता है। इन उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु संस्था वित्तीय नियोजन एवं पूर्वानुमान के आधार पर अग्रिम योजना बनाती है। कुछ वित्तीय विशेषज्ञों का मत है कि संस्था को अधिकतम लाभ का अर्जन करना चाहिए जबकि अन्य विशेषज्ञों का मानना है कि वित्तीय प्रबन्ध का मुख्य उद्देश्य सम्पदा का अधिकतमकरण करना है। इन दोनों उद्देश्यों का विवेचन निम्नलिखित है-

(i) **लाभ अधिकतमकरण** : प्रत्येक व्यवसायिक अथवा उत्पादन क्रिया का मूल दे उद्देश्य, किसी भी व्यवसाय के विनियोग, वितपूर्ति, लाभांश आदि निर्णयों को लाभों को अधिकतम करने की प्रक्रिया की ओर अग्रसर होना चाहिए। उन्हीं विनियोगों, परियोजनाओं तथा निर्णयों को स्वीकार किया जाना चाहिए जो अधिकतम लाभ प्रदान करने वाले हों। जो विनियोग, परियोजनाएँ तथा निर्णय लाभ में कमी करते हों उन्हें अस्वीकार किया जाना चाहिए। वित्तीय प्रबन्ध के अधिकतम लाभ के उद्देश्य के पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिये जाते हैं -

(अ) किसी भी आर्थिक क्रिया का उद्देश्य लाभ कमाना होता है।

(ब) व्यवसायिक उपक्रम की आर्थिक कुशलता अर्थात् उत्पादन कुशलता, विक्रय तथा प्रबन्धकीय कुशलता का मापदण्ड भी लाभ ही होता है।

(स) लाभ स्वामियों तथा साहसियों का प्रमुख प्रेरक तत्व भी होता है। यदि लाभ कमाने का उद्देश्य समाप्त कर दिया जाये तो आर्थिक जगत में प्रतिस्पर्द्धा समाप्त हो जायेगी।

(द) लाभ होने पर ही कोई भी व्यवसायिक संस्था अपने सामाजिक दायित्वों जैसे- शिक्षा, चिकित्सा, श्रम कल्याण आदि पर वित्तीय व्यय करके समाज के कल्याण को अधिकतम कर सकती है;

(य) लाभ ही व्यवसायिक निर्णयों का आधार होता है। हानि अर्जित करने वाली संस्थाएँ असफल संस्थाएँ कहलाती हैं।

किन्तु आधुनिक प्रतिस्पर्द्धी युग में अधिकतम लाभ कमाना न तो सम्भव है और न ही न्यायोचित। इस उद्देश्य की अनेक आलोचनाएँ की जाती हैं। लाभ को अधिकतम करने वाली संस्था श्रमिकों एवं उपभोक्ताओं का शोषण करती हैं। अधिकतम लाभ कमाने का उद्देश्य समाज में असमानता को बढ़ावा देता है। अब व्यवसाय का स्वरूप पूर्णतया बदल चुका है व्यवसाय का प्रबन्ध स्वामियों द्वारा न किया जाकर पेशेवर प्रबन्धकों के द्वारा

किया जाता है जो संस्था के ग्राहक, कर्मचारी, सरकार तथा समाज में संतुलन स्थापित करके लाभ अर्जित करने पर बल देते हैं। लाभ अधिकतमकरण का उद्देश्य अवास्तविक, कठिन, अनैतिक तथा अनुचित प्रतीत होता है इसलिए इसे अस्वीकार किया जा चुका है।

(ii) **सम्पदा का अधिकतमकरण**

व्यवसायिक संस्थाओं का मुख्य उद्देश्य व्यवसायिक क्रियाओं के माध्यम से विनियोजित पूंजी के मूल्य में अधिकतम वृद्धि करना है। **प्रो. इजरा सोलोमन** के अनुसार भी व्यवसाय के वित्तीय प्रबन्ध का मुख्य उद्देश्य उसकी सम्पदा का अधिकतमकरण होना चाहिए।

यहाँ सम्पदा अधिकतमकरण से तात्पर्य प्रबन्ध द्वारा संस्था के स्वामियों की सम्भावित भावी प्रत्याय के वर्तमान मूल्य को अधिकतम करना होता है। यह प्रत्याय की दर समय-समय पर किये गये लाभांश भुगतानों से निर्धारित होती हैं। इसके अलावा समता अंशों के बिक्री से भी प्रत्याय की दर का अनुमान लगाया जाता है। वर्तमान मूल्य किसी भी उचित बट्टा दर पर मूल्यांकित भावी भुगतानों का आज का मूल्य होता है। बट्टा दर का निर्धारण किसी निश्चित समयावधि में अन्य विकल्पों में विनियोजन से मिलने वाली प्रत्याय के आधार पर किया जाता है। इस प्रकार शुद्ध वर्तमान मूल्य में वृद्धि होने पर विनियोग मूल्य बढ़ जाते हैं और अंशों का बाजार मूल्य भी बढ़ जाता है। स्वामियों की सम्पदा फर्म के अंशों के बाजार मूल्य से प्रदर्शित होती है। अत: सम्पदा अधिकतमकरण के उद्देश्य के अनुसार वित्तीय प्रबन्ध का मूलभूत उद्देश्य व्यवसाय के समता अंशों के बाजार मूल्य में अधिकतम वृद्धि करना होता है। इसी से अंशधारियों की विनियोजित पूंजी बढ़ती है।

सम्पदा अधिकीकरण के लिए संस्था को निम्नलिखित उपाय करने चाहिये-

- नये उत्पादों का विकास करना तथा उत्पादों की गुणवत्ता में सुधार लाना।
- ग्राहकों की सन्तुष्टि के स्तर को बढ़ाना तथा विक्रय के पश्चात भी ग्राहकों को सेवा प्रदान करके ग्राहकों को बनाये रखना।
- व्यवसाय में सूचनाओं के आदान प्रदान हेतु उचित सूचना पद्धति का विकास करना।
- अनावश्यक जोखिम से व्यवसाय को बचाना।
- वित्त पूर्ति में ऋण पूंजी तथा समता पूंजी में संतुलन बनाये रखना।
- उचित लाभ कमाना।
- पर्याप्त लाभांश का वितरण करना।

उक्त दोनों उद्देश्यों के विवेचन से स्पष्ट है कि सम्पदा अधिकीकरण का उद्देश्य लाभ अधिकीकरण के उद्देश्य से श्रेष्ठ है। इसमें भावी आय अर्जन क्षमता पर विचार किया जाता है। किसी भी व्यवसाय की वित्तीय सुदृढ़ता का माप अंशों का बाजार मूल्य होता है। यह व्यवसाय की वास्तविक प्रगति तथा अंशधारियों की सम्पदा का स्पष्ट सूचक होता है। लाभ अधिकीकरण एवं सम्पदा अधिकीकरण के उद्देश्यों को एक साथ भी जारी

रखा जा सकता है, किन्तु लाभ अधिकीकरण के उद्देश्य को सम्पदा अधिकीकरण पर वरीयता नहीं देना चाहिए।

1.4 महत्व

वित्तीय प्रबन्ध का उद्देश्य लाभों को अधिकतम करने के साथ-साथ वित्तीय साधनों का अनुकूलतम उपयोग करना होता है जिससे संस्था की शुद्ध- सम्पदा मूल्य को अधिकतम किया जा सके। उदारीकरण तथा वैश्वीकरण की नीति ने वित्तीय प्रबन्ध के महत्व को और अधिक महत्वपूर्ण बना दिया है। वित्तीय प्रबन्ध व्यवसाय की सभी क्रियाओं का केन्द्र बिन्दु होता है और सभी क्रियाओं की सफलता भी वित्त पर निर्भर करती है। व्यवसाय में योजना बनाने, उसे क्रियान्वित करने, नियंत्रण की प्रक्रिया आदि में वित्त की भूमिका और भी अधिक महत्वपूर्ण हो गयी है। वित्तीय प्रबन्ध का उत्पादन, विपणन एवं निर्णयन से सीधा सम्बन्ध होता है। वित्तीय प्रबन्ध के महत्व को निम्नलिखित बिन्दुओं द्वारा स्पष्ट किया गया है-

1. **उपक्रम की सफलता का आधार** : सुदृढ़ वित्तीय प्रबन्ध उपक्रम की सफलता, प्रगति का आधार होता है। कमजोर वित्तीय प्रबन्ध के कारण अनेक इकाइयाँ बीमार हो जाती हैं। वित्तीय प्रबन्ध द्वारा उपयुक्त योजना बनाकर उपक्रम का विस्तार एवं विकास किया जा सकता है।
2. **साधनों का अनुकूलतम उपयोग** : वित्तीय प्रबन्ध में अग्रिम योजनाएँ बनाकर उपलब्ध साधनों का अनुकूलतम उपयोग किया जा सकता है। किसी भी संस्था में यदि साधनों का उचित प्रबन्ध नहीं किया जाता है तो वह संस्था अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में असफल रहती है।
3. **निर्णयन का केन्द्र बिन्दु** : आधुनिक युग में प्रत्येक 'निर्णय लेते समय संस्था की वित्तीय स्थिति को ध्यान में रखा जाता है। वित्तीय तथ्यों एवं आकड़ों का विश्लेषण करके जोखिम में कमी की जाती है तथा उसके आधार पर निर्णय लिए जाते हैं।
4. **कार्य निष्पत्ति का मापदण्ड** : वित्तीय परिणाम किसी भी व्यवसायिक संस्था के कार्यो की निष्पत्ति एवं सफलता का माप करते हैं। वित्त संस्था की लाभदायकता, उत्पादकता एवं जोखिम में संतुलन स्थापित करता है। बिना जोखिम उठाये कोई संस्था लाभों की मात्रा में वृद्धि नहीं कर सकती है।
5. **नियोजन, समन्वय एवं नियंत्रण का आधार** : वित्तीय प्रबन्ध संस्था में योजना बनाने, समन्वय स्थापित करने तथा नियंत्रण करने का आधार भी होता है। वित्तीय पूर्वानुमानों द्वारा योजनाएँ एवं बजट बनाये जाते हैं। उपक्रम की विभिन्न क्रियाओं में बजटरी नियंत्रण द्वारा समन्वय स्थापित किया जाता है। प्रत्येक क्रिया के लिए अपेक्षित लागत, प्रमाप एवं समय निर्धारित किया जाता है। विचलन होने की दशा में सुधारात्मक कार्यवाही की जाती है।
6. **सलाहकारी भूमिका** : वित्तीय प्रबन्धक का प्रमुख कार्य उच्च प्रबन्ध को संस्था की सफलता हेतु उचित सलाह देना भी है। वित्तीय प्रबन्धक आंकडों तथा प्रतिवेदन के

माध्यम से वित्तीय स्थिति की जानकारी उच्च प्रबन्ध को देता है। प्रत्येक कार्य के उपलब्ध विकल्पों में से सर्वोत्तम विकल्प का सुझाव देकर निर्णयन में सहायता प्रदान करता है।

7. **विभिन्न पक्षों के उपयोगी** : वित्तीय प्रबन्ध व्यवसाय से जुड़े हुए सभी पक्षों के लिए उपयोगी होता है। व्यवसाय प्रबन्धक, अंशधारी, विनियोजक, वित्तीय संस्थाएँ अर्थशास्त्री एवं राजनीतिज्ञ वित्तीय प्रबन्ध के माध्यम व्यवसाय की आर्थिक स्थिति की जानकारी कर सकते हैं एवं निर्णय ले सकते हैं। निम्नलिखित बिन्दुओं के द्वारा वित्तीय प्रबन्ध की उपयोगिता को स्पष्ट किया जा सकता है -

(i) **व्यवसायिक प्रबन्धकों के लिए उपयोगी** : वित्तीय प्रबन्ध बड़े-बड़े व्यवसायों एवं निगमित संस्थाओं में विनियोजित पूंजी की सुरक्षा करता हैं। विभिन्न तकनीकों के प्रयोग के द्वारा सम्पदा मूल्य को अधिकतम करने के प्रयास का दायित्व भी वित्तीय प्रबन्धक का होता है।

(ii) **अंशधारियों के लिए उपयोगिता** : बड़ी व्यवसायिक संस्थाओं में प्रबन्ध का कार्य अंशधारियों द्वारा चुने गये संचालकों द्वारा किया जाता है। यदि अंशधारी वित्तीय प्रबन्ध का पर्याप्त ज्ञान रखते है तो वे संस्था की आर्थिक स्थिति का मूल्यांकन कर सकते हैं और वार्षिक सभा में अपने सुझाव भी दे सकते हैं।

(iii) **विनियोजकों के लिए उपयोगी** : भारत में अंश पूंजी बाजार का विकास हो चुका है। विनियोजक अपनी जमा पूंजी को अंशों एवं ऋण पत्रों में विनियोग करते हैं। यदि विनियोजकों को वित्तीय प्रबन्ध के सिद्धान्त एवं व्यवहार का ज्ञान हो तो वे सही प्रतिभूतियों का चयन कर सकते हैं।

(iv) **वित्तीय संस्थाओं के लिए उपयोगिता** : कम्पनियों, निगमित संस्थाओं, अभिगोपकों, स्वीकृति गृहों एवं बट्टा राहों आदि के प्रबन्धकों को वित्तीय प्रबन्ध के विस्तृत एवं गहन ज्ञान की आवश्यकता होती है। इसके -आधार पर प्रतिभूतियों में विनियोग तथा उधार बिक्री के निर्णय लिए जाते हैं। वित्तीय प्रबन्धक को यदि पर्याप्त जानकारी न हो तो गलत प्रतिभूतियों में विनियोजन हो सकता है और ऐसी संस्थाओं को माल बेचा जा सकता है जिनकी आर्थिक स्थिति कमजोर हो।

(v) **अर्थशास्त्रियों एवं राजनीतिज्ञों के लिए उपयोगी** : देश में आर्थिक विकास हेतु विभिन्न योजनाएँ एवं नीतियाँ बनाकर करोड़ों रूपये व्यय किये जाते हैं। इन व्ययों के आधार पर देश का विकास होता है। वित्तीय प्रबन्ध के द्वारा राजनीतिज्ञ एवं अर्थशास्त्री ऐसी योजनाऐं एवं नीतियाँ बना सकते हैं जो देश के हित में सर्वाधिक उपयुक्त हों।

1.5 प्रकृति

आधुनिक युग में व्यवसाय में वित्तीय प्रबन्ध की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण हो गयी है। परम्परावादी दृष्टिकोण के अनुसार वित्तीय प्रबन्ध की आवश्यकता व्यवसाय का प्रारंभ करने, पुर्नगठन करने, विस्तार करने तथा कोषों के संग्रह के समय होती है।

आधुनिक विचारधारा के अनुसार वित्तीय प्रबन्ध एक सतत चलने वाली प्रक्रिया है यह न केवल कोषों को प्राप्त करने की योजना है बल्कि उनका सही प्रकार उपयोग करना भी है। वित्तीय प्रबन्ध की प्रकृति को निम्नलिखित बिन्दुओं द्वारा स्पष्ट किया गया है-

(1) **व्यवसायिक प्रबन्ध का अभिन्न अंग** : वित्तीय प्रबन्ध सामान्य प्रबन्ध का अतिमहत्वपूर्ण अंग है। व्यवसाय के प्रबन्ध एवं संचालन में वित्त का स्थान सबसे ऊपर होता है। व्यवसाय की प्रत्येक क्रिया धन से जुड़ी हुई होती है। कच्चे माल, श्रम, व्यवसाय से जुड़े उपरिव्यय, सयन्त्रों मशीनों आदि के क्रय का दायित्व उत्पादन प्रबन्धक का होता है किन्तु इस सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय वित्त प्रबन्धक से विचारविमर्श करने के पश्चात् ही लिए जाते हैं। इसलिए वित्त प्रबन्धक उच्च प्रबन्ध का एक सक्रिय सदस्य होता है।

(2) **सतत प्रशासनिक कार्य** : आधुनिक विचारधारा के अनुसार वित्तीय प्रबन्ध एक निरन्तर चलने वाली प्रशासनिक प्रक्रिया है। वर्तमान युग में व्यवसाय को सफलतापूर्वक चलाने के लिए कोषों को न्यूनतम लागत पर एकत्र करना तथा उनका विवेकपूर्ण उपयोग की जिम्मेदारी भी वित्तीय प्रबन्धक की होती है। दीर्घकालीन पूंजी बजट बनाना तथा दिन प्रतिदिन के लिए कार्यशील पूंजी की व्यवस्था को भी वित्तीय प्रबन्ध के अर्न्तगत शामिल किया जाता है

(3) **वैज्ञानिक एवं विश्लेषणात्मक** : वर्तमान वैश्वीकरण के युग में वित्तीय प्रबन्ध का कार्य वैज्ञानिक एवं विश्लेषणात्मक हो गया है। किसी भी वित्तीय निर्णय को लेने से पूर्व विभिन्न विकल्पों का मूल्यांकन किया जाता है। इसके लिए आधुनिक गणितीय एंव सांख्यिकीय विधियों का उपयोग किया जाता है। विश्लेषण के आधार पर वित्तीय निर्णयों को व्यवसाय में लागू किया जाता है।

(4) **केन्द्रीयकृत प्रवृतिः वित्त कार्य मूलत** : केन्द्रीयकृत प्रकृति का होता है। उत्पादन, विपणन, वितरण आदि सभी कार्यो के मूल में वित्त होता है। वित्त के केन्द्रीयकरण से व्यवसायिक कार्यो का समन्यय एवं नियंत्रण करना संभव होता है।

(5) **व्यापक क्षेत्र** : वित्तीय प्रबन्ध सभी क्रियाओं में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से सम्मिलित होता है। अतः कहा जा सकता है वित्तीय प्रबन्ध का क्षेत्र व्यापक एवं जटिलताओं से भरा हुआ है। अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन योजनाओं को पूरा करने के लिए कोष एकत्र करना, आवश्यकतानुसार उनका आवंटन तथा अनुकूलतम उपयोग भी वित्तीय प्रबन्ध के कार्य क्षेत्र में आता है। पूंजी नियोजन बजट, लेखांकन, लागत नियंत्रण रोकड़ व साख प्रबन्ध कार्यशील पूंजी का प्रबन्ध आदि कार्य भी वित्तीय प्रबन्ध को ही पूरे करने होते है।

(6) **सभी संगठनों में लागू** : वित्तीय प्रबन्ध सभी प्रकार की संस्थाओं जैसे निर्माणी, व्यापारिक तथा सेवा संस्थाओं में लाग होता है। ये संस्थाएँ किसी भी आकार, स्वामित्व व नियंत्रण वाली हो सकती हैं।

(7) **लेखांकन कार्य से भिन्न** : लेखांकन कार्य केवल संस्था की सम्पूर्ण गतिविधियों का लेखा जोखा या रिकार्ड रखना होता है। जबकि वित्तीय प्रबन्ध का कार्य लेखों का विश्लेषण करके वित्तीय निर्णय करना होता है।

1.6 सीमाएं

वित्तीय प्रबन्ध आधुनिक युग में व्यवसायिक संस्थाओं के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो रहा है। इसके विकास से संस्थाओं के प्रबन्ध व निष्पादन में बहुत सुधार आया है, फिर भी इसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इससे वित्तीय प्रबन्ध की उपयोगिता में कमी आयी है। इसकी सीमाएँ निम्नलिखित हैं :

(i) **लेखाकंन अभिलेखों पर आधारित** : वित्तीय प्रबन्ध में उपयोग में ली जाने वाली विभिन्न सूचनाएँ लागत लेखांकन, वित्तीय लेखांकन एवं दूसरे प्रलेखों से प्राप्त की जाती हैं। वित्तीय प्रबन्ध में बनाये गये वित्तीय विवरणों का विश्लेषण एवं निर्वचन लागत-मात्रा-लाभ विश्लेषण बजटरी नियंत्रण आदि तकनीकों के द्वारा किया जाता है। यदि ये सूचनाएँ सही एवं उचित होती हैं तो इन के आधार पर लिये गये निर्णय भी सही होते है। सूचनाओं के गलत होने पर लिये गये निर्णय भी गलत हो जाते है।

(ii) **सम्बन्धित विषयों के ज्ञान का अभाव** : वित्तीय प्रबन्ध का सम्बन्ध अर्थशास्त्र, सांख्यिकी एवं गणित एवं प्रबन्ध आदि विषयों से होता है। वित्तीय प्रबन्धक को इन सभी विषयों का पर्याप्त ज्ञान होना चाहिए तभी वह सही तरीके से वित्तीय प्रबन्ध कर सकता है किन्तु एक व्यक्ति को इन सभी विषयों का ज्ञान हो ऐसा बहुत कठिन प्रतीत होता है।

(iii) **वस्तुनिष्ठता का अभाव** : वित्तीय प्रबन्ध पूर्णतया व्यक्तिनिष्ठ होता है। वित्तीय प्रबन्धक द्वारा लिए गये निर्णयों पर स्वयं के पूर्वाग्रहों, विचारों एवं मत का प्रभाव पड़ता है जो कभी भी संस्था के लिए नुकसानदायक हो सकता है। इसलिए वित्तीय प्रबन्ध की सफलता वित्तीय प्रबन्धक की समझ, ज्ञान तथा सहयोग प्राप्त करने की क्षमता पर निर्भर करती हे।

(iv) **विकासशील अवस्था** : वित्तीय प्रबन्ध अभी भी विकासशील अवस्था में है। विकास के साथ .4 वित्तीय प्रबन्ध के प्रमाप निरन्तर बदल रहे है।

(v) **खर्चीली पद्धति** : छोटे व्यवसायिक संगठनों के लिए यह एक खर्चीली पद्धति है। वित्ती प्रबन्ध के लिए संस्था में विस्तृत संगठन एवं नियमों एवं उपनियमों की आवश्यकता होती है।

(vi) **प्रशासन का विकल्प न होना** : वित्तीय प्रबन्ध संस्था के विभागों की वित्तीय स्थिति, निष्पादन विश्लेषित स्थिति की सूचना देता है किन्तु निर्णय लेने का अधिकार प्रबन्ध के हाथ में होता है न कि वित्तीय प्रबन्धक के।

1.7 अवधारणाएँ

वित्त कार्य का स्वरूप व्यवसाय के स्वरूप में परिवर्तन के साथ-साथ निरन्तर बदल रहा है। आधुनिक व्यवसाय प्रबन्ध के परिवर्तित परिप्रेक्ष्य (वैश्वीकरण, उदारीकरण तथा निजीकरण) में वित्तीय प्रबन्ध का कार्य कहीं अधिक व्यापक हो गया है। वित्तीय प्रबन्ध का कार्य कोषों की व्यवस्था के साथ-साथ उनके प्रभावपूर्ण उपयोग को भी इसमें सम्मिलित किया गया है। वित्तीय प्रबन्ध की दो अवधारणायें है जिनका विवेचन निम्नलिखित है :

(अ) परम्परागत अवधारणा

(ब) आधुनिक अवधारणा

वित्तीय कार्य की परम्परागत अवधारणा

वित्तीय प्रबन्ध की परम्परागत अवधारणा में वित्तीय प्रबन्धक की भूमिका सीमित होती थी। वित्तीय प्रबन्ध का प्रमुख कार्य कोषों की व्यवस्था करने से सम्बन्धित तथा कुछ विशेष घटनाएँ घटित होने पर अन्य कार्य सम्पन्न करने से होता था। वित्तीय प्रबन्ध की आवश्यकता व्यवसाय के प्रवर्तन, पुनर्गठन, विस्तार आदि के समय होती थी। इस विचारधारा के अनुसार कि वित्तीय प्रबन्ध के अन्तर्गत पूंजी की प्राप्ति अर्थात् कोषों का संग्रह एवं उनका प्रबन्ध सम्मिलित किया जाता था। संक्षेप में इस विचारधारा के अनुसार-

(1) वित्तीय प्रबन्ध का प्रमुख कार्य विभिन्न संस्थाओं से सम्पर्क स्थापित करके उपक्रम के निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक कोषों को एकत्र करना होता था।

(2) वित्तीय प्रबन्ध का सम्बन्ध संस्था की दिन प्रतिदिन के कार्यो के संचालन से न होकर कम्पनी के प्रवर्तन, पुर्नगठन, विस्तार एवं समापन से होता था।

(3) संस्था में वित्तीय प्रबन्धक की नियुक्ति न करके आवश्यकता पड़ने पर उसे बाहर से बुलाया जाता था। आन्तरिक प्रबन्ध की बाह्य वित्तीय प्रबन्ध में भागीदारी नहीं होती थी।

(4) यह विचारधारा दीर्घकालीन वित्त पूर्ति के स्त्रोतों तथा समस्याओं को हल करने पर जोर देती थी

परम्परागत अवधारणा का सन् 1897 से 1950 तक बोलबाला रहा किन्तु बाद में इसे त्याग दिया गया इसे बाहरी व्यक्तियों द्वारा व्यवसाय में झांकने की अवधारणा या हस्तक्षेप कहा गया। यह अवधारणा उपक्रम के जीवन में घटने वाली अनियमित घटनाओं को अधिक महत्व देती थी। दैनिक वित्तीय लेनदेनों की समस्याओं पर इसमें कोई ध्यान नहीं दिया जाता था। इस अवधारणा में केवल दीर्घकालीन वित्त पूर्ति पर ध्यान दिया गया और कार्यशील पूंजी, जो प्रतिदिन की भुगतान क्षमता को दर्शाती थी उसका इसमें कोई महत्व नहीं माना गया। कोषों के आवंटन एवं प्रभावी उपयोग पर

कोई जोर नहीं दिया गया था। इस अवधारणा में वित्तीय निष्पत्ति, प्रमापों का निर्धारण, वित्तपूर्ति निर्णय, पूंजी की लागत आदि की उपेक्षा की गई।

वित्त कार्य की आधुनिक अवधारणा

सन् 1950 के पश्चात व्यवसाय के स्वरूप में परिवर्तन होने लगा। ' व्यवसाय का बढ़ता आकार, समामेलित संस्थाओं के विकास, तकनीकी परिवर्तन, प्रतिस्पर्द्धा में वृद्धि आदि से यह आवश्यक हो गया है कि वित्तीय साधनों का अनुकूलतम एवं प्रभावपूर्ण उपयोग किया जाये।

आधुनिक विचारधारा के अनुसार 'वित्तीय प्रबन्ध का आशय व्यवसाय में प्रयुक्त कोषों का नियोजन, प्राप्ति, नियंत्रण एवं प्रशासन से होता है। ' इस अवधारणा के अनुसार संस्था में वित्तीय योजना बनाना, आवश्यक कोषों का संग्रहण, विभिन्न सम्पत्तियों में कोषों का आवंटन; कोषों के अनुकूलतम उपयोग के लिए वित्तीय नियंत्रण एवं मूल्यांकन करना इत्यादि कार्य वित्तीय प्रबन्ध को सम्पन्न करने होते हैं।

इस अवधारणा के अनुसार वित्तीय प्रबन्धक को तीन महत्वपूर्ण निर्णय जैसे - (i) वित्त पूर्ति निर्णय (ii) विनियोग निर्णय (iii) लाभांश निर्णय लेने पड़ते हैं। ये तीनों निर्णय एक दूसरे से सम्बन्ध रखते हैं। इन तीनों निर्णयों का परिणाम कोषों का प्रभावपूर्ण मितव्ययितापूर्ण तथा अनुकूलतम उपयोग करना हैं, ये सभी निर्णय संस्था में सामूहिक रूप से वित्त कार्य को पारिभाषित करते हैं वित्तीय प्रबन्ध में किये जाने वाले वित्त कार्य को नीचे दिये चार्ट द्वारा स्पष्ट किया गया है -

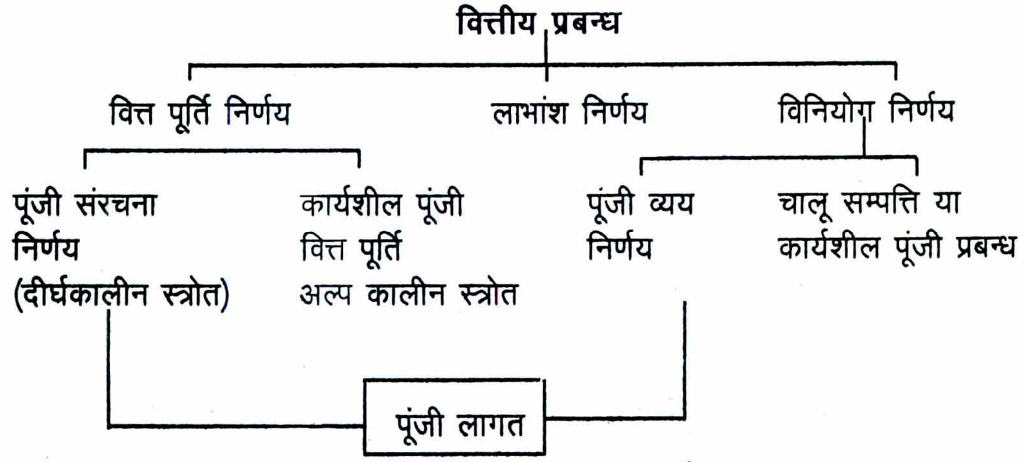

(i) **वित्त पूर्ति निर्णय** : वित्त पूर्ति निर्णय संस्था की पूंजी की आवश्यकता से सीधा सम्बन्ध रखते हें। इस निर्णय में पूंजी की मात्रा का निर्धारण, पूंजी संरचना का निर्णय तथा वित्त के स्त्रोतों का चयन आदि सम्मिलित होते हैं। पूंजी की मात्रा का निर्धारण संस्था की विभिन्न सम्पत्तियों में विनियोजित पूंजी के आधार पर किया जाता है। स्थायी सम्पत्तियों, चालू सम्पत्तियों तथा अमूर्त सम्पत्तियों में विनियोग की जाने वाली पूंजी का पूर्वानुमान लगाकर वित्त पूर्ति निर्णय लिया जाता है।

पूंजी संरचना से तात्पर्य संस्था की कुल विनियोजित पूंजी में समता अंश पूंजी तथा ऋण पूंजी के भाग से होता हे अर्थात् संस्था पूंजी का कितना भाग समता अंशों द्वारा एकत्र करती है तथा कितना भाग ऋण पूंजी से एकत्र करती है। ऋण पूंजी के अधिक उपयोग से संस्था की लाभदायकता में वृद्धि हो जाती है। कर की मात्रा कम हो जाती हैं किन्तु, क्षमता से अधिक ऋण पूंजी का उपयोग जोखिम में वृद्धि करता है। पूंजी संरचना का निर्णय करने के उपरान्त वित्तीय प्रबन्धक प्रस्तावित पूंजी संरचना के अनुसार कोषों को प्राप्त करने की प्रक्रिया प्रारम्भ करते है। कोषों के स्त्रोतों का चयन पूंजी की लागत, लागत की प्रकृति तथा कोष की अवधि पर निर्भर करता है। कोष एकत्र करने के लिए अभिगोपकों की नियुक्ति की जाती है। वित्तीय प्रबन्धक अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन दोनों प्रकार की वित्त पूर्ति के लिए उत्तरदायी होता है।

(ii) **लाभांश निर्णय** : लाभांश निर्णय लाभांश के वितरण को निर्धारित करते हैं। इसके आधार पर लाभ का एक निश्चित भाग लाभांश के रूप में अंशधारियों को बाँटा जाना तय किया जाता है। लाभांश नीति अंशों के सम्पदा मूल्य को प्रभावित करती है। वित्तीय प्रबन्धक का कार्य अनुकूलतम भुगतान अनुपात तय करना होता है। यह अनुपात तय करते समय चालू लाभांश के प्रति वरीयता, अंशों के बाजार मूल्य में वृद्धि, प्रतिधारित आयों का पूंजी संरचना व औसत पूंजी लागत पर प्रभाव को ध्यान में रखना पड़ता है।

वित्तीय प्रबन्ध की आधुनिक अवधारणा के अनुसार, वित्त प्रबन्ध कार्य एक व्यापक कार्य है जिसमें संस्था के सम्पूर्ण वित्तीय कार्यो को सम्मिलित किया जाता है। उचित वित्तीय प्रबन्ध के द्वारा संस्था के उद्देश्यों एवं लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है।

(iii) **विनियोग निर्णय** : कोष एकत्र करने के पश्चात वित्तीय प्रबन्धक का कार्य इन कोषों का अलग-अलग सम्पत्तियों में आवंटन करना होता है। वित्तीय प्रबन्धक दो प्रकार की सम्पत्तियों में कोषों का विनियोग करता है। स्थाई सम्पत्तियों में कोषों का विनियोग करने से संस्था को दीर्घकाल तक आय की प्राप्ति होती है। चालू अथवा अल्पकालीन सम्पत्तियों में किया गया विनियोग एक वर्ष में नकद राशि में परिवर्तित हो जाता है। विनियोग निर्णय दो प्रकार के होते हैं- (अ) स्थायी सम्पत्तियों में विनियोग सम्बन्धी निर्णय जो पूंजी बजटन निर्णय कहलाते हैं तथा (ब) चालू या अल्पकालीन सम्पत्तियों में विनियोग जो संस्था में कार्यशील पूंजी का प्रबन्ध कहलाते है।

पूंजी बजटन निर्णयों में लम्बी अवधि के विनियोग पर विचार किया जाता है ये निर्णय सम्पत्तियों की लागतों तथा उनसे प्राप्त होने वाले लाभों के आधार पर किये जाते हैं। इन निर्णयों में अनिश्चितता एवं जोखिम तत्व विद्यमान होते हैं। कार्यशील पूंजी के प्रबन्ध से तात्पर्य चालू सम्पत्तियों के विनियोग निर्णय से होता है। चालू सम्पत्तियों में विनियोग से संस्था की तरलता लाभदायकता तथा जोखिम

तीनों तत्व प्रभावित होते हैं। चालू सम्पत्ति में आवश्यकता से अधिक कोषों का विनियोजन तरलता एवं जोखिम की स्थितियों में सुधार लाता है किन्तु लाभदायकता की मात्रा कम हो जाती है। चालू सम्पत्तियों 'में आवश्यकता से कम विनियोग भुगतान न कर सकने की जोखिम को बढ़ा देता है संस्था में तरलता की मात्रा कम हो जाती है किन्तु लाभदायकता की सीमा बढ़ जाती है।

वित्तीय प्रबन्ध के कार्य

एक व्यवसायिक संस्था में वित्तीय प्रबन्ध के द्वारा अनेक महत्वपूर्ण दायित्वों को पूरा किया जाता है जिन्हें वित्त कार्य कहा जाता है। वित्तीय प्रबन्ध के कार्यो को प्रकृति के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है। वे कार्य जो निर्णयों व प्रशासन से सम्बन्धित होते हैं प्रशासनिक कार्य कहलाते हैं। वे कार्य जो संस्था में वित्तीय कार्यो के मूल्यांकन तथा समन्वय से सम्बन्धित होते हैं सहायक कार्य कहलाते हैं। वे कार्य जो दैनिक प्रकृति के होते हैं दैनिक वित्त कार्य कहलाते हैं ये कार्य निर्णय कार्यो के पूरक होते हैं।

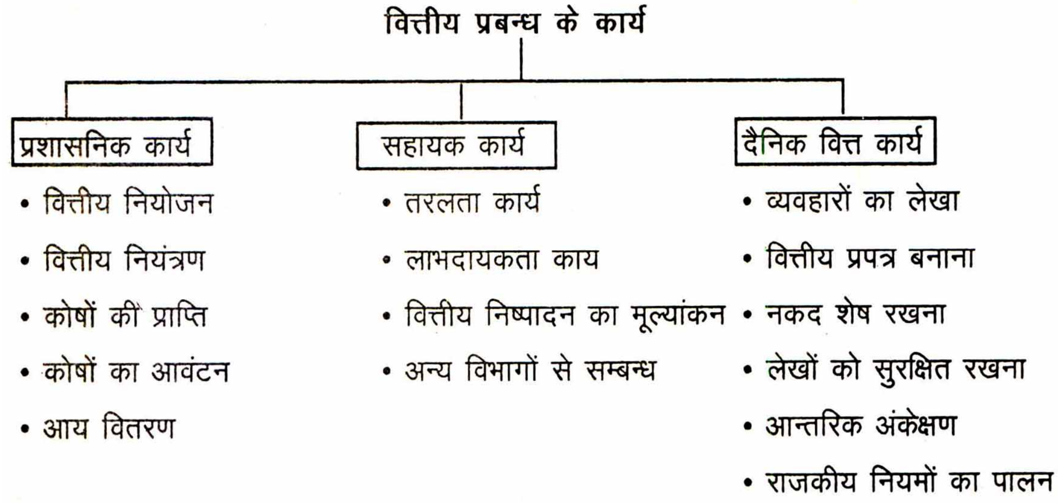

प्रशासनिक कार्य

संस्था में वित्तीय प्रबन्धक को वित्त सम्बन्धी महत्वपूर्ण निर्णय लेने होते हैं। इन्हीं वित्तीय निर्णयों को शासकीय कार्य भी कहा जाता है। इन निर्णयों को लेने से लिए वित्तीय प्रबन्धक में अनुभव, परिस्थितियों का ज्ञान एवं समझदारी आदि गुणों का होना आवश्यक होता है। प्रशासकीय कार्यो में निम्नलिखित कार्यो को शामिल किया जाता है-

1. **वित्तीय नियोजन** : वित्तीय नियोजन स तात्पर्य वित्त कार्यो को योजना बनाने से होता है। नियोजन से आशय संस्था के उद्देश्यों एवं लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए उपलब्ध विभिन्न विकल्पों में से सर्वोत्तम विकल्प का चुनाव करना तथा इन उद्देश्यों व लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये नीतियाँ बनाने से होता है। वित्तीय नियोजन करते समय निम्न तीन महत्वपूर्ण उद्देश्यों को ध्यान में रखा जाता है :-

- वित्तीय उद्देश्यों का निर्धारण (अल्पकाल तथा दीर्घकाल दोनों के लिए)।

- वित्तीय नीतियों (पूंजी संरचना, वित्त के स्त्रोत, कोषों का विनियोग, लाभांश निर्णय) आदि को तय करना।
- बेकार पड़े कोषों के विनियोग की योजना बनाना।

2. **वित्तीय नियंत्रण** : संस्था द्वारा अपने उद्देश्यों एवं लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए नीतियों एवं कार्यक्रमों को सफलतापूर्वक चलाने के लिए वित्तीय नियंत्रण किया जाता है। योजना के अनुसार वित्तीय प्रगति एवं कार्यकलापों का मूल्यांकन किया जाता है और लक्ष्यों तथा वास्तविक निष्पत्ति की तुलना की जाती है। विचलन पाये जाने पर योजना एवं कार्य प्रणाली में सुधार का प्रयास किया जाता हैं। बजटरी नियंत्रण तथा प्रतिवेदन पद्धति को संस्था में लागू किया जाता है।
3. **कोषों की प्राप्ति** : संस्था में आवश्यकतानुसार कोषों की मात्रा अथवा पूंजी की मात्रा का निर्धारण किया जाता है और कितनी पूंजी स्थायी सम्पत्तियों, चल सम्पत्तियों एवं अमूर्त सम्पत्तियों में विनियोजित की जायेगी, इस राशि का अनुमान लगाया जाता है। इसके पश्चात् पूंजी को विभिन्न स्त्रोत जैसे समता अंश, अधिमान अंश, ऋणपत्रों तथा ऋण से एकत्र किया जाता है। कोष एकत्र करते समय पूंजी की लागत उसकी प्रकृति तथा अवधि को ध्यान में रखा जाता है।
4. **कोषों का आबंटन** : प्राप्त कोषों का संस्था की स्थायी तथा चालू सम्पत्तियों में आवंटन भी वित्तीय प्रबन्ध का दायित्व होता है। इसका निर्णय सम्पत्तियों की लागत एवं लाभदायकता को ध्यान में रखकर किया जाता है। चालू सम्पत्तियों में आवश्यकता से कम विनियोग करने से संस्था के लाभों में वृद्धि हो जाती है किन्तु दायित्वों का भुगतान न करने की स्थिति संस्था में तरलता की कमी हो सकती है और दिवालियेपन की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। दूसरी ओर चालू सम्पत्तियों में आवश्यकता से अधिक विनियोग लाभों में कमी लाता है किन्तु इससे तरलता की स्थिति में सुधार हो जाता है।
5. **आय का वितरण** : आय का वितरण व्यवसाय का एक महत्वपूर्ण कार्य है। लाभों का कितना भाग संस्था में प्रतिधारित अर्जनों के रूप में रखा जाये तथा कितना भाग लाभांश के रूप में अंशधारियों में बाँटा जाये, इसका निर्णय पूर्व मे ही किया जाता - है।

सहायक कार्य

उपर्युक्त वर्णित प्रमुख कार्यो के अतिरिक्त वित्तीय प्रबन्ध को निम्नलिखित सहायक कार्यो को भी सम्पादित या पूर्ण करना होता है :-

1. **तरलता कार्य** : संस्था को अपने लेनदारों तथा दैनिक भुगतानों हेतु तरलता या नकद राशि बनाये रखना आवश्यक होता है। इसके लिए संस्था में रोकड़ प्रवाहों का अनुमान, कोषों का संग्रहण तथा रोकड़ अन्तर्वाहों का प्रबन्ध किया जाता है। तरलता बनाये रखने के लिए नकद अर्न्तवाहों तथा बर्हिवाहों में समन्वय स्थापित करना संस्था के हित में होता है।

2. **लाभदायकता सम्बन्धी कार्य** : वित्तीय प्रबन्ध द्वारा लाभदायकता को बढ़ाने का प्रयास किया जाता है ताकि अंशधारियों में अधिक लाभांश बाँटा जा सके। इसके लिए प्रबन्ध लागत नियंत्रण, अन्य प्रमापों तथा तकनीकों का उपयोग करता है।
3. **वित्तीय निष्पादन का मूल्यांकन** : वित्तीय प्रबन्ध का दायित्व संस्था की वित्तीय निष्पति का विश्लेषण करना होता है। विश्लेषण द्वारा निकाले गये परिणामों की सूचना संचालक मण्डल को दे दी जाती है। चालू वर्ष के परिणामों की तुलना गत वर्ष के परिणामों से करने के पश्चात निष्कर्ष निकाले जाते हैं। वित्तीय विश्लेषण के लिए वित्तीय प्रबन्धक द्वारा वित्तीय तकनीकों जैसे अनुपात, प्रवृत्ति, कोषप्रवाह रोकड़ प्रवाह लागत-लाभ-मात्रा विश्लेषण आदि तकनीकें उपयोग में लायी जाती हैं।
4. **अन्य विभागों से समन्वय** : किसी भी उपक्रम की सफलता संस्था के विभिन्न विभागों की क्रियाओं के समन्वय पर निर्भर करती है। वित्त कार्य व्यवसाय की प्रत्येक क्रिया का केन्द्र बिन्दु होता है। अत: वित विभाग एवं दूसरे विभागों की क्रियाओं में अच्छा समन्वय होना चाहिए। समन्वय न होने पर संस्था के उद्देश्यों को प्राप्त करना कठिन होता है।

दैनिक कार्य

संस्था में प्रतिदिन किये जाने वाले वित्तीय कार्य दैनिक कार्य कहलाते हैं। ये कार्य अधीनस्थों जैसे रोकड़िया लेखपाल या लिपिक द्वारा किये जाते हैं। ये कार्य वित्तीय प्रबन्धक को वित्तीय निर्णय लेने में मदद करते हैं। इनमें निम्नलिखित कार्य सम्मिलित किये जाते हैं :-

1. प्रत्येक व्यवहार का लेखा रखना।
2. विभिन्न व्यवहारों के सम्बन्ध में वित्तीय प्रपत्र तैयार करना।
3. संस्था द्वारा नकद शेष तथा तरलता की स्थिति को बनाये रखना।
4. प्रतिभूतियों एवं वित्तीय प्रपत्रों को सुरक्षित रखना।
5. पेंशन एवं कल्याण योजनाओं का प्रबन्ध
6. आतंरिक अंकेक्षण व्यवस्था करना।
7. सरकारी नियमों का पालन करना

वित्तीय प्रबन्धकों को संस्था की अतिरिक्त पूंजी के विनियोग का दायित्व भी सौंपा गया है ताकि फर्म को उचित एवं अनुकूलतम लाभ प्राप्त हो सके। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए परियोजना मूल्यांकन, पूंजी बजटन, पूंजी व्यय नियंत्रण जैसी नवीन तकनीकों का विकास किया गया। अब व्यवसायिक वित्त का कार्य विश्लेषणात्मक हो गया है और वित्त का अध्ययन प्रबन्धकीय वित्त या. वित्तीय प्रबन्ध विषय के अन्तर्गत किया जाता है।

1.8 सारांश

आधुनिक युग में वित्तीय प्रबन्ध प्रत्येक व्यवसाय के लिए आवश्यक हो गया है। व्यवसाय की सभी क्रियाओं का आधार वित्त ही होता है। व्यवसाय की सफलता, उसका

अस्तित्व, उसकी कार्य क्षमता उत्पादन स्थायी व कार्यशील पूंजी में विनियोग करने की क्षमता, वित्तीय नीतियों के द्वारा निर्धारित होती है। वित्तीय प्रबन्ध उपलब्ध साधनों द्वारा उत्पादकता में वृद्धि में सहायक होता है। वित्तीय प्रबन्ध के द्वारा पूंजी का प्रभावपूर्ण एवं मितव्ययितापूर्ण उपयोग भी किया जाता है। वित्तीय प्रबन्ध संस्था के वित्तीय कार्यो का सम्पादन करता है और सम्पदा मूल्य को भी बढ़ाने का प्रयास करता है।

1.9 शब्दावली

वित्तीय प्रबन्ध - वित्तीय प्रबन्ध कोषों के संग्रहण की योजना बनाना, उनकी प्राप्ति, आवंटन, अनुकूलतम उपयोग, नियंत्रण तथा मूल्यांकन है।

वित्तीय नियोजन - वित्तीय नियोजन संस्था के उद्देश्यों एवं लक्ष्यों का निर्धारण, वित्तीय नीतियों का निर्माण तथा कोषों के कुशलतम उपयोग से है।

पूंजी संरचना - पूंजी संरचना से आशय संस्था के पूंजी ढाँचे से होता है। पूंजी में अंश पूंजी तथा ऋण पूंजी दोनों को शामिल किया जाता है।

पूंजी बजटन - पूंजी बजटन से तात्पर्य दीर्घकालीन स्थायी सम्पत्तियों में विनियोग की योजना से होता है।

1.10 अभ्यास कार्य

अति लघुउत्तरात्मक प्रश्न-

1. वित्तीय प्रबन्ध की, परिभाषा दीजिए।
2. वित्तीय प्रबन्ध की दो विशेषताएँ बताइये।
3. वित्तीय प्रबन्ध के दो प्रशासनिक कार्य बताइये
4. वित्तीय प्रबन्ध के दो सहायक कार्य बताइये।
5. वित्तीय प्रबन्ध की दो सीमाएँ बताइये।

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. वित्तीय प्रबन्ध का अर्थ समझाइये।
2. विनियोग निर्णय से आप क्या समझते हैं?

1.11 उपयोगी पुस्तकें

एम.आर. अग्रवाल – वित्तीय प्रबन्ध के मूल तत्व

अग्रवाल, अग्रवाल – वित्तीय प्रबन्ध

इकाई - 2 : वित्तीय विवरण (Financial Statements)

इकाई संरचना:

2.0 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 अर्थ एवं परिभाषा
2.3 उपयोगिता
2.4 सीमाएं
2.5 प्रवृति
2.6 सारांश
2.7 शब्दावली
2.6 अभ्यास
2.9 संदर्भ ग्रन्थ

2.0 उद्देश्य:

इस पाठ में निम्न बिन्दुओं का समावेश है :-

1. वित्तीय विवरणों की सहायता से संस्था वित्तीय स्थिति की सूचना देना।
2. संस्था के परिचालन लाभों को दर्शाना।
3. संस्था की सम्पत्तियों की जानकारी देना।
4. संस्था के दायित्वों एवं संचयों की जानकारी।
5. संस्था के स्वामियों की समता को दर्शाना।
6. संस्था की शोधन क्षमता को मापना

2.1 प्रस्तावना:

वित्तीय विवरण किसी संस्था की वित्तीय स्थिति से सम्बन्धित सूचनाओं को उपलब्ध कराने के एक सुव्यवस्थित प्रलेख होते हैं। ये विवरण किसी व्यावसायिक संस्था में रुचि रखने वाले विभिन्न पक्षकारों यथा स्वामियों, लेनदारों, देनदारों क्या सामान्य जनता इत्यादि को वे सभी आवश्यक सूचनाएँ उपलब्ध करवाते हैं। ताकि सभी पक्षकार अपने-अपने हिसाब से निष्कर्ष निकाल सकें। अत: वित्तीय विवरणों को तैयार करते समय बहुत सावधानियाँ रखनी चाहिए जिससे विनियोजकों एवं विश्लेषकों द्‌वारा विनियोग सम्बन्धी निर्णय लेने हेतु संस्था की निष्पादन जाँचने में उनका उचित इस्तेमाल हो सके।

2.2 अर्थ एवं परिभाषा:

वित्तीय विवरणों से तात्पर्य ऐसे प्रपत्र से जिसमें किसी व्यावसायिक संस्था की समस्त वित्तीय सूचनाओं का संकलन प्रस्तुत किया जाता है।

जॉन एन मायर (John N Myer), "वित्तीय विवरण शब्द जैसा कि आधुनिक व्यवसाय में प्रयुक्त होता है दो विवरण जिनकों लेखापाल व्यावसायिक संस्था के लिए एक निश्चित समयावधि के पश्चात् बनाता है, के लिए प्रयुक्त होता है। ये विवरण स्थिति विवरण या वित्तीय स्थिति का विवरण तथा आय विवरण या लाभ-हानि का विवरण है।"

इस प्रकार स्पष्ट है कि वित्तीय विवरण किसी व्यावसायिक संस्था की वित्तीय सूचनाओं से सम्बन्धित प्रपत्र को कहते हैं। प्रायः वित्तीय विवरणों के अन्तर्गत निम्न दो वार्षिक प्रतिवेदनों को सम्मिलित किया जाता है:-

(i) स्थिति विवरण अथवा चिट्ठा

(ii) लाभ-हानि खाता।

आधुनिक व्यवसायिक जगत उपरोक्त वार्षिक प्रतिवेदनों के अन्तर्गत कुछ अन्य प्रतिवेदनों को भी वित्तीय विवरणों में संलग्न करता है -

(iii) कोष प्रवाह विवरण

(iv) रोकड प्रवाह विवरण

(v) मूल्य योग विवरण

(vi) रोकी गई अन्य विवरण

(vii) सामाजिक आय-व्यय विवरण तथा सामाजिक 'चिट्ठा इत्यादि

2.3 वित्तीय विवरणों की उपयोगिता

किसी व्यवसायिक संस्था की समस्त गतिविधियों का प्रभाव न केवल उसके स्वयं पर पड़ता है अपितु उसमें हित रखने वाले विभिन्न पक्षकारों पर भी पडता है। यही कारण है कि वे सभी संस्था की कार्यकुशलता, लाभदायकता उसके विकास, प्रगति इत्यादि की समय-समय पर सूचना चाहते हैं ताकि वे अपने आर्थिक निर्णय लेने में इन सूचनाओं का उपयोग कर सके। वित्तीय विवरण ही वे प्रपत्र हैं जो संस्था की समस्त वित्तीय सूचनाओं का संकलन कर उसे विभिन्न पक्षकारों के लिए उपयोगी बनाते हैं। अत: एक संस्था में हित रखने वाले विभिन्न पक्षकारों के लिए वित्तीय विवरणों की उपयोगिता निम्न प्रकार है :-

1. **प्रबन्धकों के लिए** - किसी संस्था में प्रबन्धकों का प्रमुख कार्य उस संस्था की समस्त गतिविधियों का सुचारू रूप से संचालन करने के साथ-साथ उस पर नियन्त्रण एवं नियोजन करना भी होता है। इस कार्य में प्रभावी वित्तीय विवरण महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यदि वित्तीय विवरण को तैयार करने में पूरी सावधानी रखी गई है तो यही वित्तीय विवरण प्रबन्धकों के लिए अत्यन्त उपयोगी साबित हो सकते है। प्रबन्धक इन्हीं वित्तीय विवरण की सहायता से संस्था के भविष्य के मार्ग को तय कर सकते हैं।
2. **विनियोजकों के लिए उपयोगी** - किसी संस्था को वित्तीय संसाधन उपलब्ध करवाने वाले विनियोजक या विनियोक्ता कहलाते हैं इनका उस संस्था में दीर्घकालीन हित जुड़ा होता है। अत: ये न केवल उस संस्था की भुगतान एवं शोध क्षमता में ही रूचि रखते हैं अपितु

उसकी लार्भाजन क्षमता एवं विस्तार तथा विकास इत्यादि में भी रूचि रखते है। प्रायः एक संस्था में धन का विनियोजन अंशधारियों तथा ऋणदाताओं द्वारा किया जाता है। चूँकि अंशधारी विनियोक्ता स्वामी कहलाते हैं अत: इनकी रूचि इस बात में अधिक होती है कि उन्हें दिए जाने वाले लाभांश की दर क्या है तथा उसके भविष्य में कितने रहने की सम्भावना है? बाजार में अंशों का मूल्य कितना है तथा भविष्य में उसके क्या रहने की सम्भावनाएँ है। इसके लिए वे वित्तीय विवरणों की विभिन्न प्रकार की सूचनाओं को आधार बनाकर आवश्यक निष्कर्ष निकालते हैं। इसी प्रकार एक संस्था द्वारा अल्पकालीन व दीर्घकालीन धन की प्राप्ति विभिन्न प्रकार के ऋणों के माध्यम से भी की जाती है। अत: उस संस्था में ऋणदाताओं के यह जानने में अधिक रूचि रहती है कि संस्था की अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन शोधन क्षमता कैसी है? लाभार्जन दर क्या है? ऋण राशि कितनी सुरक्षित है? इस सबके लिए वह संस्था के वित्तीय विवरणों का बारीकी से अध्ययन एवं विश्लेषण करते हैं तथा अन्य संस्थाओं के निष्कर्षों से उनकी तुलना करते है। अत: वित्तीय विवरण ऋणदाताओं की दृष्टि से भी उपयोगी है।

3. **बैंकिंग एवं वित्तीय संस्थाओं के लिए उपयोगी** - एक संस्था के वित्तीय विवरण उससे सम्बन्धित बैंकिंग तथा वित्तीय संस्थाओं के लिए भी उपयोगी होते है। प्रायः एक संस्था अपने दैनिक वित्तीय लेनदेन का व्यवहार बैंकों के माध्यम से करती है। बैंक संस्था को अधिविकर्ष (Overdraft), बिल क्रय (Bill Purchases)ए तथा सीमा सुविधा (Limit Facility) इत्यादि के रूप विभिन्न सुविधाऐं प्रदान करते हैं। अत: बैंक व अन्य वित्तीय संस्थाओं की रूचि इस बात की जानकारी करने में अधिक होती है कि संस्था लार्भाजन क्षमता, क्रियाशीलता तथा भुगतान क्षमता आदि कैसी है। चूंकि संस्था के वित्तीय विवरण इस सम्बन्ध में पूरी जानकारी देने में सक्षम होते हैं अत: ये विवरण बैंकिंग एवं वित्तीय संस्थाओं के लिए भी उपयोगी होते हैं।
4. **सरकार के लिए उपयोगी** - एक देश की केन्द्रीय सरकार व राज्य सरकारें देश में बेहतर औद्योगिक वातावरण के निर्माण के लिए अनेक प्रकार के नियम व कानूनों का निर्माण व उनमें संशोधन करती है। इस हेतु उन्हें औधोगिक व व्यावसायिक क्षेत्र की गतिविधियों का अध्ययन करना होता है। इसके लिए सरकार को कम्पनियों व संस्थाओं के वित्तीय विवरणों का अध्ययन करना होता है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु सरकार ने कम्पनी अधिनियम 1956 के तहत संस्थाओं के लिए वित्तीय विवरणों के निर्माण एवं प्रकाशन के नियम बना रखे हैं। यही कारण की कम्पनियाँ सरकारी नियमों की पालना में अपने वित्तीय विवरणों का निर्माण एवं प्रकाशन करती हैं। जिनका उपयोग सरकारें अपनी भावी कर एवं वित्तीय नीति के निर्माण के लिए करती हैं।
5. **श्रमिकों, कर्मचारियों तथा श्रमसंघों के लिए उपयोगी** - श्रमिकों एवं कर्मचारियों का संस्था से सीधा जुड़ाव होता है। श्रमिक कर्मचारी तथा इनके श्रम संघ भी संस्था की लाभार्जन क्षमता, वित्तीय स्थिति में प्रत्यख रूप से रूचि रखते हैं। इस हेतु इनके द्वारा संस्था के वित्तीय विवरणों का उपयोग किया जाता है। वित्तीय विवरणों के अध्ययन के आधार पर ही वे अपनी माँगों को पूरा करने पर जोर देते हैं।

6. **अन्य पक्षों के लिए उपयोगी** - व्यवहारिक जगत में अनेक पक्षकार ऐसे होते हैं जिनका संस्था से सीधा सम्बन्ध नहीं होता है फिर भी वे इनके वित्तीय विवरणों का उपयोग अपने हित में करते हैं। जैसे अनुसन्धानकर्ता, अध्ययनकर्ता, ग्राहक, प्रतिद्वंदी, वितरेक अर्थशास्त्री, समाज सुधारक आदि। ऐसे पक्षकारों को यद्यपि प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से कोई सीधा लाभ नहीं मिलता है किन्तु वे अपने ज्ञानवर्द्धन, शोधकार्य एवं सामाजिक लाभ के लिए वित्तीय विवरणों का उपयोग करते हैं।

   इस प्रकार वित्तीय विवरण समाज के विभिन्न पक्षों के लिए प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से उपयोगी होते है।

2.4 वित्तीय विवरणों की सीमाएं:

वित्तीय विवरण व्यावसायिक एवं औद्योगिक विकास विस्तार एवं भावी योजनाओं को मूर्त रूप देने में उपयोगी होते हैं। ये विवरण संस्था द्वारा किए गए लेखों का संक्षिप्त रूप होते हैं। इन पर आधारित निकाले गए निष्कर्ष एवं निर्णय तभी लाभकारी होते हैं जबकि वित्तीय आकड़े शुद्ध एवं सत्य हो। किन्तु प्रत्येक संस्था की कुछ सीमाएँ एवं विचार होते हैं। जिनका प्रभाव लेखों एवं वित्तीय विवरणों पर भी पड़ता है। वित्तीय विवरणों की प्रमुख सीमाएं निम्नलिखित है :-

1. **पूर्ण सत्यता का अभाव**- वित्तीय विवरण लेखांकन की विभिन्न मान्यताओं एवं अवधारणाओं के साथ-साथ व्यक्तिगत निर्णयों से भी प्रभावित होते हैं। अतः इनमें दिखाई वित्तीय सूचनाएँ व आँकड़े सही व उचित नहीं होने पर ये वित्तीय विवरण भ्रामक निष्कर्ष निकाल सकते हैं। इसलिए इन विवरणों में पूर्ण सत्यता का अभाव पाया जाता है।
2. **वास्तविकता का अभाव**- वित्तीय विवरणों में सम्पत्तियों को पुस्तक मूल्य पर दिखाया जाता है। इनके पुस्तक मूल्य में से ह्रास की राशि कम कर दी जाती है किन्तु इन सम्पत्तियों का बाजार मूल्य लेखा मूल्यों से कई गुना अधिक होता हैं इसी प्रकार लाभ-हानि खाता अथवा आय विवरण में दिखाया गया लाभ भी वास्तविकता से अलग होता है। शुद्ध लाभ-हानि का निर्धारण करते समय स्टॉक का मूल्य, ह्रास, प्रावधान आदि स्वामी व लेखपाल के स्वयं के निर्णय से प्रभावित होते हैं। जो कि वास्तविक से भिन्न हो सकते है
3. **गैर-मौद्रिक सूचनाओं को शामिल न करना**- वित्तीय विवरण मौद्रिक सूचनाऐं, जो व्यवसाय से सम्बन्धित अनेक निर्णयों में सहायक तो होती है किन्तु ।वित्तीय विवरणों में शामिल नहीं की जाती है। गैर-मौद्रिक सूचनाओं में व्यवसाय की प्रतिष्ठा, प्रबन्ध की कार्य क्षमता, कार्यशैली, अधिकारियों व कर्मचारियों का मनोबल, सरकारी नीतियाँ, कम्पनी की सम्पत्तियों का बाजार मूल्य, उत्पादन सम्बन्धी दशाएं, श्रम समस्याऐं इत्यादि को शामिल किया जाता है। जबकि इन सभी सूचनाओं की व्यावसायिक निर्णयों में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। वित्तीय विवरण केवल व्यवसाय के वित्तीय लेखों का संक्षिप्त रूप होते हैं न कि वास्तविक वित्तीय स्थिति का।

4. **अन्तरिम प्रतिवेदन-** व्यवसाय एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। वित्तीय विवरण किसी निश्चित समय बिन्दु की सूचना के आधार पर उस समय के व्यतीत होने के बाद में बनाए जाते हैं। अत: वित्तीय विवरण संस्था का अन्तिम प्रतिवेदन न होकर अन्तरिम प्रतिवेदन होते हैं।
5. **भ्रामक तथ्यों को पेश करना-** अनेक बार कम्पनियाँ वित्तीय विवरणों की सहायता से अपनी भ्रामक तस्वीर को प्रदर्शित करने में सफल रहती है। इस हेतु प्रायः कम्पनियाँ अच्छी वित्तीय स्थिति को प्रस्तुत करने के लिए ऊपरी दिखावे का सहारा लेती है। तथा वित्तीय विवरणों को वास्तविकता से दर कर देती है
6. **तुलनात्मकता का अभाव** - विभिन्न कम्पनियों द्वारा वित्तीय विवरणों को तैयार करने के तरीकों में समयावधि, व्यवसाय के आकार, प्रकृति, कार्यशैली आदि की भिन्नता पाई जाती है। अत: एक कम्पनी के वित्तीय विवरणों से दूसरी कम्पनी के वित्तीय विवरणों की तुलना करने में कठिनाई आती हैं।
7. **व्यक्तिगत निर्णय से प्रभावित-** वित्तीय विवरणों के निर्माण में संस्था के स्वामियों व लेखापाल की प्रमुख भूमिका होती है। अत: इनके द्वारा तैयार वित्तीय विवरण इनके व्यक्तिगत निर्णयों से प्रभावित होने की सम्भावना रहती है।

अत: स्पष्ट है कि वित्तीय विवरणों के उपयोगकर्ता को वित्तीय विवरणों की उपरोक्त सीमाओं को ध्यान में रखते हुए ही इनका उपयोग करना चाहिए।

2.5 प्रकृति:

वित्तीय विवरणों में किसी व्यावसायिक संस्था की एक वित्तीय वर्ष में सम्पन्न समस्त गतिविधियों का सारांश होता है। इनमें उन सभी बिन्दुओं का क्रमानुसार लेखा किया जाता है जो संस्थान के वित्तीय लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायक होते हैं। ये विवरण पत्र संस्था की आर्थिक स्थिति को प्रकट करते हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि ये विवरण-पत्र सदैव ऐतिहासिक मूल्यों पर तैयार किए जाते हैं न कि चालू मूल्यों पर। क्योंकि वित्तीय विवरण इस मान्यता पर आधारित होते हैं कि मुद्रा के मूल स्थिर रहेगें। चूंकि वित्तीय विवरण पुस्तकों में चले आ रहे ऐतिहासिक मूल्यों, लेखांकन की अवधारणाओं, मान्यताओं, परम्पराओं तथा स्वामित्व की व्यक्तिगत इच्छा शक्ति के सामूहिक परिणामों के आधार पर तैयार किए जाते हैं। अत: इनकी प्रकृति को स्पष्ट रूप से समझा जाना आवश्यक है :-

1. **लिपिबद्ध तथ्यों का प्रस्तुतीकरण** - वित्तीय विवरण लेखा पुस्तकों की सहायता से तैयार किए जाते है। लेखा पुस्तकों में दिखाए गए समंकों तथा सूचनाओं को ही वित्तीय विवरणों में संक्षिप्त रूप में प्रदर्शित किया जाता है। लेखा पुस्तकों में सभी लेनदेनों का वास्तविक राशि में तिथिवार क्रमबद्ध तरीके से लेखा किया जाता है, तत्पश्चात् इन लेखों की सम्बन्धित खातों में खतौनी की जाती है तथा शेष (Balance) ज्ञात किए जाते है। वित्तीय विवरण पत्र ही वे प्रपत्र होते हैं जिनमें समस्त व्यक्तिगत (personal), वास्तविक (Real) तथा नाममात्र (Nominal) के खातों के शेषों (Balance) का दिखाया

जाता है यथा क्रय, विक्रय, खर्च, आय, सम्पत्ति, दायित्व, पूँजी एवं संचय इत्यादि के शेषों को लेखा पुस्तकों से लिया जाता है। अत: वित्तीय विवरण आलेखित सूचनाओं के आधार पर ही तैयार किए जाते हैं। वित्तीय विवरणों में उन समंकों व सूचनाओं को शामिल नहीं किया जाता जिनका लेखा पुस्तकों में इन्द्राज नहीं किया जाता है चाहे वे तथ्य एवं सूचनाऐं संस्थान के लिए कितनी ही महत्वपूर्ण क्यों न हो।

2. **लेखाकंन प्रथाएँ (Accounting conventions)** - लेखा पुस्तकों में लेखों का इन्द्राज लेखांकन सिद्धान्तों के आधार पर किया जाता है। लेखांकन के क्षेत्र में यह प्रथा प्रारम्भ से ही चली आ रही है कि जो परम्पराएँ या प्रथाएँ कायम हो चुकी है उन्हीं का अनुसरण किया जाता है वित्तीय विवरणों के निर्माण में भी इन्हीं प्रथाओं का पालन किया जाता है। उदाहरणार्थ स्टॉक के मूल्यांकन के लिए यह प्रथा कायम है कि उसका मूल्यांकन लागत मूल्य (Cost Price) या बाजार मूल्य (Market Price), दोनों में से जो कम हो, के आधार पर किया जाता है। वर्तमान में भी संस्थाओं में स्टॉक मूल्यांकन की यही प्रथा चलन में है। इसी प्रकार लेखांकन के क्षेत्र में अभी भी अनेक प्रथाएँ कायम हैं जैसे महत्वता की प्रथा, प्रकटता की प्रथा संगतता की प्रथा तथा रूढ़िवादिता की प्रथा इत्यादि। अत: वित्तीय विवरणों के निर्माण में भी इन्हीं प्रथाओं को प्रयोग में लिया जाता है।

3. **विभिन्न अवधारणाएँ (different Concepts)** - वित्तीय विवरणों के निर्माण में विभिन्न लेखांकन प्रथाओं का पालन करने के साथ-साथ विभिन्न अवधारणाओं का भी अनुसरण किया जाता है। अवधारणाओं से तात्पर्य ऐसे विश्वास एवं विचारों से है जो स्वयं सिद्ध है तथा जिनको स्वीकार करने में किसी तर्क-वितर्क, मतंव्य व विवाद आदि की आवश्यकता नहीं होती है, साथ ही इनके लिए किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती है। लेखांकन के अन्तर्गत अनेक अवधारणाएँ है जिनके आधार पर पुस्तकों तथा वित्तीय विवरण में लेखे किए जाते हैं, ये प्रमुख अवधारणाएँ निम्नलिखित हैं :-
   (i) सतत् व्यवसाय संस्थान अवधारणा;
   (ii) लेखांकन अवधि अवधारणा, तथा
   (iii) लागत अवधारणा।

4. **व्यक्तिगत निर्णयों से प्रभावित** (Personal Judgment)- लेखांकन के सिद्धान्त, मान्यताऐं, परम्पराएं एवं अवधारणाएं वित्तीय लेखांकन एवं वित्तीय विवरणों के तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। किन्तु इसके साथ ही संस्थान के स्वामी व लेखापाल भी अपने व्यक्तिगत विचारों से इनके निर्माण को प्रभावित करते हैं जैसे प्रावधान (provision) किन पर बनाना है, किस प्रकार बनाना है, ह्रास किस दर से लगाना है तथा किस विधि से लगाना है, स्टॉक का मूल्यांकन किस प्रकार किया जाना है, आदि अनेक ऐसे बिन्दु जो लेखापाल के स्व-विवेक पर निर्भर करते हैं। यही कारण है कि वित्तीय विवरण में सम्पत्तियों एवं दायित्वों को निरपेक्ष मूल्यों के स्थान पर संशोधित मूल्यों पर दर्शाया जाता है। अत: वित्तीय विवरणों से उपयोगी निष्कर्ष ज्ञात करने के लिए गहन अध्ययन एवं विश्लेषण करने की आवश्यकता होती है।

स्थिति विवरण (Balance sheet)

स्थिति विवरण, वित्तीय विवरणों में सबसे महत्वपूर्ण विवरण के रूप में जाना जाता है। इसे कई अनेक नामों यथा, आर्थिक चिट्ठा, वित्तीय स्थिति का विवरण, सम्पत्तियों तथा दायित्वों का विवरण इत्यादि से भी जाना जाता है। स्थिति विवरण किसी व्यवसाय में किसी एक निश्चित समय अवधि पर सम्पत्ति दायित्वों एवं स्वामियों के हित से सम्बन्धित सूचनाओं को सारांश के रूप में प्रस्तुत करता है। इसमें विभिन्न स्थाई एवं अस्थाई सम्पत्तियों यथा - भूमि भवन, विनियोग, स्टॉक, बैंक में नकद शेष, हस्तस्थ रोकड, विभिन्न देनदार तथा लाभ-हानि खाते की हानि आदि को दाई ओर दिखाया जाता है। पूँजी ऋण' संचय कोष, चालू दायित्व तथा लाभ-हानि खाते का लाभ स्थिति विवरण में बाई ओर दिखाए जाते हैं। यह उल्लेखनीय है कि चिट्ठे में बाँई व दाँई दोनों ओर का शेष बराबर होता है।

स्थिति विवरण के कार्य

स्थिति विवरण द्वारा संस्था के लिए तीन प्रमुख कार्य किए जाते है, जो इस प्रकार हैं:-

1. **संस्था की वित्तीय स्थिति की जानकारी** - स्थिति विवरण, स्वामियों एवं बाह्य व्यक्तियों को संस्था की वित्तीय स्थिति की जानकारी देने का महत्वपूर्ण स्त्रोत होता है। इसके आधार पर संस्था की समस्त सम्पत्तियों व समस्त दायित्वों को ज्ञात किया जा सकता है।
2. **तरलता का ज्ञान** - स्थिति विवरण संस्था की तरलता को जानने में सहायक होता है। यहाँ तरलता से आशय संस्था के दायित्वों को समय पर भुगतान करने की क्षमता से होता है।
3. **शोधनक्षमता की जानकारी**- स्थिति विवरण किसी संस्था की शोधनक्षमता को जानने में भी भूमिका निभाते हैं अर्थात ये दीर्घकालीन दायित्वों के भुगतान की क्षमता की जानकारी करने में सहायक होते हैं। संस्था की कुल सम्पत्तियों के कुल दायित्वों से अनुपात के आधार पर शोधनक्षमता को मापा जा सकता है। ऋणों का ऊँचा अनुपात संस्था को हानि पहुँचा सकता है।

स्थिति विवरण प्रारूप

स्थिति विवरण को खाते के रूप में दर्शाया जाता है। इसमें सम्पत्तियों को दाएँ भाग में तथा पूँजी एवं दायित्वों को बाएँ भाग में दिखाया जाता है। इसमें प्रायः चालू वर्ष के आंकडों के साथ-साथ गत वर्ष के भी आँकड़े दिए जाते हैं। एक संस्था के काल्पनिक स्थिति विवरण का प्रारूप नीचे दिया गया है :-

पूँजी एवं दायित्व	रुपयों में	सम्पत्तियाँ	रुपयों में
<u>अंश पूँजी</u>		**<u>स्थाई सम्पत्तियाँ</u>**	
अधिकृत पूँजी, निगमित पूँजी		भूमि, भवन, प्लांट	
चुकता पूँजी :		मशीनरी इत्यादि	XXX
.............अंश@............रुपए	XXX	घटाएँ - ह्रास	XXX
		xxx	

<u>संचय एवं आधिक्य</u>		**<u>विनियोग (लागत पर)</u>**
पूँजी संचय	XXX	चालू सम्पत्तियाँ, ऋण एवं अग्रिम
सामान्य संचय	XXX	स्कन्ध
<u>सुरक्षित ऋण</u>		प्राप्य बिल
ऋण पत्र	XXX	अग्रिम देनदार
गिरवी ऋण/सम्पत्तियों पर ऋण	XXX	नकद एवं बैंक में जमा विभिन्न व्यय
<u>असुरक्षित ऋण</u>		
जनता से जमाएँ	XXX	
चालू दायित्व एवं प्रावधान	XXX	
(अ) चालू दायित्व		
लेनदार	XXX	
देय बिल	XXX	
ग्राहक अग्रिम	XXX	
न माँगा गया लाभांश	XXX	
(ब) <u>प्रावधान</u>		
प्रस्तावित लाभांश करारोपण	XXX	

स्थिति विवरण का उपर्युक्त प्रारूप वित्तीय विश्लेषण की दृष्टि से उपयोगी नहीं समझा जाता है, अतः इसे प्रतिवेदन (report) या लम्बवत् (vertical) प्रारूप में प्रस्तुत किया जाता है। प्रतिवेदन प्रारूप में स्थिति विवरण में सबसे ऊपर सम्पत्तियों तथा बाद में दायित्वों एवं स्वामियों के अंश आदि को दर्शाया जाता है। इस प्रारूप से यह सरलता से स्पष्ट हो जाता है कि कुल सम्पत्तियों में से कुल दायित्वों को घटाने के बाद अंशधारियों का अंश कितना बचा रहता है। ऐसे स्थिति विवरण का काल्पनिक प्रारूप निम्नानुसार

अनमोल पेपर प्रोडक्टस

स्थिति विवरण

31 मार्च 2007 को स्थिति

	रु.	**रु.**
<u>स्थाई सम्पत्तियाँ</u>		
भूमि, भवन, प्लान्ट एवं मशीनरी		XXX
घटाएँ ' ह्रास		XXX
		XXX
विनियोग (लागत पर)		XXX

चालू सम्पत्तियों, ऋण एवं अग्रिम		
स्टॉक	XXX	
प्राप्त बिल	XXX	
देनदार	XXX	
अग्रिम, जमाएँ इत्यादि	XXX	
नकद व बैंक शेष	XXX	
	XXX	
घटाएं: चालू दायित्व एवं प्रावधान		
लेनदार	XXX	
देय बिल	XXX	
ग्राहक अग्रिम	XXX	
न माँगा गया लाभांश	XXX	
करारोपण	XXX	
प्रस्तावित लाभांश	XXX	
	XXX	
शुद्ध चालू सम्पत्तियाँ (चालू सम्पत्तियाँ -चालू दायित्व)		XXX
कुल विनियोजित पूँजी		XXX
स्थाई पूँजी		
अंश पूँजी		XXX
संचय एवं आधिक्य		XXX
समता अंशपूँजी		XXX
ऋण कोष	XXX	
सुरक्षित ऋण	XXX	
कुल देनदारियों		XXX

स्थिति विवरण की मदों का वर्गीकरण (Classification of balance sheet items)

कम्पनी अधिनियम 1956 के निर्देशानुसार, स्थिति विवरण में दर्शायी जाने वाली विभिन्न मदों को उचित आधार पर वर्गीकृत करके इन्हें निश्चित क्रम में रखा जाता है ताकि संस्था मे हित रखने वाले विभिन्न पक्षकार इन मदों के आधार पर उचित निष्कर्ष निकाल सकें। विश्लेषण एवं निवर्चन की दृष्टि से स्थिति विवरण में दर्शायी जाने वाली विभिन्न मदों का वर्गीकरण इस सिद्धान्तानुसार किया गया है कि कुल दायित्व (total Liabilities) व स्वामित्व के अंश का कुल मूल्य संस्था की कुल सम्पत्तियों (Total Assets) के बराबर होता है। स्थिति विवरण की विभिन्न मदों का वर्गीकरण निम्नानुसार है -

सम्पत्तियाँ (Assets)

- चालू सम्पत्तियाँ (Current Assets)
- स्थायी सम्पत्तियाँ (Fixed Assets)
- विनियोग (Investments)
- विविध या स्थगित व्यय (miscellaneous or Differed Expenditure)

दायित्व (Liabilities)

- चालू दायित्व (current liabilities)
- दीर्घकालीन दायित्व (Long Term Liabilities)

स्वामियों की समता या शुद्ध मूल्य (Owner's Equity or net worth)

- अंश पूंजी (Share Capital)
- संचय एवं आधिक्य (Reserve & Surplus)

<u>**सम्पत्तियाँ**</u>

सम्पत्तियों को चिट्ठे के दायीं ओर प्रदर्शित किया जाता है। ये सम्पत्तियाँ तरलता अथवा स्वामित्व के क्रम में दर्शायी जाती है। विश्लेषण की दृष्टि से सम्पत्तियों को निम्न वर्गो में बाँटा जा सकता है :-

1. **स्थायी सम्पत्तियाँ** : स्थायी सम्पत्तियाँ वे सम्पत्तियाँ होती हैं जिन्हें व्यवसाय के संचालन में प्रयोग किया जाता है। इन्हें खरीदने का उद्देश्य पुन: बेचकर लाभ कमाना नहीं होता है। ये पूंजीगत सम्पत्तियों भी कहलाती हैं। इन सम्पत्तियों को दो भागों में बाँटा जाता है -

   (अ) मूर्त सम्पत्तियाँ

   (ब) अमूर्त सम्पत्तियाँ

(अ) मूर्त सम्पत्तियाँ वे सम्पत्तियों होती है जो प्रत्यक्ष रूप से दिखायी देती हैं, जैसे- सयंत्र, मशीन, भवन, भूमि, फर्नीचर आदि।

(ब) अमूर्त सम्पत्तियाँ वे सम्पत्तियाँ होती हैं जिनका कोई भी भौतिक स्वरूप नहीं होता है। इन सम्पत्तियों के आधार पर एक व्यवसाय दूसरे व्यवसाय से ज्यादा लाभ कमा सकता है। इन सम्पत्तियों में (i)ख्याति (ii) स्वत्वाधिकार एवं व्यापार चिन्ह (iii) प्रतिलिप्याधिकार (iv) लाइसेन्स तथा (v) अधिकार आदि को शामिल किया जाता है।

2. **विनियोग** : लाभ कमाने एवं नियंत्रण करने के उद्देश्य से एक संस्था दूसरी संस्था एवं सरकारी निकायों के अंशों एवं ऋणपत्रों में धन का विनियोग करती है। इन्हें व्यापारिक विनियोग कहा जाता है इनकी अवधि एक वर्ष तक होती है। यदि विनियोग एक वर्ष से दस वर्ष या अधिक अवधि के लिए किये-जाते हैं। तो इन्हें दीर्घकालीन विनियोग कहा जाता है। ये विनियोग- अन्य संस्थाओं पर नियन्त्रण हेतु, नयी कम्पनी स्थापित करने हेतु, परिचालनात्मक सम्बन्ध विकसित करने हेतु किये जाते हैं।
3. **चालू सम्पत्तियाँ** : चालू सम्पत्तियों से आशय ऐसी सम्पत्तियों से होता है जिन्हें तुरंत नकद राशि में परिवर्तित किया जा सकता है। इन सम्पत्तियों में हस्तस्थ रोकड़ व बैंक शेष प्राप्त विपत्र, देनदार, स्कन्ध, विक्रय योग्य प्रतिभूतियाँ, अग्रिम भुगतान, पूर्वदत्त व्यय आदि को सम्मिलित किया जाता है।

त्वरित सम्पत्तियाँ वे सम्पत्तियाँ होती हैं जिन्हें तुरन्त रोकड़ में परिवर्तित किया जा सकता है रोकड़ व बैंक शेष सर्वाधिक तरल सम्पत्ति हैं किन्तु देनदार तथा विपणन योग्य प्रतिभूतियों को अल्प सूचना पर नकद राशि मे परिवर्तित किया जा सकता है इसलिए इन्हें भी तरल सम्पत्ति माना जाता है। इन सम्पत्तियों की वसूली की अवधि एक वर्ष होती है।

4. **विविध सम्पत्तियाँ** : वे सम्पत्तियाँ जो उपर्युक्त? तीनों प्रकार की सम्पत्तियों में शामिल नहीं होती हे इस वर्ग में रखी जाती हैं। स्थगित व्ययों को इस वर्ग में रखा जाता है। भविष्य में इन्हें लाभ हानि खाते में अपलिखित कर दिया जाता है। इन सम्पत्तियों में प्रारम्भिक व्यय, अंश एवं ऋणपत्रों के निर्गमन पर अभिगोपन कमीशन व बट्टा, लाभ-हानि खाते का डेबिट शेष आदि को सम्मिलित किया जाता है। इन सम्पत्तियों को कृत्रिम सम्पत्तियाँ भी कहते हैं।

दायित्व : संस्था के द्‌वारा अन्य व्यक्तियों या संस्थाओं को देय भुगतानों को दायित्व कहा जाता है। संस्था इन व्यक्तियों या संस्थाओं की ऋणी होती है। इसके अतिरिक्त संस्था वित्तीय संस्थाओं बैंकों व ऋणपत्रों के माध्यम से दीर्घकालीन ऋण ले सकती है। उधार माल खरीदने पर भी संस्था की देनदारियाँ उत्पन्न हो जाती है। दायित्वों को समयावधि के आधार पर दो भागों में बाँटा जा सकता है-

(i) **दीर्घकालीन दायित्व** : एक वर्ष की अवधि से अधिक समय के बाद जिन दायित्वों का भुगतान किया जाता है, उन्हें दीर्घकालीन दायित्व कहा जाता है। जमानत पर ऋण, ऋणपत्र, दीर्घकालीन बैंक ऋण को दीर्घकालीन दायित्वों में शामिल किया जाता है।

(ii) **चालू दायित्व** : चालू दायित्व वे दायित्व होते हैं जिनका भुगतान एक वर्ष की अवधि में देय होता है। ये दायित्व व्यवसाय की दैनिक क्रियाओं के कारण उत्पन्न होते हैं। इन दायित्वों में लेनदार, देय विपत्र, बेक अधिविकर्ष, अल्कालीन ऋण, देय लाभांश तथा अदत्त व्ययों को शामिल किया जाता है।

स्वामियों की समता

अंशधारक व्यवसाय के स्वामी कहलाते हैं। स्वामियों की समता यह भाग होती है जिसकी पूर्ति स्वामियों के द्‌वारा की गई है। इसे शुद्ध सम्पदा मूल्य या शुद्ध विनियोजित पूंजी भी कहा जाता है। स्वामियों की समता में तीन तत्व पाये जाते हैं इसमें समता अंश पूंजी तथा अधिमान अंश पूंजी, संचयों तथा आधिक्यों या अवितरित लाभों को 'सम्मिलित किया जाता है।

लाभ-हानि खाता अथवा आय विवरण

लाभ-हानि खाता संस्था की शुद्ध आय को प्रस्तुत करता है। इसमें एक निश्चित अवधि के आय एवं व्ययों को प्रदर्शित किया जाता है यह खाता संख्या के आधिक्य तथा हानि को दर्शाता है। आय व्ययों से अधिक होने पर आधिक्य तथा व्ययों के आय से अधिक होने पर हानि होती है। इस विवरण की सहायता से संस्था की लाभदायकता को मापा जाता है। लाभ-हानि खाते को आय विवरण, आय एवं आधिक्य विवरण, आय एवं

अर्जित आधिक्य विवरण, आय एवं व्ययों का विवरण आदि नामों से भी जाना जाता है।

आय विवरण के कार्य - लाभ-हानि खाता या आय विवरण एक निश्चित अवधि के आगम एवं व्ययों का लेखा होता है। यह दो तिथियों के बीच चिट्ठे में हुए परिवर्तनों को -बताता है। आय विवरण के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं-

- **संक्षिप्त सारांश** : लाभ-हानि खाता एक निश्चित अवधि में संस्था के आय तथा व्ययों की सूचना को संक्षेप में बताता है।
- **शुद्ध आय का माप** : लाभ/हानि खाता लेखांकन नियमों के अनुसार संस्था की आय की व्ययों से तुलना करके शुद्ध आय की गणना करता है।

स्वामी तथा अन्य पक्षकारों को परिणामों की सूचना देना : लाभ-हानि खाता व्यवसाय के स्वामियों एवं अन्य पक्षकारों को संस्था के कार्यों तथा उनके परिणामों की जानकारी देता है।

लाभ-हानि खाते का प्रारूप

सभी व्यवसायों एवं उद्योगों को प्रकृति भिन्न-भिन्न होती है और प्रत्येक व्यवसाय एवं उद्योग का लाभ-हानि जाता अलग-अलग प्रारूप में तैयार किया जाता है। सामान्यत: लाभ-हानि खाते को दो भागों में बाँटा जाता है एक लाभ हानि खाता बनाया जाता है दूसरा लाभ-हानि नियोजन खाता बनाया जाता है। विश्लेषण की दृष्टि से यह खाता उपयुक्त नहीं है। अत: लाभ-हानि खाता इस प्रकार तैयार किया जाना चाहिए जिसमें संस्था की आय एवं व्ययों को उचित शीर्षकों के अन्तर्गत वर्गीकृत करके दर्शाया जा सके, ताकि वे प्रबन्धकों के लिए सर्वाधिक उपयोगी सिद्ध हो सकें तथा संस्था की आवश्यकतानुसार क्रिया-कलापों के परिणाम को प्रदर्शित कर सकें। वर्तमान में अधिकांश व्यवसायों द्वारा आय विवरण तैयार किया जाता है। यह आय विवरण दो प्रकार का होता है जिन्हें नीचे स्पष्ट किया गया है -

(अ) एक स्तरीय आय विवरण

(ब) बहुस्तरीय आय विवरण

(अ) **एक स्तरीय आय विवरण** : विवरण में से जब आय विवरण में दी गई आय में से समस्त लागतों एवं व्ययों को घटाकर शुद्ध आय ज्ञात की जाती है ऐसे आय विवरण को एक स्तरीय आय विवरण कहा जाता है। एक स्तरीय आय विवरण का प्रारूप नीचे दिया गया है।

हिन्द लीवर उत्पाद लिमिटेड

आय विवरण

31 मार्च 2009 को समाप्त होने वाले वर्ष के लिए

	रुपयों में	रुपयों में
<u>**आगम**</u>		
विक्रय (विक्रय वापसी को घटाने के पश्चात्)	XXX	

दूसरे स्त्रोतों से आय	XXX	
कुल आगम		XXX
लागत एंव व्यय		
बेचे गये माल की लागत	XXX	
सामान्य एवं प्रशासन व्यय	XXX	
विक्रय व्यय	XXX	
ब्याज	XXX	
गैर परिचालन व्यय	XXX	
कर प्रावधान	XXX	
कुल लागत एवं व्यय		XXX
कर के पश्चात शुद्ध लाभ		XXX
प्रस्तावित लाभांश		XXX
व्यवसाय में प्रतिधारित आय		XXX

(ब) **बहुस्तरीय आय विवरण** : बहुस्तरीय आय विवरण अत्यन्त उपयोगी विवरण होता है और संस्था के परिचालन की विस्तृत सूचनाएँ उपलब्ध करवाता है। इस विवरण में परिचालन आय एवं गैर परिचालन आयों, परिचालन व्ययों तथा गैर परिचालन व्ययों को अलग-अलग दिखाया जाता है। बहुस्तरीय आय विवरण तैयार करते समय विक्रय में से बेचे गये माल की लागत को घटा कर सकल लाभ प्राप्त किया जाता है। सकल लाभ में से सभी परिचालन व्ययों को घटाया जाता है और शुद्ध लाभ ज्ञात किया जाता है। शुद्ध लाभ में गैर परिचालन आयों को जोड़ा जाता है तथा गैर परिचालन व्ययों को घटाया जाता है इससे कर पूर्व शुद्ध लाभ ज्ञात कर लिया जाता है। अंत में शुद्ध लाभ में से कर आयोजन घटाया जाता है और कर के पश्चात शुद्ध लाभ ज्ञात हो जाता है।

हिन्द लीवर उत्पाद लिमिटेड

आय विवरण

31 मार्च 2009 को समाप्त होने वाले वर्ष के लिए

	रुपयों में	रुपयों में
विक्रय आगम (शुद्ध)		XXX
घटाइये : बेचे गये माल की लागत		XXX
सकल लाभ		XXX
घटाइये : परिचालन व्यय		
सामान्य एवं प्रशासन व्यय	XXX	
विक्रय व्यय	XXX	
ह्रास	XXX	XXX
परिचालन लाभ		XXX
जोड़िये : अन्य आगम	XXX	

घटाइये :: गैर परिचालन व्यय	XXX	XXX
कर के पश्चात शुद्ध लाभ		XXX
कर पूर्व लाभ		XXX
घटाइये : कर प्रावधान		XXX
कर पश्चात लाभ		XXX
प्रस्तावित लाभांश		XXX
व्यवसाय में प्रतिधारित आय		XXX

उदाहरण

निम्नलिखित समंक रमेश मिल्स लिमिटेड की लेखा पुस्तकों 31 मार्च 2009 को समाप्त होने वाले वर्ष से लिए गये हैं :-

विवरण	रुपयों में		रुपयों में
नकद	24300	समता अंश पूंजी	500000
भूमि एवं भवन	400000	लाभ-हानि खाते का शेष	108500
विपणन योग्य			
प्रतिभूतियाँ	31000	(वर्ष 2008-09 के लिए)	
स्टॉक	136400	व्यापारिक विनियोग	10000
लेनदार	202875	अग्रिम कर	50000
सामान्य संचय	50000	कर के लिए प्रावधान	132000
विभिन्न देनदार	261500	देय विपत्र	34000
सयंत्र एवं मशीनरी	272000	शुद्ध विक्रय	1091200
प्राप्त विपत्र	11300	(वर्ष 2008-09 के लिये)	
सुरक्षित ऋणपत्र	125000	शुद्ध लाभ कर व लाभांश से पूर्व	163915
बैंक अधिविकर्ष	26000		
प्रारम्भिक व्यय	25000		

टिप्पणी : स्थायी सम्पत्तियों में ह्रास को घटाया जा चुका है। (i) स्थायी सम्पत्तियाँ (ii) चालू सम्पत्तियाँ (iii) त्वरित सम्पत्तियाँ (iv) चालू दायित्व (v) कार्यशील पूंजी (vi) स्वामी कोष (vii) ऋण कोष (viii) कुल विनियोजित पूंजी

उपर्युक्त मदों को दर्शाते हुऐ वित्तीय विवरण तैयार कीजिए।

रमेश मिल्स लिमिटेड

स्थिति विवरण

31, मार्च 2009 को समाप्त होने वाले वर्ष के लिए

विवरण रुपयों में			रुपयों में
स्थायी सम्पत्तियाँ			
भूमि एवं भवन		400000	
सयंत्र एवं मशीनरी		272000	672000

व्यापारिक विनियोग			10000
कार्यशील पूँजी			
चालू सम्पत्तियाँ			
स्टॉक	136400		
विविध देनदार	261500		
प्राप्त विपत्र	11300		
विपणन योग्य प्रतिभूतियाँ	31000		
नकद	24300		
अग्रिम कर 50000	514500		
घटाइये : चल दायित्व			
बैंक अधिविकर्ष	26000		
लेनदार	202875		
देय विपत्र	34000		
करों के लिए प्रावधान	132000		
प्रस्तावित लाभांश	43125	438000	
कुल विनियोजित पूँजी		758500	
अंशधारियों के कोष			
समता अंश		500000	
सामान्य कोष		50000	
लाभ-हानि खाते का शेष		108500	
		658500	
घटाइये : प्रारम्भिक व्यय		25000	633500
ऋण कोष			
सुरक्षित ऋण पत्र			125000
कुल			**758500**

2.6 सारांश:

वित्तीय विवरण संस्था की एक निश्चित अवधि में की गई प्रगति का प्रतिवेदन प्रस्तुत करते हैं। ये प्रतिवेदन इस प्रकार तैयार किये जाते हैं कि संस्था में हित रखने वाले व्यक्ति तथा संस्थाएँ इनसे लाभान्वित हो सके। वित्तीय विवरण प्रबन्धकों, विनियोजकों, बैंक, लेनदार, सरकार स्कन्ध विपणि आदि सभी के लिए बहुत अधिक उपयोगी होते हैं। वित्तीय विवरणों के माध्यम से परिचालन लागत एवं परिचालन लाभ को प्रदर्शित किया जाता है। और व्यवसाय की सही व उचित तस्वीर व्यवसाय में हित रखने वाले पक्षकारों के समक्ष रखी जाती है। वित्तीय विवरण भावी क्रियाओं की योजना का आधार भी होते है।

2.7 शब्दावली:

वित्तीय विवरण - वित्तीय विवरण व्यवसाय की एक निश्चित समयावधि की क्रियाओं के परिणामों को प्रस्तुत करते हैं।

स्थायी सम्पत्तियाँ - स्थायी सम्पत्तियों से आशय उन सम्पत्तियों से होता है जो विक्रय के लिए होती हैं तथा परिचालन में सहायक होती हैं।

तरल सम्पत्तियाँ - तरल सम्पत्तियाँ वे सम्पत्तियाँ होती हैं जो अति अल्पकाल में नकद रूप में परिवर्तित की जा सकती हैं।

चालू सम्पत्तियाँ - चालू सम्पत्तियाँ वे सम्पत्तियाँ होती हैं जो व्यवसाय के सामान्य परिचालन में, नकद राशि वसूलने, माल बेचने आदि में प्रयोग में लायी जाती हैं।

स्वामियों की समता - स्वामियों की समता से आशय उस पूँजी से होता है जिसकी पूर्ति स्वामियों या अंशधारियों ने की है।

चालू दायित्व - चालू दायित्व वे दायित्व होते हैं जिनकी एक वर्ष की अवधि में भुगतान करना होता है।

2.8 अभ्यास प्रश्न:

अतिलघु प्रश्न

1. वित्तीय विवरण से क्या आशय है?
2. सम्पत्तियाँ कितने प्रकार की होती हैं?
3. अमूर्त सम्पत्तियाँ क्या होती हैं?
4. वित्तीय विवरणों की कोई दो सीमाएँ बताइए।

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. स्थायी व चालू सम्पत्तियों में अन्तर स्पष्ट कीजिये।
2. व्यवसाय में दीर्घकालीन दायित्व क्या होते हैं? समझाइये।
3. स्वामियों की समता से क्या आशय है?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. वित्तीय विवरण से आप क्या समझते हैं? इसके कितने भाग होते हैं? वर्णन कीजिये।

2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ:

1. अग्रवाल, एम. आर. - वित्तीय प्रबन्ध के मूल तत्व
2. अग्रवाल, अग्रवाल - वित्तीय प्रबन्ध
3. खान, जैन - वित्तीय प्रबन्ध

इकाई - 3 : वित्तीय विवरणों की तकनीक (Techniques of Financial Statements)

इकाई संरचना :

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 अर्थ एवं परिभाषा
3.3 उपयोगिता
3.4 वित्तीय विवरणों की तकनीक
3.5 उदाहरण
3.6 सारांश
3.7 अभ्यास प्रश्न
3.8 उपयोगी पुस्तकें

3.0 उद्देश्य

वित्तीय विवरण किसी व्यावसायिक संस्था के आइने के समान होते हैं जिनमें उस संस्था की वित्त से सम्बन्धित समस्त सूचनाओं एवं आंकडों का समावेश होता हैं इस पाठ में वित्तीय विवरणों से सम्बन्धित निम्न जानकारियों को शामिल किया गया है :-

3.1 प्रस्तावना

व्यावसायिक जगत में किसी भी संस्था के द्वारा तैयार किए जाने वाले वित्तीय विवरण उस संस्था की सामान्य सूचनाओं, कार्यप्रणाली तथा परिणाम इत्यादि के सार होते हैं। ये विवरण-पत्र वित्तीय सूचनाओं एवं आँकड़ों का समूह होते है। इनका विश्लेषण कर संस्थान के स्वामी, प्रबन्धक, ऋणदाता तथा विनियोजक प्रबन्धकीय कार्य सम्पादन की कुशलता, अर्जन क्षमता, भुगतान क्षमता, उधार वसूली नीति तथा वित्तीय नियोजन आदि के सम्बन्ध में विस्तृत एवं गहन जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। वित्तीय विश्लेषण एक बहुउद्देशीय, बहुआयामी एवं बहु-उपयोगीय तकनीक है जिसका उपयोग कर सम्बन्धित पक्ष आवश्यक नियोजन एवं नीतियों निर्माण कर सकते हैं। वित्तीय विश्लेषण कार्य में विशेष ज्ञान, जानकारी एवं अनुभव की आवश्यकता होती है। इसके अभाव में किए गए वित्तीय विश्लेषण अर्थ का अनर्थ कर सकते हैं। जो संस्थान के लिए हानिकारक साबित हो सकता है।

3.2 उपयोगिता

वित्तीय विवरणों के विश्लेषण का प्रमुख उद्देश्य वित्तीय विवरणों को अधिक उपयोगी बनाना होता है। इस विश्लेषण का प्रबन्धकीय निर्णयों में तो अत्यधिक महत्व होता ही है साथ ही वित्तीय विवरणों के विश्लेषण से संस्था में हित रखने वाले सभी पक्षकारों-

स्वामी, प्रबन्धक, ऋणदाता एवं नियोगकर्ता इत्यादि का भी सीधा सम्बन्ध जुड़ा रहता है। यद्यपि सभी पक्षकारों के हित के दृष्टिकोण में भिन्नता पाई जाती है। यही कारण है कि प्रत्येक पक्ष अपने-अपने हित की सुरक्षा हेतु वित्तीय विवरणों के विश्लेषण की भिन्न-भिन्न तकनीकों का सहारा लेता है। वित्तीय विवरणों के विश्लेषण की उपयोगिता निम्न बिन्दुओं से स्पष्ट होती है :-

(i) **वित्तीय सुदृढ़ता का मापन-** व्यवसायिक प्रबन्धकों को अपने व्यवसाय की वित्तीय सुदृढ़ता की जानकारी होनी चाहिए। इसकी जानकारी विभिन्न अनुपातों यथा स्वामित्व एवं स्थायी सम्पत्ति जैसे अनुपातों की गणना करके की जा सकती है। यदि स्थिति प्रतिकूल है तो तुरन्त सुधारात्मक उपाय किए जा सकते हैं।

(ii) **लाभदायकता का मापन**- वित्तीय विवरण एक संस्था के सकल लाभ, शुद्ध लाभ एवं अन्य व्ययों को दर्शाते हैं। इन मदों का सम्बन्ध बिक्री से स्थापित किया जा सकता है। प्रायः लाभदायकता का मापन करने के लिए सकल लाभ, शुद्ध लाभ, व्यय एवं परिचालन अनुपातों की गणना की जाती है।

(iii) **शोधन क्षमता का मापन**- एक संस्थान की शोधन क्षमता में उस संस्थान के लेनदार सर्वाधिक रूचि रखते है। उनका उद्देश्य यह जानना होता है कि :-

- क्या चालू सम्पत्तियाँ चालू दायित्वों को चुकाने में सक्षम हैं?
- चालू सम्पत्तियों का तरल सम्पत्तियों से क्या अनुपात है?
- व्यवसाय की भावी योजनाएँ क्या हैं?
- संस्था की प्रबन्धकीय कुशलता कैसी है?

(iv) **परिचालन कुशलता का मापन** - प्रबन्धकीय परिचालन कुशलता का मापन अति महत्त्वपूर्ण है। व्यवसाय की परिचालन कुशलता का मूल्यांकन चालू वर्ष के उत्पादन, विक्रय, वितरण एवं वित्तीय व्ययों का गत वर्ष के इन्हीं व्ययों से तुलना करके किया जा सकता है।

(v) **उपलब्धियों की प्रवृति दर्शाना**- पिछले वर्षों के वित्तीय विवरणों की तुलना करके विभिन्न व्ययों, क्रय, विक्रय, सकल लाभ तथा शुद्ध लाभ सम्बन्धी प्रवृत्तियाँ ज्ञात की जा सकती हैं। सम्पत्तियों व दायित्वों के मूल्यों की तुलना कर व्यवसाय के भावी परिदृश्य को इंगित किया जा सकता है।

(vi) **वृद्धि सामर्थ्य का मूल्यांकन**- व्यवसाय की प्रवृति एवं गतिशील विश्लेषण व्यवसाय की वृद्धि सामर्थ्य (growth potential) दर्शाने के लिए पर्याप्त सूचनाएँ उपलब्ध करवाता है। यदि प्रवृति धुंधली तस्वीर पेश करता है तो उसे सुधारने के उपाय किए जा सकते हैं।

(vii) **भावी कार्यवाही का निर्धारण**- वित्तीय विवरणों का विश्लेषण व्यवसाय की वृद्धि सामर्थ्य को दर्शाता है। यह विश्लेषण व्यवसाय की कार्यकुशलता, लाभदायकता एवं वित्तीय स्थिति के बारे में पर्याप्त सूचनाएँ देता है। इन सूचनाओं के आधार पर प्रभावी पूर्वानुमान, बजटन एवं नियोजन किया जा सकता है।

(viii) **आंकडों की सुव्यवस्थित प्रस्तुति**- वित्तीय विश्लेषण आंकडों को सरल व्यवस्थित एवं संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करने का उपकरण है। एक सामान्य व्यक्ति जिसे लेखांकन की

जानकारी नहीं है वह भी वित्तीय विवरणों का विश्लेषण कर अपने हित की जानकारी को प्राप्त कर सकता है।

इस प्रकार वित्तीय विवरणों की विश्लेषण एवं निर्वचन अत्यन्त उपयोगी है।

3.3 अर्थ एवं परिभाषाएँ:

विश्लेषण का शाब्दिक अर्थ विवरणों के प्रत्येक घटक की जानकारी तथा उनमें आपसी सम्बन्ध को व्यक्त करना होता है। इस सन्दर्भ में वित्तीय विवरणों के विश्लेषण का अर्थ किसी व्यावसायिक संस्थान की वित्तीय स्थिति एवं लार्भाजन शक्ति का पता लगाने हेतु विवरण-पत्रों में प्रस्तुत किए गए समंकों को वैज्ञानिक विधि द्वारा वर्गीकृत एवं विन्यासित करने से है ताकि उनके अर्थपूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सकें। वित्तीय विवरणों के विश्लेषण को निम्न प्रकार परिभाषित किया है :-

स्पाइसर तथा पंगलर के शब्दों में, "खातों का निर्वचन उनमें दिए गए संमकों को इस प्रकार प्रस्तुत करने की कला एवं विज्ञान है जिससे एक संस्थान की वित्तीय सक्षमता एवं निर्बलता तथा उसके कारणों की जानकारी हो सके।"

उपर्युक्त परिभाषा से स्पष्ट हे कि वित्तीय विवरणों का विश्लेषण वित्तीय विवरणों में दी गई सूचनाओं आँकड़ों तथा तथ्यों को सरल रूप में प्रस्तुत करने की ऐसी कला है जिससे एक सामान्य व्यक्ति भी संस्थान के बारे में सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकता है। वित्तीय विश्लेषण एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें विभिन्न घटकों के पारस्परिक सम्बन्धों की जानकारी मिलती है जिससे प्रबन्धकों, लेनदारों, विनियोजकों एवं अन्य सभी सम्बन्धित पक्षकारों को निर्णय लेने में सुविधा रहती है।

3.4 वित्तीय विवरण विश्लेषण की तकनीकें :

वित्तीय विश्लेषण से पूर्व वित्तीय विवरणों की उचित ढंग से पुनर्रचना करना आवश्यक होता है। वित्तीय विवरणों के विश्लेषण के लिए निम्न तकनीकों का प्रयोग किया जाता है :-

1. तुलनात्मक वित्तीय विवरण
2. समानकार वित्तीय विवरण
3. प्रवृत्ति विश्लेषण
4. अनुपात विश्लेषण
5. कोष प्रवाह विवरण
6. रोकड प्रवाह विवरण
7. सम-विच्छेद विश्लेषण

वित्तीय विवरणों के विश्लेषण की उक्त तकनीकों को उद्देश्यानुसार अलग-अलग समयानुसार प्रयोग किया जाता है ये तकनीकें निम्नलिखित हैं :-

1. **तुलनात्मक वित्तीय विवरण** : वित्तीय विवरण विश्लेषण की प्रमुख तकनीक तुलनात्मक विवरण पत्र है। वित्तीय विवरण की सहायता से सही निष्कर्ष निकालने के लिए आवश्यक

है कि विस्तृत एवं पर्याप्त सूचनाओं के साथ-साथ सामयिक तुलनात्मक सूचनाएँ भी संस्था में उपलब्ध होनी चाहिए। अत: कम्पनी अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार प्रत्येक व्यवसायी संस्था को अपने चिट्ठे में चालू वर्ष की सूचनाओं के साथ-साथ वित्त वर्ष की सूचनाओं को भी दर्शाना आवश्यक होता है। तुलनात्मक विवरण पत्र में एक वर्ष से अधिक अवधि की सूचनाएँ सम्मिलित की जाती हैं ताकि विभिन्न मदों की तुलना की जा सके। तुलनात्मक सूचनाएँ निष्कर्ष निकालने तथा निर्णय लेने में सहायक होती है।

तुलनात्मक विवरणों के गुण :

1. **व्यवसायिक आंकडों की उपलब्धता-** तुलनात्मक विवरण में समस्त सूचनाओं को एक साथ प्रस्तुत किया जाता है। अत: सभी आवश्यक सूचनाऐं व आँकड़े एक साथ उपलब्ध हो जाते हैं।
2. **निष्पादन की माप-** तुलनात्मक विवरण पत्रों के माध्यम से किसी संस्थान की समस्त गतिविधियों यथा उत्पादन मात्रा, बिक्री, सकल लाभ, शुद्ध लाभ तथा व्यय आदि के निष्पादन की माप आसानी से की जा सकती है।
3. **तुलनात्मक मूल्यांकन-** एक सामान्य व्यक्ति तुलनात्मक विवरण-पत्र में प्रदर्शित सूचनाओं व आंकडों के आधार पर आसानी से यह निष्कर्ष निकाल सकता है कि विभिन्न वर्षों में हुए विक्रय में वृद्धि के साथ-साथ सकल लाभ में कितनी वृद्धि हुई है।

तुलनात्मक विवरण पत्रों के दोष :

तुलनात्मक विवरण पत्रों के अनेक दोष भी गिनाएं जाते हैं जो की निम्न हैं -

1. **भ्रामक निष्कर्ष-** तुलनात्मक विवरण-पत्रों को तैयार करते समय बहुत सावधानी की आवश्यकता होती है यदि एकत्र की गई सूचनाएँ व आँकड़े जरा भी गलत हुए तो निकाले गए निष्कर्ष भ्रामक हो सकते हे।
2. **लेखांकन विधि में परिवर्तन-** वित्तीय विवरणों के विश्लेषण में लेखांकन विधि व नीतियों में परिवर्तन का भी प्रभाव पड़ता है। अत: इस बात का भी ध्यान रखा जाना चाहिए।
3. **सरकारी नीतियाँ एवं मुद्रा-स्फीति-** तुलनात्मक वित्तीय विवरणों के आधार पर निष्कर्ष निकालते समय सरकारी नीतियों एवं मुद्रा स्फीति के प्रभावों का भी ध्यान रखा जाना चाहिए।

प्रायः तुलनात्मक वित्तीय विवरण पत्रों के अन्तर्गत निम्न दो प्रपत्रों को तैयार किया जाता है:-

(अ) तुलनात्मक स्थिति विवरण

(ब) तुलनात्मक लाभ-हानि खाता

(अ) **तुलनात्मक स्थिति विवरण-** एक व्यवसायिक संस्थान की सम्पूर्ण आर्थिक स्थिति की जानकारी उसके स्थिति विवरण से मिलती है। संस्था की आर्थिक स्थिति में होने वाले लगातार परिवर्तन की जानकारी स्थिति विवरण बनाकर के की जा सकती है। वित्तीय विश्लेषण के क्षेत्र में तुलनात्मक स्थिति विवरण बनाना उपयोगी माना जाता है। भारतीय कम्पनी अधिनियम 1956 के अनुसार प्रत्येक संस्था को अपने स्थिति विवरण में गत

वर्षों की सूचनाएँ देना अनिवार्य बना दिया गया है। दो या दो से अधिक अवधि की तिथियों के एक साथ दर्शाने से उनके मध्य आसानी से तुलना करना सम्भव हो जाता है तथा आवश्यक निष्कर्षों को निकाला जा सकता है।

उदाहरण :

निम्न आकड़ों से तुलनात्मक विवरण बनाइए :

दायित्व	31.03.08	31.03.09	सम्पत्तियाँ	31.03.08	31.03.09
अंश पूंजी Share Capital	50,000	50,000	स्थिर सम्पत्तियाँ Fixed Assets	80,000	1,04,000
संचयReserves	30,000	50,000	चालू सम्पत्तियाँ Current Assets	30,000	26,000
दीर्घकालीन ऋण Long Term Loan	24,000	20,000	अन्य सम्पत्तियाँ Other Assets	10,000	10,000
चालू दायित्व Current Liabilities	16,000	20,000			
	1,20,000	1,40,000		1,20,000	1,40,000

हल :

तुलनात्मक स्थिति विवरण

31, मार्च. 2009

विवरण Particulars	31 मार्च को स्थिति	वृद्धि (+) अथवा कमी (-)		
सम्पत्तियाँ Assets				
स्थिर सम्पत्तियाँ Fixed Assets	80,000	1,04,000	+24,000	+30.0
चालू सम्पत्तियाँ Current Assets	30,000	26,000	-4,000	-13.3
अन्य सम्पत्तियाँ Other Assets	10,000	10,000	-	-
योग	**1,20,000**	**1,40,000**	**+20,000**	**+16.7**
पूँजी Capital and Liabilities				
अंश पूँजी Share Capital	50,000	50,000	-	-
संचय Reserves	30,000	50,000	+20,000	+67.0
दीर्घकालीन ऋण Long Term Loan	24,000	20,000	-4,000	-16.7
चालू दायित्व Current Liabilities	16,000	20,000	+4,000	+25.0
योग	**1,20,000**	**1,40,000**	**+20,000**	**+16.7**

निम्न कारणों से तुलनात्मक स्थिति विवरण का अध्ययन अधिक लाभप्रद बन जाता है:-

1. तुलनात्मक स्थिति विवरण से न केवल विभिन्न तिथियों के शेषों का ही पता चलता है अपितु उन तिथियों के बीच उनमें हुए परिवर्तनों की सीमा अवधि का भी ज्ञान होता है इसी कारण इनमें परिवर्तन पर जोर दिया जाता है।
2. तुलनात्मक स्थिति विवरण, सामान्य स्थिति विवरण तथा लाभ-हानि खाते के मध्य एक कडी का काम करता है क्योंकि यह व्यवसाय की सम्पत्तियों, दायित्वों एवं पूंजी पर उनकी क्रियाओं के प्रभाव को दर्शाता है।
3. तुलनात्मक स्थिति विवरण से संस्था के बारे मे भावी पूर्वानुमान भी लगाए जा सकते हैं।

तुलनात्मक स्थिति विवरण का प्रारूप

तुलनात्मक स्थिति विवरण के प्रारूप को उपरोक्त उदाहरण की सहायता से भलि-भाँति समझा जा सकता है।

तुलनात्मक स्थिति विवरण का निर्वचन

तुलनात्मक स्थिति विवरण दो विशेष अवधियों के अन्त में संस्थान की वित्तीय स्थिति का संक्षिप्त रूप होता है। एक निर्वचनकर्ता को तुलनात्मक स्थिति विवरण का निर्वचन करते समय निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए।

1. निर्वचनकर्ता को तुलनात्मक स्थिति विवरण का निर्वचन करते समय संस्था की वित्तीय स्थिति की पूरी जानकारी होनी चाहिए। एक संस्था की दो प्रकार की वित्तीय स्थिति होती है। (अ) अल्पकालीन वित्तीय स्थिति एवं (ब) दीर्घकालीन वित्तीय स्थिति। अल्पकालीन वित्तीय स्थिति से तात्पर्य उस अवस्था से है जिसमें चालू सम्पत्तियों एवं चालू दायित्वों के अन्तर से कार्यशील पूँजी की गणना की जाती है। कार्यशील पूँजी से ही संस्था की अल्पकालीन वित्तीय स्थिति की पर्याप्त जानकारी होती है। इसमें होने वाला प्रत्येक परिवर्तन संस्था के अल्पकालीन वित्तीय उच्चावचनों को दर्शाता हैं। इसी प्रकार संस्था की दीर्घकालीन वित्तीय स्थिति का अध्ययन स्वामित्व कोष, दीर्घकालीन दायित्वों, स्थायी सम्पत्तियों एवं विनियोगों की सहायता से किया जा सकता है। संस्था को अपनी दीर्घकालीन वित्तीय स्थिति को सुदृढ़ बनाने के लिए यह ध्यान रखना चाहिए कि स्थायी सम्पत्तियों का क्रय हमेशा दीर्घकालीन कोषों से ही किया जाना चाहिए।
2. तुलनात्मक स्थिति विवरण का विश्लेषण करते समय संस्था की लाभ अर्जन की जानकारी भी आवश्यक होती है। यदि संस्था के संचय एवं आधिक्य में वृद्धि होती है तो यह संस्था की उचित लाभ-अर्जन क्षमता को प्रदर्शित करता है। इसके विपरीत यदि संचय एवं आधिक्य में कमी होती है तो वह संस्था की कमजोर लाभ-अर्जन क्षमता को बताती है।
3. एक संस्था की वित्तीय जानकारी होने के उपरान्त विवेचनकर्ता इस निष्कर्ष पर आसानी से पहुँच सकता है कि संस्था की लाभ-अर्जन क्षमता, निष्पादन क्षमता किस प्रकार की है। निकाले गए निष्कर्षों के आधार पर वह इस विचारधारा का निर्माण कर सकता है कि संस्था का भविष्य किस प्रकार का रहने वाला है।

तुलनात्मक लाभ-हानि खाता

एक व्यावसायिक संस्था द्वारा निश्चित अवधि में किए गए लेन देनों को लाभ-हानि खाते में सारांश के रूप में दर्शाया जाता है। किन्तु एक वर्ष के लाभ-हानि खाते में दिखाए गए समंक प्रबन्ध के लिए कोई विशेष अर्थ नहीं रखते क्योंकि उनके आधार पर संस्था की प्रगति या अवनति की सम्पूर्ण जानकारी नहीं हो सकती। इसके लिए यह आवश्यक है कि दो या अधिक अवधियों के लाभ-हानि खातों की तुलना करके संस्था की वित्तीय स्थिति की उचित जानकारी की जाए। इस दृष्टि से तुलनात्मक लाभ-हानि खाता बनाना उचित रहता है। इस तुलनात्मक लाभ-हानि खाते में संस्था की विभिन्न लेखांकन अवधियों के परिचालन परिणाम दिखाए जाते हैं ताकि एक अवधि से दूसरी अवधि के मध्य अंकों में हुए परिवर्तनों को मूल्य अथवा प्रतिशत में व्यक्त किया जा

सके। यह तुलनात्मक लाभ-हानि खाता बेचे गए माल की दरों, माल की लागत, विभिन्न व्ययों आदि में होने वाले परिवर्तनों के आधार पर उचित निष्कर्ष निकालने में सहायक होती है।

तुलनात्मक लाभ-हानि खाता बनाने के लिए तुलनात्मक स्थिति विवरण की भाँति निरपेक्ष मूल्यों के साथ-साथ कमी तथा वृद्धि के भी खाने बनाए जाते है इसके अतिरिक्त राशि परिवर्तन को प्रतिशतों में भी व्यक्त किया जाता है।

उदाहरण -

अनमोल पब्लिकेशंस में गत दो वर्षों के कार्यकरण से सम्बन्धित सूचनाओं के आधार पर तुलनात्मक आय विवरण तैयार कीजिए -

	2005 रु0	2006 रु0
विक्रय	61,200	73,440
प्रारम्भिक स्टॉक	1200	1400
क्रय (शुद्ध)	36,800	40,200
अन्तिम स्टॉक	8,400	8,100
विक्रय व्यय	12000	13,200
प्रशासनिक व्यय	6000	6,800
अन्य आय	600	800
अन्य व्यय	800	1200

हल :

अनमोल पब्लिकेशंस

तुलनात्मक लाभ-हानि खाता

31 मार्च, 2005 व 2006 के अन्त में

विवरण	31 मार्च के अन्त में राशि			2005 व 2006 वृद्धि अथवा कमी
	2005	2006	राशि (रु.)	%
सम्पत्तियाँ				
विक्रय	61,200	73,440	12,240	20.0
(-) : विक्रय वापसी एवं कटौती	1200	1400	200	16.7
शुद्ध विक्रय (1)	60,000	72,040	12,040	20.1
बेचे गए माल का लागत				
प्रारम्भिक स्टॉक	8000	8400	400	5.0
(+) शुद्ध क्रय	36800	40200	3400	9.2
	44800	48600	3800	8.5
(-) अन्तिम स्टॉक	8400	8100	(-)300	-3.6

बेचे गए माल की लागत (2)	36,400	40,500	4100	11.3
विक्रय पर सकल लाभ (1-2)-(3)	23.600	31540	7940	33.6
परिचालन व्यय				
विक्रय व्यय	12000	13200	1200	10.0
प्रशासनिक व्यय	6000	6800	800	13.3
कुल व्यय (4)	18000	20,000	20,000	11.1
शुद्ध परिचालन लाभ (3-4)	5,600	11540	5990	106.1
(+) अन्य आय	600	800	200	-33.3
(-) अन्य व्यय	6200	12340	6140	99.00
कर पूर्व शुद्ध लाभ	5400	11140	5740	106.3

समानाकार वित्तीय विवरण :

सामान्यतया वित्तीय आकड़ों अथवा समंकों को लम्बवत् अथवा क्षैतिज रूप में दर्शाया जाता है। जब आकड़ों को लम्बवत् प्रतिशतों के रूप में वित्तीय विवरणों में दर्शाया जाता है तो उसे समानाकार वित्तीय विवरण कहा जाता है। समानाकार वित्तीय विवरण में कुल शुद्ध बिक्री या सम्पत्तियाँ, कुल दायित्वों तथा स्वामियों के स्वत्व इत्यादि को राशियों के अतिरिक्त प्रतिशत के रूप में भी दर्शाया जाता है। इस प्रक्रिया से निष्कर्ष निकालना आसान हो जाता है।

निर्माण प्रक्रिया :

समानाकार वित्तीय विवरणों के अन्तर्गत समानाकार स्थिति विवरण तथा समानाकार लाभ-हानि खाता बनाना, उचित रहता है। इन विवरणों के निर्माण में वित्तीय विवरणों के योग के 100 मानकर उनकी विभिन्न मदों को प्रतिशत के रूप में दर्शाया जाता है। इन विवरणों का प्रयोग क्षैतिज तथा लम्बवत् दोनों प्रकार के विश्लेषणों में किया जा सकता है। प्रायः क्षैतिज विश्लेषण के अन्तर्गत एक ही संस्था के विभिन्न वर्षो के वित्तीय विवरणों को समानाकार विवरणों में परिवर्तित करके प्रवृति विश्लेषण किया जा सकता है। जबकि लम्बवत् विश्लेषणों में इनका प्रयोग अंतर्कम्पनी तुलना व कम्पनी एवं सम्बन्धित उद्‌योग की तुलना में प्रयोग किया जाता है।

समानाकार स्थिति विवरण :

समानाकार स्थिति विवरण में, मूल स्थिति विवरण की प्रत्येक सम्पत्ति का कुल सम्पत्तियों के योग से तथा प्रत्येक दायित्व का कुल दायित्वों के योग से प्रतिशत ज्ञात किया जाता है। इनमें भिन्न-भिन्न चिट्ठे के योगों को 100 मानकर समान आकार का बना दिया जाता है। तत्पश्चात् स्थिति विवरण की विभिन्न मदों के प्रतिशत में परिवर्तित किया जाता है। इस प्रकार तैयार स्थिति विवरण प्रतिशत स्थिति विवरण कहलाता है।

समानाकार स्थिति विवरण बनाने का उद्देश्य इसमें दी गई मदों के परिवर्तनों को स्पष्ट करना होता है यह दो फर्मों की सम्पत्तियों तथा दायित्वों की आपस, में तुलना करने में बहुत उपयोगी होता है।

समानाकार लाभ-हानि खाता :

समानाकार लाभ-हानि खाता उस शुद्ध विक्रय के प्रतिशत को दर्शाता है जो लाभ-हानि खाते में दिखाई गई लागत अथवा व्यय की प्रत्येक मद में अवशोषित होती है। उदाहरणार्थ, किसी कम्पनी के लाभ-हानि खाते में प्रशासनिक व्यय, 5000 रुपए है जो कि एक बड़ी राशि है, किन्तु इस राशि से तब-तक किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँचा जा सकता जब तक जानकारी न हो कि कितने विक्रय पर यह 5000 रुपए के प्रशासनिक व्यय हुए है। अत: कुल विक्रय राशि को 100 मानते हुए प्रशासनिक व्ययों का उससे प्रतिशत ज्ञात कर लिया जाता है।

समानाकार लाभ-हानि खाते की मदद से बिक्री पर खर्चों की विभिन्न मदों के सापेक्षिक भाग की गणना की जा सकती है और किसी प्रमाप से उनकी तुलना करके उनके औचित्य या अनौचित्य पर प्रकाश डाला जा सकता है।

प्रवृत्ति विश्लेषण :

वित्तीय विवरणों की सहायता से तैयार तुलनात्मक विवरणों से किसी संस्था के दो या अधिक वर्षों में विभिन्न मदों में हुए परिवर्तनों का तो अध्ययन किया जा सकता है किन्तु यह तुलनात्मक वित्तीय विवरण इस बात की जानकारी देने में अक्षम होते हैं कि संस्था का रूख उन्नति की ओर है अथवा अवनति की ओर। इस रुख की जानकारी करने के लिए अनेक वर्षो के समंकों की गणना एवं उनका विश्लेषण किया जाता है इसके लिए वित्तीय विवरण की प्रत्येक मद का आधार वर्ष की उसी मद से प्रतिशत सम्बन्ध को ज्ञात किया जाता है। प्रवृत्ति विश्लेषण करते समय किसी भी वर्ष को आधार वर्ष लिया जा सकता है और उसके आधार पर वित्तीय विवरण के मदों में परिवर्तन की दिशा का अध्ययन किया जा सकता है। इस विधि के अन्तर्गत विश्लेषण हेतु किसी संस्था की विभिन्न अवधियों में कार्य निष्पादन की जाँच की जाती है। इस हेतु प्रायः निम्न तीन विधियाँ प्रयोग में ली जाती हैं :-

- प्रवृति प्रतिशत
- प्रवृति अनुपात
- बिन्दुरेखीय या रेखाचित्रीय विधि

- **प्रवृति प्रतिशत** - इस विधि में सर्वप्रथम वित्तीय विवरणों में एकत्र सूचनाओं को सारणी बद्ध किया जाता है। तदोपरान्त किसी एक वर्ष को आधार वर्ष (प्रायः प्रथम वर्ष) मानकर अन्य वर्षों की प्रतिशत वृद्धि या कमी ज्ञात कर ली जाती है। ये प्रतिशत ही प्रवृति प्रतिशत कहलाते है।
- **प्रवृति अनुपात** - तकनीकी दृष्टि से प्रवृति प्रतिशत तुलना करने के लिए उपयुक्त विधि नहीं है। इसके स्थान पर प्रवृति अनुपातों का प्रयोग उचित रहता हैं इस विधि में किसी

एक वर्ष को आधार मानकर उसकी प्रत्येक मद की राशि को 100 मानते हुए अन्य वर्षों की राशियों को उसी अनुपात में परिवर्तित कर लिया जाता है। अन्य शब्दों में, चालू वर्ष की राशि में आधार वर्ष की राशि का भाग देकर 100 से गुणा करने पर प्रवृति अनुपात ज्ञात हो जाता है।

इनसे उन परिवर्तनों की दरों का ज्ञान होता है जो आधार वर्ष की तुलना में अन्य वर्षों में होती है:

उदाहरणार्थ - स्वास्तिक प्लाईबुड की विक्रय का मूल्य विभिन्न वर्षों के अन्त में निम्न प्रकार है:-

वर्ष	1991	1992	1993	1994	1995
विक्रय (रु.)	25,000	30,000	21750	27500	31250

यदि वर्ष 1991 के विक्रय को आधार मानते हुए अन्य वर्षों के विक्रय में हुए परिवर्तन की माप करें तो परिणाम निम्न प्रकार रहेगा.

31 दिसम्बर	विक्रय(रु.)	आधार वर्ष की(1991) अपेक्षा वृद्धि/कमी रु.	आधार वर्ष की अपेक्षा वृद्धि/कमी (% में) आधार वर्ष की अपेक्षा वृद्धि/कमी / आधार वर्ष की बिक्री
1991	25,000	-	-
1992	30,000	+50000	+20%
1993	21,750	-3,250	-13%
1994	27,500	+2500	+10%
1995	31,250	+6,250	+25%

उपर्युक्त तालिका के अध्ययन से स्पष्ट है कि गत वर्ष की तुलना में आगामी वर्ष में विक्रय मद में कितने प्रतिशत की वृद्धि अथवा कमी हुई है।

उदाहरण :

स्वाति लिमिटेड के निम्नलिखित समंकों से वर्ष 2001 को आधार मानते हुए प्रवृति अनुपातों की गणना कीजिए-

वर्ष	2001	2002	2003	2004	2005
विक्रय	3762	4680	5310	6042	7536
स्टॉक	1418	1562	1632	1888	2308
कर पूर्व लाभ	642	870	916	1054	1344

प्रवृति अनुपात

वर्ष	विक्रय		स्टॉक		कर पूर्व लाभ	
	राशि (लाख रु.)	प्रवृति अनुपात 2001-100	राशि (लाख रु.)	प्रवृति अनुपात 2001-100	राशि (लाख रु.)	प्रवृति अनुपात 2001-100
2001	3762	100	1418	100	692	100
2002	4680	124	1562	110	870	136
2003	5310	141	1632	115	916	143
2004	6042	161	1888	133	1054	164
2005	7536	200	2308	162	1344	209

बिन्दुरेखीय या रेखा चित्रीय विधि :

प्रवृति अनुपातों के माध्यम से ज्ञात प्रवृतियों को तुलनात्मक रूप में दिखाने के लिए रेखाचित्रों का भी प्रयोग किया जा सकता है। इस प्रकार रेखाचित्रों में दिखाई गई प्रवृत्तियों से एक व्यवसाय की गतिविधियों की स्पष्ट जानकारी हो सकती है। यही कारण है कि आज के व्यावसायिक वातावरण में अनेक व्यवसाय अपनी आर्थिक प्रगति को दर्शाने के चित्रों इत्यादि का प्रयोग करते हैं नीचे क्षितिज प्लाईबुड लि0 द्वारा वार्षिक खातों में प्रदर्शित दंडचित्र दिया गया है -

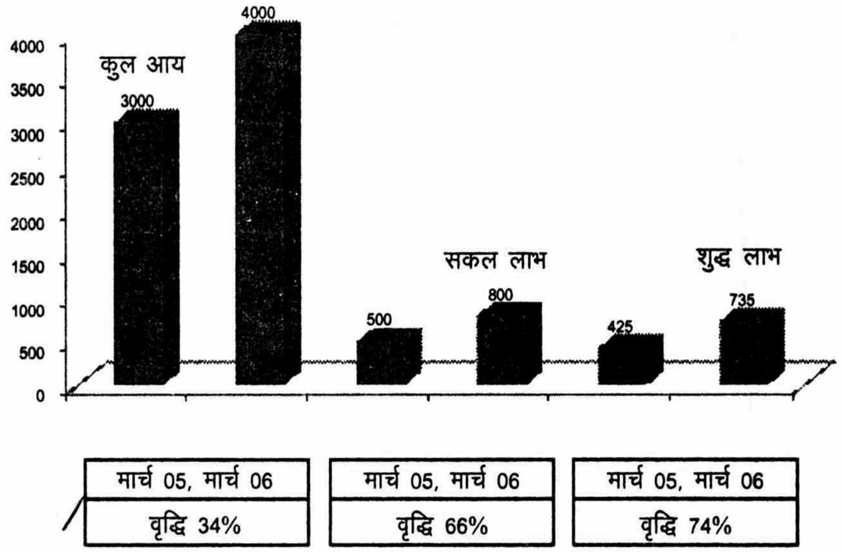

उपर्युक्त दण्डचित्र में क्षितिज प्लाईबुड लि. के गत दो वर्षों की कुल आय, सकल लाभों तथा शुद्ध लाभों को प्रदर्शित किया गया है। दोनों प्रकार के लाभों में वृद्धि की प्रवृति रही है जबकि वित्तीय व्ययों से पूर्व लाभों में वृद्धि की गति तुलनात्मक रूप से अधिक रही है।

प्रवृति विश्लेषण की उपयोगिता :

वित्तीय विवरणों के विश्लेषण की इस विधि में निम्न गुण पाए जाते हैं :-

1. इस विधि में बड़ी संख्याओं को प्रतिशत या अनुपातों में बदल दिया जाता है अत: समस्या को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत कर पाना सम्भव होता है।
2. इस विधि द्वारा परिवर्तनों की दिशा रेखाचित्रों व दण्डचित्रों की सहायता प्रदर्शित की जाती है अत: परिवर्तनों की दिशा को सरलता से समझा जा सकता है।
3. यह विधि अत्यन्त सरल है इसलिए एक सामान्य योग्यता वाला व्यक्ति भी इसके माध्यम से गणन कार्य कर सकता है।
4. इस विधि में त्रुटियों की सम्भावना कम से कम रहती है।

प्रवृति विश्लेषण की सीमाएँ :

वित्तीय विश्लेषण की प्रवृति विश्लेषण विधि जहाँ एक ओर अत्यन्त सरल है वहीं इसकी अपनी कुछ सीमाएँ भी हैं जो निम्न हैं :-

1. किसी एक अकेले मद की तुलना जब तक किसी अन्य मद से न की जाए तब तक उसका महत्व सीमित ही रहता है अत: एक अकेले मद की प्रवृति के आधार पर ज्ञात निष्कर्ष भी सीमित ही महत्व रखते हैं।
2. प्रवृति विश्लेषण के अन्तर्गत प्रवृति अनुपातों/प्रतिशतों के आधार पर यदि निष्कर्ष निकाले जाते हैं तो निष्कर्ष भ्रामक हो सकते हैं। इनकी सत्यता की जाँच के लिए वित्तीय विवरणों के मुख्य समंकों को ध्यान में रखा जाना आवश्यक है।
3. प्रवृति विश्लेषण तकनीक में यदि लेखांकन सिद्धान्तों एवं अवधारणाओं का सही तरीके से पालन नहीं किया गया है तो प्रवृति अनुपातों की तुलना असंगत हो सकती है।

अनुपात विश्लेषण :

अनुपात विश्लेषण वित्तीय विवरणों की एक प्रमुख तकनीक रूप में जानी जाती है। इस तकनीक में वित्तीय विवरणों में उपलब्ध सूचनाओं को सरलरूप में, व्यवस्थित तथा संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इस तकनीक का प्रारंभ सन् 1919 से माना जाता है। अनुपात विश्लेषण तकनीक के अन्तर्गत एक संस्था की तरलता, लाभदायकता, कार्यकुशलता एवं शोध क्षमता की जानकारी प्राप्त करने के उद्देश्य से विभिन्न अनुपातों की गणना की जाती है। विभिन्न अनुपातों की गणना हेतु वित्तीय विवरणों की दो या दो से अधिक संख्याओं के मध्य परिमाणात्मक सम्बन्ध स्थापित करके एक सुनिश्चित निष्कर्ष पर पहुंचा जाता हैं। अनुपात विश्लेषण विधि द्वारा संस्था में हित रखने वाले विभिन्न पक्षकार अपनी-अपनी आवश्यकता के अनुसार अनुपातों की गणना कर वांछित निष्कर्ष निकाल सकते हैं।

अनुपात विश्लेषण की उपयोगिता :

आधुनिक व्यावसायिक युग में अनुपात विश्लेषण विधि एक महत्वपूर्ण विधि के रूप में जानी जाती है। अनुपातों की सहायता से बड़े-बड़े अंकों या अंक समूहों को सरल तथा संक्षिप्त रूपों में व्यक्त करना आसान होता है। इस कारण से इनमें निहित अर्थों को सरल रूप में समझा जा सकता है। वित्तीय विश्लेषण में अनुपात विश्लेषण विधि की

उपयोगिता दिन-पर-दिन बढती जा रही है। इसकी उपयोगिता को निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है :-

1. अनुपात विश्लेषण विधि के माध्यम से किसी संस्था की तरलता के बारे में आसानी से अनुमान लगाया जा सकता है। यदि एक संस्था की चालू सम्पत्तियाँ उसके समस्त चालू दायित्वों को चुकाने में सक्षम हैं तो उस संस्था की तरलता की अवस्था सन्तोषप्रद मानी जाती है।
2. एक संस्था की दीर्घकालीन शोधन क्षमता की जानकारी करने के लिए भी अनुपात विश्लेषण विधि का प्रयोग उपयोगी रहता है। प्रायः इनसे प्राप्त जानकारी दीर्घकालीन लेनदारों, व संस्था में धन विनियोजित करने वाले वर्तमान तथा भावी विनियोगकर्ताओं के लिए उपयोगी रहती हैं।
3. आधुनिक व्यवसायिक जगत में एक संस्था के परिचालन की माप भी अत्यन्त आवश्यक है। विभिन्न परिचालन अनुपातों की सहायता से संस्था की परिचालन गतिविधियों का मूल्यांकन किया जा सकता है।
4. अनुपात विभिन्न अवधियों की वित्तीय गतिविधियों में हुए परिवर्तनों को दर्शाने में भी सहायक होते हैं।
5. अनुपात विश्लेषण का उपयोग संस्था के कार्य-परिणामों तथा लागतों पर उचित नियन्त्रण के लिए किया जाता है।

कोष प्रवाह विश्लेषण :

व्यवसाय एक निरन्तर चलने वाली क्रिया है। एक व्यवसाय के समस्त वित्तीय व्यवहारों का लेखा-जोखा वित्तीय विवरणों में किया जाता है। वित्तीय विवरणों में प्रमुख स्थिति विवरण एक निश्चित तिथि पर संस्था की वित्तीय स्थिति की जानकारी देता है, जबकि संस्था में व्यावसायिक क्रियाएँ लगातार वर्ष पर्यन्त जारी रहती हैं। यही कारण है कि एक वित्तीय विश्लेषण को स्थिति विवरण तैयार करने के बाद की तिथि के व्यवहारों का समायोजन भी अपने विश्लेषण में सम्मिलित करना होता है। इस हेतु एक वित्तीय विश्लेषण विवरण तैयार करना होता है उसे ही कोष प्रवाह विवरण कहा जाता है। यह कोष प्रवाह विवरण दो आर्थिक चिट्ठों या स्थिति विवरणों के मध्य विभिन्न मदों में हुए परिवर्तनों को दर्शाता है। यह विवरण कोषों के आवागमन अर्थात् बहाव को प्रदर्शित करता है, इसलिए इस विवरण को कोष बहाव विवरण भी कहते हैं।

कोष प्रवाह विवरण का उपयोग/महत्व :

कोष प्रवाह विवरण एक निश्चित अवधि में कार्यशील पूँजी में हुए परिवर्तनों के सम्बन्ध को दर्शाता है। इस विवरण के माध्यम दो स्थिति विवरणों के बीच की अवधि में पूँजी संरचना तथा सम्पत्ति के विस्तार आदि में हुए परिवर्तनों को दिखाया जाता है। इस में दर्शायी गई सूचनाएँ प्रायः प्रबन्धकों, विनियोक्ताओं, अंशधारियों, शोधकर्ताओं इत्यादि के लिए उपयोगी होती है। विभिन्न पक्षकारों के हित में इसकी उपयोगिता को निम्न बिन्दुओं से स्पष्ट किया जा सकता हे :-

1. **प्रबन्धकों के लिये उपयोग** - कोष प्रवाह विवरण प्रबन्ध के लिए एक महत्वपूर्ण प्रबन्धकीय यन्त्र है। यह कार्यशील पूँजी का एक विश्लेषणात्मक चित्र प्रस्तुत करता है जिसकी सहायता से प्रबन्धक इस बात का पता लगा सकते हैं कि संस्था को भूतकाल में किन-किन स्त्रोतों से कार्यशील पूंजी की प्राप्ति हुई तथा उसका किस प्रकार उपयोग किया गया। इसके अतिरिक्त यह लाभ अर्जनों के विश्लेषण को भी आसान बनाता है। कोष प्रवाह विवरण की सहायता से प्रबन्धक लाभांश नीति की घोषणा कर सकते हैं।
2. **अंशधारियों के लिये उपयोग** - एक व्यावसायिक संस्था में अंशधारी सर्वाधिक हित रखने वाले होते हैं। सीमित दायित्व वाली संस्था में तो अंशधारी ही संस्था के स्वामी होते हैं। कोष प्रवाह विवरण अंशधारियों को अनेक महत्वपूर्ण सूचनाएँ उपलब्ध करवाता है। इसके माध्यम से अंशधारी यह जान सकते है कि संस्था में उनके कोषों का सही एवं उचित उपयोग हो रहा है अथवा नहीं।
3. **विनियोजकों के लिये उपयोग** - कोष प्रवाह विवरण विनियोगकर्ताओं के लिए बहुत उपयोगी होता है। कोष प्रवाह विवरण के आधार पर विनियोग सम्बन्धी निर्णय लेने में विनियोगकर्ता को अनेक ऐसी सूचनाएँ मिलती हैं जो विनियोग निर्णयों में सहायक होती हैं।
4. **सरकार के लिये कर एवं मौद्रिक नीति निर्धारण में उपयोगी** - सरकार अपनी कर नीति, भौतिक नीति बैंकिंग नीति तथा मूल्य नीति आदि निर्धारण करते समय उद्योगों की आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखती है। उपक्रमों, उद्योगों, कम्पनियों की विश्लेषणात्मक सूचनाएँ कोष प्रवाह विवरणों के माध्यम से प्राप्त की जा सकती हैं।
5. **अन्य कम्पनियों के लिये महत्व**- कोष प्रवाह विवरण अन्य कम्पनियों से तुलनात्मक विश्लेषण में भी सहायक होते हैं इनसे नीति निर्धारण में सहायता मिलती है।

रोकड प्रवाह विश्लेषण :

प्रत्येक व्यवसाय में रोकड़ प्रवाह विश्लेषण वित्तीय विश्लेषण की एक आवश्यक तकनीक है। रोकड़ प्रवाह विश्लेषण से यह जानकारी प्राप्त होती है किन-किन साधनों से रोकड़ प्राप्त हुई है तथा किन-किन मदों पर व्यय की गई है। इसके लिए व्यवसायिक संस्थाओं में रोकड़ प्रवाह विवरण तैयार किया जाता है जो रोकड़ शेष में हुए परिवर्तनों की व्याख्या करता है।

सम-विच्छेद विश्लेषण :

व्यवसायिक संस्था में लाभ, विक्रय की मात्रा, पूर्ति इकाई विक्रय मूल्य तथा वस्तु की लागत आदि तत्वों पर निर्भर करते हैं। उत्पादन के जिस स्तर पर कुल लागत एवं कुल विक्रय राशि बराबर होती है उस स्तर पर लाभ विक्रय की मात्रा, प्रति इकाई, विक्रय मूल्य, लागतों का विश्लेषण करके इन में आपस में सम्बन्ध स्थापित किया जाता है यह तकनीक सम-विच्छेद विश्लेषण कहलाती है।

3.6 सारांश :

वित्तीय विश्लेषण किसी व्यावसायिक संस्था के कार्यकलापों के परिणाम एवं उसकी वित्तीय दशा को प्रदर्शित करने वाले प्रपत्र होते है। इनमें प्रदर्शित की गई सूचनाओं व समकों से इसके प्रयोगकर्ता (प्रबन्धक ऋणदाता, विनियोजक आदि) अपने-अपने हित की विभिन्न जानकारियाँ प्राप्त कर महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाल सकते हैं। विभिन्न जानकारियाँ को निष्कर्ष तक पहुँचाने में इनके विश्लेषण की विभिन्न तकनीकें महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

3.7 शब्दावली :

वित्तीय विवरणों का विश्लेषण- वित्तीय विवरणों के विश्लेषण से तात्पर्य उनमें दिखायी गयी विभिन्न मदों के मध्य सम्बन्धों का मूल्यांकन करने से होता है।

क्षैतिज विश्लेषण- वित्तीय विवरण की प्रत्येक मद में होने वाले उतार चढ़ाव का विश्लेषण है।

लम्बवत विश्लेषण - लम्बवत विश्लेषण वित्तीय विवरणों के विभिन्न तत्वों के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन है।

तुलनात्मक वित्तीय विवरण- तुलनात्मक वित्तीय विवरण वे विवरण हैं जो व्यक्तिगत मदों में परिवर्तन को दर्शाते हुए समंकों को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करते हैं।

प्रवृति विश्लेषण- प्रवृति विश्लेषण क्रमिक वर्षों में वित्तीय विवरणों की मदों में परिवर्तन की दिशा के आधार पर व्यवसाय की वित्तीय स्थिति को दर्शाता है।

अनुपात विश्लेषण - अनुपात विश्लेषण वित्तीय विवरणों की मदों या मदों के समूह में सम्बन्ध निर्धारण एवं प्रस्तुतिकरण की प्रक्रिया है।

3.7 अभ्यास प्रश्न :

अति लघुरात्तमक प्रश्न :

1. वित्तीय विश्लेषण का अर्थ समझाइये।
2. तुलनात्मक आय विवरण का क्या आशय है?
3. प्रवृति विश्लेषण किसे कहते हैं?
4. प्रवृति विश्लेषण की विधियाँ कौनसी हैं?

लघुरात्तमक प्रश्न

1. वित्तीय विश्लेषण के चार उपयोग लिखिये।
2. वित्तीय विश्लेषण की चार सीमाएँ बताइये।
3. सम विच्छेद विश्लेषण का आशय समझाइये।

निबन्धात्मक प्रबन्ध

1. वित्तीय विवरणों के विश्लेषण का अर्थ बताइये। वित्तीय विश्लेषण की विभिन्न तकनीकों की व्याख्या कीजिये।

3.8 सन्दर्भ ग्रंथ :

1.	एम. आर. अग्रवाल	-	वित्तीय प्रबन्ध के मूल तत्व
2.	एस. सी. कुच्छल	-	Financial Management
3.	ई. एम. पाण्डे	-	Financial Management
4.	अग्रवाल एवं अग्रवाल	-	वित्तीय प्रबन्ध

इकाई-4 : अनुपात विश्लेषण (Ratio Analysis)

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य
4.1 परिचय
4.2 अनुपात का अर्थ
4.3 अनुपात विश्लेषण के उद्देश्य एवं महत्व
4.4 अनुपात विश्लेषण की सीमाएँ
4.5 अनुपातों के प्रयोग में सावधानियाँ
4.6 अनुपातों का वर्गीकरण
4.7 तरलता या अल्पकालीन शोधन क्षमता अनुपात
4.8 उत्तोलक अथवा पूँजी संरचना अनुपात
4.9 क्रियाशीलता या कार्यकुशलता अनुपात
4.10 लाभदायकता अनुपात
4.11 विनियोग विश्लेषण अनुपात
4.12 अनुपातों की सहायता से अज्ञात राशियों की गणना
4.13 अनुपातों की सहायता से वित्तीय विवरण तैयार करना
4.14 सारांश
4.15 शब्दावली
4.16 स्वपरख प्रश्न
4.17 आंकिक प्रश्न
4.18 उपयोगी पुस्तकें

4.0 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- अनुपातों का अर्थ, उद्देश्य एवं महत्व समझ सकें।
- अनुपात विश्लेषण की सीमाएँ एवं प्रयोग की सावधानियाँ जान सकें।
- अनुपातों का वर्गीकरण कर उन्हें उदाहरणों सहित ज्ञात करना सीख सकें।
- अनुपातों की सहायता से अज्ञात राशियों की गणना एवं वित्तीय विवरण तैयार करना सीख सकें।

4.1 परिचय (Introduction)

अनुपात विश्लेषण वित्तीय विवरणों के विश्लेषण की एक प्रमुख तकनीक है। अनुपात विश्लेषण की सहायता से वित्तीय विवरणों की सूचनाओं को सरल कृत, संक्षिप्त तथा व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इस विधि का प्रयोग सर्वप्रथम **एलेक्जेण्डर**

वाला ने सन् 1919 में बैंकों की वित्तीय स्थिति का आलोचनात्मक अध्ययन करने में किया था। इसके बाद अनुपात विश्लेषण का प्रयोग व्यावसायिक एवं गैर-व्यावसायिक दोनों क्षेत्रों में होने लगा।

4.2 अनुपात का अर्थ (Meaning of Ratio)

साधारण शब्दों में अनुपात किन्हीं दो संख्याओं के मध्य गणितीय सम्बन्ध स्थापित करता है। अनुपात मात्र वित्तीय विवरणों से प्राप्त संख्याओं के सम्बन्ध को अंक-गणितीय रूप में प्रदर्शित करने का साधन है; जबकि अनुपात विश्लेषण विवरणों की मदों एवं मदों के समूह में सम्बन्ध निर्धारण एंव स्तुतीकरण की प्रक्रिया है।

अनुपात दो संख्याओं के मध्य गणितीय सम्बन्ध स्थापित करता है वित्तीय विश्लेषण में इस प्रकार का सम्बन्ध लाभ-हानि खाते के अवयवों या आर्थिक चिट्ठे के अवयवों के मध्य स्थापित किया जा सकता है।

वित्तीय विश्लेषण में अनुपात व्यवसाय की वित्तीय स्थिति पर प्रकाश डालते है, अत: इन्हें 'वित्तीय अनुपात' कहते हैं। ये अनुपात वित्तीय लेखों के समंकों पर आधारित होते हैं। अत: इन्हें 'संरचना अनुपात' भी कहते हैं। इन अनुपातों को 'लेखाविधि अनुपात' भी कहते हैं।

सामान्यतया अनुपातों को निम्नलिखित तीन रूपों में अभिव्यक्त किया जाता है :-

(1) **शुद्ध अनुपात के रूप में (As a pure proportion)** :-

इस विधि में दो मदों के मध्य सम्बन्ध को सीधे आनुपातिक रूप में व्यक्त किया जाता है। जैसे यदि किसी संख्या की चालू सम्पत्तियाँ 20,000 रू. हो तथा चालू दायित्व 12,000 रू. हो तो, चालू सम्पत्तियों का चालू दायित्वों से अनुपात 20,000 ÷ 12,000 = 5 : 3 होगा।

(2) **दर अथवा 'इतने गुने' के रूप में (As a rate)** :-

इस विधि में किसी एक तिथि अथवा समयावधि में दों संख्यात्मक तथ्यों के बीच दर ज्ञात की जाती है अर्थात् किसी समयावधि में एक संख्या दूसरी संख्या से कितनी गुनी है। जैसे एक वर्ष का विक्रय 1,00,000 रू. है तथा स्थायी सम्पत्तियाँ 20,000 रू. हो तो इस प्रकार व्यक्त करेंगें कि बिक्री स्थायी सम्पत्तियों की पाँच गुनी है।

(3) **प्रतिशत के रूप में (As a percentage)** :-

इस विधि में दो मदों के सम्बन्ध को प्रतिशत के रूप में व्यक्त किया जाता है, जैसे किसी संस्था की एक वर्ष की बिक्री 1,00,000 रू. तथा उसका सकल लाभ 20,000 रू. हो तो विक्रय पर सकल लाभ का प्रतिशत $20 = \left(\frac{20,000}{1,00,000} \times 100 \right)$ होगा।

4.3 अनुपात विश्लेषण के उद्देश्य एवं महत्व (Objectives And Utility Of Ratio Analysis)

अनुपातों की सहायता से बड़े-बड़े अंकों या अंको के समूहों को सरल तथा संक्षिप्त बनाया जा सकता है, जिससे उनमें निहित अर्थों को आसानी से समझा जा सके। अनुपातों के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर व्यवसाय की प्रगति अथवा अवनति के बारे में अनेक महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। अनुपातों के आधार पर संस्था से सम्बन्धित बाह्य पक्षकार यथा अंशधारी, विनियोक्ता, लेनदार तथा पूर्ति कार आदि को उस संस्था की मजबूती अथवा कमजोरी की जानकारी मिल जाती है।

जे. बेट्टी के मतानुसार - प्रबन्धक वर्ग के लिए भी अनुपातों का प्रयोग उसके आधारभूत कार्यों - पूर्वानुमान, नियोजन, समन्वय, नियन्त्रण और संवहन में सहायता पहुँचाता है।

अनुपात विश्लेषण के उद्देश्य एवं महत्व को निम्नलिखित तथ्यों से स्पष्ट किया जा सकता है।

(1) **तरलता का ज्ञान** :

तरलता अनुपातों की सहायता से एक संस्था की तरलता स्थिति के बारे में निष्कर्ष निकाले जा सकते है जो कि बैंक एवं अन्य अल्पकालीन ऋणदाताओं के लिए साख विश्लेषण में उपयोगी होती है।

(2) **दीर्घकालीन शोधन क्षमता का माप** :

अनुपात विश्लेषण की सहायता से संस्था की दीर्घकालीन शोधन क्षमताओं को मापा जा सकता है, इससे संस्था की सुदृढ़ता अथवा कमजोरी की जानकारी प्राप्त होती है। इस प्रकार की जानकारी दीर्धकालीन लेनदारों, प्रतिभूति विश्लेषणों तथा वर्तमान एवं भावी विनियोजकों के लिए उपयोगी होती है।

(3) **प्रवृत्ति स्पष्ट करना** :

कई वर्षों के अनुपातों के आधार पर संस्था की लागत, विक्रय, लाभ तथा अन्य महत्वपूर्ण तथ्यों की प्रवृति का विश्लेषण किया जा सकता है। इनसे विश्लेषक यह ज्ञात कर सकता हैं संस्था की प्रवृत्ति अनुकूल है या प्रतिकूल। साथ ही भविष्य की घटनाओं का पूर्वानुमान करने में भी सहायक होते है।

(4) **कुशलता का मापन** :

विभिन्न क्रियात्मक या आवर्त अनुपातों की सहायता से संस्था की परिचालनात्मक कुशलता का मापन किया जाता है। वर्तमान अनुपातों का गत वर्षो के अनुपातों से तुलना करके एक समयावधि के निष्पादन का मूल्यांकन किया जा सकता है।

(5) **अन्तः फर्म तुलना** :

एक उद्योग की अनेक संस्थाओं अथवा एक व्यावसायिक संस्था के विभिन्न विभागों की कुशलता का मापन भी अनुपात विश्लेषण की सहायता से किया जा सकता है।

(6) **लाभदायकता का मापन** :

विभिन्न अनुपात जैसे - विनियोग पर प्रत्याय (ROI), विनियोजित पूँजी पर प्रत्याय, शुद्ध लाभ अनुपातों की सहायता से संस्था की लाभदायकता का मापन किया जा सकता है।

(7) **प्रबन्धकीय उपयोग** :

अनुपात विश्लेषण विभिन्न प्रबन्धकीय कार्यों जैसे नियोजन, नियंत्रण, संवहन एवं नियन्त्रण में भी सहायक होता है।

4.4 अनुपात विश्लेषण की सीमाएँ (Limitations of Ratio Analysis)

अनुपात विश्लेषण व्यावसायिक संस्थाओं के वित्तीय विश्लेषण में अत्यधिक लोकप्रिय है। लेकिन अनुपात स्वयं में कोई निष्कर्ष नहीं है बल्कि विश्लेषणकर्ता को अनुपात विश्लेषण व अपने ज्ञान के आधार से निष्कर्ष निकालने होते हैं। अनुपात विश्लेषण की उपयोगिता के साथ ही कुछ सीमाएँ भी है। अत: अनुपात विश्लेषण करते समय इनकी कमियों और सीमाओं को ध्यान में रखना आवश्यक है, कुछ प्रमुख सीमाएँ निम्नलिखित हैं -

(1) **एक अकेले अनुपात का सीमित महत्व** :

एक अकेला अनुपात किसी स्थिति का सम्पूर्ण चित्र प्रदर्शित नहीं करता है। अत: निष्कर्ष निकालते समय सभी सम्बन्धित अनुपातों पर विचार करना आवश्यक है।

(2) **गुणात्मक विश्लेषण का अभाव** :

अनुपात किसी समस्या के गुणात्मक कारणों का विश्लेषण नहीं करता है। जैसे - उधार माल बिक्री के समय ग्राहक की आर्थिक स्थिति पर विचार किया जाता है लेकिन उसके चरित्र एवं व्यवहार जो कि आर्थिक स्थिति से भी ज्यादा महत्व रखते हैं, पर विचार नहीं किया जाता है।

(3) **ऊपरी दिखावों से प्रभावित** :

वित्तीय विवरणों में कुछ झूठे दिखावे भी होते हैं, जिनका वित्तीय अनुपातों पर प्रभाव पड़ता है। इसीलिए ऐसे समंकों पर आधारित अनुपात विश्वसनीय नहीं होते है।

(4) **लेखांकन की स्वाभाविक का निहित होना** :

अनुपात गणना लेखा अभिलेखों से की जाती है, अत: इन अनुपातों में वे सभी कमियाँ और त्रुटियाँ होगी जो लेखा समंकों में विद्यमान है।

(5) **सुदृढ़ निष्कर्ष व निर्णय का स्थानापन्न नहीं** :

अनुपात विश्लेषण निर्णय लेने के लिए केवल कुछ सूचनाऐं ही प्रदान करते है, इनकी सहायता से निकाले गये निष्कर्ष अच्छे या बुरे प्रबन्ध के सूचक नहीं है। इसीलिए बियरमेन एवं डेब्लिन ने ठीक ही कहा है, “अनुपात विश्लेषण सुदृढ़ निष्कर्ष व निश्चित निर्णय निकालने का स्थानापन्न नहीं है बल्कि यह एक ऐसा सहायक उपकरण है जो जटिल परिस्थितियों में निर्णय को लागू करने में आवश्यक सहायता प्रदान करता है।“

(6) **आदर्श अनुपातों का अभाव** :

अनुपात विश्लेषण हेतु व्यवहार में शब्दावली की परिभाषाओं में एकरूपता नहीं है, जैसे कुछ-कुछ कम्पनियाँ कार्यशील पूँजी में कुल चालू सम्पत्ति को शामिल करती हैं जबकि कुछ शुद्ध चालू सम्पत्ति (चालू सम्पत्तियाँ - चालू दायित्व) से लेती है। अत: अनुपात विश्लेषण का उपयोग एक संस्था से दूसरी संस्था की तुलना में नहीं किया जा सकता।

(7) **विश्लेषक की व्यक्तिगत योग्यता का प्रभाव** :

अनुपात विश्लेषक में निर्वचन एवं निष्कर्ष विश्लेषक की व्यक्तिगत योग्यता से प्रभावित होता है, अत: इनका प्रयोग सतर्कता व सावधानी से करना चाहिए।

(8) **केवल सापेक्षिक स्थिति का प्रदर्शन** :

अनुपात केवल सापेक्षिक स्थिति को दिखाते है, अत: अनुपातों को वास्तविक आँकड़ो के स्थनापन्न नहीं समझना चाहिए।

4.5 अनुपातों के प्रयोग में सावधानियाँ (Precautions in the Use of Ratios)

यद्यपि वित्तीय विश्लेषण में अनुपातों का बहुत अधिक प्रयोग होने लगा है एवं इनकी सहायता से अनेक निष्कर्ष निकाले जाते है। लेकिन इस बात को भी नहीं भूलना चाहिए कि अनुपातों के अनुचित प्रयोग से भ्रामक निष्कर्ष निकल सकते है। इनके प्रयोग में निम्नलिखित सावधानियाँ काम में लेनी चाहिए -

(1) **लेखा समंकों को समझने की योग्यता** :

अनुपातों के प्रयोग करने वाले व्यक्ति को लेखा अवधारणाओं व समंकों को समझने की योग्यता होनी चाहिए, तब ही वह इनका सही प्रयोग करके सही निष्कर्ष निकालेगा।

(2) **लाभ लागतों से अधिक हो** :

वित्तीय अनुपातों का प्रयोग तब ही वांछनीय कहा जाता है, जब इनके प्रयोग से प्राप्त होने वाले लाभ इनमें लगने वाली लागत से अधिक हो। अत: व्यर्थ के अनुपात की गणना नहीं करनी चाहिए।

(3) **शीघ्र संकलन** :

लेखा अनुपातों का शीघ्र संकलन वांछनीय है क्योंकि यथासमय उपलब्ध होने पर ही उनसे रचनात्मक कार्यवाही की जा सकती है।

(4) **प्रस्तुतीकरण** :

लेखा अनुपातों की उपयोगिता उनके प्रस्तुतीकरण पर निर्भर करती है, अर्थात उनका प्रस्तुतीकरण उपयोगकर्ताओं की आवश्यकताओं एवं प्राथमिकता के अनुसार किया जाना चाहिए।

(5) **परिवर्तन** :

उपयोगकर्ता को अपनी आवश्यकतानुसार अनुपातों में भी विवेकपूर्ण वांछनीय परिवर्तन किया जाना चाहिए।

4.6 अनुपातों का वर्गीकरण (Classification of Ratios)

प्रत्येक व्यावसायिक संस्था की अपनी अलग समस्या होती है, इन समस्याओं के विश्लेषण के लिए विभिन्न अनुपात निकाले जा सकते हैं। प्रत्येक संस्था को अपने उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए अनुपातों की गणना करनी होती है। अनुपात अनेक प्रकार के हो सकते हैं, जिनका वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है -

(1) **संरचनात्मक अथवा वित्तीय विवरणों के अनुसार वर्गीकरण** :-

(अ) **स्थिति विवरण / चिट्ठा अनुपात** : ये अनुपात चिट्ठे में दी गई दो मदों या दो मदों के समूह के बीच ज्ञात किये जाते हैं। इनमें प्रमुख अनुपात हैं - चालू अनुपात, तरलता अनुपात, स्वामित्व अनुपात, ऋण समता अनुपात, पूँजी दन्तिकरण अनुपात, स्थायी सम्पत्ति अनुपात आदि।

(ब) **आय विवरण लाभ-हानि खाता अनुपात** : लाभ-हानि खाते की दो मदों अथवा दो मदों के समूहों के बीच के अनुपातों को आय विवरण अनुपात कहते हैं। इनके अन्तर्गत मुख्य रूप से सकल लाभ अनुपात, शुद्ध लाभ अनुपात, परिचालन अनुपात, व्यय अनुपात, स्कन्ध आवर्त अनुपात आदि।

(स) **अन्तः विवरण अनुपात** : ऐसे अनुपात जिनकी एक मद चिट्ठे से तथा दूसरी मद लाभ-हानि खाते से ली जाती हैं तो उन्हें अन्त: विवरण अनुपात कहते हैं, इनमें प्रमुख रूप से विनियोजित पूँजी पर प्रत्याय, स्वामित्व कोषों पर प्रत्याय, कुल विनियोग पर प्रत्याय, देनदार आवर्त अनुपात, लेनदार आवर्त अनुपात, स्थायी सम्पत्ति आवर्त अनुपात, कार्यशील पूँजी आवर्त अनुपात आदि हैं।

(2) **कार्यात्मक वर्गीकरण** :

इनमें अनुपातों का वर्गीकरण वित्तीय विवरणों में रूचि रखने वाले पक्षकारों की आवश्यकतानुसार किया जाता है जैसे - व्यापारिक बैंकों व लेनदारों का फर्म की तरलता में, अंशधारियों का फर्म की लाभप्रदता में, ऋणपत्रधारियों का फर्म की दीर्घकालीन शोधन क्षमता में हित होता है। इसके अन्तर्गत प्रमुख रूप से निम्नलिखित अनुपात निकाले जाते है -

(अ) **तरलता अनुपात (Liquidity Ratio)** : ये अनुपात संस्था की अल्पकालीन शोधन क्षमता का मापन करते हैं। इनमें प्रमुख हैं - चालू अनुपात, तरलता अनुपात, पूर्ण तरलता अनुपात आदि।

(ब) **उत्तोलक या पूंजी संरचना अनुपात (Gearing or Capital Stricture Ratio)** : ऐसे अनुपात स्वामियों तथा ऋणदाताओं द्वारा उपलब्ध कराये गये कोषों की स्थिति स्पष्ट करते हैं। इन्हें दीर्घकालीन शोधन क्षमता अनुपात भी कहते है। ये अनुपात स्वामियों तथा ऋणदाताओं द्वारा संस्था को प्रदान किये गये कोषों के मध्य सम्बन्ध को प्रकट करते है। इस प्रकार के अनुपातों में प्रमुख निम्नलिखित अनुपात हैं - स्वामित्व अनुपात, ऋण समता अनुपात, स्थायी सम्पत्ति अनुपात, पूँजी दंतिकरण अनुपात, शोधन क्षमता अनुपात आदि।

(स) **क्रियाशीलता अनुपात (Activity Ratio)** : ऐसे अनुपातों की सहायता से पूँजी या सम्पत्तियों के उपयोग की प्रभावशीलता को मापा जाता है, अर्थात इनसे संस्था की क्रियाशीलता अथवा कुशलता का मापन किया जाता है।

इनमें प्रमुख रूप से निम्नलिखित अनुपातों को ज्ञात किया जाता है। स्कन्ध आवर्त अनुपात, देनदार आवर्त अनुपात, लेनदार आवर्त अनुपात, कुल सम्पत्ति आवर्त अनुपात, स्थायी सम्पत्ति आवर्त अनुपात, चालू सम्पत्ति आवर्त अनुपात, कार्यशील पूँजी आवर्त अनुपात आदि।

(द) **लाभदायकता अनुपात (Profitability Ratio) :** इनकी सहायता से संस्था की लाभदायकता को मापा जाता है, लाभदायकता लाभ अर्जन योग्यता का माप है, जिसे बिक्री या विनियोग के सम्बन्ध में ज्ञात किया जाता है, इसमें प्रमुख रूप से निम्नलिखित अनुपातों की गणना की जाती है-

(i) **विक्रय पर आधारित** - सकल लाभ अनुपात, परिचालन अनुपात, व्यय अनुपात, परिचालन लाभ अनुपात, शुद्ध लाभ अनुपात

(ii) **विनियोजित पूँजी या विनियोग पर आधारित** - विनियोजित पूँजी पर प्रत्याय, समता पूँजी पर प्रत्याय, स्वामित्व कोषों पर प्रत्याय, कुल सम्पत्तियों पर प्रत्याय

(य) **विनियोग विश्लेषण अनुपात** : इन अनुपातों की सहायता से अंशधारी द्वारा अपने विनियोगों के भावी बाजार मूल्य का पता लगाया जाता है इनमें प्रमुख अनुपात निम्नलिखित हैं -

प्रति अंश पुस्तक मूल्य, प्रति अंश अर्जन, पूंजीकरण अनुपात, मूल्य अर्जन अनुपात, प्रति अंश लाभांश, लाभांश प्राप्ति अनुपात, लाभांश भुगतान अनुपात आदि।

4.7 तरलता या अल्पकालीन शोधन क्षमता अनुपात (Liquidity or Short-term Solvency Ratios)

इन अनुपातों की सहायता से किसी व्यवसाय की अल्पकालीन वित्तीय स्थिति का विश्लेषण किया जाता है। **मायो** के अनुसार - "**तरलता से अभिप्राय सम्पत्तियों की नकद में परिवर्तित करने की सुगमता से है।**" अल्पकालीन ऋणदाता या व्यापारिक बैंक व्यवसाय की अल्पकालीन तरलता में रूचि रखते हैं, अत: उनके द्वारा इन अनुपातों का उपयोग किया जाता है। संस्था की तरलता परीक्षण के लिए मुख्यतः निम्नलिखित अनुपातों की गणना की जाती है -

1. **चालू अनुपात** :

चालू सम्पत्तियों एवं चालू दायित्वों के मध्य सम्बन्ध को चालू अनुपात अथवा कार्यशील पूंजी अनुपात कहते हैं। यह अनुपात अल्पकालीन ऋणदाताओं की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है क्योंकि यह संस्था की चालू तरलता के बारे में संकेत देता है। सामान्यत: औद्योगिक संस्थाओं में 2 : 1 का चालू अनुपात संतोषजनक माना जाता है। जितना ऊँचा चालू अनुपात होगा चालू दायित्वों के प्रत्येक रूपये के लिए अधिक राशि उपलब्ध

होगी, चालू दायित्वों को चुकाने की संस्था की क्षमता अधिक होगी तथा अल्पकालीन लेनदारों के कोषों की अधिक सुरक्षा होगी। ऊँचा चालू अनुपात लेनदारों की दृष्टि से अच्छा है, किन्तु आवश्यकता से अधिक ऊँचा चालू अनुपात व्यवसाय प्रबन्ध की दृष्टि से अच्छा नहीं हो सकता है।

सूत्र : Current Ratio = $\frac{\text{Current Assets}}{\text{Current Liabilities}}$

चालू सम्पत्तियों व चालू दायित्वों के घटक मुख्य रूप से हैं -

1. देय विपत्र (B/P)	1. रोकड़ (Cash)
2. लेनदार (Creditors)	2. बैंक शेष (Bank Balance)
3. अल्पकालीन ऋण (Short-term Loan)	3. प्राप्य विपत्र (B/R)
4. बैंक अधिविकर्ष (Bank overdraft) यदि वर्ष में चुकाना हो ।	4. देनदार (Debtors)
5. अदत्त व्यय (Outstanding Expenses)	5. स्कन्ध (Stock)
6. कर आयोजन (Tax Provision)	6. अल्पकालीन विनियोग (Short term Investment) या विपणन प्रतिभूतियाँ (Marketable securities)
7. न मांगा गया लाभांश (Unclaimed dividend)	7. पूर्वदत्त व्यय (Prepaid Expenses)
8. प्रस्तावित लाभांश (Proposed dividend)	8. अग्रिम भुगतान (Advance payments)
9. ग्राहकों से अग्रिम (Advances from customers)	9. उपार्जित आय (Accrued Income)
10. डीलरों से जमाएँ (Deposits from Dealers)	10. सार्वजनिक निकायों के पास राखी जमाएँ (Deposits kept with public bodies for normal business operations)
11. दीर्घकालीन ऋणों की चालू वर्ष में देय किस्त (Instalment payable on long-term loans)	11. अन्य राशि जो वर्ष में प्राप्त होने वाली है Other amount receivables within a year)

नोट : बैंक अधिविकर्ष की सुविधा साधारणतया स्थायी होती है, अत: यह तर्क दिया जाता है कि चालू अनुपात की गणना करते समय बैंक अधिविकर्ष को चालू दायित्व न माना जाए। वास्तविकता यह है कि बैंक अधिविकर्ष की सुविधा को बैंक किसी भी समय निरस्त कर सकता है। अत बैंक अधिविकर्ष को चालू दायित्व ही माना गया है।

2. तरलता अनुपात (Liquidity Ratio)

इसे त्वरित अनुपात (Quick Ratio) व अम्ल परख अनुपात (Acid test Ratio) भी कहते हैं। इस अनुपात को यह जानने के लिए ज्ञात किया जाता है कि यदि संस्था को अपने चालू दायित्वों को निकट भविष्य अथवा तुरन्त में बहुत शीघ्र भुगतान करना पड़े

तो भुगतान किया जा सकता है या नहीं। इस अनुपात में तरल सम्पत्तियों तथा चालू दायित्वों का सम्बन्ध स्थापित किया जाता है।

चालू अनुपात में 'चालू सम्पत्तियों' में स्टॉक एवं पूर्णदत्त व्ययों (Prepaid Expenses) को भी सम्मलित करते हैं जबकि स्टॉक न्यूनतम तरल सम्पत्ति होता है तथा जिन व्ययों का भुगतान अग्रिम कर दिया है उन्हें पुन: वसूल नहीं किया जा सकता है। अत: तरल सम्पत्तियों में स्टॉक एवं पूर्वदत्त व्ययों को सम्मलित नहीं किया जाता है।

यह अनुपात 1:। का आदर्श माना जाता है। अत: यदि तरलता अनुपात 1:1 या इससे अधिक हो तो संस्था की चालू वित्तीय स्थिति या अल्पकालीन शोधन क्षमता होगी, इसके विपरीत यदि यह अनुपात 1:1 से कम हो तो संस्था की अल्पकालीन क्षमता कम मानी जाएगी।

चालू अनुपात व त्वरित अनुपात में अन्तर -

चालू अनुपात और त्वरित अनुपात में यह अन्तर है कि चालू अनुपात की गणना इस आधार पर की जाती है कि संस्था अपने चालू दायित्वों का शोधन आगामी एक वर्ष में कर सकेगी या नहीं, जबकि त्वरित अनुपात की गणना इस आधार पर की जाती है कि संस्था अपने चालू दायित्वों का तुरन्त या कुछ अल्प समय बाद भुगतान कर सकेगी या नहीं।

3. पूर्ण तरलता अनुपात (Absolute Liquidity Ratio)

इस अनुपात को तीव्र तरलता अनुपात (super quick ratio तथा नकद स्थिति अनुपात (cash position ratio) भी कहते हैं। यह अनुपात संस्था की तीव्र तरल स्थिति की अत्यन्त सूक्ष्म जाँच के लिए प्रयोग किया जाता है। इसकी गणना नकद रोकड़ बैंक शेष तथा विक्रय योग्य प्रतिभूतियों में चालू दायित्वों का भाग देकर की जाती है।

सूत्र : = $\dfrac{Absolute\ Assets}{Current\ Liabilities}$

अथवा

$$= \frac{Cash\ in\ hand + Cash\ at\ Bank + Marketable\ Securities}{Current\ Liabilities}$$

अथवा

$$= \ = \frac{Current\ Assets - (\mathrm{Re}\,ceivables + Stock + \mathrm{Pr}\,epaid\ \exp.)}{Current\ Liabilities}$$

हालांकि इस अनुपात का अधिक उपयोग नहीं किया जाता है, यह 0.5 : 1 का आदर्श अनुपात माना जाता है। जब इस अनुपात का उपयोग चालू एवं त्वरित अनुपात के साथ किया जाता है, तब यह तरलता को अधिक महत्व देता है।

उदाहरण : 1

गौरव लिमिटेड का मार्च 2008 को निम्न चिट्ठा दिया गया है :

Balance Sheet

Liabilities	**Rs.**	**Assets**	**Rs.**
Share Capital :		**Fixed Assets :**	
8000 Share of Rs. 100 each	8,00,000	Buildings	3,40,000
Reserve and Surplus :		Furniture	2,28,000
General Reserve	40,000	Machinery	2,20,000
Capital Reserve	16,000	Investments	40,000
Current Liabilities :		**Current Assets :**	
Creditors	12,000	Stock	20,000
Bills Payables	8,000	Debtors	14,000
Outstanding Expenses	4,000	Bills Receivables	10,000
		Cash & Bank Balance	4,000
		Marketable Securities	4,000
	8,80,000		**8,80,0000**

निम्न अनुपातों की गणना कीजिए -

(i) चालू अनुपात (Current Ratio)

(ii) त्वरित अनुपात (Quick Ratio)

(iii) पूर्ण तरलता अनुपात (Absolute Liquidity Ratio)

हल : (i) Current Ratio = $\dfrac{Current\ Assets}{Current\ Liabilities}$

$$= \frac{Rs.(20,000+14,000+10,000+4,000+4,000)}{Rs.(12,000+8,000+4,000)}$$

$$= \frac{Rs.52,000}{Rs.24,000} = 2.14:1$$

(ii) Quick Ratio = $\dfrac{Quick\ Assets}{Current\ Liabilities}$

$$= \frac{Current\ Assets - Stock}{Current\ Liabilities}$$

$$= \frac{Rs.(52,000-20,000)}{Rs.24,000}$$

$$= \frac{Rs.32,000}{Rs.24,000} = 1.33:1$$

(ii) Absolute Liquidity Ratio = $\frac{Absolute\ Liquid\ Assets}{Current\ Liabilities}$

$$= \frac{Cash \,\&\, Bal. + Marketable\ securities}{Current\ Liabilities}$$

$$= \frac{Rs.8,000}{Rs.24,000} = 0.33:1$$

4.8 उत्तोलक अथवा पूँजी संरचना अनुपात (Leverage or Capital Structure Ratios)

इन्हें दीर्घकालीन शोधन क्षमता अनुपात भी कहते हैं, क्योंकि इन अनुपातों की गणना एक संस्था की दीर्घकालीन शोधन क्षमता अथवा वित्तीय स्थिति जाँचने के लिए की जाती है। उत्तोलक अनुपातों का सम्बन्ध व्यवसाय के इक्विटी अंशधारियों (स्वामियों) द्वारा लगाई गई पूँजी तथा ऋणदाताओं से प्राप्त की गई रकम के बीच होता है। ये अनुपात जोखिम पूँजी अर्थात् समता पूँजी के माध्यम से ऋणदाताओं को प्रदान किये जाने वाले सुरक्षात्मक आवरण का मूल्यांकन करने में सहायक होते है। व्यवसाय के स्वामियों द्वारा विनियोजित पूँजी पर ऋण का भार देखने के लिए प्रमुख रूप से दो पद्धतियाँ काम में लाई जाती हैं, प्रथम, इसके अन्तर्गत ऋण पूँजी तथा स्वामियों द्वारा विनियोजित पूँजी का सापेक्षिक सम्बन्ध देखा जाता हैं तथा द्वितीय के अन्तर्गत व्यवसाय के लाभों पर ऋण पूँजी पर देय काज का भार देखा जाता है।

प्रथम पद्धति के अनुपात -

1. ऋण समता अनुपात (Debt-Equity Ratio)
2. स्वामित्व अनुपात (Proprietary Ratio)
3. शोधन क्षमता अनुपात (Solvency Ratio)
4. स्थायी सम्पत्ति अनुपात (Fixed Assets Ratio)
5. पूँजी दन्तिकरण अनुपात (Capital Gearing Ratio)

द्वितीय पद्धति के अनुपात -

1. ऋण सेवा अनुपात (Debt Service Ratio)
2. पूर्वाधिकार अंश लाभांश व्याप्ति अनुपात (Preference Dividend Coverage Ratio)
3. रोकड़ ऋण सेवा अनुपात (Cash to Debt Service Ratio)

1. **ऋण समता अनुपात (Debt-Equity Ratio)** :

यह अनुपात संस्था के आन्तरिक कोषों तथा बाह्य कोषों के आपसी सम्बन्ध को व्यक्त करता है। अत: इसे बाह्य-आन्तरिक समता अनुपात भी कहते हैं।

सूत्र : Debt-Equity Ratio (D/E Ratio) = $\frac{Debt}{Equity}$ अथवा $\frac{External\ Equities}{Internal\ Equities}$

अथवा

$$= \frac{Outsider's\ Funds}{Shareholders'\ or\ Proprietor's\ Fund\ or\ Net\ worth}$$

बाह्य समताओं (Outsider's fund) में अल्पकालीन व दीर्घकालीन सभी प्रकार के ऋण व चालू दायित्व सम्मलित किये जाते हैं। जबकि आन्तरिक समताओं अथवा स्वामित्व (Internal Equities) में समता अंश पूँजी, पूर्वाधिकार अंश पूँजी, पूँजी संचय, प्रतिधारित अर्जनें (Retained Earnings) तथा अधिक्य से बनाये गए अन्य आगम संचय सम्मलित होते हैं, किन्तु एकत्रित हानियों, स्थगित व्यय व नाम मात्र की सम्पत्तियों को घटाया जाता है।

साधारणतया 1 : 1 का ऋण-समता पूँजी अनुपात सन्तोषजनक माना जाता है। यह अनुपात जितना कम होगा, लेनदारों की स्थिति उतनी ही अधिक सुरक्षित रहेगी, किन्तु अंशधारियों की दृष्टि से नीचा अनुपात उचित नहीं कहा जायेगा क्योंकि उन्हें समता पर व्यापार का लाभ प्राप्त नहीं होगा।

2. **स्वामित्व अनुपात (Proprietary Ratio)** :

यह अनुपात स्वामियों के कोषों (Net Worth) तथा कुल मूर्त-सम्पत्तियों के मध्य सम्बन्ध को प्रदर्शित करता है। इन अनुपात को स्वामियों की समता का कुल सम्पत्तियों से अनुपात या शुद्ध कीमत का कुल सम्पत्तियों से अनुपात भी कहते हैं।

सूत्र : Proprietary Ratio = $\frac{Proprietor's\ Funds}{Total\ Assets}$

स्वामियों के कोषों (Proprietor's Fund) में समता पूँजी, अधिमान अंश पूँजी, सामान्य संचय व अवितरित लाभों को सम्मलित किया जाता है और अवितरित हानियों को घटा दिया जाता है। कुल सम्पत्तियों में सम्पूर्ण चालू तथा स्थायी सम्पत्तियों को सम्मिलित किया जाता है। अमूर्त सम्पत्तियों को उनके वसूली मूल्य पर लिया जाता है, कृत्रिम सम्पत्तियाँ जैसे प्रारम्भिक व्यय, अंशों पर बट्टा आदि को छोड़ दिया जाता है या संचयों में से घटा दिया जाता है।

यह अनुपात जितना अधिक होगा लेनदारों की स्थिति उतनी अधिक मजबूत होगी और जितना कम होगा लेनदारों की जोखिम अधिक होगी। अत: ऊँचा अनुपात सुदृढ़ वित्तीय स्थिति का द्योतक है, क्योंकि ऐसी संस्था बाहर की कार्यशील पूँजी पर कम निर्भर करती है।

इस अनुपात को दो प्रकार से विश्लेषित किया जाता है जो इस प्रकार हैं -

(अ) **स्थायी सम्पत्तियों का स्वामी कोषों से अनुपात (Ratio of fixed assets to proprietary funds)** - इस अनुपात की सहायता से हम यह जान सकते हैं कि किस सीमा तक अंशधारियों के कोषों से व्यवसाय की समस्त स्थायी सम्पत्तियों का अर्थ प्रबन्धन किया गया है। यह अनुपात स्थायी सम्पत्तियों (ह्रास घटाकर) के मूल्यों में और स्वामियों के कोषों के मध्य सम्बन्ध को दर्शाता है।

सूत्र : Ratio of Fixed Assets to Proprietary Funds = $\frac{Fixed\ Assets\,(After\ Dep.)}{\Pr oprietory's\ Funds}$

इस अनुपात के सम्बन्ध में कोई सर्वमान्य प्रमाप निर्धारित नहीं है, लेकिन सामान्यता एक औद्योगिक संस्था में स्थायी सम्पत्तियों का स्वामियों के कोषों का 2 / 3 होना उचित समझा जाता है। यह अनुपात जितना कम होगा, व्यवसाय की दीर्धकालीन शोधन क्षमता उतनी ही सुदृढ होगी।

(ब) **चालू सम्पत्तियों का स्वामी कोषों से अनुपात (Ratio of current assets to proprietary funds)** - यह अनुपात चालू सम्पत्तियों और स्वामियों के कोषों के मध्य सम्बन्ध प्रदर्शित करता है।

सूत्र : Ratio of Current Assets to Proprietary Funds = $\frac{Current\ Assets}{\Pr oprietory's\ Funds}$

यह अनुपात जितना कम होगा व्यवसाय की सुदृढ़ माना जाएगा।

3. **शोधन क्षमता अनुपात (Solvency Ratio)** :

यह अनुपात व्यवसाय की दीर्धकालीन शोधन क्षमता के माप के लिए प्रयोग किया जाता है। यह कुल सम्पत्तियों तथा कुल दायित्वों के मध्य सम्बन्ध को दर्शाता है।

सूत्र : Solvency Ratio = $\frac{Total\ Liabilities}{Total\ Assets}$

यह अनुपात जितना अधिक होगा वह लेनदारों के लिए अधिक जोखिम का प्रतीक होगा।

उदाहरण : 2

निम्नलिखित विवरण में (i) ऋण समता अनुपात (ii) स्वामित्व अनुपात (iii) शोधन क्षमता अनुपात ज्ञात कीजिए -

Balance Sheet

Liabilities	**Rs.**	**Assets**	**Rs.**
Paid up Capital	10,00,000	Fixed Assets Less Dep.	21,98,100
Reserve and Surplus	8,45,000	Stock	4,94,600
Debentures	10,00,000	Trade Debtors	1,17,100
Bill Payable	65,000	Cash at Bank	2,60,200
Creditors	16,00,000		
	30,70,000		**30,70,000**

हल. (i) Debt-Equity Ratio (D/E Ratio) = $\frac{Total\ Debts}{Shareholder's\ Funds}$

$$= \frac{Rs.12,25,000}{Rs.18,45,000} = 0.66:1$$

Total Debts = Debentures + Current Liabilities

= Rs. 10,00,000+2,25,000 = 12,25,000

Shareholder's Funds = Share Capital + Res. & Surplus

= Rs. 10,00,000+8,45,000 = 18,45,000

(ii) Proprietary Ratio = $\frac{Proprietory's Fund}{TotalAssets} = \frac{Rs.18,45,000}{Rs.30,70,000} = 0.6:1$

(iii) Solvency Ratio = $\frac{TotalDebts}{TotalAssets} = \frac{Rs.12,25,00}{Rs.30,70,000} = 0.4:1$

4. **स्थायी सम्पत्ति अनुपात (Fixed Assets Ratio)** :

यह अनुपात दीर्घकालीन कोषों अथवा विनियोजित पूँजी एवं स्थायी सम्पत्तियों के बीच सम्बन्ध को प्रदर्शित करता है। इसे प्रयुक्त पूँजी से स्थायी सम्पत्तियों का अनुपात भी कहते हैं।

सूत्र : Fixed Assets Ratio = $\frac{LongtermFund}{FixedAssets}$ अथवा $\frac{CapitalEmployed}{FixedAssets}$

दीर्घकालीन कोषों में समता अंश पूँजी, अधिमान अंश पूँजी, संचय व आधिक्य तथा दीर्घकालीन ऋणों को शामिल किया जाता है।

स्थायी सम्पत्तियों में ह्रास आदि के आयोजनों को घटाकर शुद्ध स्थायी सम्पत्तियों (Net fixed assets) तथा दीर्घकालीन विनियोगों (सहायक कम्पनी के अंशों सहित) की राशि को लिया जाता है।

आदर्श अनुपात 0.67 : 1 होता है। साधारणतया यह अनुपात 1 : 1 से कम होने पर वित्तीय स्थिति सन्तोषजनक मानी जाती है 1 : 1 से अधिक का अनुपात दीर्घकालीन शोधन क्षमता की दृष्टि से ठीक नहीं कही जा सकती।

5. **पूंजी दन्तिकरण अनुपात (Capital Gearing Ratio)** :

यह अनुपात किसी व्यावसायिक संस्था की पूँजी संरचना में अस्थिर लागत वाली तथा स्थिर लागत वाली पूँजी के मध्य सम्बन्ध स्थापित करता है। ब्राउन एवं हावर्ड के अनुसार, "पूँजी दंतिकरण शब्द का प्रयोग किसी कम्पनी की समता अंशपूँजी एवं स्थिर लागत वाली प्रतिभूतियों के बीच अनुपात को प्रदर्शित करने के लिए किया जाता है।

सूत्र : Capital Gearing Ratio = $\frac{VariableCostbearingCapital}{FixedCostbearingCapital}$

अथवा

$$\frac{NetWorth - PreferenceShares}{Debt + PreferenceShares}$$

यह अनुपात जितना अधिक होगा व्यवसाय के लाभों पर स्थित वित्तीय व्ययों का भार उतना ही कम होगा। इस स्थिति को पूँजी का निम्न दंतिकरण (Low Gearing) कहते हैं। इसके विपरीत, यह अनुपात जितना नीचा होगा, समता अंशधारियों को समता पर व्यापार का लाभ प्राप्त होगा। इस स्थिति में उच्च दंतिकरण (High Gearing) कहते है।

6. **ऋण सेवा अनुपात अथवा ब्याज व्याप्ति अनुपात (Debt Service Ratio or Interest Coverage Ratio)** :- इस अनुपात की सहायता से एक व्यवसाय की ऋण सेवा क्षमता का मापन किया जा सकता है। इस अनुपात का विशेषकर वहाँ उपयोग किया जाता है जहाँ दीर्घकालीन ऋणों पर ब्याज का भुगतान करना है। यह अनुपात व्यवसाय में ऋण भार का व्यवसाय के लाभों से सम्बन्ध दर्शाता है। यह अनुपात यह बताता हैं कि व्यवसाय का लाभ देय ब्याज का कितने गुना है। सामान्यतया एक औद्योगिक संस्था की ब्याज व कर से पूर्व शुद्ध आय देय ब्याज का लगभग 6-7 गुना होनी चाहिए।

   सूत्र : Debt Service Ratio = $\frac{Net\ Profit\left(before\ interest\ and\ tax\right)}{Fixed\ Interest\ Charges}$

7. **पूर्वाधिकार अंश लाभांश व्याप्ति अनुपात (Preference Dividend Coverage Ratio)**: यह अनुपात यह बताता है कि एक कम्पनी की अधिमान अंशों पर लाभांश जो कि साधारणतया एक स्थायी दर होती है, के भुगतान करने की क्षमता का माप है। इस अनुपात को कर पश्चात शुद्ध लाभों के गुने के रूप में व्यक्त किया जाता है।

सूत्र : Preference Dividend Coverage Ratio) = $\frac{Net\ Profit\ after\ tax\ and\ interest}{Preference\ Dividend}$

8. **रोकड़ ऋण सेवा अनुपात (Cash to Debt Services Ratio)** :-
   कुछ विद्वान ऋण सेवा अनुपात के स्थान पर रोकड़ ऋण सेवा अनुपात को अधिक उपयुक्त मानते हैं। क्योंकि ऋण सेवा प्रभारों का भुगतान नकद में करना होता है।

सूत्र : Cash to Debt Services Ratio = $\frac{Annual\ Cash\ Inflow\ before\ tgax\ and\ interest}{Interest + \frac{Sinking\ Fund\ Appropriations}{1 - Tax\ Rate}}$

उदाहरण : 3

निम्न दी गई सूचनाओं से ज्ञात कीजिए -

(अ) ब्याज व्याप्ति अनुपात ; (ब) पूर्वाधिकार लाभांश व्याप्ति अनुपात ; (स) रोकड़ ऋण सेवा अनुपात।

	Rs.
Net Profit after Tax	40,000
Depreciation	10,000
Rate of Income Tax	50%
10% Mortage Debentures	60,000
Fixed Interest Charges	6,000
Sinking Fund Appropriations	5% of outstanding Debentures
8% Preference Share Capital	1,00,000
Equity Share Capital	2,00,000

हल : (अ) ब्याज व्याप्ति अनुपात = $\frac{Net\ Profit\ (before\ interest\ and\ tax)}{Fixed\ Interest\ charges}$

$$= \frac{Rs.40,000+40,000+6,000}{Rs.6,000} = 14.33\ Times$$

(ब) पूर्वाधिकार लाभांश व्याप्ति अनुपात = $\frac{Net\ Profit\ after\ tax}{Preference\ Diovidend}$

$$= \frac{Rs.40,000}{Rs.8,000} = 5\ Times$$

(स) रोकड़ ऋण सेवा अनुपात = $\frac{Annual\ Cash\ Inflow\ before\ tax\ and\ interest}{Interest + \frac{Sinking\ Fund\ Appropriations\ on\ Debts}{1 - Tax\ Rate}}$

$$= \frac{Rs.40,000+40,000+6,000+10,000}{Rs.6,000\ \frac{3,000}{1-0.50}}$$

$$= \frac{Rs.96,000}{Rs.12,000} = 8\ Times$$

4.9 क्रियाशीलता या कार्यकुशलता अनुपात (Activity or Efficiency Ratios)

क्रियाशीलता अनुपातों की गणना का प्रमुख उद्देश्य संस्था की कार्य निष्पत्ति तथा प्रबन्धकों की कार्यकुशलता का मूल्यांकन करना होता है। इन अनुपातों की सहायता से व्यवसाय में उपलब्ध साधनों का प्रयोग कितने प्रभावशाली ढंग से किया गया है, का मापन किया जाता है। इन अनुपातों को 'आवर्ती अनुपात' (Turnover Ratio) भी कहते हैं क्योंकि ये उस गति को प्रदर्शित करते हैं जिससे सम्पत्तियाँ बिक्री में परिवर्तित हो जाती हैं।

अतः यह कह सकते हैं कि आवर्त अनुपात द्वारा विक्रय मूल्य अथवा विक्रय की लागत और विभिन्न सम्पत्तियों के बीच सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। इसके अन्तर्गत मुख्यतः निम्नलिखित अनुपातों की गणना की जाती है -

1. **स्कन्ध आवर्त अनुपात (Stock or Inventory Turnover Ratio)** :

स्कन्ध आवर्त अनुपात औसत स्टॉक तथा बेची गई वस्तु की लागत के बीच सम्बन्ध स्थापित करता है। इस अनुपात की सहायता से यह ज्ञात होता है कि कितनी बार स्कन्ध का विक्रय तथा प्रतिस्थापन हुआ है।

सूत्र : Inventory (Stock) Turnover Ratio = $\frac{Cost of Goods Sold or Sales}{Average Stock}$

(अ) बेचे गये माल की लागत (Cost of Goods Sold) की गणना -

(i) व्यापारिक संस्थान की स्थिति में -

Cost of goods Sold = Opening Stock+Purchases+Direct Exp. -Closing Stock

(ii) निर्माणी संस्थान की स्थिति में -

Cost of goods Sold = Cost of Production+Opening Stock of Finished goods-Closing Stock of Finished goods

अथवा

= Sales-Gross Profit

(ब) **औसत स्कन्ध (Average Stock) की गणना** -

Average Stock = $\frac{Opening + Closing Stock}{2}$

नोट : कभी-कभी बेची गयी वस्तु की लागत की सूचना उपलब्ध नहीं होती है तथा न ही उसे आकलित करना सम्भव होता है। ऐसी स्थिति में 'स्कन्ध आवर्त अनुपात' की गणना बिक्री के आधार पर की जा सकती है।

उदाहरण : 4

निम्नलिखित सूचना के आधार पर स्कन्ध आवर्त अनुपात की गणना कीजिए -

	Rs.		Rs.
Opening Stock	80,000	Sales	3,00,000
Purchases	1,60,000	Closing Stock	60,000
Carriage Inwards	20,000		

हल: stock Turnover Ratio= $\frac{Cost\ of\ Goods\ Sold}{Average\ Stock} = \frac{Rs\,2,00,000}{Rs\,70,000}$ =2.86 Times

Cost of goods Sold = Opening Stock + Purchase + Carriage Inwards - Closing Stock

=80,000 + 1,60,000 + 20,000 - 60,000 = Rs. 2,00,000

Average Stock = $\frac{Opening Stock + Closing Stock}{2} = \frac{80,000 + 60,000}{2}$ =Rs.70,000

2. **देनदार स्कन्ध आवर्त अनुपात (Debtors' Ratio of Receivable Turnover Ratio)**: यह अनुपात वर्ष की शुद्ध उधार बिक्री तथा औसत देनदारों के मध्य सम्बन्ध को दर्शाता है। इससे यह ज्ञात होता है कि वर्ष में देनदार कितनी शीघ्र रोकड़ में परिवर्तित होते हैं। ऊँचा देनदार अनुपात देनदारों से राशि संग्रह की कुशलता बताता है तथा नीचा अनुपात इस बात का सूचक है कि माल की उधार बिक्री की संग्रह व्यवस्था कुशल नहीं है।

सूत्र : Debtor's Turnover Ratio = $\frac{NetCreditSales}{Average\,ReCeivables(Drs + B/R)}$

Average Receivables = $\frac{[OpeingDebtorsandB/R] + [Clo\sin gDebtorsandB/R]}{2}$

नोट : उधार विक्रय से आशय कुल उधार विक्रय में से विक्रय वापसी को घटाने के बाद शेष राशि से है। देनदार आवर्त अनुपात की गणना करते समय भुनाये गये विपत्र जो दायित्व उत्पन्न करते हैं, की पूरी राशि शामिल की जाती है तथा अप्राप्य एवं संदिग्ध ऋणों की राशि को घटाया नहीं जाता है।

औसत संग्रह अवधि (Average Collection Period)

यह अवधि देनदारों से धन संग्रह या वसूली के औसत समय को प्रदर्शित करती है।

सूत्र : Average Collection Period = $\frac{Average\,Recivables}{AverageCreditSalesPerDay}$

अथवा

$\frac{Average\,Recivables \times 365}{Credit\ Sales\ for\ the\ year}$ अथवा $\frac{Month\ or\ Days\ in\ a\ year}{Debtors'Turnover}$

उदाहरण : 5

दी गई सूचनाओं से देनदार आवर्त अनुपात तथा औसत संग्रह अवधि ज्ञात कीजिए-

	Rs.
Total Gross Sales	50,000
Cash Sales (included in above)	18,000
Sales Returns	2800
Debtors on 31-3-2007	3600
Debtors on 31-3-2008	2400
B/R on 31-3-2007	1000
B/R on 31-3-2008	2000
Provision for Doubtful Debts as on 31-3-2008.	120

हल. Debtors' Turnover Ratio= $\frac{Net\ Credit\ Sales}{Average\ Recivables} = \frac{Rs.29,200}{Rs,4500}$ =6.49 Times

Average Receivables= $\frac{Rs.[3600 + 2400] + Rs[1000 + 20000]}{2}$ =Rs. 4500

Net Credit Sales = Total Gross Sales - Cash Sales - Sales Return

$$= Rs.\ 50,000 - 18,000 - 2,800 = 29,200$$

Average Collect. Period = $\frac{Average\ Recivables}{Net\ Credit\ Sales} x365$

$$= \frac{Rs.4,500}{Rs.29,200} x365 = 56.25 \text{ or } 57 \text{ days.}$$

3. **लेनदार स्कन्ध आवर्त अनुपात (Credetors' Turnover Ratio)** :

   लेनदार आवर्त अनुपात उधार क्रय एवं व्यापारिक लेनदारों के बीच सम्बन्ध प्रदर्शित करता है। यह भुगतान अवधि अथवा लेनदार गति अर्थात् उधार क्रय के भुगतान में लगने वाले समय को दर्शाता है। ऊँचा लेनदार आवर्त अनुपात संस्था की खराब तरलता स्थिति तथा नीचा अनुपात अच्छी स्थिति को दर्शाता है।

सूत्र : Creditors or Payable Turnover Ratio= $\frac{Net\ Credit\ Purchases}{Average\ Payable}$

$$Average\ Payable = \frac{[Opeing\ Creditors\ and\ B/P] + [Closing\ Creditors\ and B/P]}{2}$$

औसत साख अवधि (Average Payment Period)

यह अवधि यह बताती है कि हमने लेनदारों को भुगतान करने में औसतन कितना समय लिया है।

सूत्र : Average Payment Period = $\frac{Average\ Payables}{Average\ Credit\ Purchases\ Per\ Day}$

अथवा

$$\frac{Average\ Recivables \times 365}{Credit\ Purchases\ for\ the\ year} \text{ अथवा } \frac{Month\ or\ Days\ in\ a\ year}{Creditors'\ Turnover}$$

4. **कुल सम्पत्ति आवर्त अनुपात (Total Assets Turnover Ratio)** :

   इसे कुल विनियोग आवर्त अनुपात भी कहते है। यह व्यवसाय में विनियोजित सम्पूर्ण सम्पत्तियों तथा उनके आधार पर होने वाले विक्रय या बेची गई वस्तु की लागत में सम्बन्ध दर्शाता है।

   सूत्र : Total Assets Turnover Ratio = $\frac{Net\ Sales\ or\ Cost\ of\ Goods\ Sold}{Total\ Assets}$

नोट : कुल सम्पत्तियों से आशय सभी स्थायी एवं चालू सम्पत्तियों से है किन्तु इनमें हास आदि का समायोजन कर लिया जाता है। कुछ विद्वान इसमें कृत्रिम सम्पत्तियों जैसे प्रारम्भिक व्यय, अंशों पर बट्टा आदि को सम्मिलित नहीं करते हैं, किन्तु अमूर्त सम्पत्तियों जैसे - ख्याति, पेटेन्ट, ट्रेडमार्क आदि को सम्मलित करना चाहिए।

5. **स्थायी सम्पत्ति आवर्त अनुपात (Fixed Assets Turnover Ratio)** :

   यह स्थायी सम्पत्तियों का शुद्ध विक्रय बेचे गये माल की लागत के बीच सम्बन्ध दर्शाता है। यह अनुपात स्थायी सम्पत्तियों के कुशलतापूर्वक तथा लाभपूर्ण प्रयोग का

सूचक है। इस अनुपात का अधिक होना कार्य निष्पादन में कुशलता तथा कमी होना अकुशलता का द्योतक है।

सूत्र : Fixed Assets Turnover Ratio = $\frac{Sales\ or\ Cost\ of\ Goods\ Sold}{Fixed\ Assets\,(Less\ Depreciation)}$

6. **चालू सम्पत्ति आवर्त अनुपात (Current Assets Turnover Ratio)**:

   यह अनुपात चालू सम्पत्तियों एवं शुद्ध विक्रय बेची गई वस्तु की लागत के बीच सम्बन्ध दर्शाता है। इस अनुपात से चालू सम्पत्तियों के कुशलता या अति-विनियोग अथवा न्यून-विनियोग की जानकारी मिलती है।

   सूत्र : Current Assets Turnover Ratio = $\frac{Sales\ or\ Cost\ of\ Goods\ Sold}{Current\ Assets}$

7. **कार्यशील पूँजी आवर्त अनुपात (Working Capital Turnover Ratio)**:

   यह अनुपात बिक्री / बेचे गये माल की लागत एवं शुद्ध कार्यशील पूँजी में सम्बन्ध दिखाता है। इस अनुपात से यह ज्ञात होता है कि संस्था ने अपनी कार्यशील पूँजी का कितनी क्षमता से प्रयोग किया है।

   सूत्र : Working Capital Turnover Ratio = $\frac{SalesorCostofGoodsSold}{NetWorkingCapital}$

नोट : शुद्ध कार्यशील पूँजी की गणना सम्पूर्ण चालू सम्पत्तियों में से चालू दायित्वों को घटाकर की जाती है।

8. **पूंजी आवर्त अनुपात (Capital Turnover Ratio)**:

   यह अनुपात विनियोजित पूँजी तथा बिक्री / बेचे गये माल की लागत के मध्य सम्बन्ध को दर्शाता है.। यह अनुपात विनियोजित पूँजी के कुशल प्रयोग तथा प्रबन्धकीय कुशलता का द्योतक होता है।

   सूत्र : Capital Turnover Ratio = $\frac{Sales\ or\ Cost\ of\ Goods\ Sold}{Capital\ Empolyed}$

   विनियोजित पूँजी = कुल सम्पत्तियाँ - चालू दायित्व

   अथवा

   = अंशधारियों के कोष (अंश पूँजी + संचय व आधिक्य) + दीर्घकालीन ऋण (यदि सम्पत्तियों में कृत्रिम सम्पत्तियाँ व गैर-व्यापारिक सम्पत्तियाँ हों तो उन्हें छोड़ दिया जाता है।)

उदाहरण: 6

अंशुमान कम्पनी लिमिटेड का 31 मार्च 2007 का चिट्ठा दिया गया है -

Balance Sheet

Liabilities	**Rs.**	**Assets**	**Rs.**
Share Capital	8,00,000	Fixed Assets	16,00,000
General Reserve	3,00,000	Debtors	6,00,000
Profit and Loss A/c	5,00,000	Bills Receivables	2,00,000
Mortgage Loan @ 10%	8,00,000	Cash at Bank	5,00,000
Creditors	4,00,000	Preliminary Exp.	1,00,000
Bills Payable	2,00,000		
	30,00.000		**30,00,000**

वर्ष में बिक्री 16,00,000 रू. थी ।

ज्ञात कीजिए -

(i) पूँजी आवर्त अनुपात

(ii) स्थायी सम्पत्ति आवर्त अनुपात

(iii) कार्यशील पूँजी आवर्त अनुपात

(iv) चालू सम्पत्ति आवर्त अनुपात

(v) कुल सम्पत्ति आवर्त अनुपात

हल : (i) Capital Turnover Ratio = $\frac{Sales}{Capital\ Empolyed} = \frac{Rs.16,00,000}{Rs.23,00,000}$ =0.69 Times

Capital Employed = Fixed Assets + Current Assets – Current Liabilities

= 16,00,000+(6,00,000+2,00,000+5,00,000)-(4,00,000+2,00,000)

= 16,00,000+13,00,000-6,00,000

= 23,00,000

अथवा

Capital Employed = Share Capital + General Res. + P&L a/c + Mort. Loan - Preliminary Exp.

= 8,00,000+3,00,000+5,00,000+8,00,000-1,00,000

= 23,00,000

(ii) Fixed Assets Turnover Ratio= $\frac{Sales}{Fixed\ Assets} = \frac{Rs.16,00,000}{Rs.16,00,000}$ =1 Time

(iii) Working Capital Turnover Ratio= $\frac{Sales}{Working\ Capital} = \frac{Rs.16,00,000}{Rs.7,00,000}$ =2.28 Times

(iv) Current Assets Turnover Ratio= $\frac{Sales}{Current\ Assets}=\frac{Rs.16,00,000}{Rs.13,00,000}$=1.23 Times

(v) Total Assets Turnover Ratio=$\frac{Sales}{Total\ Assets}=\frac{Rs.16,00,000}{Rs.29,00,000}$=0.55 Times

4.10 लाभदायकता अनुपात (Profitability Ratios)

प्रत्येक व्यवसाय का उद्देश्य अधिकतम लाभ कमाना होता है। प्रत्येक व्यवसायी अपनी संस्था से लाभ न केवल निरपेक्ष रूप से अधिक बल्कि संस्था में प्रयुक्त पूँजी, साहस तथा अन्य संस्थाओं की तुलना में अधिक चाहता है। लाभदायकता दो शब्दों से मिलकर बना है, लाभ + दायकता।

'लाभ' शब्द का प्रयोग उद्देश्यों के अनुसार परिवर्तित होता रहता है, लेखांकन में, लाभ = कुल आगम - कुल खर्च से माना जाता है, इसमें आगत तथा खर्च एक विशिष्ट अवधि जो कि सामान्यतया 12 महीनों की होती है। 'दायकतां शब्द से आशय संस्था की लाभ-अर्जन की क्षमता को बताता है।

लाभदायकता अनुपात ही यह दर्शाते हैं कि सम्पूर्ण प्रबन्ध की कार्यक्षमता क्या है। इन अनुपातों को मुख्यतः दो वर्गो में रखा जा सकता हैं. प्रथम - बिक्री पर आधारित लाभदायकता अनुपात, द्वितीय - पूँजी एवं सम्पत्तियों पर आधारित लाभदायकता अनुपात।

(अ) **विक्रय पर आधारित लाभदायकता अनुपात (Profitability Ratio Based on Sales):-**

(i) **सकल लाभ अनुपात (Gross Profit Ratio)**: यह अनुपात एक व्यवसाय के सकल लाभ का शुद्ध विक्रय पर अर्जन क्षमता को प्रदर्शित करता है।

सूत्र : Gross Profit Ratio= $\frac{Gross\ Profit}{Net\ Sales}$x100

Gross Profit Ratio= $\frac{Net\ Sales - Cost\ of\ Goods\ Sold}{Net\ Sales}$x100

विक्रीत माल की लागत में प्रयुक्त सामग्री की लागत, क्रय से सम्बन्ध प्रत्यक्ष व्यय तथा उत्पादन से सम्बन्धित प्रत्यक्ष व्यय शामिल होते हैं। शुद्ध बिक्री से आशय नकद व उधार विक्रय की कुल राशि में से विक्रय वापसी घटाने के पश्चात् प्राप्त राशि से है।

(ii) **परिचालन अनुपात (Operating Ratio)**: यह अनुपात विक्रीत माल की प्रत्यक्ष लागत में अन्य सभी परिचालन व्ययों (प्रशासन व विक्रय एवं वितरण के व्यय) को जोड़कर प्राप्त योग में शुद्ध विक्रय का भाग देकर ज्ञात करते हैं।

परिचालन अनुपात संस्था की लाभार्जन क्षमता एवं कुशलता का माप है। यह अनुपात जितना कम होगा, संस्था इतनी ही कुशल समझी जाएगी। इस अनुपात का ज्ञात करते

समय वित्तीय प्रकृति के व्यय तथा अनुत्पादक लय एवं गैर-संचालन व्ययों को सम्मलित नहीं किया जाता है।

इस अनुपात के गहन अध्ययन हेतु लागत के विभिन्न तत्वों पर आधारित अलग-अलग अनुपातों को ज्ञात किया जाता है, इन्हें व्यय-अनुपातों के नामों से जाना जाता है।

(a) **प्रयुक्त माल की लागत का अनुपात (Material Consumed Ratio)**: यह अनुपात प्रयुक्त माल के कुशलता पूर्वक उपयोग, क्रय कुशलता तथा कच्चे माल की कीमतों में परिवर्तन के विश्लेषण में सहायक होता है।

सूत्र : $\frac{Materials\,Consumed}{Net\,Sales}$ x100

(b) **प्रयुक्त श्रम की लागत का अनुपात (Direct Wages Cost Ratio)**: यह अनुपात श्रम की कुशलता एवं उत्पादकता दोनों के बारे में बताता है।

सूत्र : $\frac{Direct\,Wages}{Net\,Sales}$ x100

(c) **रूपान्तरण व्यय अनुपात (Conversion Cost Ratio)**: इस अनुपात की सहायता से उत्पाद प्रक्रियाओं की कुशलता का अनुमान लगाया जा सकता है।

सूत्र : $\frac{Manufacturing\,Expenses\,(excluding\,Material)}{Net\,Sales}$ x100

(d) **प्रशासन व्यय अनुपात (Administrative Expenses Ratio)** :

सूत्र : $\frac{Ad\min istrative\,Expenses}{Net\,Sales}$ x100

(e) **विक्रय एवं वितरण व्यय अनुपात (Selling & Distribution Expenses Ratio)** :

सूत्र : $\frac{Selling\,and\,Distribution\,Expenses}{Net\,Sales}$ x100

(iii) **परिचालन लाभ अनुपात (Operating Profit Ratio)** : यह अनुपात परिचालन लाभ तथा शुद्ध विक्रय में सम्बन्ध स्थापित करता है। इसे शुद्ध परिचालन आय अनुपात के नाम से भी जाना जाता है। यह अनुपात व्यवसाय की शुद्ध लाभदायकता का सूचक है। यह अनुपात जितना अधिक होगा व्यवसाय की क्रियात्मक कार्य क्षमता उतनी ही अधिक होगी। ऊँचे परिचालन लाभ अनुपात का अर्थ है कि संस्था न केवल बिक्री वृद्धि में सफल हुई है बल्कि वह अपने परिचालन व्ययों को भी कम करने में सक्षम है।

सूत्र : Operating Profit Ratio= $\frac{Oprating\,\Pr ofit}{Net\,Sales}$ x100

(iv) **शुद्ध लाभ अनुपात (Net Profit Ratio)** : यह अनुपात एक व्यवसाय के विक्रय तथा शुद्ध लाभ के बीच सम्बन्ध को दर्शाता है। शुद्ध लाभ से आशय एक लेखांकन अवधि में आगम का व्ययों पर आधिक्य है। यह अनुपात सम्पूर्ण व्यवसाय की लाभदायकता एवं कार्य कुशलता का सूचक होता है, अत: यह अनुपात जितना अधिक होगा व्यवसाय की

कार्यक्षमता एवं लाभदायकता उतनी ही अधिक होगी तथा साधनों का उतना ही अच्छा उपयोग होगा।

सूत्र : Net Profit Ratio= $\frac{Net\ Profit\ (after\ tax)}{Net\ Sales}$ x100

अथवा

$$\frac{Net\ Profit\ (before\ tax)}{Net\ Sales} \text{x100}$$

टिप्पणी : शुद्ध लाभ की गणना परिचालन लाभ में गैर-परिचालन आय जैसे - विनियोग पर ब्याज या लाभांश व स्थायी सम्पत्तियों की बिक्री पर लाभ आदि जोड़कर तथा गैर-परिचालन व्यय जैसे स्थायी सम्पत्तियों की बिक्री पर हानि, वैधानिक क्षति हेतु आयोजन आदि को घटाकर की जा सकती है। जब इस अनुपात की गणना प्रबन्धीय कुशलता का माप करने हेतु की जाती है तब 'कर से पूर्व लाभ' प्रयोग किया जाता है तथा जब गणना स्वामियों हेतु की जाती है तब 'कर पश्चात लाभ' प्रयोग किये जाते है।

उदाहरण: 7

अनुभूति लि. का 31 मार्च 2008 को निम्न व्यापार एवं लाभ हानि खाता है :

Trading and Profit & Loss Account

For the year ended 31st March, 2008

	Rs.		**Rs.**
To Opening Stock	2,20,000	By Sales	13,00,000
To Purchases	8,00,000	By Closing Stock	3,20,000
To Carriage	20,000		
To Wages	2,00,000		
To Gross Profit c/d	3,80,000		
	16,20,000		**16,20,000**
To Administrative Exp.	1,20,000	By Gross Profit b/d	3,80,000
To Interest	6,000	By Non-operating Incomes	20,000
To Selling and Dis. Exp.	20,000		
To Non-operating Exp.	14,000		
To Net Profit	2,40,000		
	4,00,000		**4,00,000**

उपरोक्त सूचना के आधार पर निम्न अनुपातों को ज्ञात कीजिए -

(i) सकल लाभ अनुपात

(ii) शुद्ध परिचालन लाभ अनुपात

(iii) परिचालन अनुपात

(iv) प्रशासनिक व्यय अनुपात

(v) विक्रय एवं वितरण व्यय अनुपात

(vi) शुद्ध लाभ अनुपात

हल.

(i) Gross Profit Ratio= $\frac{Gross\ Profit}{Sales}$ x100= $\frac{Rs.3,80,000}{Rs.13,00,000}$ x100=29.23%

(ii) Net Operating Profit Ratio= $\frac{Operating\ Net\ Profit}{Sales}$ = $\frac{Rs.2,34,000}{Rs.13,00,000}$ x100 = 18%

Operating Profit Ratio = Net Profit + Non-operating Exp. – Non-operating Incomes

= 2,40,000 + 14,000 - 20,000 = 2,32,000

(iii) Operating Ratio= $\frac{Operating\ Cost}{Sales}$ = $\frac{Rs.10,66,000}{Rs.13,00,000}$ x100=82%

Operating Cost = Cost of Good Sold + Other Operating Exp.

= 9,20,000 + 1,46,000 = 10,66,000

Cost of Good Sold = Opening Stock + Purchases + Carriage + Wages - Closing Stock

= 2,20,000 + 8,00,000 + 20,000 + 2,00,000 - 3,20,000 = 9,20,000

(iv) Administrative Expenses Ratio= $\frac{Administrative\ Expenses}{Net\ Sales}$ x100

= $\frac{Rs.1,20,000}{Rs.13,00,000}$ x 100 = 9.23%

(v) Selling & Distribution Exp. Ratio= $\frac{Selling\ and\ Distribution\ Expenses}{Net\ Sales}$ x100

= $\frac{Rs.20,000}{Rs.13,00,000}$ x 100 = 1.54%

(vi) Net Profit Ratio= $\frac{Net\ Profit}{Sales}$ x 100 = $\frac{Rs.2,40,000}{Rs.13,00,000}$ x 100 = 18.5%

(ब)**विनियोग पूँजी पर आधारित लाभदायकता अनुपात (Profitability Ratios Based on Capital Employed):-**

इस वर्ग में ज्ञात किये जाने वाले प्रमुख अनुपात निम्नांकित हैं :

(i) **विनियोजित पूँजी पर प्रत्याय (Return on Capital Employed or ROCE)**: यह अनुपात विनियोजित पूँजी तथा लाभों में सम्बन्ध स्पष्ट करता है इस अनुपात से व्यवसाय में लगाये गये कोषों के प्रबन्ध की कुशलता का माप किया जा सकता है।

सूत्र:Return on Capital Employed= $\frac{Net\ Profit\ before\ Interest\ and\ Tax}{Capital\ Employed}$ x100

अथवा

$= \frac{Net\ Profit after Interest and Tax}{Capital Employed}$ x100

विनियोजित पूँजी पर प्रत्याय को निम्न प्रकार भी प्रदर्शित किया जा सकता है।

Return on Capital Employed = Assets Turnover x Profit Margin on Sales

अथवा

$= \frac{Sales}{Total\ Assets} \times \frac{Operating\ Net\ Profit}{Sales}$

टिप्पणी :

(a) शुद्ध लाभ से आशय उस राशि से है जो विनियोजित पूँजी द्वारा अर्जित की जाती है अतः प्रत्याय दर की गणना के लिए ब्याज ('दीर्घकालीन ऋणों पर) व कर से पूर्व लाभों (PBIT) में (i) गैर व्यापारिक आय जैसे विनियोगों से आय, अनावर्तक एवं असामान्य लाभों को घटा देते हैं तथा गैर व्यापारिक व असामान्य हानियों को जोड़ देना चाहिए।

(b) विनियोजित पूँजी से आशय सकल विनियोजित पूँजी या कुल सम्पत्तियों अथवा शुद्ध विनियोजित पूँजी जो सम्पत्तियों व चालू दायित्वों के अन्तर से होती है। इसके लिए (i) गैर व्यापारिक विनियोगों (ii) निष्क्रिय सम्पत्तियाँ (ii) अमूर्त सम्पत्तियाँ जैसे - ख्याति, पेटेन्ट, ट्रेडमार्क आदि जिनका कोई मूल्य नहीं है। (iv) कृत्रिम सम्पत्तियाँ जैसे - प्रारम्भिक व्यय, अभिगोपन कमीशन, अंशों या ऋणपत्रों के निर्गमन पर बट्टा (v) असामान्य देनदार तथा सामान्य आवश्यकता से अधिक रोकड़ व बैंक शेष को छोड़ देना चाहिए।

(c) औसत विनियोजित पूँजी = $\frac{Capital\ Employed\ at\ the\ Begining + Capital\ Employed\ at\ the\ End}{2}$

अथवा

= वर्ष के अन्त की पूँजी - $\frac{1}{2}$ चालू वर्ष का लाभ

(ii) **स्वामित्व कोषों या समता पर प्रत्याय (Return on Proprietor's Fund or Equity)** :

सूत्र : Return on Shareholder's Fund= $\frac{Net\ Profit\ after\ Interest\ and\ Tax}{Proprietor's\ Funds}$ x100

अथवा

$= \frac{Net\ Profit after Interest and Tax}{Net Worth}$ x100

Proprietor's Funds = Equity Share Capital + Prederence Share Capital + Reserve and Surplus - Mis. Expenditures

(iii) **समता अंश पूँजी पर प्रत्याय (Return on Shareholder's Fund):** यह अनुपात बताता है कि चुकता अंश पूँजी पर अर्जन दर क्या रही है। इस आधार पर यह निर्णय लिया जा सकता हैं कि संस्था के नये अंशों में विनियोजन किया जावे या नहीं।

सूत्र : Return on Equity Capital= $\frac{Net\ Profit\ after\ Tax - Preference\ Dividend}{Paid\ Equity\ Share\ Capital}$ x100

(iv) **कुल सम्पत्तियों पर प्रत्याय (Return on Total Assets)** :-

यह अनुपात कुल सम्पत्तियों की लाभदायकता को प्रदर्शित करता है, यह इस बात को बताता है कि प्रबन्ध ने सम्पत्तियों को कितनी कुशलता से प्रयोग किया है।

सूत्र : Return on Total Assets= $\frac{Net\ Profit\ after\ Tax + Interest}{Total\ Assets\ excluding\ Fictitious\ Assets}$ x100

* कुल सम्पत्तियों से आशय शुद्ध स्थायी सम्पत्तियों, चालू सम्पत्तियों तथा गैर व्यापारिक विनियोगों से है। कृत्रिम सम्पत्तियों को निकाल दिया जाता है, तथा अमूर्त सम्पत्तियों (यदि इनका कोई वसूली मूल्य न हो)को निकाल दिया जाता है।

उदाहरण: 8

एक कम्पनी के विनियोग के सन्दर्भ में लाभदायकता मापन हेतु प्रयोग किये जाने वाले तीन प्रमुख विनियोग पर प्रत्याय अनुपातों की गणना कीजिए। इसके लिए नीचे सूचना दी गई है -

	Rs.
Net Worth (Shareholders Equity)	7,50,000
Preference Share Capital	2,00,000
Preference Share Dividend	16,000
Capital Employed	11,00,000
Intangible Assets	1,40,000
Total Assets	12,65,000
Net Profit after tax	1,50,000
Interest	23,500

Intangible assets have no realizable value.

हल.

(i) Return on Capital Employed= $\frac{Net\ Profit\ after\ Tax}{Capital\ Employed}$ x 100

= $\frac{Rs.1,50,000}{Rs.11,00,000}$ x 100 = 13.63%

(ii) Return on Equity Capital= $\frac{Net\ Profit\ after\ Tax - Preference\ Share\ Dividend}{Equity\ Shareholder\ Fund}$ x100

$$= \frac{Rs.1,50,000 - 16,000}{Rs.7,50,000} \times 100 = 17.87\%$$

(iii) Return on Total Assets= $\frac{Net\ Profit\ after\ Tax}{Total\ Assets}$ x100

$$= \frac{Rs.1,50,000}{Rs.11,25,000} \times 100 = 13.33\%$$

अथवा

$$= \frac{Net\ Profit\ after\ Tax - Interest}{Total\ Assets} \times 100$$

$$= \frac{Rs.1,50,000 - 23,000}{Rs.11,25,000} \times 100 = 15.42\%$$

Total Assets = Rs. 12,65,000 - Rs.1,40,000 (Intangible Assets) = Rs. 11,25,000

4.11 विनियोग विश्लेषण अनुपात (Investment Analysis Ratios)

इन अनुपातों की सहायता से अंशधारी अपने विनियोगों का कम्पनी में वर्तमान तथा भावी मूल्यों का विश्लेषण कर सकता है। इस श्रेणी में निम्नलिखित अनुपात आते हैं -

1. **प्रति अंश अर्जन (Earning Per Share - EPS)** :

व्यवसाय के लाभों में से ब्याज, कर व अधिमान अंशों पर लाभांश का भुगतान करने के पश्चात् जो शेष बचता है उस पर सामान्य अंशधारियों का अधिकार होता है। यह लाभ समता अंश पूँजी पर अर्जित लाभ कहलाता है।

यह अनुपात जितना अधिक होता है, व्यवसाय उतना ही कुशल माना जाता है तथा उतना ही बाजार में समता अंशों का मूल्य अधिक होता है।

सूत्र : Earning Per Share - EPS= $\frac{Net\ Profit\ after\ Tax - Pref.Dividend}{Number\ of\ Equity\ Shares}$

2. **मूल्य अर्जन अनुपात (Price Earning Ratio - P/E Ratio)** :

यह अनुपात यह दर्शाता है समता अंश का प्रति अंश बाजार मूल्य अर्जनों का कितने गुना है। ऊँचा मूल्य अर्जन अनुपात अंशों के अति मूल्यांकन तथा नीचा अनुपात न्यून मूल्यांकन का प्रतीक माना जाता है।

सूत्र : Price Earning Ratio= $\frac{Market\ Price\ Per\ Share}{Earning\ Per\ Share}$

3. **प्रति अंश लाभांश (Dividend Per Share - DPS)** :

अर्जनों का कुछ भाग संस्था में रोक लिया जाता है तथा शेष राशि ही लाभांश के रूप में वितरित की जाती है। अत: प्रति अंश लाभांश अनुपात प्रति अंश के आधार पर

अंशधारियों को भुगतान की गई राशि है। अधिक आय चाहने वाले विनियोजक ऊँचे प्रति अंश लाभांश वाले अंशों में विनियोग करना चाहते हैं।

सूत्र: Dividend Per Share= $\frac{Dividend\ paid\ to\ Equity\ Shareholder}{No.of\ Equity\ Share\ Outstanding}$

4. **लाभांश भुगतान अनुपात (Dividend Payout Ratio - D / P Ratio)** :

   यह अनुपात यह दर्शाता है कि संस्था में प्रति अंश कितना लाभ कमाया जाता है तथा कितना वास्तव में लाभांश के रूप में भुगतान किया जा रहा है।

   सूत्र : Payout Ratio= $\frac{Dividend\ per\ Share}{Earning\ per\ Share}$ x100

5. **लाभांश प्रतिफल अनुपात (Dividend Yield Ratio - D/Y Ratio)** :

   यह अनुपात अंशधारियों को अंशों के बाजार मूल्य के आधार पर लाभांश के रूप में प्रत्याय अर्थात् उनके विनियोग पर वास्तविक प्रत्याय दर दर्शाता है।

   प्रति अंश अर्जन तथा प्रति अंश लाभांश का निर्धारण तो पुस्तक मूल्य पर करते है जबकि लाभांश प्रतिफल अनुपात को बाजार मूल्य के सन्दर्भ में व्यक्त करते हैं।

   सूत्र:Dividend Yield Ratio= $\frac{Dividend\ per\ Share}{Market\ Price\ per\ Share}$ x100

6. **संचयों और समता अंश पूँजी का अनुपात (Reserve to Equity Capital Ratio)** :

   यह अनुपात संस्था की लाभ वितरण नीति को स्पष्ट करता है। यह अनुपात जितना ज्यादा होगा, संस्था की लाभांश नीति उतनी ही रूढ़िवादी मानी जायेगी तथा संस्था की वित्तीय स्थिति उतनी ही सुदृढ़ मानी जाती है एवं समता अंशों का पुस्तक मूल्य उतना ही अधिक होगा।

   सूत्र :Reserve to Equity Capital Ratio= $\frac{Reserves}{Equity Share Capital}$

उदाहरण : 9

श्री लिमिटेड की पूँजी इस प्रकार है :

	Rs.
8% 20,000 अधिमान अंश 10 रू. प्रति अंश	2,00,000
90,000 समता अंश 10 रू. प्रति अंश	9,00,000
	11,00,000

कम्पनी की पुस्तकों से निम्नलिखित अतिरिक्त सूचना और प्राप्त की गई।

कर के पश्चात् लाभ 2,86,000 रू.; ह्रास 55,000 रू.; समता अंशों पर लाभांश चुकाया 20% समता अंश का बाजार मूल्य 40 रू.

गणना कीजिए-

(i) समता अंशों पर लाभांश प्राप्ति अनुपात

(ii) प्रति अंश अर्जन

(iii) मूल्य अर्जन अनुपात

(iv) लाभांश भुगतान अनुपात

हल

(i) Dividend Yield on Equity Shares= $\frac{Dividend\ per\ Share}{Market\ Price\ per\ Share}$ x100

$= \frac{2(20\%\ of\ Rs.10)}{Rs.40}$ x 100 = 5%

(ii) Earning Per Equity Share= $\frac{Net\ Profit\ after\ tax - Pref.\ Dividend}{Number\ of\ Equity\ Shares}$

$= \frac{2,86,000 - 16,000}{90,000}$ = Rs.3.00

(iii) Price Earning Ratio= $\frac{Market\ Price\ Per\ Share}{Earning\ Per\ Share} = \frac{Rs.40}{Rs.3}$ = 13.33: 1

(iv) Dividend Yield Ratio= $\frac{Dividend\ Per\ Share}{Earning\ Per\ Share} = \frac{2}{3}$ x 100 = 66.67%

4.12 अनुपातों की सहायता से अज्ञात राशियों की गणना (Calculation of Missing Figures From Ratios)

दी हुई सूचनाओं एवं अनुपातों के आधार पर कुछ राशियाँ ज्ञात की जाती है। तत्पश्चात् सम्बन्धित अनुपात का सूत्र लिखकर उसमें ज्ञात राशि रखकर अज्ञात राशि की गणना समीकरण के आधार पर ज्ञात कर सकते है।

उदाहरण : 10

माहेश्वरी लिमिटेड के वित्तीय विवरणों से निम्नलिखित सूचना प्राप्त हुई -

चालू सम्पत्तियों का चालू दायित्वों से अनुपात	1.75 : 1
तरलता अनुपात (देनदार एवं बैंक शेष का चालू दायित्वों से)	1.25 : 1
कार्यशील पूँजी	1,21,200 रू.

ज्ञात कीजिए -

(i) चालू सम्पत्तियाँ

(ii) चालू दायित्व

(iii) तरल सम्पत्तियाँ

(iv) स्टॉक

हल

(i) तथा (ii) चालू सम्पत्तियों एवं चालू दायित्वों का निर्धारण

Current Assets - Current Liabilities = Working Capital

अथवा

CA - CL = 1,21,200 ....(i)

Current Ratio = $\frac{Current\ Assets}{Current\ Liabilities} = \frac{1.75}{1}$

Or Current Assets = 1.75 Current Liabilities (तिरछा गुणा)

Or CA = 1.75 CL = 0 ....(ii)

समीकरण (i) में से समीकरण (ii) को घटाने पर

0.75 CL = Rs. 1,21,200

∴ Current Liabilities= $\frac{Rs. 1,21,200}{0.75}$ = Rs. 1,61,600

Current Assets = Current Liabilities + Working Capital

= Rs. 1,61,600 + Rs. 1,21,200 = Rs. 2,82,800

(iii) तथा (iv) तरल सम्पत्तियों एवं स्टॉक का निर्धारण

Liquid Ratio= $\frac{Liquid\ Assets}{Current\ Liabilities} = \frac{Liquid\ Assets}{1,61,600} = \frac{1.25}{1}$

∴ Liquid Assets = Rs. 1,61,600 x 1.25 = Rs. 2,02,000

Current Assets = Liquid Assets + Stock

∴ Stock = Current Assets - Liquid Assets

=Rs. 2,82,800 - Rs. 2,02,000 = Rs. 80,800

4.13 अनुपातों की सहायता से वित्तीय विवरण तैयार करना (Preparation of Financial Statement from Ratio)

विभिन्न वित्तीय अनुपातों की सहायता से वित्तीय मदों की गणना कर लाभ-हानि खाता एवं स्थिति विवरण तैयार किया जा सकता है।

उदाहरण : 11

निम्नलिखित सूचनाओं की सहायता से तैयार कीजिए -

(i) व्यापार खाता

(ii) लाभ हानि खाता

(iii) चिट्ठा खाता

सकल लाभ अनुपात (Gross Profit Ratio)	25%
शुद्ध लाभ अनुपात (Net Profit Ratio)	20%
विक्रय / स्कन्ध अनुपात (Sales / Turnover Ratio)	8 : 1
स्थाई सम्पत्तियाँ / कुल चालू सम्पत्तियाँ अनुपात (Fixed Assets / Total Current Assets Ratio)	3 : 4
शोधन क्षमता अनुपात (Solvency Ratio)	5 : 7
स्थायी सम्पत्तियाँ (Fixed Assets) 1	5,00,000 रू.
अन्तिम स्कन्ध (Closing Stock)	2,00,000 रू.

हल.

Trading and Profit Loss Account

	Rs.		Rs.
To Purchases (Balancing Figure)	14,00,000	By Sales	16,00,000
To Gross Profit c/d	4,00,000	By Closing Stock	2,00,000
	18,00,00,000		**18,00,000**
To Expenses (Balance Figure)	80,000	By Gross Profit b/d	4,00,000
To Net Profit	3,20,000		
	4,00,000		**4,00,000**

Balance Sheet

Liabilities	Rs.	Assets	Rs.
Capital (Balancing Figure)	6,80,000	Fixed Assets	15,00,000
Profit for the year	3,20,000	Current Assets :	
Total outside Liabilities	25,00,000	Stock	2,00,000
		Other Current	
		Assets18,00,000	20,00,000
	35,00,000		**35,00,000**

कार्यशील टिप्पणियाँ :

(1) Sales / Inventory Ratio= $\frac{Sales}{Inventory} = \frac{Sales}{20,000} = \frac{8}{1}$

Sales = 2,00,000 × 8 = 16,00,000

(2) Gross Profit Ratio= $\frac{Gross\ Profit}{Sales}$ x100= $\frac{Gross\ Profit}{16,00,000}$ ×100=25%

Gross Profit = 4,00,000

(3) Net Profit Ratio= $\frac{Net\ Profit}{Sales}$ ×100= $\frac{Net\ Profit}{16,00,000}$ × 100 = 20%

Net Profit = 3,20,000

(4) Fixed Assets/Total Current Assets= $\frac{Fixed\ Assets}{Total\ Current\ Assets} = \frac{Rs.15,00,000}{Total\ Current\ Assets} = \frac{3}{4}$

Total Current Assets = 15,00,000 x $\frac{4}{3}$ = Rs. 20,00,000

Other Current Assets = Total Current Assets - Stock

=Rs. 20,00,000 - 2,00,000 = 18,00,000

(5) Solvency Ratio= $\frac{Total\ Outside\ Liabilities}{Total\ Assets} = \frac{Total\ Outside\ Liabilities}{Rs.35,00,000} = \frac{5}{7}$

Total Outside Liabilities = 35,00,000 x $\frac{5}{7}$ = Rs. 25,00,000

4.14 सारांश (Summary):

अनुपात विश्लेषण द्वारा वित्तीय विवरण की सूचनाओं को सरलीकृत, संक्षिप्त तथा व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत किया जाता है। वित्तीय लेखों के समंकों पर आधारित अनुपात व्यवसाय की वित्तीय स्थिति पर प्रकाश डालते हैं। सामान्यत: अनुपातों को शुद्ध अनुपात के रूप में, दर के रूप में या प्रतिशत के रूप में व्यक्त किया जाता है। अनुपात विश्लेषण के द्वारा संस्था की तरलता स्थिति की जानकारी, दीर्घकालीन शोधन क्षमता का माप, लागत, विक्रय, लाभ आदि तथ्यों की प्रवृत्ति का विश्लेषण, कुशलता का मापन, अन्त: फर्म तुलना, लाभदायकता का मापन किया जा सकता है। अनुपात विश्लेषण की सीमाओं में एक अकेले अनुपात का सीमित महत्व, गुणात्मक विश्लेषण का अभाव, ऊपरी दिखावों से प्रभावित, निर्णय का स्थानापन्न नहीं, आदर्श अनुपातों का अभाव, विश्लेषक की व्यक्तिगत योग्यता का प्रभाव एवं केवल सापेक्षिक स्थिति का प्रदर्शन को शामिल किया जाता है। अनुपात का प्रयोग करने वाले व्यक्ति को लेखा अवधारणाओं एवं समंकों को समझने की योग्यता होनी चाहिए। लाभ इसमें लगने वाली लागतों से अधिक हो, लेखा अनुपातों का शीघ्र संकलन हो, अनुपातों का प्रस्तुतीकरण उपयोगकर्ताओं की आवश्यकताओं एवं प्राथमिकताओं के अनुसार हो तथा आवश्यकतानुसार उनमें परिवर्तन किया जाना चाहिए।

अनुपातों का वर्गीकरण संरचनात्मक अथवा कार्यात्मक आधार पर किया जा सकता है। संरचनात्मक वर्गीकरण के अन्तर्गत स्थिति विवरण अनुपात, लाभ-हानि खाता अनुपात तथा अन्त: विवरण अनुपात को शामिल किया जाता है। कार्यात्मक वर्गीकरण के अन्तर्गत तरलता अनुपात, पूँजी संरचना अनुपात, क्रियाशीलता अनुपात, लाभदायकता अनुपात तथा विनियोग विश्लेषण अनुपात शामिल किए जाते है।

4.15 शब्दावली (Glossary):

अनुपात (Ratio) : वित्तीय विवरणों से प्राप्त संख्याओं के सम्बन्ध को अंकगणितीय रूप में प्रदर्शित करने का साधन।

अनुपात विश्लेषण (Ratio Analysis) : विवरणों की मदों एवं मदों के समूह में सम्बन्ध निर्धारण एवं प्रस्तुतीकरण की प्रक्रिया है।

स्थिति विवरण अनुपात (Balance Sheet Ratio) : चिट्ठे में दी गई मदों या दो मदों के समूह के बीच ज्ञात अनुपात ।

लाभ-हानि खाते अनुपात (Profit-Loss Ratio) : लाभ-हानि खाते की दो मदों या दो मदों के समूह के बीच के अनुपात।

अन्तःविवरण अनुपात (Inter-Statement Ratio) : ऐसे अनुपात जिनकी एक मद चिट्टे से तथा दूसरी मद लाभ-हानि खाते से ली जाती है।

कार्यात्मक वर्गीकरण अनुपात (Functional Ratio) : इसमें अनुपातों का वर्गीकरण वित्तीय विवरणों में रूचि रखने वाले पक्षकारों की आवश्यकतानुसार किया जाता है।

तरलता अनुपात (Liquidity Ratio) : जो संस्था की अल्पकालीन शोधन क्षमता का मापन करते है।

पूँजी संरचना अनुपात (Capital Structure Ratio) : दीर्धकालीन शोधन क्षमता अनुपात जो स्वामियों तथा ऋणदाताओं द्वारा उपलब्ध कराये गए कोषों की स्थिति स्पष्ट करते हैं।

क्रियाशीलता अनुपात (Activity Ratio) : जो पूँजी या सम्पत्तियों के उपयोग की प्रभावशीलता का मापन करते है।

लाभदायकता अनुपात (Profitability Ratio) : बिक्री या विनियोग के सम्बन्ध में लाभ अर्जन योग्यता का माप।

विनियोग विश्लेषण अनुपात (Investment Analysis Ratio) : अंशधारियों द्वारा विनियोगों के भावी बाजार मूल्य का पता लगाने हेतु ज्ञात किए जाने वाले अनुपात।

4.16 स्वपरख प्रश्न (Self Assessment Questions) :

1. वित्तीय अनुपात से क्या तात्पर्य है? अनुपात विश्लेषण के उद्देश्य एवं महत्व को समझाइए।
2. अनुपात विश्लेषण की सीमाओं का वर्णन करते हुए अनुपातों के प्रयोग की सावधानियों को बताइये।
3. विनियोग विश्लेषण एवं लाभदायकता अनुपातों को काल्पनिक उदाहरण की सहायता से समझाइये।
4. निम्नांकित अनुपातों को उदाहरण सहित समझाइए -
   (i) चालू अनुपात (Current Ratio)
   (ii) पूँजी दंतिकरण अनुपात (Capital Gearing Ratio)
   (iii) परिचालन अनुपात (Operating Ratio)
   (iv) स्कन्ध आवर्त अनुपात (Stock Turnover Ratio)

4.17 आंकिक प्रश्न (Numerical Questions)

1. 31 मार्च 2008 को गोपाल लिमिटेड के निम्नांकित विवरण दिए गए है:-

Balance Sheet

Liabilities	**Rs.**	**Assets**	**Rs.**
50,000 Equity share of		Land & Building	35,000
Rs.10 each	50,000	Plant & Machinery	25,000
General Reserve	30,000	Stock	20,000
Profit & Loss a/c	20,000	Debtors	30,000
Sundry Creditors	20,000	Cash at Bank	10,000
	1,20,000		**1,20,000**

Trading and Profit Loss Account

Particulars	**Rs.**	**Particulars**	**Rs.**
To Opening Stock	10,000	By Sales (Credit)	1,60,000
To Purchases (Credit)	80,000	By Closing Stock	20,000
To Gross Profit c/d	90,000		
	1,80,000		**1,80,000**
	Rs.		**Rs.**
To Administrative Expenses	20,000	By Gross Profit b/d	90,000
To Selling Expenses	10,000	By Profit on sale of	
To Other Expenses	2,500	fixed assets	2,500
To Net Profit	60,000		
	92,500		**92,500**

निम्नांकित अनुपातों की गणना कीजिए -

(i) चालू अनुपात (Current Ratio);

(ii) तरल अनुपात (Liquid Ratio);

(iii) परिचालन अनुपात (Operating Ratio);

(iv) स्कन्ध आवर्त अनुपात (Stock Turnover Ratio);

(v) कुल सम्पत्तियों पर प्रत्याय (Return on Total Assets);

(vi) स्वामियों के कोषों पर प्रत्याय (Return on Owner's Assets);

(vii) देनदार वसूली अवधि (Debtors Collection Period);

(viii) लेनदार भुगतना अवधि (Creditors Payment Period);

2. 31 मार्च 2008 को दीपिका लिमिटेड का स्थिति विवरण निम्न प्रकार है :-

Balance Sheet

Liabilities	**Rs.**	**Assets Rs.**	
Equity share Capital	50,000	Fixed Assets 1,80,000	
10% Preference Shares	10,000	Less : Provision	
Reserves	40,000	for depreciation **50,000**	1,30,000
10% Mortgage debentures	70,000	Stock	30,000

Provision for Taxation	13,000	Sundry Debtors	20,000
Outstanding Expenses	1,000	Investments	15,000
Bills Payable	10,000	(10% Govt. Securities)	
Creditors	6,000	Cash	5,000
	2,00,000		**2,00,000**

अतिरिक्त सूचना :

(i) Net Sales Rs. 3,00,000

(ii) Cost of Goods Sold Rs. 2,58,000

(iii) Net Income before tax Rs. 20,000

(iv) Net Income after tax Rs. 10,000

निम्नांकित अनुपातों की गणना कीजिए -

(i) चालू अनुपात (Current Ratio);

(ii) ऋणसमता अनुपात (Debt-Equity Ratio);

(iii) स्वामित्व अनुपात (Proprietary Ratio);

(iv) ऋण सेवा अनुपात (Debt Service Ratio);

(v) सकल लाभ अनुपात (Gross Profit Ratio);

(vi) परिचालन शुद्ध लाभ अनुपात (Operating Net Profit Ratio);

(vii) परिचालन अनुपात (Operating Ratio);

(viii) विनियोजित पूँजी पर प्रत्याय (Return on Capital Employed);

(ix) औसत वसूली अवधि (Average Collection Period);

(x) कार्यशील पूँजी टर्नओवर अनुपात (Working Capital Turnover Ratio);

(xi) पूँजी दंतिकरण अनुपात (Capital Gearing Ratio);

3. एक कम्पनी के वर्ष 2008 से सम्बन्धित निम्न सूचनाएँ हैं:

कर पूर्व लाभ (Profit before tax) Rs. 25,00,000, कर दर (Tax Rate) 50% समता अंशों पर प्रस्तावित लाभांश (Proposed Dividend on Equity Shares) 25% समता अंश रू. 20,00,000 (प्रति अंश 10 रू.), पूर्वाधिकार अंश रू. 10,00,000 रू.

समता अंशों के लिए गणना कीजिए -

(i) प्रति अंश अर्जन (Earning per Share)

(ii) मूल्य अर्जन अनुपात (Price Earning Ratio)

(iii) प्रति अंश लाभांश (Dividend Per Share)

(iv) लाभांश भुगतान अनुपात (Dividend Payout Ratio)

(v) लाभांश प्रतिफल अनुपात (Dividend Yield Ratio)

4. कमला लिमिटेड की व्यापारिक गतिविधियों से सम्बन्धित अनुपात निम्नांकित हैं -

देनदार आवर्त (Debtors Velocity) 3 माह

स्टॉक आवर्त (Stock Velocity) 8 माह

लेनदार आवर्त (Creditors Velocity) 2 माह

सकल लाभ अनुपात (Gross Profit Ratio) 25%

मार्च 31, 2008 को समाप्त वर्ष का सकल लाभ 40,00,000 रू., प्राप्य विपत्र 25,000 रू, देय विपत्र 10,000 रू. के थे। वर्ष का अन्तिम स्टॉक प्रारम्भिक स्टॉक से 10,000 रू. अधिक था।

ज्ञात कीजिए - (i) विक्रय (ii) विविध देनदार (iii) अन्तिम स्टॉक (iv) विविध लेनदार।

5. निम्नांकित सूचनाओं से 31 मार्च 2008 को संक्षिप्त चिट्ठा तैयार कीजिए

1.	कार्यशील पूँजी	12,00,000 रू.
2.	संचय एवं अतिरेक	8,00,000 रू.
3.	बैंक अधिविकर्ष	2,00,000 रू.
4.	स्थाई सम्पत्ति : स्वामित्व अनुपात	Rs. 0.75
5.	चालू अनुपात	Rs. 2.5
6.	तरलता अनुपात	Rs. 1.5

4.18 उपयोगी पुस्तकें (Further Readings):

1. जे. के. अग्रवाल एवं आर. के. अग्रवाल, **प्रबन्धकीय लेखांकन,** रमेश बुक डिपो, जयपुर।
2. एम. आर. अग्रवाल, **प्रबंध लेखांकन,** मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर।
3. Maheswari, S.N., **Financial Management,** Sultan Chand & Sons, New Delhi.
4. एस. पी. गुप्ता, **प्रबन्धकीय लेखाविधि,** साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।

इकाई-5 : कोष प्रवाह विश्लेषण (Funds Flow Analysis)

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य
5.1 परिचय
5.2 कोष प्रवाह विवरण की परिभाषा
5.3 कोष का अर्थ
5.4 कोष 'प्रवाह' का अर्थ
5.5 कोष के साधन एवं उपयोग
5.6 कोष प्रवाह विवरण बनाने की तकनीक
5.7 कार्यशील पूँजी के परिवर्तन का विवरण या अनुसूची
5.8 कोष प्रवाह विवरण
5.9 कोष प्रवाह विवरण से सम्बन्धित महत्वपूर्ण समायोजन
5.10 कोष प्रवाह विवरण का महत्व
5.11 कोष प्रवाह विवरण की सीमाएँ
5.12 सारांश
5.13 शब्दावली
5.14 स्वपरख प्रश्न
5.15 आंकिक प्रश्न
5.16 उपयोगी पुस्तकें

5.0 उद्देश्य (Objectives):

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

- कोष, कोष 'प्रवाह' तथा 'कोष प्रवाह विवरण, का अर्थ समझ सकें।
- कोषों के साधन व उपयोग की जानकारी प्राप्त कर सकें।
- कोष प्रवाह विवरण बनाने की तकनीक जान सकें।
- कोष प्रवाह विवरण महत्त्वपूर्ण समायोजन सहित तैयार करना सीख सकें।
- कोष प्रवाह विवरण का महत्व एवं सीमाएँ जान सकें।

5.1 परिचय (Introduction):

लाभ हानि खाता किसी व्यावसायिक संस्था के निश्चित अवधि में हुए लाभ या हानि को प्रकट करता हैं जबकि चिट्ठा एक निश्चित तिथि को उस व्यावसायिक संस्था की पूँजी, दायित्वों एवं सम्पत्तियों की स्थिति को प्रकट करता है। इन दोनों विवरण पत्रों से व्यवसाय की वित्तीय सुद्दढ़ता एवं कार्यक्षमता सम्बन्धी सूचनाएँ प्राप्त हो जाती है किन्तु भावी प्रबन्धकीय निर्णयों हेतु यह सूचना उपलब्ध नहीं हो पाती हैं कि उस

लेखांकन अवधि में किन-किन स्त्रोतों से कोष उपलब्ध हुआ तथा इन कोषों का उपयोग किन उद्देश्यों हेतु किया गया। अतएव कोषों के विभिन्न स्त्रोतो एवं उपयोग की जानकारी देने हेतु एक अतिरिक्त विवरण बनाया जाता हैं जिसे कोष प्रवाह विवरण (Fund Flow Statement) कहते है। मार्च 1997 से लेखांकन मानक-3 (संशोधित) जारी होने के उपरांत कोषों की कार्यशील पूँजी अवधारणा के स्थान पर रोकड़ व रोकड़ तुल्य सम्पत्तियाँ अपनाने से कोष प्रवाह विवरण अब मात्र अकादमिक चर्चा का ही विषय रह गया है।

5.2 कोष प्रवाह विवरण की परिभाषा (Definition of Fund Flow Statement):

स्मिथ व ब्राउन के अनुसार, ''कोष प्रवाह विवरण सारांश रूप में तैयार किया गया एक विवरण हैं, जो दो विभिन्न तिथियों पर बनाये गये चिट्ठों के समयान्तर में वित्तीय दशाओं में हुए परिवर्तन (एवं प्रवृत्तियों यदि नियमित रूप से तैयार किया गया हो) का ज्ञान कराता हैं।

आर. एन. एन्थोनी के मतानुसार, ''कोष प्रवाह विवरण उन साधनों का, जिनसे अतिरिक्त धन प्राप्त हुआ तथा उपयोगों को जिनमें इस धन को प्रयुक्त किया गया हैं, को वर्णित करता है।

कोष प्रवाह विश्लेषण को समझने से पूर्व अब हम इसमें प्रयुक्त दो शब्दों कोष (Funds) तथा प्रवाह (Flow) को समझेंगे।

5.3 कोष का अर्थ (Meaning of Funds):

यद्यपि कोष शब्द को विभिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयुक्त किया हैं किन्तु यहाँ हम तीन प्रचलित अर्थों का अध्ययन करेंगे:

(क) **रोकड कोष**:- यहाँ कोष का अर्थ रोकड़ से माना जाता है। इसमें रोकड़ प्रवाह विवरण रोकड़ प्राप्तियों एवं भुगतानों के संदर्भ में तैयार किया जाता है। व्यवसाय में अनेक व्यवहार ऐसे होते हैं जिनसे रोकड़ कोष प्रभावित नहीं होता किन्तु कोष प्रवाह का कारण बनते हैं अत: इसे कोष के रूप में मानना उपयुक्त नहीं होगा।

(ख) **पूँजी कोष**:- सभी वित्तीय संसाधन कोष के अन्तर्गत शामिल किये जाते हैं। इनमें रोकड़ तथा गैर रोकड़ कोष को शामिल करते हैं।

(ग) **कार्यशील पूँजी कोष**:- कार्यशील पूँजी चालू सम्पत्तियों का चालू दायित्वों पर आधिक्य है। कोष का यह अर्थ सर्वाधिक स्वीकार्य है क्योंकि इसमें रोकड़ के साथ-साथ निकट भविष्य में रोकड़ में परिवर्तनीय सम्पत्तियों एवं अन्य दावों को कोष के अन्तर्गत शामिल किया जाता है।

5.4 कोष 'प्रवाह' का अर्थ (Meaning of Flow of Fund):

किसी लेन-देन के परिणामस्वरूप कोष में हुआ परिवर्तन 'कोष प्रवाह' कहलाता है। कोष का अर्थ यहाँ कार्यशील पूँजी मानने से कोष प्रवाह का अर्थ कार्यशील पूँजी में परिवर्तन से लिया जाता है। लेन-देन के परिणामस्वरूप कार्यशील पूँजी में वृद्धि को कोषों का स्त्रोत तथा कार्यशील पूँजी में कमी को कोषों का उपयोग माना जाता है।

कोष प्रवाह की पहचान हेतु चिट्ठे की मदों को दो भागों चालू (Current) तथा गैर चालू (Non-Current) बाँटा जाता है। इसें निम्नानुसार समझेंगे :-

चिट्ठा (Balance Sheet)

दायित्व (Liabilities)	राशि (Amount)	सम्पत्तियाँ (Assets)	राशि (Amount)
गैर-चालू लेखे		**गैर-चालू लेखे**	
(Non-current Accounts) :		**(Non-current Accounts):**	
समता अंश पूँजी		ख्याति (Goodwill)	
(Equity Share Capital)		भूमि व भवन (Land & Buildings)	
अधिमान अंश पूँजी		प्लाण्ट एवं मशीनरी	
(Preference share capital)		(Plant & Machinery)	
सामान्य संचय (General Reserve)		फर्नीचर एवं फिक्चर्स	
प्रतिभूति प्रीमियम (Securities Premium)		(Furniture & Fixtures)	
पूँजीगत संचय (Capital Reserve)		मोटर-वाहन (Motor-Vehicles)	
पूँजी शोधन संचय		दीर्घकालीन विनियोग	
(Capital Redemption Reserve)		(Long term Investments)	
लाभ-हानि खाता-लाभ		व्यापारिक चिन्ह (Trade Mark)	
(Profit and Loss A/c-Profit)		एकस्व (Patent)	
ऋणपत्र (Debentures)		प्रारंभिक व्यय	
दीर्घकालीन ऋण (Long terms Loans)		(Preliminary Expenses)	
		लाभ-हानि खाता-हानि	
ह्रास के लिये आयोजन		(Profit & Loss A/c - Loss)	
(Provision for Depreciation)		अंशों एवं ऋणपत्रों के निर्गमन पर बट्टा	
आयकर हेतु आयोजन		(Discount on issue of Shares	
(Provision for Taxation)		& Debentures)	
प्रस्तावित लाभांश		अभिगोपन कमीशन	
(Proposed Dividend)		(Underwriting commission)	
चालू लेखे (Current Accounts)		चालू लेखे (Current Accounts)	
लेनदार (Creditors)		स्टॉक (Stock)	
देय विपत्र (Bills Payable)		अल्पकालीन विनियोग	

		(Short-term Investments)	
बैंक अधिविकर्ष (Bank Overdraft)		अल्पकालीन ऋण एवं अग्रिम (Short term Loans & Advances)	
अल्पकालीन ऋण एवं जमा (Short term Loans & Deposits)		प्राप्त विपत्र (Bills Receivables)	
		देनदार (Debtors)	
अदत्त व्यय (Outstanding Expenses)		पूर्वदत्त व्यय (Prepaid Expenses)	
		अर्जित आय (Accrued Incomes)	
चालू सम्पत्तियों हेतु आयोजन (Provision for current Assets)		अग्रिम कर (Advance Tax)	
अनुपार्जित आय (Unearned Income)		रोकड हस्तस्थ एवं बैंक (Cash in hand and at Bank)	
देय आयकर (Income Tax Payable)			
न माँगा गया लाभांश (Unclaimed Dividend)			

टिप्पणी :- आयकर हेतु आयोजन तथा प्रस्तावित लाभांश को चालू दायित्व भी मान सकते है। किसी भी लेनदेन से यदि दो भिन्न वर्गो के खाते अर्थात् एक गैर-चालू दायित्व या सम्पत्ति खाता तथा दूसरा चालू दायित्व या सम्पत्ति खाता प्रभावित हो तभी कोष प्रवाह होगा। दोनों खाते एक ही श्रेणी के होने पर कोष प्रवाह नहीं होता है। इसे हम निम्नांकित चित्र के माध्यम से समझ सकते है:-

कोष प्रवाह

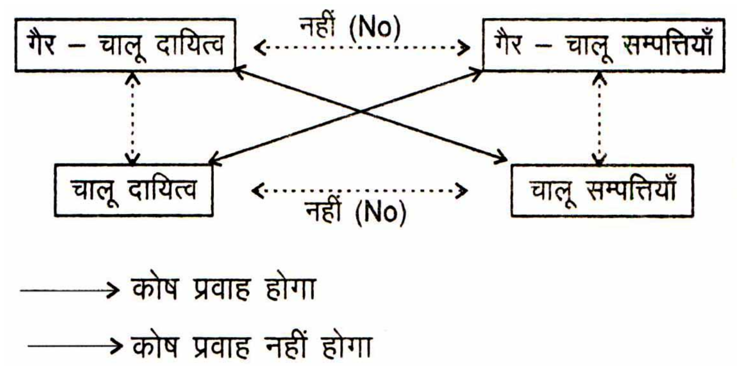

कोष प्रवाह होगा	**कोष प्रवाह नहीं होगा**
1. चालू व गैर सम्पत्ति के मध्य व्यवहार	1. चालू सम्पत्ति व चालू दायित्व के मध्य व्यवहार
2. चालू व गैर चालू दायित्व के मध्य व्यवहार	2. गैर चालू सम्पत्ति व गैर चालू दायित्व के मध्य व्यवहार
3. चालू दायित्व व गैर चालू सम्पत्ति के मध्य व्यवहार	3. एक चालू सम्पत्ति व दूसरी चालू सम्पत्ति में व्यवहार

4. गैर चालू दायित्व व चालू सम्पत्ति के मध्य व्यवहार	4. एक चालू दायित्व व दूसरे चालू सम्पत्ति में व्यवहार
5. व्यवसायिक क्रियाओं के परिणामस्वरूप क्रियाशील लाभ / हानि के कारण	5. एक गैर चालू सम्पत्ति व दूसरी गैर चालू सम्पत्ति में व्यवहार
6. गैर व्यावसायिक प्राप्तियों / आयों तथा भुगतान / खर्चो के परिणामस्वरूप	6. एक गैर चालू दायित्व व दूसरे गैर चालू दायित्व में व्यवहार

5.5 कोष के साधन एवं उपयोग (Sources and Uses of Funds):

कोष का अर्थ शुद्व कार्यशील पूँजी मानने से ऐसी मदें जो शुद्व कार्यशील पूँजी में वृद्धि करती हैं, कोष का 'स्त्रोंत' तथा कमी करती हैं कोष का 'उपयोग' मानी जाती हें। समीकरण रूप में इसे निम्नानुसार प्रदर्शित करेंगे :

कुल साधन = कुल उपयोग

अथवा

पूँजी व दायित्वो में वृद्धि + सम्पत्तियों में कमी = पूँजी व दायित्वो में कमी + सम्पत्तियों में वृद्धि

कोष के साधन (Sources of Funds)	**कोष के उपयोग (Uses of Funds)**
1. परिचालन से लाभ	1. परिचालन से हानि
2. अंशों का निर्गमन	2. अधिमान अंशों का शोधन
3. ऋणपत्रों का निर्गमन	3. ऋणपत्रों का शोधन
4. दीर्घकालीन ऋण	4. दीर्घकालीन ऋणों का भुगतान
5. स्थाई सम्पत्तियों की बिक्री	5. स्थाई सम्पत्ति क्रय
6. गैर व्यापारिक प्राप्तियाँ	6. गैर व्यापारिक भुगतान
(लाभांश, दान, उपहार, मुकदमें में प्राप्त हर्जाना)	(दान, गबन, मुकदमा हारने पर हर्जाना आदि)

5.6 कोष प्रवाह विवरण बनाने की तकनीक (Technique of Preparing Funds Flow Statement):

चालू खातों एवं गैर-चालू खातों में होने वाले सभी परिवर्तनों एवं इनके कारणों पर प्रकाश डालने की दृष्टि से चालू खातों में होने वाले परिवर्तनों को 'कार्यशील पूँजी में परिवर्तनों का विवरण (Statement of changes in Working Capital) तथा गैर-चालू खातों में होने वाले परिवर्तनों को कोष प्रवाह विवरण (Funds Flow

Statement) में दिखाया जाता है। इस हेतु निम्नांकित दो विवरण तैयार किए जाते हैं:-

1. कार्यशील पूँजी में परिवर्तन का विवरण या अनुसूची एवं (Statement or Schedule of Changes in Working Capital)
2. कोष प्रवाह विवरण (Funds Flow Statement)

5.7 कार्यशील पूँजी में परिवर्तन का विवरण या अनुसूची (Statement or Schedule of Changes in Working Capital)

कार्यशील पूँजी में परिवर्तन का विवरण दो अवधियों के मध्य कार्यशील पूँजी में कमी या वृद्धि को प्रकट करता है। चालू सम्पत्तियों में वृद्धि तथा चालू दायित्वों में कमी से कार्यशील पूँजी में वृद्धि होती है अत: यह कोषों का उपयोग प्रकट करती है। चालू सम्पत्तियों में कमी तथा चालू दायित्वों में वृद्धि से कार्यशील पूँजी में कमी होती हैं जो कोषों के स्त्रोत को दर्शाती है।

कार्यशील पूँजी में परिवर्तन का विवरण इस प्रकार दिया जा रहा है:-

Statement or Schedule of Changes in Working Capital

Items	Previous Year Rs.	Current Year Rs.	Effect on Woking Capital	
			Increase Rs.	Decrease Rs.
(A)Current Assets:				
Stock	—	—		
Short term Investment	—	—		
Short term Loans & Advances	—	—		
Debtors	—	—		
Bills Receivables	—	—		
Prepaid Expenses	—	—		
Accrued Icome	—	—		
Advance Tax	—	—		
Cash at Bank	—	—		
Cash in hand	—	—		
Total (A)	—	—		

(B) Current Liabilities:				
Creditors	—	—		
Bills Payable	—	—		
Short term Loans	—	—		
Bank Overdraft	—	—		
Provision for current Assets	—	—		
Outstanding Expenses	—	—		
Unaccrued Income	—	—		
Income Tax Payable	—	—		
Unclaimed Dividend	—	—		
Total (B)	—	—		
Net working capital (A-B)	—	—		
Increase/Decrease in working capital	—	—		–

नोट :

1. कर हेतु आयोजन तथा प्रस्तावित लाभांश को उपरोक्त तालिका में तनी दिखाया जायेगा जबकि इन्हें चालू दायित्व माना गया हो।
2. चालू सम्पत्तियों एवं चालू दायित्वों से सम्बन्धित अतिरिक्त सूचनाओं पर ध्यान नहीं दिया जायेगा बशर्ते इन्हें लेखा पुस्तकों में सम्मिलित नहीं किया गया है।

5.8 कोष प्रवाह विवरण (Funds Flow Statement):

कोष प्रवाह विवरण बनाते समय केवल गैर-चालू सम्पत्तियों एवं गैर चालू दायित्वों के परिवर्तन को ही शामिल किया जाता है। कोष प्रवाह विवरण द्वारा प्रदर्शित वृद्धि या कमी की राशि कार्यशील पूँजी में परिवर्तन की अनुसूची द्वारा प्रकट राशि के बराबर होनी चाहिए। सामान्यत: इस विवरण को निम्नांकित दो प्रारूपों में तैयार किया जाता हैं:- 1 प्रतिवेदन प्रारूप, तथा 2. खाता प्रारूप

प्रतिवेदन प्रारूप (Report Form)

Funds Flow Statement

For the year ending............

	Amount (Rs.)
(A) Sources of Funds:	
1. Profit from operations	
2. Issue of shares	
3. Issue of debentures	
4. Raising long-term loans	
5. Sale of Non-Current Assets	
6. Non trading receipts	

Total (A)	
(B) Uses of Funds:	
1. Loss from operations	
2. Redemption of Preference Shares	
3. Redemption of debentures	
4. Repayment of long-term Loans	
5. Purchases of Non-Current Assets	
6. Non trading payments	
Total (B)	
Increase/Decrease in Working Capital (A-B) (As per schedule of Changes in working capital)	

खाता प्रारूप (Account Form)

Funds Flows Statement

For the year ending...............

Sources of Funds	Amount Rs.	Uses of Funds	Amount Rs.
1. Profit from operations	..	1. Loss from operations	..
2. Issue of shares	..	2. Redemption of pref. shares & buy back of equity Shares	..
3. Issue of debenture	..	3. Redemption of debenture	..
4. Raising Long-term loans	..	4. Repayment of long term loans	..
5. Sale of non-current assets	..	5. Purchases of non-current assets	..
6. Non-trading receipts	..	6. Non-trading payments	..
7. Decrease in Working Capital (If any)	..	7. Increase in working capital (If any)	..
	..		..

उदाहरण :1

महेश लिमिटेड के निम्नांकित विवरणों से 31 मार्च 2008 को समाप्त होने वाले वर्ष के लिये कोषों के साधनों एवं उपयोगों का विवरण बनाइये तथा कार्यशील पूँजी की अनुसूची तैयार कीजिए:

Liabilities	March31 2007	March31 2008	Assets	March31 2007	March31 20008
Share capital Trade creditors Profit & loss a/c	40,000 10,600 1400	57,500 7000 3100	Plants & machinery stock Debtors Cash	7500 12,100 18,100 14,300	10,000 13,600 17,000 27,000
	52,000	**67,600**		**52,000**	**67,000**

हल: **Schedule of changes in working capital**

Items	March 31 2007	March 31 2008	Effect on working capital	
			Increase	**Decrease**
(A) Current Assets				
Stock	12,100	13,600	1500	-
Debtors	18,100	17,000	-	11,000
Cash	14,300	27,000	12,700	
Total (A)	44,500	57,600		
(B) Current Liabilities:				
Trade Creditors	10,600	7000	3,600	
Total (B)	10,600	7000		
Net working Capital (A-B)	33,900	50,600		11,00
Net increase in working capital	16,700	-	-	16,700
	50,600	**50,600**	**17,800**	**17,800**

5.9 कोष प्रवाह विवरण से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण समायोजन (important Adjustments relating to funds flow statements) :

संचालन से लाभ की गणना (Calculation of Profit From Operation) :

लाभ-हानि खाते से शुद्ध लाभ ज्ञात करते समय ऐसी अनेक मदें भी शामिल हो जाती हैं जो कार्यशील पूँजी को प्रभावित नहीं करती है। अत: लाभ-हानि खाते द्वारा प्रदर्शित शुद्ध लाभ में उचित समायोजन करके कोष प्रवाह विवरण हेतु संचालन से लाभ की गणना की जाती है। संचालन से लाभ की गणना हेतु निम्नांकित तीन परिस्थितियाँ हो सकती है :-

1. जब चालू वर्ष के शुद्ध लाभ दिये गये 'हों:-

Calculation of Funds from operation

Net profit for the year		---------
Add: (A) Non Fund items:		
Depreciation written off	--------	
Preliminary Expenses Written off	--------	
Discount on issue of share & Debentures written off	--------	
Goodwill written off	--------	
Patent & Copyright Written off	--------	
Advertising Expenses Written off	--------	
Under Writing Commission off	--------	
Provision for Taxation	--------	
(if non current item)		
(B) Exceptional Losses:-		
On Sale of Fixed Assets	--------	
On sale of Fixed Investments	--------	--------
Less: Non-Fund incomes		--------
Profit on sale of Fixed Assets	--------	
Profit on sale of Fixed Investments	--------	
Dividends Received or receivable	--------	
Interest		
Appreciation in the value of Fixed Assets	--------	
Profit from operation		--------

2. जब लाभ-हानि नियोजन खाते के शेष दिये गये हो:-

Calculation of Funds from Operations

Closing balance of profit & loss Appropriation		--------
Add: (A) Non Funds Items:		
Depreciation Written off	--------	
Preliminary Expenses Written off	--------	
Discount on issue of Shares & Debentures Written off		
Goodwill written off	--------	
Patent & Copyright written off	--------	
Advertising Expenses Written off	--------	
Underwriting Commission written off	--------	

Provision for Taxation (if non current items)	--------	
(B) Exceptional losses:-		
On Sale of fixed assets	--------	
On sale of fixed investments	--------	
(C) Appropriations:-		
General reserve	--------	
Sinking fund	--------	
Interim dividend	--------	
Proposed dividend	--------	--------
Less: Non fund incomes		--------
Profit on sale of fixed assets	--------	
Profit on sale of fixed investments	--------	
Dividends	--------	
Interest	--------	
Appreciation in the value of fixed assets	--------	
Re transfer reserves & Provision	--------	--------
Opening balance of P & L appropriation	--------	--------
Profit from Operation		--------

उपरोक्त को समायोजित लाभ-हानि नियोजन खाते के प्रारूप में भी तैयार किया जा सकता है।

3. जब लाभ-हानि खाते द्वारा चालू वर्ष के शुद्ध लाभ तथा लाभ-हानि नियोजन खाते के शेष दिये गये हों। ऐसी स्थिति में उपरोक्त दोनों विधियों में से किसी भी एक विधि को अपनाकर संचालन से लाभ की गणना की जा सकती है।

टिप्पणी :- उपरोक्त विधियों मे यदि लाभ के स्थान पर हानि दी हुई हो तो समायोजन विपरीत रूप में किये जायेंगे।

उदाहरण : 2

कमला लिमिटेड के निम्नांकित लाभ-हानि खाते से संचालन से लाभ की राशि ज्ञात कीजिए:

Profit and Loss Account of Kamala Ltd.

For the year ending March 31,2008

To salaries	30,000	By Gross Profit	7,40,000
To Rent	4,000	By profit on sale of fixed assets	36,000
To Establishment expenses	30,000	BY Dividend received	24,000

To Advertisement	12,000		
To Postage & Telegraph	4,000		
To Discount on issue of shares	8,000		
To Depreciation	30,000		
To Commission	5,000		
To Loss on Sale of Investment	9,000		
To Goodwill Written off	24,000		
To Printing & stationary	1,000		
To Provision for taxation	1,60,000		
To Net Profit	4,83,000		
	8,00,000		**8,00,000**
To General dividend	35,000	By Balance b/d	50,000
To proposed dividend	1,45,000	By Net profit for the year	4,83,000
To balance c/d	3,93,000	By tax Refund	40,000
	5,73,000		**5,73,000**

हल:

(क) calculation of profit from operation

(By taking current year's Profit)

Net profit for the year 2008		**4,83,000**
Add:-(A) Non fund expenses:-		
Depreciation	30,000	
Discount on issue of shares	8,000	
Goodwill written off	24,000	
Provision for taxation	1,60,000	
(B) Exceptional losses		
Loss on sale of investments	9,000	2,31,000
Less: Non-fund incomes:		7,14,000
Profit on sale of fixed assets	36,000	
Dividend received	24,000	60,000
Profit from operations		**6,54,000**

(ख) Calculation of profit from operation

(By taking balance of P. & L. adjustment account)

Net profit for the year 2008		3,93,000
Add:- (A) Non fund expenses:-		
Depreciation	30,000	
Discount on issue of shares	8,000	
Goodwill written off	24,000	
Provision for taxation	1,60,000	
(B) Exceptional losses:-		
Loss on sale of investment	9,000	
(C) Appropriations:-		
General reserve	35,000	
Proposed dividend	1,45,000	4,11,000
Less: Non- fund income:		8,04000
Profit on sale of fixed assets	36,000	
Dividend received	24,000	
Tax refund	40,000	1,00,000
		7,04,000
Less: Opening balance of P. & L. adjustment		50,000
Profit from operation		**6,54,000**

टिप्पणी - उपरोक्त (ख) को खाते के रूप में भी बनाया जा सकता है।

स्थाई सम्पत्तियों में वृद्धि या कमी (Increase or Decrease in Fixed Assets)

स्थाई सम्पत्तियों में वृद्धि अर्थात् स्थाई सम्पत्तियों के क्रय की राशि ज्ञात करने हेतु स्थाई सम्पत्तियों की चालू वर्ष की लागत में से गत वर्ष की लागत (बेची गई या अपलिखित की गई सम्पत्ति की लागत घटाने के बाद) को घटाया जाता है। स्थाई सम्पत्ति की लागत ज्ञात न होने पर अपलिखित मूल्य में काटी गई ह्रास की राशि जोड़कर स्थाई सम्पत्ति की लागत ज्ञात की जा सकती है। स्थाई सम्पत्तियों का क्रय निम्नानुसार ज्ञात कर सकते है :-

Cost of Fixed assets for current year	....
(Closing Balance+ Deprecation charge	
Add:- W.D.V. of Fixed assets sold or written off	....
	....
Less: Cost of Fixed assets (previous Year	....
Purchase of fixed assets	....

स्थाई सम्पत्ति में कमी अर्थात् स्थाई सम्पत्ति के विक्रय की राशि निम्नांकित तरीके से ज्ञात की जा सकती है:-

Cost of Fixed assets for (Previous year)	………..	
Add: purchase of fixed assets during current year	………	……….
Less: Cost of Fixed assets in current years	……..	
	………..	
Cost of fixed assets sold	………	
± Profit / Loss on sale of fixed assets	……..	
Sale Proceeds	……….	

स्थाई सम्पत्तियों के क्रय तथा विक्रय को उपरोक्त विवरण के अतिरिक्त स्थाई सम्पत्ति खाता बनाकर भी ज्ञात किया जा सकता है। खाते बनाने की स्थिति में भी दो तरीके प्रयुक्त किये जा सकते हैं:-

(1) केवल स्थाई सम्पत्ति खाता बनाना (2) स्थाई सम्पत्ति खाता तथा स्थाई सम्पत्ति विक्रय खाता (Disposal Account) दोनों बनाना।

चिट्ठे में स्थाई सम्पत्तियों को लागत मूल्य अथवा अपलिखित मूल्य पर दिखाया गया हो सकता है। अगर स्थाई सम्पत्तियाँ चिट्ठे में सम्पत्ति पक्ष में लागत मूल्य पर दिखाई हुई हों तो दायित्व पक्ष में संचित ह्रास खाता (Accumulated Depreciation Account) दिया होगा जिसके लिए स्थाई सम्पत्तियों की क्रय/विक्रय राशि ज्ञात करते समय पृथक से संचित ह्रास की राशि को स्थाई सम्पत्तियों के लागत मूल्य में से घटाकर दिखाया जायेगा।

उदाहरण. 3

एक पुरानी मशीनरी जिसका अपलिखित मूल्य 20,000 रू. हैं को 32,000 में बेचा गया। मशीन खाते में प्रारंभिक एवं अंतिम शेष 4,00,000 रू. तथा 6,00,000 रू. थे। वर्ष के दौरान ह्रास के 60,000 रू. लगाये गये। मशीन क्रय करने हेतु प्रयुक्त किये गये कोषों की गणना कीजिए।

हल :

	Rs.
Cost of Machinery for current year	6,60,000
(Closing Balance+ Deprecation charge)	
Add :- W.D.V. of Machinery sold	20,000
	6,80,000
Less: Cost of Machinery previous Year	4,00,000
Purchase of Machinery	**2,80,000**

इसे खाते के रूप में निम्नानुसार ज्ञात किया जा सकता हैं:-

Dr.	Machinery A/C		Cr.
To balance b/d	4,00,000	By Depreciation	60,000
To P.& L. A/C		By Cash (sale)	32,000
(32000-20,000)	12,000	By Balance c/d	6,00,000
To cash (Balancing			
figure being Purchase)	2,80,000		
	6,92,000		**6,92,000**

उपरोक्त स्थिति में .2,80,000 रू. मशीन क्रय हेतु कोष का उपयोग तथा 32000 रू. मशीन विक्रय के कोष का साधन माने जायेंगे।

उदाहरण : 4

मशीनरी खाते में प्रारंभिक एवं अंतिम शेष क्रमशः 4,90,000 रू. तथा 5,30,000 रू. थे। संचित ह्रास खाते के प्रारंभिक तथा अंतिम शेष क्रमशः 1 ,30,000 रू. तथा 170,000 रू. थे। एक मशीन जिस पर संचित ह्रास 12000 रू. तथा लागत 20000 रू. थे को 5,000 में बेचा जाता है। मशीन को क्रय करने हेतु कोषों की राशि निर्धारित कीजिए।

हल

Dr.	Machinery Account		Cr.
To balance b/d	4,90,000	By Disposal account	20,000
To bank (purchase)	60,000	By balance c/d	5,30,000
	5,50,000		**5,50,000**

Dr.	Accumulated Depreciation Account		Cr.
To Disposal Account	12,000	By Balance b/d	1,30,000
To Balance C/D	1,70,000	By P.&L.A/c	52,000
(Balancing figure)			
	1,82,000		**1,82,000**

Dr.	Disposal Account		Cr.
To Machinery	20,000	By accumulated Depreciation	12,000
		By Bank (Sale Proceeds)	5,000
		By P. & L. (being Loss)	3,000
	20,000		**20,000**

मशीन विक्रय के 5000 रू. कोष के साधन के रूप में प्राप्त किए गए तथा मशीन क्रय 60,000 रू. के रूप में कोष उपयोग हुआ।

विनियोग का क्रय एवं विक्रय (Purchase and Sale of Investment) :

अल्पकालीन विनियोगों के क्रय-विक्रय का समायोजन कार्यशील पूँजी में परिवर्तन की अनुसूची में हो जाने से इन पर होने वाले लाभ-हानि का कोषों की गणना के 'समय कोई समायोजन नहीं किया जायेगा। दीर्घकालीन विनियोगों के क्रय-विक्रय की गणना विनियोग खाता बनाकर की जा सकती है। दीर्घकालीन विनियोगों की विक्री पर लाभ-हानि को लाभों में जोड़-घटाकर समायोजित किया जायेगा। विनियोगों के अधिग्रहण से पूर्व की अवधि का लाभांश विनियोग खाते में क्रेडिट किया जाता है। अत: विनियोगों के क्रय की राशि ज्ञात करते समय चालू व गत वर्ष के मूल्यों के अंतर में ऐसा लाभांश जोड़ना चाहिए। उदाहरणार्थ, 31 मार्च 2007 तथा 2008 के चिट्ठे में विनियोग क्रमशः 4000 रू. तथा 6000 रू. दिए हों तथा अधिग्रहण से पूर्व का लाभांश 300 रू. विनियोग खाते में क्रेडिट किया हुआ हो तो विनियोग क्रय की राशि रू. 6000 - 4000 = 2000 रू. + 300 रू. = 2300 रू. होगी।

गैर-नकद व्यय एवं गैर-संचालन की हानियाँ (Non-Cash Expenses and non operating Losses) :

शुद्ध लाभ में जोडने हेतु सामान्यत: इनके विषय में सूचनाएँ दी गई होती है। सूचनाएँ दी हुई न होने पर ख्याति, अभिगोपन कमीशन, प्रारंभिक व्यय, अंशों व ऋण पत्रों के निर्गमन पर बट्टा आदि का मूल्य चालू वर्ष में यदि गत वर्ष से कम हैं तो यह मानना चाहिए कि कमी की राशि लाभ-हानि खाते से अपलिखित की गई है। अत: शुद्ध लाभ में इस गैर-नकद खर्च की कमी की राशि को जोडेंगे। ह्रास के सम्बन्ध में चालू वर्ष के ह्रास की राशि या तो प्रश्न में दी हुई होगी अन्यथा स्थाई सम्पत्ति खाता या संचित ह्रास खाता (जैसी भी परिस्थिति हो) बनाकर ज्ञात कर सकते है।

क्या ह्रास कोषों का साधन हैं (Is Depreciation a Source of Funds) :

ह्रास को लाभ-हानि खाते में डेबिट किया जाता है तथा इस हेतु स्थाई सम्पत्ति खाता क्रेडिट किया जाता है। लाभ-हानि खाता तथा स्थाई सम्पत्ति खाता दोनों गैर-चालू मदें होने से ह्रास न तो कोष का साधन होगा और न ही उपयोग। अत: परिचालन से लाभ की गणना करते समय ह्रास की राशि पुन: शुद्ध लाभ में जोड़ी जाती है जिसे कोषों का साधन नहीं माना जायेगा। यद्यपि निम्नांकित कारणों से ह्रास को कोषों का साधन भी मान सकते हैं:-

1. स्टॉक का मूल्यांकन लागत मूल्य पर किया जाता है। ह्रास लागत का हिस्सा होने से चालू सम्पत्तियों का अंग बनकर कोष का साधन बन जाता है।
2. ह्रास के कारण कोषों में वृद्धि न होकर बचत ही होती है जिसे कोष का साधन मान सकते हैं। अगर सम्पत्ति व्यवसाय की न होकर किराये पर ली जाती तो किराये की राशि कोषों का बहिर्वाह (Out Flow of Cash) होती।
3. कर की राशि ह्रास के कारण कम होने से कर दायित्व की कमी कोष के साधन के रूप में मानी जा सकती है।

अंश पूँजी तथा दीर्घकालीन दायित्वों में वृद्धि अथवा कमी (Increase or Decrease in Share Capital and long-term liabilities) :

गत अवधि की तुलना में अंश पूँजी तथा दीर्घकालीन दायित्वों में वृद्धि कोषों का साधन मानी जाती है। पूर्वाधिकार अंशों तथा ऋणपत्रों का शोधन एवं दीर्घकालीन दायित्वों का भुगतान कोषों का उपयोग माना जाता है। इनमें कमी या वृद्धि की गणना हेतु 'अशपूँजी खाता' तथा ऋणपत्र खाता बनाया जाता है। स्थाई सम्पत्ति की प्राप्ति के बदले अंशों या ऋणपत्रों का निर्गमन अथवा ऋणपत्रों का अंशों में परिवर्तन कोष का साधन अथवा उपयोग नहीं है। बोनस अंश या स्कन्ध लाभांश जारी करना भी कोष का उपयोग नहीं है। इन्हें प्रीमियम पर निर्गमन भी कोष का उपयोग नहीं है।

चालू सम्पत्तियों पर आयोजन (Provision Against current Assets) :

स्टॉक में हानि हेतु आयोजन, डूबते ऋणों के लिए आयोजन आदि चालू दायित्व माने जाते है। आयोजन हेतु लाभ-हानि खाता डेबिट तथा आयोजन खाता क्रेडिट होता है परिणामस्वरूप चालू दायित्व तो बढ़ जाते हैं, चालू सम्पत्ति में बढ़ोतरी नहीं होती। अत: कोष (Fund) में कमी हो जाती है। इसे कार्यशील पूँजी में परिवर्तन के विवरण में दिखाया जाता है।

कर हेतु आयोजन (Provision for Taxation) :

इसका व्यवहार निम्नांकित दो प्रकार से किया जाता है :-

(क) **चालू दायित्व मानकर** - वर्ष के अंत में वार्षिक अंतिम खाते तैयार होने पर ही वास्तविक कर-निर्धारण होने से कर-दायित्व का पता लगता हैं जिसे कर-आयोजन खाते के माध्यम से अल्पकाल में समायोजित किया जाने से कर हेतु आयोजन को चालू दायित्व माना जाता है। अतः इसे कार्यशील पूँजी की परिवर्तन तालिका में ही दिखाया जाता है। वर्ष के दौरान चुकाई गई राशि को कहीं भी नहीं दिखायेंगे। संचालन से लाभ की गणना हेतु भी शुद्ध लाभ में इसे नहीं जोड़ा जायेगा। इस विधि को सरल होने के कारण बहुधा अपनाया जाता है किन्तु लेखांकन मानक-3 इसका समर्थन नहीं करता है।

(ख) **लाभों का नियोजन मानकर** - कर हेतु आयोजन को गैर-चालू दायित्व मानकर लेखांकन मानक-3 के निर्देशानुसार वर्ष में चुकाई गई राशि कोष प्रवाह विवरण में कोषों के उपयोग के अन्तर्गत दिखाई जाती है। कार्यशील पूँजी में परिवर्तन की तालिका में इसे दर्शाया नहीं जायेगा। संचालन से लाभ की गणना करते समय शुद्ध लाभ में पुन: जोड़ दिया जायेगा। चुकाये गये आयकर तथा लाभ-हानि खाते से चार्ज की गई राशि की गणना हेतु कर के लिये आयोजन खाता (Provision for taxation Account) बना लेना चाहिए।

प्रस्तावित लाभांश (Proposed Dividend)

प्रस्तावित लाभांश को कर हेतु आयोजन की भाँति ही चालू दायित्व अथवा लाभों का नियोजन मानकर लेखा किया जा सकता है। गणना प्रक्रिया समान हैं किन्तु संचालन से लाभ की गणना (लाभों का नियोजन मानने पर) करते समय यदि शुद्ध लाभ को आधार मानकर की गई हैं तो प्रस्तावित लाभांश की राशि उसमें जोड़ी नहीं जायेगी और यदि

लाभ-नियोजन खाते का अंतिम शेष आधार माना गया हो तो प्रस्तावित लाभांश की राशि को पुन: जोड़ा जायेगा।

अन्तरिम लाभांश (Interim Dividend) :

चालू वर्ष के मध्य में किसी भी समय अधिक लाभ अर्जित करने के कारण भुगतान किये गये लाभांश को अन्तरिम लाभांश कहते है। इसका भुगतान नकद में किये जाने पर कार्यशील पूँजी कम होती हैं अत: कोषों का उपयोग माना जायेगा। इसे समायोजित लाभ-हानि खाते के नाम पक्ष (Debit side) में लिखेंगे या लाभ-हानि नियोजन खाते के अंतिम शेष (लाभ होने की दशा मे) में जोड़ा जायेगा। बोनस अंशों के रूप मे अन्तरिम लाभांश का भुगतान कोषों का उपयोग नहीं माना जाता क्योंकि इससे कार्यशील पूँजी प्रभावित नहीं होती हैं।

चिट्ठे में लाभ-हानि खाते का शेष न होना (Absence OF Balance of P.&.L. A/C in Balance):

चिट्ठे में लाभ-हानि खाते का शेष न दिया जाकर केवल संचय एवं आधिक्य (Reserve & Surplus) का शेष दिया रहता है। एकाकी व्यापार तथा साझेदारी संस्था की स्थिति में पूँजी खातों में लाभ-हानि समाहित कर केवल पूँजी खाते ही खोले जाते है। ऐसी स्थितियों में परिचालन से लाभ की गणना करते समय संचय एवं आधिक्य या पूँजी खाते को आधार मानकर लाभ-हानि खाते के शेष में समायोजित की जाने वाली मदों का समायोजन किया जाना चाहिए।

उदाहरण : 5

31 मार्च 2007 तथा 2008 को मौलि लिमिटेड के स्थिति विवरण निम्नानुसार दिये गए हैं:-

Balance Sheet as at 31 st March

Liabilities	2007	2008	Assets	2007	2008
Equity share Capital	8,00,000	10,00,000	Land & Building	8,00,000	7,60,000
General Reserve	22,00,000	2,40,000	Plant & Machinery	6,00,000	6,96,000
Profit & Loss Account	1,22,000	1,22,400	Stock	4,00,000	2,96,000
Bank loan (Short-term)	2,80,000	-	Debtors	3,20,000	2,56,800
Creditors	6,00,000	5,40,800	Cash in Hand	2,000	2,400
Provision For Taxation	1,20,000	1,40,000	Cash at Bank		32,000
	21,22,000	**20,43,200**		**21,22,000**	**20,43,200**

अतिरिक्त सूचना :

1. वर्ष 2007-08 में 80,000 रू. लाभांश का भुगतान किया गया।
2. वर्ष 2007-08 में प्लांट एवं मशीनरी पर 56000 रू. का ह्रास अपलिखित किया गया।

3. वर्ष 2007-08 के दौरान भूमि व भवन का एक हिस्सा लागत मूल्य पर बेचा गया।
4. वर्ष 2007-08 के दौरान आयकर हेतु प्रावधान रू. 1,00,000 का बनाया गया।

वर्ष 2007-08 हेतु कोषों के स्त्रोतों एवं उपयोगों को दर्शाते हुए कार्यशील पूँजी में परिवर्तन की अनुसूची तैयार कीजिए।

हल : **Schedule of change in working capital**

Items	**March 31, 2007**	**March 31, 2008**	**Effect on working capital**	
			Increase	**Decrease**
(A) Current Assets:				
Stock	4,00,000	2,96,000	-	1,04,000
Debtors	3,20,000	2,56,800	-	63,200
Cash in Hand	2000	2400	400	
Cash at Bank	-	32000	32,000	
Total (A)	7,22,000	5,87,200		
(B) Current Liabilities:				
Bank Loan	2,80,800		2,80,000	
Creditors	6,00,000	5,40,800	59,200	
Total (B)	8,80,000	5,40,800		
Net working Capital(A-B)	(-) 15800	46400	3,71,600	1,67,200
Net increase in working capital	2,04,400			2,04,400
	46,400	**46400**	**3,71,600**	**3,71,600**

Schedule of Changes in Working capital

Statement of Source and uses of fund for the year ended March 31,2008

(A) **Source of Funds :-**	
Profit from operations	2,76,400
Issue of Capital	2,00,000
Sale of land and Buildings	40,000
Total (A)	**5,16,400**
(B) **Uses of Fund:**	
Purchase of Plant & Machinery	1,52,000
Dividend paid	80,000
Income Tax Paid	80,000
Net increase in Working Capital	2,04,400
Total (B)	**5,16,400**

कार्यशील टिप्पणियाँ :-

Dr. Plant & Machinery Cr.

To Balance b/d	6,00,000	By Depreciation	56,000
To Cash (Purchase)	1,52,000	By balance c/d	6,96,000
(Balance figure)			
	7,52,000		**7,52,000**

Dr. Provision for taxation account Cr.

To Cash (Tax Paid)	80,000	By Balance b/d	1,20,000
To Balance c/d	1,40,000	By P. & L. A/C	1,00,000
	2,20,000		**2,20,000**

Dr. Profit & Lose Account Cr.

To General Reserve	40,000	By Balance b/d	1,22,000
To Depreciation	56,000	By Profit from operation	2,76,400
To Provision for Taxation	1,00,000		
To Dividend	80,000		
To Balance c/d	1,22,400		
	3,98,400		**3,98,400**

उदाहरण : 6

कुसुम लिमिटेड के निम्नांकित चिट्ठे की सहायता से कार्यशील पूँजी में परिवर्तन का विवरण तथा कोषों के साधन एवं उपयोग का विवरण तैयार कीजिए:-

Balance Sheets as on 31st March

Liabilities	**2007**	**2008**	**Assets**	**2007**	**2008**
Equity Share Capital	40,000	60,000	Land Building	57,000	50,000
Share Premium	10,000	11,000	Plant	36,000	35,100
Profit and Loss A/c	20,000	22,000	Furniture	9,000	8100
Debenture Redemption Fund	10,000	11,000	Investments		21,000
Debenture	30,000	29,000	Stock	15,500	14500
Provision for Taxation	4,000	3500	Debtors	18000	16000
Secure Loans (long term)	20,000	10,000	400	4000	
Current Liabilities	2400	3000	Cash in Hand	500	800
	1,36,400	**1,49,500**		**1,36,400**	**1,49,500**

अतिरिक्त सूचना :

1. अंश 100 रू. पूर्ण प्रदत्त प्रति अंश है। वर्ष के दौरान 40,000 रू. की समता अंश पूँजी पर 12% लाभांश चुकाया गया।
2. आयकर रू. 3000 चुकाने हेतु आयकर प्रावधान का प्रयोग किया गया।
3. भवन पर 5% प्लाण्ट पर 1०% तथा फर्नीचर पर 1०% हास लगाया गया।
4. 1 अप्रैल 2007 को 4000 रू. लागत का प्लाण्ट खरीदा गया जबकि 1 अप्रैल 2007 को 1000 रू. पुस्तक मूल्य का प्लाण्ट 2000 रू. में बेचा गया।
5. 1 अप्रैल 2007 को 7000 रू. मूल्य का भवन 6000 रू. में बेचा गया तथा 31 मार्च 2008 को नये भवन का 2500 रू. में निर्माण किया गया।

हल :

Schedule of Change in working capital

Items	**March31 2007**	**March 31 2008**	**Effect on working capital**	
			Increase	**Decrease**
Current Assets:				
Stock	15,500	14,500	-	1000
Debtors	18,000	16,000	-	2000
B/R	400	4000	3600	-
Cash in Hand	500	800	300	-
Total (A)	34,400	35,300		
Current Liabilities:	2400	3000	-	600
Total (B)	2400	3000		
Net working Capital (A-B)	32,000	32,300	3900	3600
Net increase in working capital	300	-	-	300
	32,300	**32,300**	**3900**	**3900**

Statement of Source and use of Funds

Sources	**Amount**	**Uses**	**Amount**
Profit from Operation	17,600	Redemption of Debenture	1,000
Issue of Share Capital	20,000	Payment of Secured Loans	10,000
Share Premium	1,000	Purchase of Building	2,500
Sale of Building	6,000	Purchase of Plant	4,000
Sale of Plant	2,000	Purchase of Investment	21,000
		Payment of Dividend	4,800
		Payment of Income Tax	3,000
		Net Increase in W.C	300
	46,600		**46,600**

कार्यशील टिप्पणियाँ :-

Provision for Taxation Account

Dr.			Cr.
To Income Tax (Cash Paid)	3000	By Balance B/d	4000
To Balance c/d	3500	By P. & L. A/C	2500
		(Provision created during the year)	
	6500		**6500**

Plant Account

Dr.			Cr.
To Balance b/d	36000	By Cash (Sales)	2000
To Cash (Purchase)	4000	By Depreciation	3900
		(10% on 39,000)	
To Adjusted P. & L. A/C	1000	By Balance c/d	35100
(Profit on Sale)			
	41,000		**41,000**

Building Account

Dr.			Cr.
To Balance b/d	57000	By Cash (Sale)	6000
To Cash (Construction)	2500	By Loss on Sale	1000
		By Depreciation 5%on 50,000	2500
		By Balance c/d	50,000
	59,500		59,500

Adjusted Profit and Loss Account

Dr.			Cr.
To Depreciation on:-		By Balance c/d	20,000
Building	2,500	By Profit on sale of plant	1,000
Furniture	900	By Profit from operation	17,600
Plant	3,900		
To Provision for taxation	2,500		
To Debenture Redemption Fund	1,000		
To Dividend	4,800		
To Loss on Sale of Building	1,000		
To balance c/d	22,000		
	38,600		**38,600**

5.10 कोष प्रवाह विवरण का महत्व (Importance of Fund Flow Statement):

1. संस्था की कार्यशील पूँजी में परिवर्तन पर प्रकाश डालना एवं व्यवसाय की वर्तमान वित्तीय स्थिति को सुदृढ़ता के निर्धारण हेतु।

2. लाभांश भुगतान, ऋणपत्र शोधन, सम्पत्तियों की खरीद हेतु आवश्यक राशि के अनुमान में सहायक तथा अनुमानित प्राप्त और प्रयोग के आधार पर फालतू धन के नियोजन में सहायक।
3. प्रबन्धकीय नीतियों की बाहरी व्यक्तियों को जानकारी तथा ऋण प्राप्ति में सहायक।
4. व्यवसाय संचालन से कोष प्रवाह की जानकारी के साथ-साथ चिट्ठा व लाभ-हानि खाते की तुलना मे सहायक।
5. व्यावसायिक समस्याओं की जानकारी।

5.11 कोष प्रवाह विवरण की सीमाएँ (Limitation of Flow Statement):

1. भूतकालीन विश्लेषण से सम्बन्धित होने से भविष्य के परिवर्तन की जानकारी न होना।
2. गैर-कोष मदों सम्बन्धी लेनदेन शामिल न होने से भ्रामक प्रस्तुतीकरण एवं वित्तीय विवरणों की तुलना में कम परिष्कृत।
3. चिट्ठे व लाभ-हानि खाते के कुछ आंकड़ों का रूप परिवर्तित करके पुन: प्रस्तुत करने से मौलिक जानकारी प्राप्त नहीं होती।
4. कार्यशील पूँजी की कुल राशि के परिवर्तित का ही विश्लेषण होता हैं विभिन्न मदों में परिवर्तन का विश्लेषण नहीं होता है।

5.12 सारांश (Summary) :

व्यवसाय की वित्तीय सुद्दढ़ता एवं कार्यक्षमता सम्बन्धी सूचनाओं के अतिरिक्त भावी प्रबन्धकीय निर्णयों हेतु कोषों के स्त्रोतों एवं उपयोग की सूचना हेतु कोष प्रवाह विवरण बनाया जाता हैं। कोष को रोकड़ कोष, पूँजी कोष तथा कार्यशील पूँजी कोष के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। विस्तृत अर्थ में कार्यशील पूँजी में परिवर्तन को कोष के अर्थ में प्रयुक्त करते हुए जिस लेनदेन से शुद्ध कार्यशील पूँजी में वृद्धि होती हैं उसे कोषों का स्त्रोत तथा जिससे कमी होती हैं उसे कोषों का उपयोग मानते है। कोष प्रवाह की पहचान. हेतु खातों को चालू तथा गैर-चालू खाते में बाँटते हैं। कोष प्रवाह हेतु आवश्यक हैं कि लेनदेन में एक खाता चालू तथा दूसरा गैर चालू खाता हो। कोष के साधनों में पूँजी व दायित्वों में वृद्धि तथा सम्पत्तियों में कमी को शामिल किया जाता है जबकि कोष के उपयोग में पूँजी व दायित्व में कमी तथा सम्पत्तियों में वृद्धि को शामिल करते है। कोष प्रवाह विवरण की तकनीक में कार्यशील पूँजी में परिवर्तन का विवरण तथा कोष प्रवाह विवरण बनाना शामिल होता है। कोष प्रवाह विवरण में संचालन से लाभ की गणना करते समय शुद्ध लाभों में कार्यशील पूँजी को प्रभावित करने वाली मदों यथा गैर नकद मदें (Non Cash item) (ह्रास, ख्याति तथा प्रारंभिक खर्चे, पेटेन्ट व कापीराइट आदि को अपलिखित करना) स्थाई सम्पत्तियों विनियोगों के बेचने पर हानि तथा गैर कोष आयों का समायोजन किया जाता है। स्थाई सम्पत्तियों व विनियोगों का क्रय-विक्रय सम्बन्धित खाते बनाकर ज्ञात किया जा सकता है। ह्रास यद्‌यपि न कोषों का

स्त्रोत हैं और नही उपयोग तथापि सीमित अर्थों में इसे कोषों का उपयोग भी माना जाता है। अंशपूँजी तथा दीर्घकालीन दायित्वों में वृद्धि या कमी की गणना हेतु सम्बन्धित खाते बनाये जाते है। कर हेतु आयोजन तथा प्रभावित लाभांश का व्यवहार चालू दायित्व अथवा लाभों का नियोजन, दोनों मैं से एक मानकर किया जा सकता है। अन्तरिम लाभांश का नकद में भुगतान होने पर ही कोषों का उपयोग माना जायेगा, बोनस अंशों के रूप में नहीं। चिट्ठे में यदि लाभ-हानि खाते में शेष न दिया जाकर संचय व आधिक्य का शेष अथवा एकाकी व्यापार व फर्म की दशा में पूँजी खातों के शेष दिए हों तो उन्हें ही आधार मानकर संचालन से लाभ की गणना की जानी चाहिए। कोष प्रवाह विवरण व्यवसाय की वित्तीय सुद्दढ़ता के निर्धारण वित्तीय नियोजन में सहायक, प्रबंधकीय नीतियों की बाहरी व्यक्तियों में जानकारी, तुलनात्मक अध्ययन व व्यवसाय की समस्याओं की जानकारी में सहायक होता हैं किन्तु भूतकाल से संबन्धित होने से भविष्य की जानकारी न होना, भ्रामक प्रस्तुतीकरण व मौलिकता के अभाव के कारण अत्यधिक उपयोगी न होकर वर्तमान में केवल शैक्षिक चर्चा के विषय तक ही सीमित रह गया है।

5.13 शब्दावली (Glossary):

कोष प्रवाह विवरण (Fund Flow Statement) : कोष प्रवाह विवरण उन साधनों का, जिनसे अतिरिक्त धन प्राप्त हुआ तथा उपयोगों का जिनमें इस धन को प्रयुक्त किया गया हैं को वर्णित करता है।

रोकड़ कोष (Cash Fund) : कोष का अभिप्राय रोकड़ से हैं जिसमें रोकड़ प्राप्तियों एवं भुगतान शामिल होते है।

पूँजी कोष (Capital Fund) : सभी वित्तीय संसाधन अर्थात् रोकड़ एवं गैर रोकड़ कोष शामिल किए जाते है।

कार्यशील पूँजी कोष (Working Capital Fund) : चालू सम्पत्तियों का चालू दायित्व पर आधिक्य।

कोष के साधन (Sources of Fund) : पूँजी व दायित्वों में वृद्धि व सम्पत्तियों में कमी का योग।

कोष के उपयोग (Usages of Fund) : पूँजी व दायित्वों में कमी तथा सम्पत्तियों में वृद्धि का योग।

5.14 स्वपरख प्रश्न (Self Assessment Questions) :

1. कोषों के विभिन्न अर्थ स्पष्ट करते हुए बताइये कि किन-किन परिस्थितियों में कोष प्रवाह होता है।
2. कोष प्रवाह विवरण को परिभाषित करते हुए कार्यशील पूँजी में परिवर्तन की अनुसूची एवं कोष प्रवाह विवरण का प्रारूप बनाइये।

3. व्यवसाय संचालन से लाभ से क्या तात्पर्य हैं? इसकी गणना कैसे की जाती है? क्या ह्रास कोषों का स्त्रोत हैं? स्पष्ट कीजिए।
4. कोष प्रवाह विवरण के महत्व एवं सीमाओं का वर्णन कीजिए।

5.15 आंकिक प्रश्न (Numerical Questions):

1. शानू लिमिटेड के निम्नांकित चिट्ठों से कार्यशील पूँजी में परिवर्तन का विवरण तथा कोषों के स्त्रोतों एवं उपयोगों का विवरण तैयार कीजिए:

Balance Sheets as on 31st March

Liabilities	**2007 Rs.**	**2008 Rs.**	**Assets**	**2007 Rs.**	**2008 Rs.**
Equity Share Capital	40000	50000	Goodwill	9000	8000
10%Red.Pref Share Capital	20000	10000	Land & Building	28000	20,000
Capital Reserve	-	3000	Plant & Machinery	10000	20,000
General Reserve	6000	8000	Investments	3000	4000
P.& L. Account	3000	4500	Debtors	18000	21000
Proposed Dividend	6000	6000	Stock	8000	12000
Sundry creditors	3000	4500	Cash in Hand	4000	4500
Provision for Taxation	4000	4500	Preliminary expenses	2000	1000
	82000	**90500**		**82000**	**90500**

अतिरिक्त सूचनाएँ -

1. अधिमान अंशों का शोधन 5% प्रीमियम पर किया गया
2. वर्ष 2008 में 3000 रू. अन्तरिम लाभांश चुकाया,
3. वर्ष 2008 में आयकर भुगतान 4500 रू. किया गया,
4. एक मशीन 4000 रू. में (अपलिखित मूल्य 3600 रू.) बेची गई तथा वर्ष 2008 में संयंत्र पर 1500 ह्रास काटा गया।
5. वर्ष 2008 में भूमि का एक भाग बेचा गया तथा विक्रय पर लाभ पूँजी संचय खाते में जमा

(उत्तर : कार्यशील पूँजी में वृद्धि रू. 6000 तथा संचालन से लाभ 21.100 रू०)

2. अभिलाषा लिमिटेड के 31 मार्च 200? एवं 2008 के चिट्ठे इस प्रकार हैं:-

Balance Sheet as at 31st March----

Liabilities	**2007 Rs.**	**2008 Rs.**	**Assets**	**2007 Rs.**	**2008 Rs.**
Share Capital	40000	60000	Land and Building (at cost)	30000	40000
Profit and Loss Account	25000	35000			

Accumulated Depreciation	8000	12000	Plant & Machinery	46000	63000
Bank Loan	16000	8000	(at cost)		
Creditors	12000	13500	Stock	18000	20000
Provision for Taxation	4000	5500	Debtors	10000	15500
Proposed Dividend	4000	6000	Cash at Bank	5000	1500
	109000	**140000**		**109000**	**140000**

अतिरिक्त सूचनाएँ-

1. वर्ष के दौरान 4300 रू. का आयकर चुकाया गया।
2. वर्ष के दौरान 20,000 रू. के नये अंश निर्गमित किए गए।
3. एक मशीन जो पूर्व में 6000 रू. में क्रय की थी 400 रू. में बेच दी गई। मशीन का पुस्तक मूल्य 600 रू. था। कम्पनी ने वर्ष के दौरान नये उपकरण भी खरीदे।

   कार्यशील पूँजी में परिवर्तन का विवरण तथा कोषों के साधन एवं उपयोगों का विवरण बनाइये।

   (उत्तर: कार्यशील पूँजी में वृद्धि 2500 रू.: संचालन से लाभ 31400 रू.)

5.16 उपयोगी पुस्तकें (Further Reading) :

1. जे. के. अग्रवाल एवं आर. के. अग्रवाल प्रबन्धकीय लेखांकन. रमेश बुक डिपो, जयपुर।
2. एम. आर. अग्रवाल. प्रबंध लेखांकन, मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर।
3. Maheshwari, S.N. : Financial Management, Sultan Chand & sons , New Delhi
4. एस. पी. गुप्ता प्रबन्धकीय लेखाविधि साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।

इकाई 6 : कार्यशील पूँजी का प्रबन्ध (Management of Working Capital)

इकाई की रूपरेखा :

6.0 उद्देश्य

6.1 परिचय एवं अवधारणा

6.2 कार्यशील पूँजी के प्रकार

6.3 कार्यशील पूँजी का महत्व

6.4 आवश्यकता से अधिक कार्यशील पूँजी के दोष

6.5 कार्यशील पूँजी के स्त्रोत

6.6 कार्यशील पूँजी के मात्रा के निर्धारक घटक

6.7 कार्यशील पूँजी का अनुमान लगाने की विधियाँ

6.8 बैंकों द्वारा कार्यशील पूँजी के निर्धारण में शिथिलता

6.9 सारांश

6.10 शब्दावली

6.11 स्वपरख प्रश्न

6.12 आंकिक प्रश्न

6.13 उपयोगी पुस्तकें

6.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

- कार्यशील पूँजी की अवधारणा अर्थ सहित समझ सकें।
- कार्यशील पूँजी के प्रकार एवं महत्व की जानकारी प्राप्त कर सकें।
- आवश्यकता से अधिक कार्यशील पूँजी के दोष पहचान सकें।
- कार्यशील पूँजी के स्त्रोत एवं मात्रा के घटकों का निर्धारण कर सकें।
- कार्यशील पूँजी के अनुमान की विधियों को उदाहरण सहित समझ सकें।

6.1 परिचय एवं अवधारणा (Introduction and Concept)

व्यवसाय में स्थाई वित्तीय आवश्यकताओं (भूमि, भवन, संयंत्र इत्यादि हेतु की पूर्ति के लिये जहाँ एक ओर स्थाई पूँजी की आवश्यकता होती हैं वहीं कच्चे माल के क्रय एवं न्यूनतम स्कन्ध, भावी माँग की पूर्ति हेतु निर्मित माल के स्कन्ध, दैनिक व्यय, मजदूरी, वेतन एवं बैंक में न्यूनतम शेष हेतु अल्पकालीन पूँजी की आवश्यकता होती हैं जिसे कार्यशील पूँजी कहा जाता है। व्यवसाय के सामान्य संचालन के दौरान कुल सम्पत्तियों का वह भाग जो एक स्वरूप से दूसरे स्वरूप में बदलता रहता हैं वह

कार्यशील पूँजी कहलाता है। कार्यशील पूँजी के अभिप्राय को कार्यशील पूँजी की अवधारणा द्‌वारा समझ सकते हैं। ये अवधारणाएं निम्नांकित हैं:-

1. परम्परागत अवधारणा (Traditional concept) तथा
2. परिचालन चक्र अवधारणा (Operating cycle Concept)

परम्परागत अवधारणा (Traditional concept) -

निश्चित तिथि को बनाये गये चिट्ठे के आधार पर संस्था की स्थिति दर्शाने वाली इस अवधारणा की गणना दो प्रकार की मानकर की जाती हैं:-

(i) सकल कार्यशील पूँजी (Gross Working Capital)

(ii) शुद्ध कार्यशील पूँजी (Net Working Capital)

(i) **सकल कार्यशील पूँजी** :- परिमाणात्मक पहलू पर आधारित इस अवधारणा में कार्यशील पूँजी का तात्पर्य सम्पूर्ण चालू सम्पत्तियों के योग से हैं। ऐसी सम्पत्तियाँ जिन्हें एक लेखांकन अवधि के दौरान रोकड़ में परिवर्तित किया जा सकता हो, चालू सम्पत्तियाँ कहलाती है। जे. एस. मिल के अनुसार "चालू सम्पत्तियों का योग ही कार्यशील पूँजी होता हैं। प्रबन्ध के दृष्टिकोण से अधिक उचित इस अवधारणा के अनुसार चालू सम्पत्तियों की व्यवस्था चाहे दीर्घकालीन स्त्रोतों से की जाये अथवा अल्पकालीन स्त्रोतों से- इससे उनकी उपयोगिता में कोई कमी नहीं आती। व्यवसाय में प्रयुक्त होने एवं लाभार्जन क्षमता में वृद्धि करने के कारण चालू सम्पत्तियाँ ही कार्यशील पूँजी मानी जाती है।

(ii) **शुद्ध कार्यशील पूँजी** :- गुणात्मक पहलू पर आधारित इस अवधारणा के अनुसार शुद्ध कार्यशील पूँजी से तात्पर्य चालू सम्पत्तियों का चालू दायित्व पर आधिक्य है। इस आधिक्य की व्यवस्था दीर्घकालीन कोषों से की जाती है। अल्पकालीन ऋण दाताओं एवं विनियोजकों की दृष्टि से उन्हें अधिक सुरक्षा प्रदान करने वाली यह अवधारण वित्तीय सुदृढ़ता को प्रकट करती हैं तथा चालू दायित्वों से चालू सम्पत्तियों की तुलना के कारण वित्तीय स्थिति का उपयुक्त आधार भी प्रदान करती है।

परिचालन चक्र अवधारणा (Operating Cycle Concept)

संचालन की क्रमिक अवस्थाओं में जितनी नकद राशि की आवश्यकता शुद्ध परिचालन अवधि के अन्तर्गत होगी, वही कार्यशील पूँजी के नाम से जानी जाती है। परिचालन चक्र की अवधि तथा परिचालन व्यय के आधार पर नकद धनराशि की आवश्यकता की जानकारी प्राप्त कर सकते है। कच्ची सामग्री के क्रय से प्रारंभ कर विक्रय की नकद वसूली तक लगने वाली अवधि परिचालन चक्र मानी जाती है। हम परिचालन चक्र को निम्नांकित रूप से समझ सकते है -

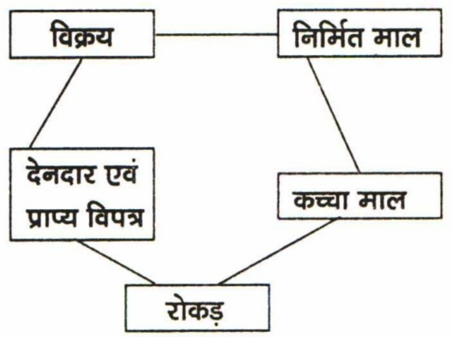

6.2 कार्यशील पूँजी के प्रकार (Types OF Working Capital)

कार्यशील पूँजी का वर्गीकरण निम्नांकित दो आधारों पर समझ सकते हैं:-

1. अवधारणाओं के आधार पर
2. आवश्यकताओं के आधार पर

1. **अवधारणाओं के आधार पर** :-

(अ) सकल कार्यशील पूँजी :- सम्पूर्ण चालू सम्पत्तियों का योग

(ब) शुद्ध कार्यशील पूँजी :- चालू दायित्वों पर चालू सम्पत्तियों का आधिक्य

2. **आवश्यकताओं के आधार पर:-**

(अ) **स्थाई या नियमित कार्यशील पूँजी**:- व्यवसाय के सुचारू संचालन हेतु कार्यशील पूँजी का वह भाग जो किसी न किसी रूप में स्थाई रूप से चालू सम्पत्तियों में विनियोजित हैं स्थाई या नियमित कार्यशील पूँजी कहलाता है। कच्ची सामग्री का न्यूनतम स्टॉक, तैयार माल की न्यूनतम स्टॉक, बैंक व नकद का न्यूनतम शेष इसके उदाहरण है।

(ब) **परिवर्तनशील कार्यशील पूँजी**:- स्थाई कार्यशील पूँजी के अतिरिक्त कार्यशील पूँजी का शेष भाग परिवर्तनशील कार्यशील पूँजी कहलाता है। उत्पादन तथा विक्रय की मात्रा में परिवर्तन के अनुसार यह परिवर्तित होती रहती है। ये सामान्यत: दो प्रकार की होती हैं:-

(क) **मौसमी कार्यशील पूँजी**:- जिस पूँजी की आवश्यकता वर्ष भर न होकर किसी मौसम विशेष मे ही होती है। कूलर, ऊनी वस्त्र उद्योग, सूती वस्त्र उद्योग में कपास क्रय आदि में कुछ महीनों में ही कार्यशील पूँजी की आवश्यकता होती है।

(ख) **विशिष्ट कार्यशील पूँजी**:- अप्रत्याशित घटनाओं जैसे मंदी, युद्ध, हड़ताल आदि का सामना करने हेतु आवश्यक पूँजी।

6.3 कार्यशील पूँजी का महत्व (importance of Working Capital)

स्थाई सम्पत्तियों के प्रबन्ध के साथ-साथ व्यवसाय के सामान्य संचालन हेतु भी पूँजी की आवश्यकता होती हैं जिसे कार्यशील पूँजी के नाम से जाना जाता है। कार्यशील पूँजी

का उचित प्रबन्ध न होने पर संस्था अवनति की दिशा में जा सकती हैं। पर्याप्त कार्यशील पूँजी होने से संस्था निम्नांकित लाभ प्राप्त कर सकती हैं:-

1. **कार्यकुशलता में वृद्धि** :- कर्मचारियों को समय पर वेतन मिलने से वे अधिक मनोबल से कार्य करते हैं तथा पर्याप्त कार्यशील पूँजी से संचालको एवं प्रबन्धकों को उत्साहपूर्वक कार्य करने की प्रेरणा मिलने से कार्य में बाधा उत्पन्न नहीं होती। इसके परिणामस्वरूप कार्यकुशलता में वृद्धि होती हैं।
2. **नकद छूट का लाभ एवं विक्रेताओं को तत्काल भुगतान** :- नकद छूट मिलने से लागत मूल्य में कमी करके विक्रय मूल्य में भी कमी करके ग्राहकों को आकर्षित कर सकते हैं तथा विक्रेताओं को तत्काल भुगतान से नकद छूट के साथ-साथ निर्विघ्न रूप से माल तुरंत प्राप्त कर सकते है।
3. **अनुकूल अवसरों का लाभ** :- कच्चे माल की लागतों में वृद्धि की संभावना पर या बड़ा आदेश प्राप्त होने पर पर्याप्त कार्यशील पूँजी होने से अवसर का लाभ उठाकर धन अर्जन किया जा सकता है।
4. **आकस्मिकताओं का सामना** :- आकस्मिक घटनाओं या व्यापारिक संकटों का सामना पर्याप्त कार्यशील पूँजी के द्वारा किया जा सकता है।
5. **बैंक से ऋण प्राप्ति में सुविधा तथा ऋण क्षमता एवं साख में वृद्धि**
6. **स्थाई सम्पत्तियों की उत्पादकता में वृद्धि**
7. **पर्याप्त लाभांश वितरण**

6.4 आवश्यकता से अधिक कार्यशील पूजी के दोष (Disadvantages of Excessive Working Capital)

आवश्यकता से कम अथवा आवश्यकता से अधिक कार्यशील पूँजी दोनों ही परिस्थितियाँ व्यवसाय के लिए नुकसानदेह है। आवश्यकता से अधिक कार्यशील पूँजी के निम्नांकित दोष हैं जो हानिकारक सिद्ध हो सकते हैं:-

1. दोषपूर्ण साख नीति
2. प्रबन्धकीय अकुशलता
3. अनावश्यक स्कन्ध संग्रह
4. लाभदायकता पर नकारात्मक असर
5. सट्टात्मक लाभ की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन
6. अंशधारियों में अंसतोष निर्माण

6.5 कार्यशील पूँजी के स्त्रोत (Sources of Working Capital)

(अ) दीर्घकालीन स्त्रोत (Long-term Sources)

(ब) अल्पकालीन स्त्रोत (Short-term Sources)

(अ) दीर्घकालीन स्त्रोत:-

(क) स्वामीगत स्त्रोत (Owned Sources):-

(i) अंश निर्गमन (Issue of Shares)
(ii) संचित कोष (Reserves)
(iii) प्रतिधारित अर्जने (Retained Earnings)
(iv) स्थाई सम्पत्तियों की बिक्री (sale of fixed Assets)
(v) चालू दायित्वों का पुस्तक मूल्य से कम पर भुगतान (Retiring current liabilities below book value)

(ख) ऋणगत स्त्रोत (Borrowed Sources)

(i) ऋणपत्र निर्गमन (Issue of Debentures)
(ii) दीर्घकालीन ऋण (Long term Loans)

(ब) अल्पकालीन स्त्रोत -

(क) आन्तरिक स्त्रोत (Internal Sources)

(i) हास कोष (Depreciation Funds)
(ii) करों हेतु आयोजन (Provision for taxation)
(iii) अदत्त भुगतान (Outstanding payments)

(ख) बाह्य स्त्रोत (External Sources)

(i) बैंकों से साख (Bank credit)
(ii) व्यापारिक साख (Trade Credit)
(iii) व्यापारिक साखपत्र (Latter of credit)
(iv) जन निक्षेप (Public deposits)
(v) कर्मचारियों की प्रतिभूति (Securities of Employees)
(vi) प्रबन्धकों एवं संचालकों से ऋण (Loans from executives and Directors)
(vii) वित्त संस्थाऐं (Finance Companies)
(viii) देशी साहूकार आदि (Native money lenders etc.)
(ix) ग्राहकों से अग्रिम (Advance from customers)
(x) सरकारी सहायता (Government assistance)

6.6 कार्यशील पूँजी की मात्रा के निर्धारक घटक (Determinants of Working Capital Requirements)

कार्यशील पूँजी की मात्रा के निर्धारण हेतु ऐसा कोई मापदण्ड नहीं हैं जिसे सभी व्यापारिक संस्थाओं द्वारा अपनाया जा सके। विभिन्न प्रकार के बाह्य तथा आन्तरिक घटक कार्यशील पूँजी की मात्रा के निर्धारण को प्रभावित करते हैं। संक्षेप में हम ऐसे महत्त्वपूर्ण घटकों का अध्ययन करेंगे :-

(1) **व्यवसाय की प्रकृति एंव आकार (Nature and size of the Business)** :- निश्चित एवं नियमित माँग वाले व्यवसायों में रोकड़ प्रवाह बने रहने से स्कन्ध में अधिक विनियोग की आवश्यकता नहीं होती हैं अत: ऐसी संस्थाओं (रेलवे कम्पनियों, विद्युत कम्पनियाँ, परिवहन कम्पनियाँ, जीवनयापन की वस्तुएं उत्पादित करने वाली संस्थाऐं) में

कार्यशील पूँजी की आवश्यकता अनियमित तथा अनिश्चित माँग वाले व्यवसायों की तुलना में अपेक्षाकृत कम होती हैं। बड़े आकार के व्यवसाय में अधिक स्थाई पूँजी होने से उसके अधिक लाभदायक एवं कुशलतम उपयोग हेतु अधिक कार्यशील पूँजी की आवश्यकता होगी।

(2) **व्यवसाय के विकास की दर (Rate of Expansion of the Business)** :- यदि व्यवसाय का विस्तार धीमी गति से हो रहा हैं तो कम कार्यशील पूँजी की आवश्यकता होगी जिसे लाभों के पुनर्विनियोग से पूरा किया जा सकता हैं। विकास की गति तेज तथा योजना बड़ी हो तो पर्याप्त कार्यशील पूँजी होनी आवश्यक है।

(3) **व्यावसायिक उच्चावचन (Business Cycle)** :- सामान्य दशा में कम कार्यशील पूँजी की आवश्यकता होती है। तेजी के दिनों में माँग बढ़ने से अधिक स्टॉक हेतु तथा मंदी काल में उधार बिक्री वसूल न होने व नियमित व्ययों के भुगतान हेतु अधिक कार्यशील पूँजी की आवश्यकता रहती हैं।

(4) **परिचालन चक्र की अवधि (Operating Cycle Period)** :- परिचालन चक्र की गति जितनी अधिक तीव्र होगी, कार्यशील पूँजी की उतनी ही कम आवश्यकता होगी। गति में अवरोध से रोकड़ की कमी दायित्वों के भुगतान में अवरोध उत्पन्न करती है।

(5) **उत्पादन प्रक्रिया (Production Process)** :- उत्पादन प्रक्रिया लम्बी एवं जटिल होने पर परिचालन चक्र अवधि लम्बी होगी परिणामस्वरूप अधिक कार्यशील पूँजी की आवश्यकता होगी।

(6) **उत्पादन लागत में कच्चे माल का स्थान (Importance of Raw materials in Production Cost)** :- जिन संस्थाओं की उत्पादन लागत में कच्चे माल का मूल्य अधिक होता हैं, वहाँ कार्यशील पूँजी की मात्रा अधिक होनी चाहिए।

(7) **क्रय-विक्रय की शर्तों के सम्बन्ध (Relation between terms of purchase and Sale)** :- संस्था यदि कच्चा माल उधार क्रय करती हैं और विक्रय नकद में करती हैं तो कम कार्यशील पूँजी की आवश्यकता होती हैं इसके विपरीत नकद क्रय एवं उधार विक्रय की स्थिति में अधिक कार्यशील पूँजी की आवश्यकता होती है।

(8) **अन्य कारण** :- संस्था की साख नीति, बैंकिंग सम्बन्ध, व्यवसाय की मौसमी प्रकृति, लाभ की मात्रा एवं लाभांश नीति, परिवहन एवं संचार माध्यमों की सुविधा एवं व्यवस्था, उत्पादन एवं वितरण नीतियों में सम्बन्ध, राजनैतिक स्थिरता, देश के औद्योगिक विकास की गति आदि ऐसे घटक हैं जो संस्था की कार्यशील पूँजी की मात्रा को पर्याप्त रूप से प्रभावित करते है।

6.7 कार्यशील पूँजी का अनुमान लगाने की विधियाँ (Methods of Estimating Working capital Requirements)

निम्नांकित विधियों के द्वारा कार्यशील पूजी का अनुमान लगाया जा सकता है :-

(I) परिचालन चक्र विधि (Operating Cycle Method)

(II) परम्परागत विधि अथवा शुद्ध चालू सम्पत्ति पूर्वानुमान विधि (Traditional Method or Forecasting Net current Assets Method)

(III) प्रक्षेपी चिट्ठा विधि (Projected Balance Sheet Method)

(IV) समायोजित लाभ-हानि खाता विधि : (Adjusted Profit and Loss Account Method)

(V) रोकड़ प्रवाह पूर्वानुमान विधि (Cash-Flow Forecast Method)

(VI) प्रतीपगमन विश्लेषण विधि (Regression Analysis Method)

(VII) विक्रय का प्रतिशत विधि (Percentage of sale method)

अब हम इन विधियों का विस्तार से अध्ययन करेंगे।

I. **परिचालन चक्र विधि (Operating Cycle Method)** :

भावी रोकड़ कार्यशील पूँजी (Cash working capital) की गणना हेतु अवधि विशेष के कुल परिचालन व्ययों में उस संबंधित अवधि के परिचालन चक्रों का भाग दिया जाता हैं। अत: कार्यशील पूँजी की आवश्यक मात्रा की गणना हेतु कुल परिचालन व्यय, परिचालन चक्र अवधि तथा परिचालन चक्रों की संख्या की गणना आवश्यक हैं जिसे हम निम्नांकित प्रकार से समझ सकते हैं:-

(a) **परिचालन व्यय** :- किसी अवधि की प्रत्यक्ष सामग्री, प्रत्यक्ष श्रम, प्रत्यक्ष व्यय तथा अप्रत्यक्ष व्यय को उस अवधि के परिचालन व्यय के रूप में माना जाता हैं। इन व्ययों की गणना में पूँजीगत व्यय, गैर-रोकड़ व्यय जैसे ह्रास, अमूर्त सम्पत्तियों का अपलेखन तथा लाभ-नियोजन की मदें जैसे कर व लाभांश को शामिल नहीं किया जाता है। पुराने उत्पाद छोड़ने, नये उत्पाद प्रारंभ करने तथा उत्पाद मिश्रण में परिवर्तन जैसे तथ्यों को इन व्ययों के राशि के अनुमान लगाते समय ध्यान में रखना चाहिए। इसके अतिरिक्त मूल्य स्तर परिवर्तनों हेतु आवश्यक समायोजन कर लेना उचित रहता है।

(b) **परिचालन चक्र की अवधि** :- सकल परिचालन चक्र अवधि में कच्ची सामग्री प्राप्ति से लेकर देनदारों से निर्मित माल के विक्रय राशि की वसूली तक विभिन्न परिचालन अवस्थाओं में लगने वाले औसत समय को शामिल करते हैं। अगर इसमें से लेनदारों द्वारा स्वीकृत उधार अवधि को घटा दिया जाये तो वह अवधि शुद्ध परिचालन चक्र अवधि मानी जायेगी। शुद्ध परिचालन चक्र अवधि की गणना हेतु सामग्री संग्रहण अवधि, रूपान्तर अवधि, निर्मित माल संग्रहण अवधि एवं देनदार संग्रहण अवधि के योग में से लेनदार भुगतान अवधि को घटाया जाता हैं। इन सभी की गणना हम निम्नांकित सूत्रों की सहायता से कर सकते हैं -

(क) सामग्री संग्रहण अवधि (Material Storage Period) = $\frac{Average\ Stock\ of\ Raw\ Material}{Daily\ Average\ Consumption}$

अथवा

$$\frac{(Opening\ stock + Closting\ stock)/2}{Material\ consumed\ for\ the\ year/365}$$

(ख) रूपान्तरण अवधि (Conversion Period) = $\frac{Average\ Stock\ in\ Wrok-in-Process}{Daily\ Average\ Factory\ Cost}$

अथवा

$$\frac{(Opening\ WIP + Clsoing\ WIP)/2}{Total\ Factory\ Cost/365}$$

Factory cost = Opening stock of WIP + Material consumed + Wages + Factory expenses including depreciation-Closing stock of WIP.

यहाँ रूपान्तरण अवधि की गणना में तो ह्रास को शामिल करेंगे किन्तु आगे कार्यशील पूँजी के गणना के समय हास को परिचालन व्ययों में शामिल नहीं करेंगे। कुछ लेखक कारखाना लागत में हास को शामिल नहीं करते है।

(ग) निर्मित माल संग्रहण अवधि (Finished Goods Storage Period) =

$$\frac{Average\ Stock\ in\ Finished\ Goods}{Daily\ Average\ Cost\ of\ Sales}$$

अथवा

$$\frac{Opening\ stock\ of\ FG + Closing\ Stock\ of\ FG)/2}{Total\ Factory\ Cost/365}$$

बिक्री की लागत (Cost of Sales) की गणना :

Cost of Sales = Opening stock of FG + Factory Cost + Administrative Expenses + Selling and Distribution Expenses + Expenses + Excies Duty - Closing Stock of FG

कुछ विद्वानों का मानना है कि वित्तीय लेखांकन में निर्मित माल का मूल्यांकन उत्पादन या कारखाना लागत पर किया जाता है अत: प्रशासन एवं विक्रय तथा वितरण व्ययों को विक्रय की लागत में शामिल नहीं किया जावे, किन्तु यही विक्रय एवं वितरण व्ययों को बिक्री की लागत का भाग मानकर जोड़ा गया है।

(घ) देनदार संग्रहण अवधि (Debtors Collection Period) = $\frac{Average\ Debtors + B/R}{Daily\ Average\ Credit\ Sales}$

अथवा

$$\frac{(Opening\ Debtors + Closing\ Debtors)/2}{Total\ Credit\ Sales/365}$$

अथवा

$$\frac{Average\ Receivables}{Total\ Credit\ Sales} \times No.of\ days\ in\ a\ year$$

(ङ) लेनदार भुगतान अवधि (Creditors'payment Period) = $\frac{Average\ Creditors + B/P}{Daily\ Average\ Credit\ Purchases}$

अथवा

$$\frac{(Opening\ Creditors + Closing\ Creditors)/2}{Total\ Credit\ Purchases/365}$$

अथवा

$$\frac{Average\ Payables}{Total\ Credit\ Purchase} \times No.of\ days\ in\ a\ year$$

परिचालन अवधि की गणना हेतु उपरोक्त (क) से (घ) तक की निर्धारित अवधियों के योग में से (ड) में निर्धारित अवधि को घटाया जायेगा।

(c) **परिचालन चक्रों की संख्या (No. of completed operating cycles)** :-

$$No.of\ operating\ cycles = \frac{365}{Operating\ Cycle\ Period}$$

(d) **कार्यशील पूँजी की राशि का अनुमान (Estimation of Working Capital) :-**

$$Working\ Capital = \frac{Total\ operating\ Expenses\ excluding\ depreciation}{No.of\ operating\ cycles\ Operating\ Cycle\ Period}$$

(e) **आकस्मिकताओं के लिए आयोजन :-**

उपरोक्त प्रकार से ज्ञात की गई कार्यशील पूँजी की राशि अनुमानित ही होती है, पूर्णतया शुद्ध नहीं होती है, अत एवं अनुमानों की अशुद्धता को ठीक करने की दृष्टि से उपरोक्तानुसार निर्धारित कार्यशील पूँजी में कुछ निश्चित प्रतिशत आकस्मिकताओं हेतु जोड़ दिया जाता है।

उदाहरण : 1

एक निर्माणी संस्था की निम्नांकित सूचनाओं से परिचालन चक्र अवधि तथा आवश्यक कार्यशील पूँजी की गणना परिचालन चक्र विधि से कीजिए : -

Value of Average Stock maintained :	(Rs. In '000')
Raw Material	320
Work-in-Progress	350
Finished Goods	260
Average Total of Debtors Outstanding	480
Raw Material Consumption	4,400
Total Cost of sales	10,000
Sales for the year	10,500
Period Covered	16,000

Average period of credit allowed by suppliers 16 days.

हल : परिचालन चक्र अवधि की गणना

(क) कच्ची सामग्री संग्रहण अवधि	=	$\frac{320 \times 365}{4400} =$	27 दिन
(ख) रूपान्तरण अवधि	=	$\frac{350 \times 365}{10,000} =$	13 दिन
(ग) निर्मित माल की संग्रहण अवधि	=	$\frac{260 \times 365}{10,500} =$	9 दिन
(घ) देनदार संग्रहण अवधि	=	$\frac{480 \times 365}{16,000} =$	11 दिन
सकल परिचालन चक्र अवधि			60 दिन
घटाइये : लेनदार भुगतान अवधि			16 दिन
शुद्ध परिचालन चक्र अवधि			44 दिन

वर्ष में परिचालनों की संख्या = 365 ÷ 44 = 8.30

कार्यशील पूँजी की आवश्यकता मात्रा = 10,500÷8.30 = 1265 रू.

II. **परम्परागत विधि अथवा शुद्ध चालू सम्पत्ति पूर्वानुमान विधि (Traditional Method or Forecasting Net Current Assets Method) :-**

भारत में सर्वाधिक प्रचलित इस विधि के अनुसार प्रत्येक चालू सम्पत्ति हेतु महीनों में वित्त की आवश्यकता का निर्धारण कर उसे कुल अवधि से गुणा किया जाता है। प्रत्येक सम्पत्ति के लिए अवधि का अनुमान स्कन्ध नीति, भुगतान एवं साख नीति के साथ-साथ विगत अनुभवों के आधार पर किया जाता है। सभी चालू सम्पत्तियों की कुल राशि के योग में से संभावित व्यापारिक साख को घटाते हैं तथा आकस्मिकताओं हेतु कुछ प्रतिशत जोड़ा जाता है। कार्यशील पूँजी की इस कुल अनुमानित राशि में से बैंक से प्राप्त होने वाली राशि घटाकर संस्था द्वारा व्यवस्था की जाने वाली राशि को ज्ञात किया जाता है। निम्नांकित प्रारूप से हम इसे भली-भाँति समझ सकेंगे:-

Statement of Working Capital Requirement

(A) **Current Assets**		**Amount (Rs.)**
(i) Stock of Raw Material (For....Months consumption)		....
(ii) Work-in-Progress(For...Months)		
(a) Raw Materials	....	
(b) Direct Labour	....	
(c) Overheads	....	....
(iii) Stock of Finished Goods (For....Months sales)		
(a) Raw Materials	....	
(b) Direct Labour	....	
(c) Overheads	....	....
(iv) Sundry Debtors or Receivables (For......Months		

Sales)		
(a) Raw Materials	....	
(b) Direct Labour	....	
(c) Overheads	....	....
(v) Payment in Advance (if any)		....
(vi) Balance of cash (Required to meet a day-to day expenses)		....
(vii) Others (if any)		....
Total of C.A. (A)		
(B) **<u>Current Liabilities</u>**		
(i) Creditors (For....months purchase of Raw materials)		....
(ii) Lag in payment of expenses (outstanding expenses...months)		....
(iii) other (if any)		....
Total of C.L. (B)		....
(C) **Net Working capital (A-B)**		....
Add: Provision for contingencies		....
Total Working capital required		....

उदाहरण : 2

निम्नांकित सूचनाओं के आधार पर सतीश लिमिटेड के संचालक मण्डल हेतु 10,4,00 इकाइयों के उत्पादन स्तर की वित्तपूर्ति हेतु आवश्यक कार्यशील पूँजी का विवरण तैयार कीजिए :-

Elements of cost	Amount per unit Rs.
Raw Material	4
Direct Labour	1
Overheads	3
Total Cost	8
Profit	2
Selling Price	10

(i) भण्डार में कच्ची सामग्री औसतन एक माह रहती है।
(ii) उत्पादन प्रक्रिया में सामग्री औसतन आधे माह रहती है।
(iii) निर्मित माल औसतन स्टॉक में 6 सप्ताह रहता है।
(iv) देनदारों को उधार दो माह की स्वीकृत है।
(v) लेनदारों द्वारा उधार एक माह की स्वीकृत है।

(vi) मजदूरी भुगतान में 1 ½ सप्ताह का अन्तराल है।

(vii) माह में 4 सप्ताह तथा वर्ष में 52 सप्ताह मानने है।

(viii) बैंक में रोकड़ 9,200 रू. सम्भावित हैं।

वर्ष में उपरिव्यय तथा मजदूरी समान रूप से रहते हैं तथा उत्पादन भी बराबर गति से चालू रहता है।

हल : सर्वप्रथम लागत के प्रत्येक तत्व की साप्ताहिक राशि की गणना निम्नानुसार करेंगे :-

कुल बिक्री 10400 x 10 = 1,04,000 रू.

(i) कच्ची सामग्री = $\frac{104000 \times 4}{52 \times 10}$ = 800 रू.

(ii) प्रत्यक्ष श्रम $\frac{104000 \times 1}{52 \times 10}$ = 200 रू.

(iii) उपरिव्यय $\frac{104000 \times 3}{52 \times 10}$ = 600 रू.

वैकल्पिक विधि :- साप्ताहिक उत्पादन 10400/52 = 200 इकाइयाँ

सामग्री : 200 x 4 = 600 रू.; श्रम : 200 x 1 = 200 रू.; उपरिव्यय : 200 x 3 = 600 रू.

Statement of Working Capital Requirement

(A) **Current Assets** :	**Rs.**	**Rs.**
(i) Stock of Raw Materials (4 weeks)		
Raw Materials (Rs. 800 x 4)		3200
(ii) Work-in-Process(2 weeks)		
Raw Materials(Rs. 800 x 2)	1600	
Labour(Rs. 200 x 1)	200	
Overhead(Rs. 600 x 1)	600	2,400
(iii) Stock of Finished Goods(6 week)		
Raw Materials(Rs. 800 x 6)	4,800	
Labour(Rs. 200 x 6)	1,200	
Overhead(Rs. 600 x 6)	3,600	9,600
(iv) Debtors(8 weeks)		
Raw Materials(Rs. 800 x 8)	6,400	
Labour(Rs. 200 x 8)	1,600	
Overhead(Rs. 600 x 8)	4,800	12,800
(v) Cash as per estimate		9,200
		37,200
(B) Less : Current Liabilities		
(i) Creditors(4 weeks)	3200	

(ii) Lag in payment of wages 1 ½ weeks Labour (200 x 1 ½)	300	3500
Working capital requirement		33700

टिप्पणी :-

(1) अर्द्ध-निर्मित माल में यह माना गया हैं कि सम्पूर्ण सामग्री अवधि के प्रारंभ में लगाई गई है।

(2) श्रम व उपरिव्यय समान रूप से अर्जित होने के कारण इनकी राशि आधी (एक सप्ताह) ली गई है।

(3) देनदारों के मूल्यांकन में विक्रीत माल की रोकड़ लागत को लिया गया है।

(4) लाभ कार्यशील पूँजी का स्त्रोत हो भी सकता हैं और नहीं भी। यही लाभों का ध्यान नहीं रखा है।

(III) **प्रक्षेपी चिट्ठा विधि (Projected Balance Sheet Method)** :

इस विधि के अन्तर्गत भावी अवधि के लेनदारों को ध्यान में रखकर विभिन्न प्रकार की सम्पत्तियों एवं दायित्व के अनुमान पर आधारित एक चिट्ठा जिसे प्रक्षेपी चिट्ठा कहते हैं, बनाया जाता है। सम्पत्तियों में रोकड़ को शामिल नहीं करते हैं। सम्पत्ति पक्ष का योग दायित्व पक्ष से कम होने पर इसे कार्यशील पूँजी में कमी माना जाता हैं जिसकी व्यवस्था प्रबन्धकों द्वारा की जायेगी। इसके विपरित दायित्व पक्ष का योग सम्पत्ति पक्ष के योग से अधिक होने पर इसे रोकड का आधिक्य मानकर इसके विनियोजन की योजना बनाई जायेगी।

उदाहरण : 3

प्रक्षेपी चिट्ठा विधि द्वारा माधुरी लिमिटेड हेतु निम्नांकित सूचनाओं से आवश्यक कार्यशील पूँजी का पूर्वानुमान लगाइये

(i) 1 अप्रेल 2008 को शेष :- समता अंशपूँजी 2,00,000 रू. पूर्वाधिकार अंश पूँजी 50,000 रू. 7% ऋणपत्र 1,00,000 रू. तथा स्थाई सम्पत्तियाँ 1,25000 रू. है;

(ii) प्रति इकाई विक्रय मूल्य 10 रू. हैं जिसका 60% सामग्री, 20%मजदूरी, 10%उपरिव्यय तथा 10%लाभ है;

(iii) प्रतिवर्ष अनुमानित उत्पादन 60,000इकाइयाँ हैं;

(iv) कच्चा माल स्टोर में औसतन दो माह प्रक्रियांकन समय 1 माह तथा निर्मित माल औसतन स्टॉक में दो माह रहता है।

(v) देनदारों को उधार स्वीकृति तीन माह तथा लेनदारों द्वारा स्वीकृत उधार अवधि दो माह है।

(vi) मजदूरी व उपरिव्यय भुगतान अन्तराल एक माह हैं।

(vii) उत्पादन एवं विक्रय चक्र नियमित है। ह्रास का ध्यान नहीं रखना हैं।

हल :

(i) प्रतिमाह उत्पादन $\frac{60,000}{12} = 5000$ इकाइयाँ

(ii) प्रति इकाई सामग्री लागत = 10 रू. x 60% = 6 रू.

प्रति इकाई श्रम लागत = 10 रू. x 20% = 2 रू.

प्रति इकाई उपरिव्यय लागत = 10रू. 10% = 1 रू.

(iii) देनदारों (विक्रय मूल्य पर) = 5000 x रू. 10 x 3 = 1,50,000

देनदार (लागत पर) = 5000 रू. x 9 x 3 = रू. 1,35,000

(iv) कच्ची सामग्री का स्टॉक = 5000 x 6 रू. x 2 = रू. 60,000

(v) चालू कार्य का स्टॉक :

Raw Material	5000 x रु 6 x 1	=	रु. 30,000
Wages	5000 x रु 2 x 1 x ½	=	रु. 5,000
Overhead	5000 x रु 1 x 1 x ½	=	रु. 2,500
			रु. 37,500

(vi) निर्मित माल का स्टॉक	5000 रु. x 9 x 2 = रु. 90,000	
(vii) लेनदार	=5000 रु. x 6 x 2	= रु. 60,000
(viii) बकाया मजदूरी	= 5000 रु. x 2 x 1	= रु. 10,000
(ix) बकाया उपरिव्यय	= 5000 रु. x 1 x 1	= रु. 5,000
(x) वर्ष का लाभ	= 60,000 x 1 रु. प्रति इकाई	= रु. 60,000

घटाइये:- ऋणपत्रों पर ब्याज $\frac{7,000}{53,000}$ रु.

Projected Balance Sheet as on 31st March, 2009

Liabilities	Amount Rs.	Assets	Amount Rs.
Equity share capital	2,00,000	Fixed Assets	1,25,000
Preference Share Capital	50,000	Current Assets	
Profit and Loss Account	53,000	Stock of Raw Material	60,000
7%Debentures	1,00,000	Stock of work in progress	37,,500
Creditors	60,000	Stock of Finished Goods	90,000
Outstanding wages	10,000	Debtors	1,50,000
Outstanding Overheads	5,000	Cash (Balancing Figures)	15,500
	47,78,000		**4,78,000**

Working Capital = Current Assets - Current Liabilities

3,38,000 रु. - 75,000 रु. = 263,000 रु.

Current Assets = 60,000+37,500+90,000+135,000+15500 = 3,38,000 रु.

Current Liabilities = 60,000+10,000+5000 = 75000 रु.

(IV) **समायोजित लाभ-हानि खाता विधि (Adjusted Profit and Loss Account Method)**:

बैंकों द्वारा व्यावसायिक संस्थाओं की कार्यशील पूँजी का अनुमान लगाने हेतु सर्वाधिक प्रयुक्त इस विधि में भावी अवधि के लेनदारों के आधार पर लाभों का अनुमान लगाते है। इन अनुमानित लाभों में रोकड़ अन्तर्वाह एवं रोकड़ बहिर्वाह का समायोजन कर कार्यशील पूँजी में वृद्धि अथवा कमी की गणना कर ली जाती है। यह विधि रोकड़ प्रवाह विवरण का ही एक रूप हैं। इस विधि के अन्तर्गत कार्यशील पूँजी की गणना निम्नानुसार की जायेगी :-

Computation of Working Capital

	Rs.
Net Income	………..
Add : Non Cash/Non trading items	………..
Working capital provided by operations	
Add : Cash inflow items	………..
Less : Cash outflow items	……….
Net changes in Working Capital	……….

उदाहरण : 4

गौरी लिमिटेड का पूर्वानुमानित लाभ-हानि निम्नानुसार हैं :-

	Rs	**Rs.**	
To Adm. & selling expenses	11,000	By Gross Profit	2,00,000
To Depreciation	22,000	By Interest	10,000
To Income Tax	4000		
To interest charges	4000		
To Loss on sale of plant	7000		
To Net Profit c/d	1,62,000		
	2,10,000		2,10,000
To Dividend	10,000	By Net Profit b/d	1,62,000
To Balance c/d	1,52,000		
	1,62,000		**1,62,000**

अतिरिक्त सूचना :-

(i) वर्ष के दौरान 75,000 रू. की लागत का एक नया प्लाण्ट खरीदना है।

(ii) 60,000 रू. की लागत के पुराने प्लाण्ट को (संचित ह्रास 43,000 रू.) 10,000 रू. में बेचने की आशा है।

(iii) वर्ष के दौरान 22,500 रू. के ऋणपत्र शोधन हेतु परिपक्व होंगे।

(iv) 50,000 रू. के समता अंश नकद रूप में निर्गमित किए जायेंगे।

लाभ-हानि खाता समायोजित विधि के आधार पर कार्यशील पूँजी में कमी या वृद्धि की रकम की गणना कीजिए।

हल:

Calculation of Increase/Decrease in Working capital		
	Rs.	**Rs.**
Net Profit as per P. & L. A/c		1,62,000
Add : Non-Cash Charges :		
Depreciation	22,000	
Loss on sale of plant	7000	29,000
Working Capital Provided by operations		1,91,000
Add : Cash inflows :		
Issue of fresh issue	50,000	
Sale of Plant	10,000	60,000
		2,51,000
		2,51,000
Less : Cash outflows:-		
(i) Redemption of Debentures	22,500	
(ii) Purchase of Plant	75,000	
(iii) Payment of Dividend	10,000	1,07,500
Net Increase in Working Capital		1,43,500

नोट : उपरोक्त विवरणानुसार वर्ष के अन्त में संस्था की शुद्ध कार्यशील पूँजी 1,43,500 रू. से बढ़ जायगी उदाहरण के लिये यदि हम यह मान लें कि वर्ष के प्रारंभ में संस्था की शुद्ध कार्यशील पूँजी 2,00,000 रू. थी तो अब वर्ष के अन्त में बढ़कर 3,43,500 रूपये हो जायेगी।

(V) **रोकड़ प्रवाह पूर्वानुमान विधि (Cash-Flow Forecast Method) :**
यह विधि रोकड बजट का ही एक रूप हैं जिसमें आगामी अवधि की रोकड प्राप्ति व भुगतान के अंतर से रोकड की कमी या आधिक्य का अनुमान लगाया जाता है। कमी की राशि हेतु प्रबन्ध द्वारा योजना बनाई जाती है।

(VI) **प्रतीपगमन विश्लेषण विधि (Regression Analysis Method)** :
विगत अनुभवों के आधार पर न्यूनतम वर्ग रीति (Least Square Method) का प्रयोग करके कार्यशील पूँजी के विभिन्न घटकों तथा विक्रय के मध्य सम्बन्ध स्थापित कर कार्यशील पूँजी का अनुमान लगाया जाता है। इस हेतु विक्रय (x) तथा कार्यशील पूँजी (y) का सम्बन्ध निम्नानुसार स्थापित किया जायेगा:

$$y = a + bx$$

निम्नांकित समीकरणों की सहायता से a तथा b का मूल्य ज्ञात करेंगे :-

$$\sum y = na + b\sum x$$

$$\sum xy = a\sum x + \sum x2$$

यहाँ a = स्थिर मूल्य; परिवर्तनशील मूल्य; n = इकाइयों की संख्या, X = विक्रय तथा y = कार्यशील पूँजी

(VII) **विक्रय का प्रतिशत विधि (percentage of sale method)** :

इस विधि के अन्तर्गत विभिन्न वर्षों में विक्रय एवं कार्यशील पूँजी के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन किया जाता हैं, तत्पश्चात् विक्रय के एक निश्चित प्रतिशत के रूप में कार्यशील पूँजी एवं उसके संघटकों का निर्धारण किया जाता है। भावी विक्रय गतिविधियों हेतु इसी का आधार मानकर कार्यशील पूँजी का अनुमान लगाया जाता है।

6.8 बैंकों द्वारा कार्यशील पूँजी के निर्धारण में शिथिलता (Relaxation in Assessment of Working capital by Banks)

15 अप्रेल 1997 से अधिकतम संभव साख संबंध सभी निर्देश वापिस लिये जाने से बैंक अपने ग्राहकों की कार्यशील पूँजी की आवश्यकता निर्धारण हेतु स्वतंत्र हो गये है। अब कोई प्रतिबन्ध न होने से वे अपनी विधियों का प्रयोग कर कार्यशील पूँजी की मात्रा का निर्धारण कर सकते है। इसी को दृष्टिगत रखकर यहीं दहेजिया समिति प्रतिवेदन 1969 टंडन समिति प्रतिवेदन 1975, चोरे समिति प्रतिवेदन 1980 तथा मराठे समिति प्रतिवेदन 1984 का अध्ययन प्रस्तुत नहीं किया जा रहा हैं।

6.9 सारांश (Summary)

कच्चे माल के क्रय से लेकर देनदारों से विक्रय की राशि प्राप्त होने तक विभिन्न कार्यो के लिए अल्पकालीन पूँजी की आवश्यकता होती है, जिसे कार्यशील पूँजी के नाम से जाना जाता है। परम्परागत अवधारणा के अन्तर्गत सकल कार्यशील पूँजी एवं शुद्ध कार्यशील पूँजी को शामिल करते है। सकल कार्यशील पूँजी जहाँ एक ओर चालू सम्पत्तियों का योग होता है वहीं शुद्ध कार्यशील पूँजी ज्ञात करने हेतु चालू सम्पत्तियों के योग में से चालू दायित्वों का योग घटा दिया जाता है। परिचालन चक्र अवधारणा के अन्तर्गत परिचालन चक्र अवधि एवं परिचालन व्यय के आधार पर आवश्यक नकद धन राशि कार्यशील पूँजी के अन्तर्गत शामिल की जाती है। अवधारणाओं के आधार पर कार्यशील पूँजी में सकल कार्यशील पूँजी एवं शुद्ध कार्यशील पूँजी को शामिल करते है वहीं आवश्यकता के आधार पर स्थाई, परिवर्तनशील मौसमी तथा विशिष्ट कार्यशील पूँजी में वर्गीकृत जाता है। कार्यशील पूँजी का प्रबन्ध व्यवसाय में विशेष महत्व रखता है। पर्याप्त कार्यशील पूँजी से कर्मचारियों, श्रमिकों व प्रबंध की कार्यकुशलता में वृद्धि होती है। विक्रेताओं को तत्काल भुगतान कर नकद छूट का लाभ उठाया जा सकता है। अनुकूल अवसरों का लाभ, आकस्मिकताओं का सामना, बैंक से ऋण प्राप्ति में सुविधा तथा ऋण क्षमता व साख क्षमता में वृद्धि, स्थाई सम्पत्तियों की उत्पादकता में वृद्धि

तथा पर्याप्त लाभांश वितरण जैसे लाभ पर्याप्त कार्यशील पूँजी के द्वारा प्राप्त किये जा सकते है। आवश्यकता से अधिक कार्यशील पूँजी होने की स्थिति में लाभदायकता पर नकारात्मक असर, अनावश्यक स्कन्ध संग्रह, प्रबन्धकीय अकुशलता, दोषपूर्ण साखनीति सट्टात्मक लाभ की प्रवृति को प्रोत्साहन, अंशधारियों में असंतोष निर्माण जैसे दोष व्यवसाय के लिए हानिकारक सिद्ध हो सकते है।

कार्यशील पूँजी के दो स्त्रोतों में दीर्घकालीन स्त्रोत तथा अल्पकालीन स्त्रोतों को शामिल करते है। दीर्घकालीन स्त्रोत (i) स्वामीगत स्त्रोत तथा (ii) ऋणगत स्त्रोत दो प्रकार के हो सकते है। स्वामीगत स्त्रोतों में अंशनिर्गमन, संचित कोष, प्रतिधारित अर्जनें, स्थाई सम्पत्तियों की बिक्री, चालू दायित्वों का पुस्तक मूल्य से कम पर भुगतान को शामिल किया जाता है। अल्पकालीन स्त्रोतों में (i) आन्तरिक स्त्रोत एवं (ii) वाह स्त्रोत को शामिल करते है। आन्तरिक स्त्रोतों के अन्तर्गत ह्रास कोष, करों हेतु आयोजन तथा अदत्त भुगतान को शामिल किया जाता हैं जबकि बाह्य स्त्रोतों के अन्तर्गत बैंकों से साख, व्यापारिक साख, व्यापारिक साख पत्र जन निक्षेप एवं कर्मचारियों की प्रतिभूति प्रबन्धकों एवं संचालकों से ऋण सरकारी सहायता इत्यादि को शामिल किया जाता है।

कार्यशील पूँजी की मात्रा के निर्धारण में व्यवसाय की प्रकृति एवं आकार, व्यवसाय के विकास की दर व्यावसायिक उच्चावचन, परिचालन चक्र की अवधि, उत्पादन प्रक्रिया, उत्पादन लागत में कच्चे माल का स्थान, क्रय-विक्रय की शर्तों के सम्बन्ध, बैंकिंग सम्बन्ध, संस्था की साख नीति, राजनैतिक स्थिरता, देश के औद्योगिक विकास की गति जैसे अनेक घटकों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। कार्यशील पूँजी का निर्धारण परिचालन चक्र अवधि, चालू सम्पत्ति पूर्वानुमान विधि, प्रक्षेपी चिट्ठा विधि, समायोजित लाभ-हानि खाता विधि, रोकड प्रवाह पूर्वानुमान विधि, प्रतीपगमन विश्लेषण विधि तथा विक्रय का प्रतिशत विधि द्वारा किया जा सकता है।

6.10 शब्दावली (Glossary)

कार्यशील पूँजी (Working Capital) :- व्यवसाय के सामान्य संचालन के दौरान कुल सम्पत्तियों का वह भाग जो एक स्वरूप से दूसरे स्वरूप में बदलता रहता है।

सकल कार्यशील पूँजी (Gross Working Capital) :- चालू सम्पत्तियों का योग।

शुद्ध कार्यशील पूँजी (Net Working Capital) :- चालू सम्पत्तियों का चालू दायित्वों पर आधिक्य

स्थाई कार्यशील पूँजी (Permanent Working Capital) :- कार्यशील पूँजी का वह भाग जो किसी न किसी रूप में चालू सम्पत्तियों में विनियोजित है।

परिवर्तनशील कार्यशील पूँजी (Variable Working Capital) :- स्थाई कार्यशील पूँजी के अतिरिक्त कार्यशील पूँजी का शेष भाग।

मौसमी कार्यशील पूँजी (Seasonal Working Capital) :- जिसकी आवश्यकता वर्ष भर न होकर किसी मौसम विशेष में होती है।

विशिष्ट कार्यशील पूँजी (Specific Working Capital) :- अप्रत्याशित घटनाओं का सामना करने हेतु आवश्यक पूँजी।

6.11 स्वपरख प्रश्न (Self Assessment Question)

1. कार्यशील पूँजी की अवधारणाओं को स्पष्ट करते हुए कार्यशील पूँजी के विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिए।
2. पर्याप्त कार्यशील पूँजी के क्या लाभ हैं? आवश्यकता से अधिक कार्यशील पूँजी होने पर संस्था को क्या हानियाँ हो सकती हैं?
3. कार्यशील पूँजी के विभिन्न स्त्रोतों का उल्लेख करते हुए उन घटकों का वर्णन कीजिए जो कार्यशील पूँजी की मात्रा का निर्धारण करते हों।
4. कार्यशील पूँजी का अनुमान लगाने की विधियों में से किसी एक को काल्पनिक अंक लेते हुए समझाइयें।

6.12 आंकिक प्रश्न (Numerical Questions)

1. संदीप लिमिटेड के लेखा अभिलेखों से निम्नांकित आंकड़े प्राप्त हुए

	रु.
वर्ष के दौरान कच्चे माल का औसत स्कन्ध	18,00,000
वर्ष के दौरान चालू कार्य का औसत स्कन्ध	10,00,000
वर्ष के दौरान तैयार माल का औसत स्कन्ध	5,40,000
देनदारों की औसत बाकी	15,00,000
लेनदारों की औसत बाकी	12,00,000
औसत प्रतिदिन की बिक्री	20,000
बेचे गये तैयार माल की औसत प्रतिदिन की लागत	18,000
कच्चे माल का औसत प्रतिदिन का उपभोग	12,000
आपूर्ति दाताओं से प्राप्त औसत साख अवधि	90 दिन

उक्त आकड़ों के आधार पर कार्यशील पूँजी चक्र (दिनों में) ज्ञात कीजिए।

2. आरूषि लिमिटेड से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर परिचालन चक्र विधि का प्रयोग करते हुए आवश्यक कार्यशील पूँजी की गणना कीजिए:-
   (i) अनुमानित वार्षिक बिक्री 25,000 इकाइयाँ 20 रू. प्रति इकाई की दर पर हैं।
   (ii) उत्पादन एवं विक्रय मात्राएँ एक समान हैं तथा वर्ष पर्यन्त समान बनी रहती है। उत्पादन लागतें इस प्रकार हैं:- समाग्री 9 रू., श्रम 4 रू. तथा उपरिव्यय 2 रू. प्रति इकाई।
   (iii) ग्राहकों को 70 दिनों के लिये उधार दिया जाता है तथा लेनदारों से उधार की सुविधा 60 दिनों के लिए प्राप्त होती है।

(iv) कच्चे माल की 45 दिन की पूर्ति तथा माल की 20 दिन की पूर्तिr स्टॉक में रखी जाती है।

(v) उत्पादन चक्र 25 दिन का हैं तथा प्रत्येक उत्पादन चक्र के प्रारंभ में ही सामग्री का निर्गमन कर दिया जाता है।

(vi) कार्यशील पूँजी का एक चौथाई भाग नकद के रूप में आकस्मिकताओं के लिए भी रखा जाता है।

3. उत्पादन की 1,56,000 इकाई कार्य स्तर हेतु कार्यशील पूँजी अनुमान का विवरण निम्नांकित सूचनाओं के आधार पर कीजिए:-

प्रति इकाई लागत एवं विक्रय :	रू.
कच्चा माल	90
श्रम	40
अप्रत्यक्ष व्यय	70
	200
लाभ	65
विक्रय मूल्य	265

(i) कच्चा माल स्टॉक में औसतन एक माह रहता है।

(ii) कच्चा माल निर्माणावस्था में औसतन दो सप्ताह रहता है।

(iii) तैयार माल स्टॉक में औसतन एक माह रहता है।

(iv) देनदारों को साख 2 माह तथा आपूर्ति दाताओं द्वारा प्रदत्त साख 1 माह है।

(v) मजदूरी भुगतान में 1 ½ सप्ताह की विलम्बना हैं तथा अप्रत्यक्ष व्यय भुगतान में विलम्बना एक माह है।

उत्पादन का 20% नकद बेचा जाता है। रोकड हस्तस्थ 55,000 रू. अनुमानित हैं यह मानते हुए कि उत्पादन वर्ष पर्यन्त समान रूप से चलता हैं, मजदूरी एवं अप्रत्यक्ष व्यय भी उसी प्रकार से देय होते हैं तथा चार सप्ताह एक माह के बराबर है।

4. निम्नांकित सूचनाओं से आवश्यक-कार्यशील पूँजी का अनुमान प्रक्षेपी चिट्ठा विधि का प्रयोग करते हुए कीजिए:-

(i) 1 अप्रेल 2008 को शेष :- समता अंश पूँजी 40,000 पूर्वाधिकार अंश पूँजी 10,000 रू. 6% ऋणपत्र 10,000 रू. तथा स्थाई सम्पत्तियाँ 25000 रू. है।

(ii) प्रतिवर्ष अनुमानित उत्पादन 12000 इकाइयाँ हैं।

(iii) प्रति इकाई विक्रय मूल्य 10 रू. हैं जिसका 55% सामग्री, 25% मजदूरी, 10% उपरिव्यय तथा 10% लाभ हैं।

(iv) उत्पादन हेतु निर्गमन से पूर्व भण्डार में कच्चा माल औसतन 2 माह रखा जाता है।

(v) प्रक्रियांकन समय 1½ माह है।

(vi) निर्मित माल स्टॉक में औसतन 2 माह रहता है।

(vii) देनदारों को उधार अवधि तीन माह हैं।

(viii) लेनदारों द्वारा स्वीकृत उधार दो माह है।

(ix) मजदूरी में तथा उपरिव्यय में भुगतान अन्तराल एक माह है।

(x) उत्पादन एवं विक्रय चक्र नियमित है। ह्रास का ध्यान नहीं रखना हैं।

5. ओम लि. के निम्नांकित अनुमानित लाभ-हानि खाते एवं अन्य सूचनाओं से कार्यशील पूँजी में वृद्धि या कमी का अनुमान लाभ-हानि समायोजन विधि से कीजिए :-

Forecast Profit and Loss Account

To Depreciation	2,50,000	By Gross Profit	30,00,000
To Adm & selling exp.	4,50,000	By Interest	1,50,000
To Interest charges	90,000		
To Loss on sale of plant	2,00,000		
To Income Tax	3,60,000		
To Net Profit	18,00,000		
	31,50,000		**31,50,000**
To Dividend	3,00,000	By Net Profit	
To Balance c/d	15,00,000		
	18,00,000		**18,00,000**

अन्य सूचनाएँ :-

1. एक पुराने संयंत्र जिसकी लागत 10,00,000 रू. (संचित ह्रास 7,00,000 रू.) के 1,00,000 रू. में बिकने की संभावना हैं।
2. वर्ष के दौरान 9,00,000 रू. की लागत का संयंत्र खरीदना है।
3. वर्ष के दौरान 10,00,000 रू. की कीमत के 10% ऋणपत्र परिपक्व हो जायेंगे।
4. 20,00,000 रू. के समता अंश नकद में निर्गमित किए जायेंगे।
5. 5,00,000 रू. की लागत के विनियोग 6,00,000 रू. में बिक जायेंगे।

6.13 उपयोगी पुस्तकें (Further Readings)

1. जे. के. अग्रवाल एवं आर. के. अग्रवाल, प्रबन्धकीय लेखांकन रमेश बुक डिपो, जयपुर।
2. एम. आर. अग्रवाल, प्रबंध लेखांकन, मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर।
3. Maheshwari, S.N., Financial Management, Sultan Chand & Sons, New Delhi
4. एस. पी. गुप्ता, प्रबन्धकीय लेखाविधि, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।

इकाई - 7 रोकड़ का प्रबन्ध (Management of Cash)

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 परिचय एवं अर्थ

7.2 नकद / रोकड कोषों की आवश्यकता

7.3 रोकड़ स्तर को निर्धारित करने वाले तत्व

7.4 रोकड़ प्रबन्ध के उद्देश्य

7.5 रोकड़ प्रबन्ध के लाभ

7.6 रोकड़ प्रबन्ध के दोष

7.7 रोकड़ प्रबन्ध के कार्य

7.8 सारांश

7.9 शब्दावली

7.10 स्वपरख प्रश्न

7.11 उपयोगी पुस्तकें

7.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप योग्य हो सकेंगे कि :

- रोकड़ प्रबन्ध का अर्थ एवं आवश्यकता समझ सकें;
- रोकड़ स्तर को निर्धारित करने वाले तत्वों की जानकारी प्राप्त कर सकें;
- रोकड़ प्रबन्ध के उद्देश्य, लाभ एवं दोष का परीक्षण कर सकें;
- रोकड? प्रबन्ध के कार्य जान सकें।

7.1 परिचय एवं अर्थ (Introduction and Meaning)

मानव शरीर में रक्त का जो महत्व है वही महत्व व्यवसाय में रोकड़ कोष का है। रोकड़ के बिना व्यवसाय की गतिविधियों का संचालन असम्भव है। रोकड़ कोष के कुशल प्रबन्धन से व्यवसाय की समस्त गतिविधियों का कुशल प्रबन्धन किया जा सकता है। रोकड़ कोषों के अन्तर्गत रोकड़, बैंक शेष तथा नकद प्रायः (Near Cash) प्रतिभूतियों को शामिल किया जाता है। बैंक में सावधि जमा (Time-Deposit), विपणन योग्य प्रतिभूतियाँ (Marketable Securities) आदि नकद प्रायः (Near Cash) के उदाहरण हैं।

7.2 नकद रोकड़ कोषों की आवश्यकता (Need for Cash Funds)

नकद कोषों की आवश्यकता सामान्यता निम्नांकित प्रयोजनों से होती है :-

1. **व्यापार सम्बन्धी प्रयोजन (Transaction Motive)** :

व्यापार के सामान्य संचालन में विभिन्न प्रकार के नकद भुगतानों जैसे श्रम, कर, क्रय, लाभांश आदि में रोकड़ कोष की आवश्यकता होती है।

2. **आकस्मिकताओं सम्बन्धी प्रयोजन (Precautionary Motive)** :
   ऐसी घटनाएँ जिनका पूर्वानुमान कठिन होता है जैसे तालाबन्दी, हड़ताल, दुर्घटना आदि की पूर्ति हेतु।
3. **सट्टा सम्बन्धी प्रयोजन (Speculative Motive)** :
   प्रतिभूतियों आदि के मूल्य परिवर्तन का लाभ तत्कालीन समय पर नकद कोष उपलब्ध होने पर ही उठाया जा सकता है।
4. **क्षतिपूर्ति सम्बन्धी प्रयोजन (Compensative Motive)** :
   बैंक अपने ग्राहकों के खाते में न्यूनतम शेष रखवाता है ताकि उस पर ब्याज कमा सके। जिसका प्रयोग ग्राहकों को दी जाने वाली निःशुल्क सेवाओं की क्षतिपूर्ति हेतु कर सके।

7.3 रोकड़ स्तर को निर्धारित करने वाले तत्व (Factors Determining Cash Balance)

1. **संस्था की साख स्थिति (Credit Standing of the Concern)** :
   ऐसी संस्थाएँ जिनकी साख स्थिति अच्छी होती है उन्हें आसानी से विभिन्न स्त्रोतों से रोकड़ उपलब्ध हो जाती है साथ ही सामग्री उधार क्रय पर भी मिल जाती है।
2. **बैंकों से सम्बन्ध तथा संग्रहण नीति (Banking Relations and Collection Policy)**:
   बैंकों से अच्छे सम्बन्ध के कारण अधिविकर्ष (Overdraft) की सुविधा के कारण रोकड़ कोष की आवश्यकता कम होगी। संग्रहण नीति कुशल होने पर डूबते ऋण कम होंगे।
3. **क्रय-विक्रय की शर्तें (Terms of Purchase and Sale)** :
   माल का विक्रय नकद में हो तथा क्रय उधार पर हो तो नकद कोष की आवश्यकता कम होगी।
4. **उत्पादन प्रक्रिया एवं नीति (Production Process and Policy** :
   लम्बी उत्पादन प्रक्रिया में रोकड़ कोष अधिक रखना होगा। संस्था द्वारा वर्तमान माँग के अनुरूप ही उत्पादन करने की नीति हो तो वर्तमान माँग की आवश्यकतानुसार कच्चे माल के क्रय हेतु रोकड़ कोष की आवश्यकता कम होगी।
5. **संस्था के पूँजी व्यय निर्णय (Capital Expenditure Decisions)** :
   यदि संस्था पूँजी व्यय के अनुरूप साधनों की व्यवस्था के उपरान्त कार्य करती है तो अतिरिक्त कोषों की आवश्यकता कम होती है।
6. **अन्य तत्व** : इनके अतिरिक्त माल की माँग की प्रकृति, रोकड़ प्रवाहों की प्रबन्ध कुशलता, आपात स्थिति में उधार लेने की क्षमता आदि ऐसे तत्व हैं जो रोकड़ कोष के स्तर को निर्धारित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

7.4 रोकड़ प्रबन्ध के उद्देश्य (Objectives of Cash Management)

तरलता एवं लाभदायकता में सन्तुलन बनाये रखकर संस्था के लाभों को अधिकतम करना रोकड़ प्रबन्ध का प्रमुख उद्देश्य है। रोकड़ शेष कम होने पर तरलता में कमी होगी किन्तु लाभदायकता अधिक होगी। इसके विपरीत रोकड़ शेष अधिक होने पर तरलता तो अधिक होगी किन्तु लाभदायकता कम होगी। अत: तरलता एवं लाभदायकता में सन्तुलन कायम रखने की दृष्टि से रोकड़ प्रबन्ध के दो प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार है:

(I) भुगतान अनुसूची के अनुसार रोकड़ वितरण की आवश्यकताओं की पूर्ति करना तथा

(II) रोकड़ शेष की बँधी राशि के स्तर को न्यूनतम रखना।

परस्पर विरोधी इन उद्देश्यों की विसंगतियों को दूर कर अधिकतम लाभार्जन एक चुनौती है। अब हम इन दोनों उद्देश्यों को विस्तारपूर्वक समझेंगे

I. **भुगतान अनुसूची के अनुसार रोकड़ वितरण की आवश्यकताओं की पूर्ति करना (Meeting Cash Disbursement Requirement According to Payment Schedule)** :

व्यापार संचालन की सामान्य क्रियाओं के अन्तर्गत कर्मचारियों, अल्पकालीन ऋणदाताओं, माल आपूर्तिकर्त्ताओं आदि को सही समय पर भुगतान न किया जाये तो व्यावसायिक क्रियाऐं ठप्प हो सकती हैं। अत: रोकड़ संवितरण की आवश्यकता पूर्ति हेतु पर्याप्त रोकड़ शेष होना अनिवार्य है। संस्था पर्याप्त रोकड़ शेष द्वारा निम्नांकित लाभ प्राप्त कर सकती है :

1. व्यावसायिक सुअवसरों का लाभ ;
2. व्यापारिक छूट का लाभ ;
3. बैंक एवं ऋणदाताओं से सम्बन्धों का फायदा ;
4. अप्रत्याशित घटनाओं का सामना ;
5. साख बनाये रखना।

II. **रोकड शेष की बँधी राशि के स्तर को न्यूनतम रखना (Minimising Funds Locked up as Cash Balance)**

रोकड़ शेष का उच्चतर स्तर उचित अदायगी को सुनिश्चित करता है किन्तु रोकड़ शेष का एक महत्त्वपूर्ण भाग अनुपयोगी पड़ा रहता है। दूसरी ओर रोकड़ शेष न्यूनतम होने पर भुगतान अनुसूची की पूर्ति में कठिनाई आती है। अत: सभी लाभ-हानियों को दृष्टिगत रखकर रोकड़ शेष का अनुकूलतम स्तर रखना चाहिए।

7.5 रोकड़ प्रबन्ध के लाभ (Advantages of Cash Management)

1. **व्यवसाय को जीवित एवं सफल रखने हेतु** : रोकड कोषों की पर्याप्त पूर्ति से हानियों के उपरान्त भी असफल फर्म को जीवित रखा जा सकता है। समय पर रोकड़ पूर्ति जीवन रक्त का कार्य करती है।
2. **मंदी के समय सहायक** : संस्था के पास मंदी काल में उपयोग की जाने वाली रोकड़ मात्रा की जानकारी रोकड़ प्रबन्ध से हो जाती है।
3. **संस्था की शोधन क्षमता** : संस्था में अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु अनुकूल मात्रा में तरल कोष रोकड़ प्रबन्ध द्वारा रखा जाने पर संस्था की शोधन क्षमता बढ़ती है।
4. **सुदृढ ऋण नीति** : फर्म की उच्च लाभदायकता एवं श्रेष्ठ शोधन क्षमता होने पर समता पर व्यापार (Trading on Equity) नीति के द्वारा सस्ती दर पर ऋण प्राप्ति से समता अंशधारियों की आय में वृद्धि की जा सकती है।
5. **अनुकूलतम कार्यशील पूँजी** : रोकड़ बजट द्वारा अग्रिम रूप से उसके आधिक्य का उचित विनियोग तथा घाटे का अधिविकर्ष आदि से पूर्ति करके अनुकूलतम कार्यशील पूँजी की स्थिति प्राप्त की जा सकती है।
6. **अन्य लाभ** : रोकड़ प्रवाहों की संस्था में निरन्तरता, कम रोकड़ साधनों से अधिकतम कुशलता, लाभ-हानि खाते से प्रकट न होने वाले परिवर्तनों व रोकड़ प्रवाहों की जानकारी जैसे अनेक लाभ उचित रोकड़ प्रबन्ध के माध्यम से प्राप्त किए जा सकते हैं।

7.6 रोकड़ प्रबन्ध के दोष (Demerits of Cash Management)

1. **रोकड़ रखने की लागत** : रोकड़ कोष को अन्यत्र विनियोजित कर लाभ कमाने से वंचित रहना रोकड़ रखने की लागत हो जाती है।
2. **अनिश्चित भविष्य** : भावी क्रियाओं के अस्पष्ट अनुमान होने पर रोकड़ प्रबन्ध संस्था के सहायक के स्थान पर बाधक साबित होता है।
3. **वित्तीय दबाव** : संस्था के वित्तीय साधन शोधन क्षमता को प्रभावित करते हैं। रोकड़ प्रबन्ध की कमियाँ वित्तीय दबाव में बढ़ोतरी करती है तथा फर्म दिवालियेपन की ओर अग्रसर होती है।
4. **मंदी के अतिरिक्त अन्य तत्व** : रोकड़ बजट राजनैतिक, तकनीकी व व्यवहार परिवर्तन का अध्ययन न कर केवल भावी तेजी या मन्दी का अनुमान लगाता है।

7.7 रोकड़ प्रबन्ध के कार्य (Functions of Cash Management)

अब हम रोकड़ प्रबन्ध हेतु किये जाने वाले कार्यों का अध्ययन निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत करेंगे :-

1. रोकड़ नियोजन एवं नियंत्रण (Cash Planning and Control) ;

2. कोषों का कुशलतापूर्वक संग्रहण एवं वितरण (Collecting and Disbursing Funds Efficiently) ;
3. उपयुक्त कार्यशील रोकड़ शेष का निर्धारण (Determining the Appropriate Working Cash Balance) ;
4. शेष आधिक्य रोकड़ का विनियोजन (Investing the Remaining Excess Cash Balance).

अब हम इनका विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे :-

1. **रोकड़ नियोजन एवं नियंत्रण (Cash Planning and Control)** :
रोकड़ का उचित नियोजन एवं नियंत्रण रोकड़ शेष को न्यूनतम रखते हुए लाभ को अधिकतम करने में सहायक सिद्ध होता है। रोकड़ प्राप्ति की मात्रा का अनुमान एवं व्यवस्थित भुगतान रोकड़ नियोजन के अन्तर्गत शामिल किये जाते हैं। रोकड़ नियंत्रण में यह ध्यान रखा जाता है कि रोकड़ नियोजन के अनुसार रोकड़ प्राप्ति या भुगतान हो रहे हैं या नहीं। रोकड़ नियोजन एवं नियंत्रण हेतु रोकड़ बजट (Cash Budget), रोकड़ प्रवाह विश्लेषण (Cash Flow Analysis), रोकड़ प्रबन्ध प्रतिमान (Cash Management Models) तथा अनुपात विश्लेषण (Ratio Analysis) का प्रयोग किया जाता है।

2. **कोषों का कुशलतापूर्वक संग्रहण एवं वितरण (Collecting and Disbursing Funds Efficiently)** : रोकड़ कोषों के प्रभावी संग्रहण एवं संवितरण हेतु रोकड़ चक्र (Cash Cycle) को समझना आवश्यक है क्योंकि यह व्यापार में रोकड़ प्रवाह तथा कार्यशील रोकड़ कोषों के आवश्यकता के बारे में जानकारी प्रदान करता है। रोकड़ से कच्चा माल क्रय करते हैं अथवा लेनदारों को भुगतान करते हैं। कच्चे माल पर प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष व्ययों का भुगतान करके पक्का माल तैयार किया जाता है। निर्मित माल को या तो नकद बेचा जाता है अथवा उधार बेचकर देनदारों से रोकड़ प्राप्त करते हैं। पुन: कच्चा माल इस रोकड़ से खरीदते हैं। अत: व्यवसाय में यह चक्र निरन्तर चलता रहता है जिसे रोकड़ चक्र कहते हैं। इस रोकड़ चक्र में विभिन्न समय अवधियों का उचित समायोजन कर कुशलतापूर्वक का से रोकड़ संग्रहण एवं संवितरण किया जाता है।

रोकड़ वसूली की गति में सुधार की विधियाँ **(Methods of Improving Cash Collection)** :

(क) **संग्रहण केन्द्रों की स्थापना** : ग्राहकों द्वारा प्रेषित भुगतान तथा संस्था द्वारा प्राप्ति के मध्य की समय अवधि को कम करने हेतु संस्था द्वारा बड़ी मात्रा में व्यापार के स्थानों पर रोकड़ संग्रहण केन्द्रों की स्थापना की जानी चाहिए। क्षेत्र विशेष के वसूली केन्द्र स्थानीय बैंक में राशि जमा करा देंगे जहाँ से राशि फर्म के लेनदेन वाले बैंक में जमा करा दी जाती है। यह पद्धति कन्सेन्ट्रेशन बैंकिंग (Concentration Banking) कहलाती है।

(ख) **लॉक-बॉक्स व्यवस्था** : संस्था जहाँ व्यापार करती है वहाँ डाकघर में लॉक- बॉक्स किराये पर लेकर ग्राहकों को उसमें चैक डालने हेतु निर्देशित कर देती है। क्षेत्र बड़ा होने पर अलग-अलग क्षेत्र के डाकघर में लॉक-बॉक्स ले लिये जाते हैं। बैंक को डाकघर से चैक

निकालने हेतु अधिकृत कर दिया जाता है जिसे दिन में कई बार चैक निकालकर बैंक संस्था के खाते में जमा कर देती है जिससे संस्था का चैक प्राप्त करने, लेखा करने, बैंक में जमा कराने का समय बच जाता है। कर्मचारियों द्वारा धोखाधडी, देरी से जमा पर चैक अनादरण की समस्या आदि भी समाप्त हो जाती है।

(ग) **बैंक खातों की संख्या में कमी** : अनेक खाते बैंकों में होने से न्यूनतम शेष की बहुत बड़ी राशि अनावश्यक रूप से जमा पड़ी रहती है। जिस पर ब्याज के नुकसान के साथ विनियोजन के अवसर भी कम हो जाते हैं। अत: छोटे-छोटे खातों के स्थान पर एक ही खाता खोला जाना उचित रहेगा।

(घ) **बड़ी राशि के चैकों हेतु विशिष्ट व्यवस्था** : इनके लिए व्यक्तिगत वसूली या अन्य विशिष्ट व्यवस्था की जाये ताकि शीघ्रातिशीघ्र रोकड़ प्राप्ति हो सके।

रोकड़ संवितरण पर नियंत्रण (Control Over Cash Disbursement) :

संस्था की साख को दृष्टिगत रखकर रोकड़ संवितरण की गति मन्द रखने की कोशिश होनी चाहिए। संस्था निम्नांकित तरीकों से भुगतान में विलम्ब कर सकती है -

1. जटिल भुगतान प्रक्रिया
2. भुगतान केवल चैक द्वारा हो ;
3. भुगतान समय व दिन निर्धारित हो ;
4. विशिष्ट त्यौहार आदि दिवस व समय पर भुगतान न करना ;
5. नकद छूट का त्याग करके अवधि पूर्ण होने पर भुगतान बशर्ते इससे नुकसान न हो।

3. **उपयुक्त कार्यशील रोकड़ शेष का निर्धारण (Determining the Appropriate Working Cash Balance)** :

रोकड़ कोषों को उचित रूप से संग्रहण व संवितरण करने के बाद संस्था के समक्ष उपयुक्त कार्यशील रोकड़ शेष के निर्धारण की समस्या आती है। किसी भी संस्था का दीर्घकालीन वित्तीय स्वरूप तो दीर्घकालीन योजनाओं द्वारा निर्धारित होता है, किन्तु कार्यशील रोकड़ शेष का निर्धारण परिचालन योजना द्वारा होता है।

किसी भी व्यापार में व्यवहारों के निष्पादन हेतु कार्यशील रोकड़ शेष रखा जाता है। यदि यह शेष कम होगा तो व्यापार में रोकड़ की कमी पड़ेगी और इस स्थिति में संस्था को या तो अपनी विक्रयशील प्रतिभूतियों को बेचना होगा या रोकड़ उधार लेना होगा तथा इस स्थिति में संस्था को व्यवहार लागतें (Transaction Costs) वहन करनी पड़ेगी। दूसरी तरफ यदि संस्था में अधिक कार्यशील रोकड़ शेष है तो संस्था को प्रतिभूतियों पर ब्याज अर्जन का मौका छोड़ना होगा। (अर्थशास्त्री इसे अवसर लागत कहते हैं) अत: संस्था को 'अनुकूलतम कार्यशील रोकड़ शेष' (Optimal Working Cash Balance) रखना होता है।

इसे हम आगे दिये गए रेखाचित्र के माध्यम से प्रदर्शित कर सकते हैं -

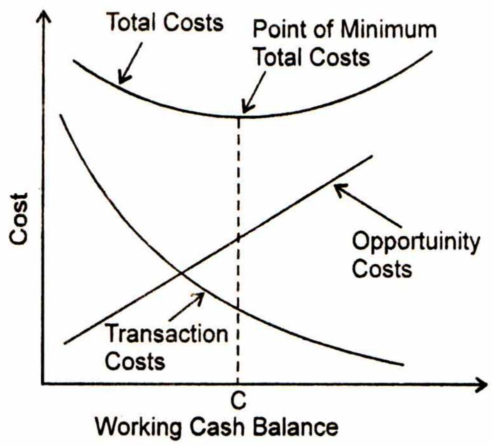

'अनुकूलतम कार्यशील रोकड़ शेष' की राशि निर्धारण हेतु व्यवहार लागतों व अवसर लागतों के मध्य सामंजस्य स्थापित किया जाता है। ऊपर दिये गए रेखाचित्र से यह स्पष्ट है कि यदि संस्था अपने यहाँ निम्न कार्यशील रोकड़ शेष रखती है तो उसे रोकड़ की आवश्यकता पड़ने पर अल्पकालीन प्रतिभूतियों को बेचना पड़ेगा तथा पर्याप्त शेष होने के स्थिति में प्रतिभूतियाँ क्रय करनी होंगी, और व्यवहार लागतें वहन करनी पड़ेगी। अत: यह कह सकते हैं कि कार्यशील रोकड़ शेष अधिक होने पर व्यवहार लागते उतनी ही कम होंगी लेकिन अवसर लागतें अधिक होंगी। रेखाचित्र में 'C' बिन्दु ऐसी राशि को दर्शाता है जहाँ व्यवहार लागतों व अवसर लागतों का योग न्यूनतम है। अत: वित्तीय प्रबन्ध को भी कार्यशील रोकड़ का शेष 'C' बिन्दु पर रखना चाहिए।

अनुकूलतम कार्यशील रोकड़ शेष निर्धारण (Finding the Optimal Working Cash Balance):

किसी भी संस्था में अनुकूलतम कार्यशील रोकड़ शेष का निर्धारण प्राप्तियों व वितरकों द्वारा निर्धारित होता है। किसी भी संस्था के प्रारम्भ व अन्तिम नगद शेष को निम्नलिखित सूत्र द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है -

अन्तिम शेष = प्रारम्भिक शेष + प्राप्तियाँ - संवितरण

(Ending Balance = Beginning Balance + Receipts - Disbursements)

यदि किसी भी संस्था में प्राप्तियों व वितरणों की राशि एक समान हो एवं निश्चित रूप से ज्ञात हो तो कार्यशील रोकड़ शेष का निर्धारण आसानी से हो जायेगा लेकिन व्यवहार में प्राप्तियों व वितरणों में विचरणता तथा अनिश्चितता होती है। कुछ संस्थाओं में तो अस्थिरता अधिक ही होती है। विश्लेषण से कुछ सीमा तक इस अस्थिरता का अनुमान शेष के निर्धारण हेतु मुख्यतः दो प्रतिमानों (Models) की सहायता ली जा सकती है।

1. बाउमॉल प्रतिमान (Baumol Model)
2. मिलर-ऑर प्रतिमान (Miller Orr Model)

1. **बाउमॉल प्रतिमान (Baumol Model)** :

यह प्रतिमान विलियम जे. बाउमोल ने प्रतिपादित किया था। यह स्कन्ध नियन्त्रण के आर्थिक आदेश मात्रा (EOQ) पर आधारित है।

इस प्रतिमान की सहायता से रोकड़ शेष रखने की लागत अर्थात् अर्जित किये जा सकने वाले ब्याज की हानि व प्रतिभूतियों के विक्रय पर लगने वाली व्यवहार लागत के मध्य सम्बन्ध स्थापित किया जाता है।

इस मॉडल के निम्नांकित रेखाचित्र माध्यम से समझाया गया है -

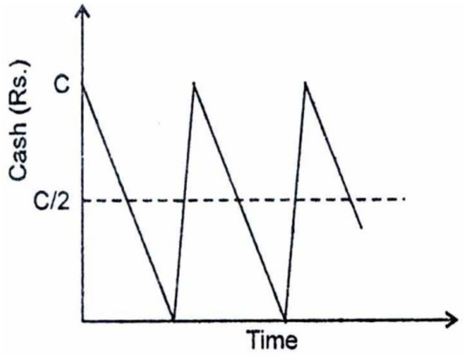

इस प्रतिमान में रोकड़ प्राप्ति व भुगतान की राशि निश्चित होने पर औसत कार्यशील रोकड़ का निर्धारण किया जाता है। इस प्रतिमान में रेखाचित्र में यह मानते हैं कि संस्था में निश्चित समयावधि में रोकड़ मांग स्थिर है।

माना प्रारम्भ में संस्था के पास रोकड़ राशि C रू. थी। यह रोकड़ राशि खर्च कर देने पर संस्था प्रतिभूतियों का विक्रय कर देती है तथा पुन: 'C' रोकड़ शेष हो जाता है।

यहाँ वित्तीय प्रबन्ध 'C' राशि का निर्धारण करता है। 'C' राशि वह होनी चाहिए जहाँ प्रतिभूतियों की विक्रय व्यवहार लागत व प्रतिभूतियों के विक्रय में होने वाले ब्याज की हानि कम से कम हो।

इन लागतों को निम्न प्रकार से व्यक्त करते हैं -

$$b = \left(\frac{T}{C}\right) + i\left(\frac{C}{2}\right)$$

यहाँ, b = प्रतिभूतियों के प्रति व्यवहार पर लगने वाली लागत

T = एक निश्चित समय में रोकड़ की कुल मांग

i = प्रतिभूतियों पर एक निश्चित समय में ब्याज दर (जिसे स्थिर माना है।)

अर्थात् 'C' की राशि जितनी अधिक होगी संस्था को उतनी ही ब्याज की हानि होगी लेकिन व्यवहार लागत उतनी ही कम होगी। 'C' की अनुकूलतम स्थिति का निर्धारण निम्न सूत्र से कर सकते हैं -

सूत्र $$C = \frac{2bT}{i}$$

उपरोक्त सूत्र जो कि EOQ पर आधारित है, की निम्नलिखित मान्यताऐं हैं -

1. प्राप्तियों व भुगतानों का क्रम लगातार एक सा रहेगा।
2. नकद भुगतान उस निश्चित समयावधि के लिए स्थिर रहेंगें।

ये दोनों मान्यताऐं व्यवहार में सही नहीं पायी जाती है। क्योंकि वास्तव में नकद भुगतान अस्थिर व अनिश्चित होते है तथा भुगतान व प्राप्तियों की राशियों में पर्याप्त विचरण रहता है।

2. **मिलर-ऑर प्रतिमान (Miller-Orr Model)** :

अगर रोकड़ की मांग स्थिर न हो तथा उनकी पहले से ही जानकारी न हो सके, तो ऐसी स्थिति में बाउमॉल प्रतिमान उपयुक्त नहीं रहता है। ऐसी दशा में मिलर ऑर प्रतिमान की सहायता से रोकड़ का अनुकूलतम स्तर ज्ञात किया जा सकता है। इस प्रतिमान में यह माना जाता कि रोकड़ की मांग अज्ञात है।

इस प्रतिमान में दो नियन्त्रण सीमाऐं ज्ञात की जाती हैं - अपर नियन्त्रण सीमा व अधर नियन्त्रण सीमा। जब रोकड़ शेष अपर नियन्त्रण सीमा पर पहुँच जाता है तो कुछ राशि अल्पकालीन प्रतिभूतियों में विनियोग कर दी जाती है एवं जैसे ही रोकड़ राशि अधर नियन्त्रण सीमा पर पहुँचती है तो प्रतिभूतियों का विक्रय कर दिया जाता है।

दोनों नियन्त्रण सीमाओं का निर्धारण व्यवहार लागत व अवसर लागत के आधार पर होता है।

दोनों नियन्त्रण सीमाओं को मिलर ऑर प्रतिमान में इस प्रकार दर्शाते हैं -

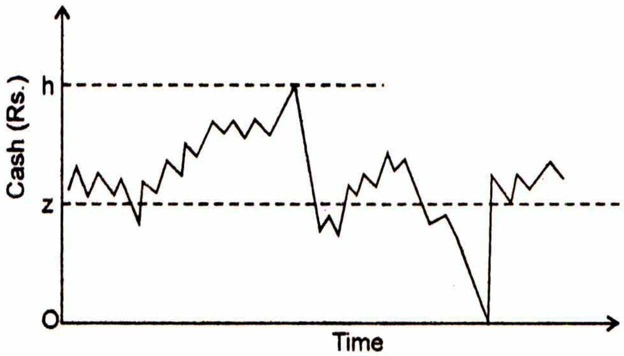

यहीं रेखाचित्र में 'h' अपर नियन्त्रण सीमा तथा 'o' अधर नियन्त्रण सीमा है।

जब रोकड़ शेष अपर नियन्त्रण सीमा 'h' पर पहुँच जाता है तब h - z राशि की अल्पकालीन प्रतिभूतियाँ क्रय करते है तब नया रोकड़ शेष 'z' पर आ जाता है। जब रोकड़ शेष अधर नियन्त्रण सीमा 'O' पर आ जाता है तब z राशि की प्रतिभूतियों का विक्रय करते हैं तथा रोकड़ शेष पुन: 'z' राशि हो जाता है (अधर सीमा शून्य से अधिक राशि पर भी हो सकती है तद्नुसार h व z सीमा में भी परिवर्तन होगा)।

'h' व 'z' का निर्धारण केवल स्थाई व्यवहार लागत व अवसर लागत पर ही निर्भर नहीं है बल्कि रोकड़ शेषों के उच्चावचन भी इसे प्रभावित करते हैं। निम्नांकित सूत्र की सहायता से 'z' की अनुकूलतम सीमा, जो कि प्रतिभूति व्यवहार हेतु वापसी बिन्दु है, को निर्धारित कर सकते हैं :-

$$z = \frac{\sqrt{3bo2}}{4i}$$

यहाँ b = प्रतिभूति व्यवहार से सम्बद्ध स्थिर लागत, o^2 = दैनिक शुद्ध रोकड़ प्रवाहों का प्रसरण i = विक्रयशील प्रतिभूतियों पर प्रतिदिन ब्याज दर

4. **शेष आधिक्य रोकड़ का विनियोजन (Investing the Remaining Excess Cash Balance)**: कार्यशील रोकड़ शेष आवश्यकता से अधिक होने की स्थिति में ब्याज अर्जन के उद्देश्य से विक्रयशील प्रतिभूतियों में विनियोजित कर दिया जाना चाहिए। संस्थाओं में कार्यशील पूँजी की आवश्यकताएँ आर्थिक, तकनीकी तथा विभिन्न मौसमों के कारण परिवर्तित होती रहती हैं, साथ ही अनिश्चितता के कारण रोकड़ प्रवाह का अनुमान ठीक प्रकार से नहीं हो पाता है। अत: आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु एहतियाती रोकड़ शेष के रूप में आधिक्य रोकड़ शेष का उपयोग किया जा सकता है। संस्था आधिक्य रोकड़ शेष का अन्यत्र विनियोजन कर आवश्यकता की पूर्तिr अल्पकालीन ऋणों से कर सकती है। आधिक्य रोकड़ शेष का प्रतिभूतियों में विनियोजन लाभदायकता एवं तरलता को ध्यान में रखकर करना चाहिए। इसके साथ ही यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि क्या प्रतिभूति विशेष को किसी भी समय बिना हानि के बेचा जा सकता है। प्रतिभूति का बिना हानि के विक्रय 'अदायगी जोखिम' (Default Risk), 'परिपक्वता' (Maturity) तथा विक्रयशीलता (Marketability) पर निर्भर करता है। सही समय पर मूलधन एवं ब्याज प्राप्त होने की सम्भावना न होने को अदायगी जोखिम कहते हैं। परिपक्वता से तात्पर्य एक निश्चित समय के उपरान्त प्रतिभूति पर मूलधन व ब्याज वापस प्राप्त करने का अधिकार है। प्रतिभूतियों की नकदी में परिवर्तनशीलता को प्रतिभूतियों की विक्रयशीलता कहा जाता है।

7.8 सारांश (Summary)

प्रत्येक व्यवसाय की गतिविधियों के संचालन में रोकड़ की महत्त्वपूर्ण भूमिका होने से रोकड़ का कुशल प्रबन्धन किया जाना आवश्यक है। रोकड़ की आवश्यकता सामान्यत: व्यापार सम्बन्धी प्रयोजनों, आकस्मिकताओं सम्बन्धी प्रयोजनों, सट्टा सम्बन्धी प्रयोजनों तथा क्षतिपूर्ति सम्बन्धी प्रयोजनों से होती है। रोकड़ स्तर को निर्धारित करने में संस्था की साख स्थिति, बैंकों से सम्बन्ध तथा संग्रहण नीति, क्रय-विक्रय की शर्तें, उत्पादन प्रक्रिया एवं नीति, संस्था की पूँजी व्यय निर्णय, माल की माँग की प्रकृति, आपात स्थिति में उधार लेने की क्षमता तथा रोकड़ प्रवाहों की प्रबन्ध कुशलता जैसे अनेक तत्व महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। रोकड़ प्रबन्ध के दो प्रमुख उद्देश्य हैं जिनमें पहला भुगतान अनुसूची के अनुसार रोकड़ वितरण की आवश्यकताओं की पूर्ति करना तथा दूसरा रोकड़ शेष की बँधी राशि के स्तर को न्यूनतम रखना है। संस्था पर्याप्त रोकड़ कोष द्वारा व्यापारिक सुअवसरों का लाभ, व्यापारिक छूट का लाभ, साख बनाये रखना, अप्रत्याशित घटनाओं का सामना, बैंक एवं ऋणदाताओं से सम्बन्धों का फायदा जैसे अनेक लाभ प्राप्त कर सकती है। रोकड़ शेष के उच्चतर एवं निम्नतर स्तर के लाभ-हानियों को दृष्टिगत रखकर ही अनुकूलतम स्तर का निर्णय लिया जाना चाहिए।

अगर संस्था का रोकड़ प्रबन्ध कुशलतम है तो संस्था सफल रहेगी एवं लम्बे समय तक अस्तित्व में रहेगी। मंदी के समय सहायता रहेगी। संस्था की शोधन क्षमता एवं सुदृढ

ऋण नीति, कम रोकड़ साधनों से अधिकतम कुशलता, अनुकूलतम कार्यशील पूँजी जैसे लाभ प्राप्त किए जा सकते हैं। रोकड़ कोष रखने के दोष भी हैं। इस कोष को अन्यत्र विनियोजन न करने से ब्याज की हानि, भविष्य में अस्पष्ट अनुमान होने पर रोकड़ प्रबन्ध का सहायक के स्थान पर बाधक होना तथा अन्य वित्तीय दबाव भी फर्म को नुकसान पहुँचाते हैं। रोकड़ प्रबन्ध के प्रमुख कार्यों में रोकड़ नियोजन एवं नियंत्रण, कोषों का कुशलतापूर्वक संग्रहण व नियंत्रण, उपयुक्त कार्यशील रोकड़ शेष का निर्धारण तथा शेष आधिक्य रोकड़ का विनियोजन सम्मिलित किए जाते हैं। रोकड़ का नियोजन एवं नियंत्रण रोकड़ बजट, रोकड़ प्रवाह विश्लेषण, रोकड प्रबन्ध प्रतिमान तथा अनुपात विश्लेषण द्वारा किया जा सकता है। रोकड़ संग्रहण एवं संवितरण हेतु रोकड़ चक्र में विभिन्न समय अवधियों का उचित समायोजन किया जाना चाहिए। रोकड़ वसूली की गति में सुधार हेतु संग्रहण केन्द्रों की स्थापना, लॉक-बॉक्स व्यवस्था, बैंक खातों की संख्या में कमी तथा बड़ी राशि के चैकों हेतु विशिष्ट व्यवस्था जैसे उपाय अपनाने चाहिए। रोकड़ संवितरण पर नियंत्रण हेतु जटिल भुगतान प्रक्रिया, भुगतान केवल चैक द्वारा, भुगतान समय व दिन निर्धारण, नकद छूट त्याग, त्यौहार विशेष दिन पर भुगतान न करने जैसे तरीके अपनाये जाने चाहिए। अनुकूलतम कार्यशील रोकड़ शेष की राशि का निर्धारण व्यवहार लागतों एवं अवसर लागतों के मध्य सामंजस्य स्थापित कर किया जाता है। इस हेतु बाउमान प्रतिमान तथा मिलर तथा ऑर प्रतिमान की सहायता ली जाती है। बाउमाल प्रतिमान आर्थिक आदेश मात्रा पर आधारित हैं जिसमें अर्जित किए जा सकने वाले ब्याज की हानि व प्रतिभूतियों के विक्रय पर लगने वाली व्यवहार लागत के मध्य सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। मिलर ऑर प्रतिमान में रोकड़ माँग अज्ञात मानकर अपर नियंत्रण व अधर नियंत्रण सीमाएं ज्ञात की जाती है। रोकड़ प्रबन्ध के अन्तिम कार्य में शेष आधिक्य रोकड़ का प्रतिभूतियों में विनियोजन लाभदायकता एवं तरलता को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए ताकि अदायगी जोखिम, परिपक्वता तथा विक्रयशीलता तत्वों के आधार पर प्रतिभूति विशेष को किसी भी समय बिना हानि के बेचा जा सकता है।

7.9 शब्दावली (Glossary)

रोकड़ कोष (Cash Fund) : इसके अन्तर्गत रोकड़, बैंक शेष व नकद प्रायः (Near Cash) प्रतिभूतियों को शामिल किया जाता है।

अदायगी जोखिम (Paying Risk) : सही समय पर मूलधन व ब्याज प्राप्त न होने की सम्भावना को अदायगी जोखिम कहते हैं।

परिपस्वता (Maturity) : एक निश्चित समय के उपरान्त प्रतिभूति पर मूलधन व ब्याज वापस प्राप्त करने का अधिकार।

विक्रयशीलता (Marketable) : प्रतिभूतियों की नकदी में परिवर्तनशीलता को प्रतिभूतियों की विक्रयशीलता कहा जाता है।

7.10 स्वपरख प्रश्न (Self Assessment Questions)

1. रोकड़ प्रबन्ध से आपका क्या तात्पर्य है। रोकड़ कोष रखने की आवश्यकताओं का सविस्तार वर्णन कीजिए।
2. रोकड़ प्रबन्ध के स्तर को निर्धारित करने वाले तत्वों की व्याख्या कीजिए।
3. रोकड़ प्रबन्ध के लाभ एवं दोषों का वर्णन कीजिए।
4. टिप्पणियाँ लिखिए

   (अ) रोकड़ कोषों का कुशलतापूर्वक संग्रहण एवं संवितरण

   (ब) बाउमॉल प्रतिमान

   (स) मिलर-ऑर प्रतिमान

   (द) शेष आधिक्य रोकड़ का विनियोजन

7.11 उपयोगी पुस्तकें (Further Readings)

1. जे. के. अग्रवाल. एवं आर. के. अग्रवाल, **प्रबन्धकीय लेखांकन**, रमेश बुक डिपो, जयपुर।
2. एम. आर. अग्रवाल, **प्रबंध लेखांकन**, मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर।
3. Maheshwari, S.N., **Financial Management**, Sultan Chand & Sons, New Delhi.
4. एस. पी. गुप्ता, **प्रबन्धकीय लेखाविधि** साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा

इकाई-8 प्राप्यों का प्रबन्ध (Management of Receivables)

इकाई संरचना

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 अर्थ एवं परिभाषा

8.3 आवश्यकता

8.4 क्षेत्र

8.5 उदाहरण

8.6 सारांश

8.7 शब्दावली

8.8 अभ्यास

8.9 संदर्भ ग्रन्थ

8.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि.

- प्राप्यों का प्रबन्ध का अर्थ, आवश्यकता एवं इसके क्षेत्र के बारे में जान सकेंगे :
- साख नीति का निर्धारण जान सकेंगे ;
- साख मूल्यांकन करना जान सकेंगे ;
- प्राप्यों का नियन्त्रण करना जान सकेंगे ;
- प्राप्यों के प्रबन्ध की शब्दावली के बारे में जान सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

व्यवसायिक संस्था का प्रमुख कार्य वस्तुओं या सेवाओं का विक्रय होता है। नकद विक्रय होने पर भुगतान तुरंत प्राप्त हो जाता है जबकि उधार विक्रय के दशा में भुगतान भविष्य में प्राप्त होता है। ग्राहकों को उधार बिक्री के परिणाम स्वरूप प्राप्य उत्पन्न होते हैं। प्राप्यों का व्यवसाय की चालू सम्पत्तियों में प्राप्यों का अनुपात 20 प्रतिशत तक होता है तथा चालू सम्पत्तियों में इनका भाग एक तिहाई तक होता है। यद्यपि संस्था में अन्य स्थायी सम्पत्तियों की भांति इस चल सम्पत्ति (प्राप्यों) के लिए वित्त की कोई पृथक व्यवस्था नहीं होती है, किन्तु बड़े व्यवसायों में पूंजी एक बहुत बड़ा भाग प्राप्यों में विनियोजित रहता है इसलिए इनका उचित प्रबन्ध करना अत्यन्त आवश्यक होता है।

8.2 अर्थ एवं परिभाषा

प्राप्यों का प्रबन्ध व्यवसायिक संस्था का एक महत्वपूर्ण कार्य हैं। आधुनिक युग में नकद विक्रय के साथ-साथ उधार विक्रय भी आवश्यक हैं। उधार विक्रय के बिना कोई भी संस्था प्रतिस्पर्द्धा के युग में बाजार में बिक्री की मात्रा में वृद्धि नहीं कर सकती है अर्थात् प्राप्य आधुनिक व्यवसाय में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

व्यवसाय का जीवन रक्त साख होती है। साख अर्थात् उधार की नीति को अपनाकर नये ग्राहकों को माल बेचकर विक्रय में वृद्धि कर लेती है साथ ही पुराने ग्राहकों को भी व्यवसाय में बनाये रखती है। उधार बिक्री से संस्था के लाभों में वृद्धि हो जाती है। दूसरी ओर उधार माल बेचने से पूंजी का एक बड़ा भाग प्राप्यों में फँस जाता है इसके अलावा उधार बिक्री की दशा में ग्राहक यदि समय पर भुगतान नहीं करते हैं तो डूबते ऋणों की राशि में वृद्धि हो जाती हैं। अत: प्राप्यों के सम्बन्ध में संस्था को दोहरी जोखिम उठानी पड़ती है। एक तो प्राप्यों में विनियोजित पूंजी पर ब्याज की लागत, दूसरा उनसे भुगतान न प्राप्त होने पर डूबते ऋणों के कारण होने वाली हानि। जब संस्था लाभ एवं लागतों में संतुलन बनाये रखने का प्रयास करती है तो उसे ही प्राप्यों का प्रबन्ध कहा जाता हैं। इस प्रकार प्राप्यों में विनियोजन से होने वाली आय (उधार से बिक्री से लाभ में वृद्धि) तथा उत्पन्न होने वाली लागत (ब्याज) एवं हानियों (डूबते ऋण) में संतुलन स्थापित करना ही प्राप्यों का प्रबन्ध है।

हेम्पटन के अनुसार, "प्राप्य व्यवसाय के सामान्य संचालन के दौरान माल अथवा सेवाओं की बिक्री के कारण फर्म की देय राशि का प्रतिनिधित्व करने वाले सम्पत्ति खाते हैं।"

प्राप्यों में कोषों का विनियोजन के निर्णयन की वह प्रक्रिया है जो कि संस्था के विनियोग के कुल प्रत्याय को अधिकतम कर सके तथा लागतों एवं हानियों में कमी ला सके, प्राप्यों का प्रबन्ध कहलाता है।

वह प्रक्रिया जो व्यवसाय में कोषों के विनियोजन का निर्णय करती है ताकि संस्था के विनियोग के कुल को प्रत्याय अधिकतम किया जा सके, लागतों तथा हानियों में कमी ला सके, प्राप्यों का प्रबन्ध कहलाती है।

8.3 आवश्यकता

आधुनिक युग में व्यवसाय का आकार छोटा हो या बड़ा, प्रत्येक व्यवसाय में प्राप्यों के प्रबन्ध की आवश्यकता होती है। प्राप्यों के प्रबन्ध का दायित्व वित्तीय प्रबन्धक का होता है। प्राप्यों के उचित प्रबन्ध द्वारा संस्था विनियोग पर अधिकतम प्रत्याय प्राप्त करती है। दूसरी ओर इससे बिक्री को इस सीमा तक बढ़ाया जाता है जहाँ तक डूबते ऋणों की जोखिम स्वीकार्य सीमाओं में रहे। किसी भी संस्था को प्राप्यों के प्रबन्ध की आवश्यकता निम्नलिखित कारणों से होती है :-

1. अनुकूलतम मात्रा में विक्रय के लिए प्राप्यों का प्रबन्ध आवश्यक होता है।

2. साख लागतों को नियंत्रित करने तथा न्यूनतम करना भी व्यवसाय के लिए आवश्यक होता है।
3. प्राप्यों में विनियोग को अनुकूलतम स्तर पर बनाये रखने के लिए भी प्राप्यों का प्रबन्ध आवश्यक होता है।
4. हानियों में कमी करने हेतु भी संस्था प्राप्यों का प्रबन्ध करती है।
5. उधार बिक्री की राशि वसूली के लिये संस्था प्राप्यों के प्रबन्ध की नीति को अपनाती है।

8.4 क्षेत्र

प्राप्यों के प्रबन्ध का क्षेत्र बहुत व्यापक है इसमें संस्था की साख नीति का निर्धारण, साख मूल्यांकन तथा साख नियंत्रण आदि कार्यों को शामिल किया जाता है। प्राप्यों के प्रबन्ध के क्षेत्र को नीचे दिये गये चार्ट द्वारा समझाया गया है -

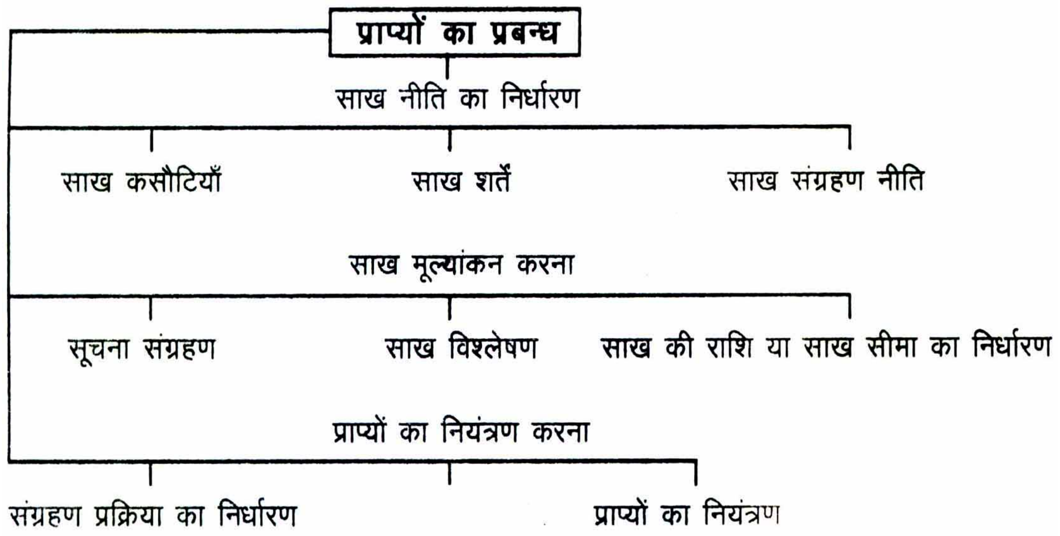

I. **साख नीति का निर्धारण**

साख नीति वह नीति होती है जो व्यवसाय में साख की मात्रा अर्थात् प्राप्यों में निवेश को प्रभावित करती है। प्राप्यों में निवेश या विनियोग पर सामान्य आर्थिक दशाओं, उद्योगों के प्रमापों, तकनिकी परिवर्तनों तथा प्रतियोगिता, आय आदि तत्वों का कोई नियंत्रण नहीं होता है। किसी एक तत्व में परिवर्तन होने पर संस्था की साख नीति में परिवर्तन हो जाता है। साख नीति दो प्रकार की हो सकती है (i) उदार साख नीति (ii) कठोर साख नीति।

(i) **उदार साख नीति** : इस नीति के अन्तर्गत ग्राहकों को उदार शर्तों पर बड़ी मात्रा में माल का विक्रय किया जाता है तथा भुगतान का समय भी अधिक होता है। इससे संस्था अधिक मात्रा में माल बेचकर या सेवा प्रदान करके लाभों की मात्रा में वृद्धि कर सकती है। इस साख नीति से संस्था का लाभ बढ़ता है लेकिन साथ ही भुगतान न मिलने से डूबते ऋणों की हानियाँ बढ़ जाती हैं। उधार बिक्री के कारण संस्था में तरलता की कमी की समस्या भी उत्पन्न हो सकती है।

(ii) **कठोर साख नीति** : कठोर साख नीति वह नीति होती है जिसमें संस्था केवल उन्हीं ग्राहकों को उधार माल बेचती है जिनकी साख योग्यता अच्छी होती है। इस नीति को अपनाने से संस्था के उधार विक्रय की लागतों में कमी हो जाती है तथा डूबते ऋणों की राशि भी कम हो जाती है। किन्तु यह नीति संस्था के विक्रय तथा लाभ उपरान्त अर्थात् लाभ की मात्रा को भी प्रभावित करती है। इस नीति को अपनाने से विक्रय एवं लाभ दोनों में कमी हो जाती है।

उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि यदि संस्था उदार साख नीति का अनुसरण करती है तो इसकी तरलता निरन्तर कम होती जाती है किन्तु लाभ उपरान्त अर्थात लाभ की माग बढ़ जाती है। दूसरी ओर यदि संस्था द्वारा कठोर साख नीति का पालन करने से विक्रय तथा लाभ निरन्तर कम होते जाते हैं। अत: यह कहना उचित है कि संस्था के द्वारा ऐसी साख नीति बनायी जाये जिससे तरलता एवं लाभदायकता का सर्वोत्तम संभावित संयोजन प्राप्त किया जा सके तथा प्रत्याय को अधिक किया जा सके। इसे नीचे दिये गये रेखा चित्र द्वारा दर्शाया गया है -

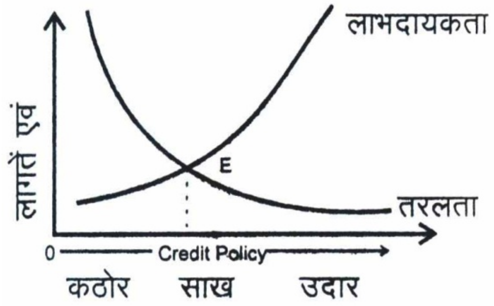

उपरोक्त रेखा चित्र में E बिन्दु साम्य बिन्दु है जहाँ दर तरलता एवं लाभदायकता वक्र एक दूसरे को काटते हैं। यह बिन्दु अनुकूलतम साख बिन्दु है जो साख की सर्वोत्तम नीति स्पष्ट करता है। प्राप्यों के प्रबन्ध में संस्था को यह निर्धारित करना होता है कि कितने ग्राहकों को कितनी मात्रा में और कौनसी शर्तों पर माल बेचा जाये।

प्राप्यों के प्रबन्ध में संस्था उधार विक्रय की मात्रा, उधार की शर्तें तथा ग्राहकों की संख्या का निर्धारण करती है। इसके लिऐ संस्था द्वारा साख नीति का पालन किया जाता है। साख नीति के तीन मुख्य संघटक या तत्व है (i) साख कसौटियाँ (ii) साख शर्तें (iii) संग्रहण नीति

(i) **साख कसौटियाँ** : सर्वप्रथम संस्था द्वारा उधार विक्रय हेतु साख कसौटियों का निर्धारण किया जाता है। साख कसौटियाँ साख नियंत्रण विभाग द्वारा दिये नीति निर्देश होते हैं। इनके आधार पर उधार देने तथा उधार की उच्चतम सीमा तय की जाती है और साख प्राप्त करने वाले ग्राहकों को चुना जाता है। साख कसौटियों के आधार पर संस्था अपने ग्राहकों को साख या उधार की सुविधा प्रदान करती है। साख मूल्यांकन, साख संदर्भ, औसत भुगतान अवधि, वित्तीय अनुपात के आधार पर संस्था की साख प्रदान करने की क्षमता का निर्धारण होता है। यदि साख कसौटियाँ कमजोर व ढीली रहती हैं तो संस्था की बिक्री तथा प्राप्यों का स्तर बढ़ जाता है किन्तु साख प्रशासन लागतें एवं डूबत ऋण

की हानियाँ बढ जाती है। साख कसौटियों के सुदृढ़ होने पर बिक्री तथा प्राप्यों का स्तर नीचा रहता है तथा डूबत ऋणों तथा प्रशासन लागतों की हानियाँ कम हो जाती हैं। किसी व्यवसाय की साख कसौटियों, ग्राहकों की उधार राशि चुकाने की इच्छा, ग्राहकों की भुगतान योग्यता वित्तीय सुदृढ़ता, गिरवी या जमानत तथा प्रचलित व्यवसायिक वातावरण से प्रभावित होती हैं।

(ii) **साख शर्तें** : साख शर्तें वे शर्तें होती हैं जिनके आधार पर संस्था ग्राहकों को उधार बिक्री करती है। साख शर्तों में साख अवधि नकद बट्टा तथा बट्टा अवधि को सम्मिलित किया जाता है। इन्हें एक साथ भी '3/10 Net 30' भी लिखा जाता है। इसका अर्थ है ग्राहक को 3 प्रतिशत बट्टा दिया जायेगा यदि ग्राहक बिल की तिथि से 10 दिन पूर्व तक भुगतान कर देता है। ग्राहक को बिल का भुगतान 30 दिन में करना ही होगा।

साख को नीचे समझाया गया है-

(अ) **साख अवधि** : साख अवधि का आशय उस समयावधि से लिया जाता है जिसके लिये ग्राहकों को उधार की सुविधा दी जाती है। साख अवधि सभी संस्थाओं में अलग-अलग होती है। यह सामान्यत: उद्योग प्रमापों के आधार पर तय की जाती है। यदि कोई संस्था विक्रय में वृद्धि करना चाहती है तो साख अवधि को बढ़ा सकती है। साख अवधि वस्तु की मांग, औसत संग्रहण अवधि, पूंजी की लागत तथा डूबते ऋणों से होने वाली हानि को प्रभावित करती है।

साख अवधि में ढील देने से बिक्री में वृद्धि हो जाती है और लाभ भी अधिक होते हैं किन्तु प्रशासनिक लागतें, डूबते ऋण की हानियाँ, विक्रय लागतें अवश्य बढ़ जाती हैं। संस्था को शुद्ध लाभ की गणना करते समय विक्रय से प्राप्त लाभों में से उक्त लागतों को घटा देना चाहिए इससे अतिरिक्त बिक्री से होने वाला शुद्ध लाभ ज्ञात किया जा सकता है। वर्तमान साख नीति निर्धारित करते समय अतिरिक्त बिक्री से होने वाले लाभ की तुलना प्राप्यों के प्रबन्ध में निहित भावी लागतों से करनी चाहिए जहां तक संस्था के शुद्ध लाभ अपेक्षित प्रत्याय दर (पूंजी लागत) से अधिक हो तब तक साख कसौटियों में उदारता बरती जा सकती है।

साख अवधि में ढील देने से बिक्री में वृद्धि हो जाती है और लाभ भी अधिक होते हैं किन्तु प्रशासनिक लागतें, डूबते ऋण की हानियाँ, विक्रय लागतें अवश्य बढ़ जाती हैं। संस्था को शुद्ध लाभ की गणना करते समय विक्रय से प्राप्त लाभों में से उक्त लागतों को घटा देना चाहिए इससे अतिरिक्त बिक्री से होने वाला शुद्ध लाभ ज्ञात किया जा सकता है। वर्तमान साख नीति निर्धारित करते समय अतिरिक्त बिक्री से होने वाले लाभ की तुलना प्राप्यों के प्रबन्ध में निहित भावी लागतों से करनी चाहिए जब तक संस्था ने शुद्ध लाभ अपेक्षित प्रत्याय दर (पूंजी लागत) से अधिक हो तब तक साख कसौटियों में उदारता बरती जा सकती है।

(ब) **नकद बट्टा** : नकद बट्टा ग्राहकों को तय साख समय से पूर्व भुगतान हेतु प्रेरित करने के लिए दिया जाता है। नकद बट्टे की शर्तों में बट्टे की दर व बट्टे की अवधि दी गयी होती है। कोई भी ग्राहक शीघ्र भुगतान करके नकद बट्टे का लाभ उठा सकता है। नकद बट्टा

छूट दिये जाने से प्राप्यों की राशि कम हो जाती है किन्तु संस्था के पास वैकल्पिक कार्यो का भुगतान करने के लिए अतिरिक्त कोष प्राप्त हो जाते हैं। कभी-कभी भुगतान की गति को बढ़ाने के लिए बट्टे की दर को बढ़ा दी जाती है। इससे औसत संग्रहण अवधि कम हो जाती है तथा प्रशासनिक लागतों भी घट जाती है। लेकिन बट्टे की दर को बढ़ाते समय आय एवं बट्टे की लागत को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

(iii) **साख संग्रहण नीति** : साख संग्रहण नीति भी साख नीति का भाग होती है। यदि ग्राहक समय पर उधार राशि का भुगतान नहीं करते हैं तो संस्था को साख संग्रहण नीति बनाने की आवश्यकता होती है। संग्रहण नीति बनाने का मूल उद्देश्य बिना किसी ग्राहक को खोये समय पर भुगतान प्राप्त करना होता है। यह नीति ग्राहकों से समय पर धनराशि वसूली में वित्तीय प्रबन्धक की सहायता करती है। कठोर संग्रहण नीति संस्था की बिक्री में कमी लाती है और संस्था की ख्याति को भी प्रभावित करती है। जबकि उदार संग्रहण नीति ग्राहकों में भुगतानों के प्रति धीमापन लाती है। कठोर व उदार दोनों प्रकार की संग्रहण नीतियाँ व्यवसाय पर दुष्प्रभाव डाल सकती है। अत: संग्रहण नीति इस प्रकार निर्धारित की जानी चाहिए कि संग्रहण से उत्पन्न लागतें (संग्रहण व्यय) तथा लाभों (डूबते ऋण हानियों एंव प्राप्यों में विनियोग की लागत में कमी) में उचित समन्वय बना रहे। जब तक लाभ लागतों से अधिक रहते हैं तब तक उधार विक्रय की नीति जारी रहनी चाहिए।

II. **साख मूल्यांकन**

साख नीति निर्धारण करने मात्र से प्राप्यों में न्यूनतम विनियोजन के उद्देश्य को पूरा नहीं किया जा सकता है। इसके लिए आवश्यक है कि साख या उधार सुविधा की मांग करने वाले ग्राहकों की साख योग्यता का मूल्यांकन किया जाये और उसके आधार पर ही साख की सुविधा किन ग्राहकों को दी जाये, तय किया जाना चाहिए। साख मूल्यांकन के लिए संस्था निम्नलिखित प्रक्रिया का अनुसरण करती है -

(i) सूचना का संग्रहण करना
(ii) सूचना का विश्लेषण करना
(iii) साख की राशि या सीमा का निर्धारण

(i) **सूचना का संग्रहण करना** : ग्राहकों साख योग्यता की जानकारी प्राप्त करने के लिए संस्था को अनेक स्त्रोतों से सूचनाएँ एकत्र करनी पड़ती हैं। लेकिन सूचना एकत्र करते समय यह ध्यान में रखना चाहिए कि साख सूचना एकत्र करने की लागत लेन देनों से होने वाले लाभों की तुलना में कम होनी चाहिए। छोटे ग्राहकों को साख सुविधा देने का निर्णय सामान्य जानकारी के आधार पर किया जाना चाहिये लेकिन बड़े ग्राहकों की साख योग्यता की जानकारी अनेक स्त्रोतों से की जा सकती हैं। ये स्त्रोत निम्नलिखित हैं -

(अ) **वित्तीय विवरण**- वित्तीय विवरण भावी ग्राहक को आर्थिक स्थिति एवं निष्पादन की जानकारी उपलब्ध कराने का सबसे उपयुक्त साधन हैं। चिट्ठे की विभिन्न मदों के विश्लेषण यह ज्ञात किया जा सकता है कि ग्राहक के पास उधार की राशि चुकाने के लिए पर्याप्त सम्पत्तियाँ है या नहीं। इनके माध्यम से ग्राहकों की कार्यशील पूंजी, उत्पादन लागत, आय के स्त्रोत आदि मदों की जानकारी प्राप्त हो जाती है।

(ब) **साख मूल्यांकन संस्थाएँ** - साख मूल्यांकन संस्थाऐं भी व्यापारिक फर्मो की वित्तीय एवं प्रबन्धकीय सूचनाओं को विभिन्न स्त्रोतों से एकत्र कर उनका मूल्याकन एवं विश्लेषण करती हैं। हमारे देश में ऐसी संस्थाओं की लोकप्रियता बढ़ रही है। ये संस्थाएँ भी व्यापारिक प्रतिष्ठानों के ऋण भुगतान सम्बन्धी आचरण की जानकारी प्रदान करती हैं।

(स) **बाजार प्रतिवेदन** - अनेक प्रमुख पत्रिकाएँ भी व्यापारिक प्रतिष्ठानों सम्बन्धी प्रतिवेदनों को छापती हैं। ये प्रतिवेदन संस्था की व्यापारिक स्थिति को दर्शाते है। जिसके आधार पर कोई संस्था ग्राहकों को उधार विक्रय कर सकती हे।

(द) **बैंकों से सूचना प्राप्त करना** - बैंकों से ग्राहकों की आर्थिक स्थिति सम्बन्धी सूचना प्राप्त की जा सकती है। बैंकों में साख विभाग की स्थापना की जाती है जो समय समय पर ग्राहकों की साख सम्बन्धी जानकारी एकत्र करते हैं। आवश्यकता होने पर एक बैंक दूसरे बैंक को किसी भी ग्राहक सम्बन्धी सूचना दे देते हैं।

(य) **अन्य व्यापारिक संस्थाओं द्‌वारा सूचना का आदान प्रदान**- विभिन्न व्यापारिक सस्थाएं ग्राहकों को माल बेचती हैं। अत: ये संस्थाएँ भी ग्राहकों सम्बन्धी जानकारी सूचना एक दूसरे को उपलब्ध करवा सकती हैं।

(ii) **सूचना का विश्लेषण करना** : केवल मात्र किसी ग्राहक के सम्बन्ध सूचना एकत्र करने से कोई उद्देश्य पूर्ण नहीं होता है। साख योग्यता के सम्बन्ध निष्कर्ष के लिए सूचना का विश्लेषण करना आवश्यक होता है। सूचना के विश्लेषण से ग्राहक की उधार लेने क्षमता तथा साख शर्तो के अनुरूप राशि लौटाने की योग्यता एवं तत्परता को जाना जाता है। उधार बिक्री मे निहित जोखिम की मात्रा में कमी करने के लिए आवेदक की साख क्षमता का विस्तार से विश्लेषण किया जाता है। यह विश्लेषण पाँच के C'S आधार पर किया जा सकता है। ये पाँच के C'S चरित्र, पूंजी, क्षमता, समपार्श्विकता तथा दशाएँ हैं। इनका विवेचन नीचे किया गया है -

(अ) **चरित्र** : ग्राहक को उधार बिक्री की सुविधा देते समय उसके चरित्र को ध्यान में रख जाता है। यहीं चरित्र से आशय ऋण चुकाने की ख्याति से है। यदि ग्राहक समय पर ऋण का भुगतान कर देता हे। उसकी ख्याति अच्छी मानी जाती है।

(ब) **पूंजी** : ग्राहक को उधार देते समय उसकी वित्तीय स्थिति की जानकारी प्राप्त की जाती है। संस्था स्वामित्यपूंजी की कुल राशि, ऋणसमता अनुपात के द्‌वारा साख की सुरक्षा का पता लगाया जाता है।

(स) **क्षमता** : यहीं क्षमता से तात्पर्य ग्राहक को धन कमाने की क्षमता से होता है। यदि आवेदक पर्याप्त आय अर्जित नहीं कर पाता है तो वह संस्था की उधार राशि का भुगतान भी नहीं कर पायेगा।

(द) **समपार्श्विकता** : उधार दिये जाने से पूर्व आवेदक की सम्पत्तियों की जाँच कर ली जाती है कि उसके पास उधार राशि लेने के बदले में जमानत के लिए पर्याप्त सम्पत्तियों भी है या नहीं।

(य) **दशाएँ** : किसी भी देश की व्यापारिक तथा आर्थिक दशाएँ भी व्यापार को तथा साख लेने वाले व्यक्ति की ऋण चुकाने की क्षमता को प्रभावित करती है। यदि देश की आर्थिक

स्थिति सुदृढ़ है तो व्यापार में उन्नति होती है तथा साख प्राप्तकर्ता की भुगतान क्षमता मे वृद्धि भी हो जाती है।

उपरोक्त सभी तथ्यों को ध्यान में रख कर आवेदक की साख योग्यता का मूल्यांकन किया जाता है। इसी के साथ वित्तीय अनुपातों की गणना भी की जाती है। तरलता अनुपात, लाभदायकता अनुपात तथा पूंजी संरचना अनुपात के आधार पर ग्राहक की साख का विश्लेषण किया जाता है।

(iii) साख की राशि या सीमा का निर्धारण करना

ग्राहक से सम्बन्धित सूचना का विश्लेषण करने के उपरान्त यह निर्णय किया जाता है उसे साख सुविधा दी जाये अथवा नहीं। ग्राहक की मूल्यांकित साख योग्यता की तुलना संस्था के साख देने के प्रमाप से की जाती है। यदि ग्राहक की साख योग्यता साख के प्रमाप से अधिक होती हे तो ग्राहक को उधार माल बेचने का निर्णय लिया जाता है। यदि ग्राहक की साख योग्यता संस्था के साख के प्रमाप से नीचे होती है तो उसे उधार माल नहीं बेचा जाता है।

ग्राहक को उधार माल विक्रय का निर्णय लेने के पश्चात उधार राशि की सीमा तथा उधार चुकाने की अवधि को तय किया जाता है। ग्राहक संस्था की बिक्री की संभावना तथा उनकी वित्तीय सुदृढ़ता के आधार पर यह निर्भर करता है। जिन ग्राहकों को वर्ष में कई बार माल बेचना हो तो उनके लिए साख सीमा निर्धारित कर दी जाती है। साख सीमा वह अधिकतम राशि होती है जो एक निश्चित समय में स्वीकृत की जा सकती है। यह सीमा ग्राहक की क्रय प्रवृत्ति तथा भुगतानों में नियमितता के आधार पर तय की जाती है। उधार अवधि का निर्धारण संस्था के प्रमापों के आधार पर किया जाता है।

III. **प्राप्यों का नियंत्रण करना**

साख नीति के अनुसार एक बार साख स्वीकृत किये जाने के बाद प्राप्यों के प्रबन्ध में अगला चरण इन प्राप्यों का नियंत्रण करना है। संस्था के लिये साख प्रमापों का तथा साख नीति का निर्धारण ही पर्याप्त नहीं है। इनका प्रभावी क्रियान्वयन तथा नियंत्रण भी आवश्यक है। प्राप्यों के नियंत्रण के लिए संस्था दो प्रकार के प्रयास करती है-

(i) संग्रहण प्रक्रिया का निर्धारण

(ii) प्राप्यों का नियंत्रण

(i) **संग्रहण प्रक्रिया का निर्धारण** : ग्राहकों स्वीकृत उधार राशि के संग्रहण के लिये स्पष्ट संग्रहण प्रक्रिया का होना आवश्यक है। संस्था को सर्वप्रथम उन खातों अलग कर विवरण तैयार करना चाहिए जिनकी देय तिथि समाप्त हो गई है तथा जिन में भुगतान होने की संभावना नही है। इस प्रकार के खातों के लिए स्पष्ट एवं प्रभावशाली संग्रहण प्रक्रिया निश्चित करनी चाहिए। संग्रहण प्रक्रिया से आशय ग्राहकों द्वारा भुगतान में देरी किये जाने पर की गई कार्यवाही से होता है। उदार व कठोर संग्रहण नीति दोनों ही व्यापार पर प्रतिकूल प्रभाव डालती हैं। धन के संग्रहण हेतु अपनाई गई प्रक्रिया ऐसी होनी चाहिए जो डूबते ऋणों की हानि को कम से कम कर सके। संग्रहण के लिए निम्नलिखित विधियों को अपनाया जाता है -

(अ) **तकाजे के पत्रों द्वारा** : जो ग्राहक देय तिथि के पश्चात् भी भुगतान नहीं करते हैं उनसे उधार राशि वसूलने के लिए तकाजे के पत्र लिखे जाते हैं। कुछ ग्राहक एक तकाजे के पत्र के बाद ही भुगतान कर देते है। जबकि कई ग्राहकों को दो तीन तकाजे भेजने पड़ते हैं उसके बाद भी वे भुगतान नहीं करते हैं। वित्तीय प्रबन्धक फोन पर भी ग्राहकों को भुगतान करने का आदेश देता है।

(ब) **नकद छूट** : नकद छूट का लाभ पाने के लिए कुछ ग्राहक तुरंत भुगतान कर देते हैं। नकद छूट देते समय संस्था नकद छूट की दर तथा अवधि दोनों शामिल की जाती हैं। नकद छूट का लाभ न उठाने पर ग्राहक को शुद्ध देय तिथि पर भुगतान करना पडता है।

(स) **संग्रहण संस्थाएँ**: जिन खातों में उक्त दोनों विधियों से भुगतान प्राप्त नहीं होता है ऐसे उधार खातों को संग्रहण संस्था के सुपुर्द कर दिया जाता है। इसे 'Factoring' भी कहा जाता है। यह एक प्रकार से ऋण वसूली सेवा है जिसमें दलाल संस्था खातों को बट्टे पर क्रय कर लेता है। ऋण वसूली के लिए वह संस्था से निश्चित शुल्क वसूल करता है। इन संस्थाओं का मुख्य कार्य देनदारों से समय पर वसूली करना होता है। छोटे खातों की वसूली के लिए ये संस्थाएं उपयुक्त नहीं समझी जाती हैं। किन्तु बड़े ग्राहकों के लिए ये संस्थाएँ सही प्रक्रिया अपना कर धन वसूलती हैं।

(ii) **प्राप्यों का नियंत्रण** : प्राप्यों का नियंत्रण संस्था का एक महत्वपूर्ण कार्य है। यदि संस्था का प्राप्यों पर कोई नियंत्रण नहीं होता है तो ग्राहक न तो समय पर भुगतान करते हैं और न ही साख नीतियों का पालन करते हैं। इससे संस्था में तरलता की कमी हो सकती है प्राप्यों में विनियोजन भी बढ़ सकता है। अत: प्राप्यों का उचित स्तर बनाये रखने के लिए उन पर नियंत्रण अत्यन्त आवश्यक होता है। प्राप्यों पर नियंत्रण निम्नलिखित विधियों या तकनीकों से किया जा सकता है-

(अ) **प्रभावी बिल पद्धति** : उधार राशि के संग्रहण के लिए प्रभावी बिल पद्धति अपनायी जानी चाहिए माल या सेवा के विक्रय के साथ ही बिल तुरंत तैयार करके ग्राहक को भेज दिया जाना चाहिए इससे उधार वसूलने में लगने वाला समय कम हो जाता है।

(ब) **यंत्री कृत विक्रय खाता वही लेखांकन** : कम्प्यूटर की सहायता से विक्रय खाता बही तैयार करके भी साख नियंत्रण किया जा सकता है। लेखांकन की सहायता से उधार बिक्री के खातों को अलग करके उनकी वसूली को प्रक्रिया को तेज किया जा सकता है।

(स) **औसत संग्रहण अवधि** : यह अवधि देनदारों से वसूली में लगने वाले समय होता है अर्थात् इस अवधि से पहले कोई भी राशि वसूल नहीं होगी। इस की गणना नीचे दिये गये सूत्र के द्वारा की जा सकती है

$$\text{औसत संग्रहण अवधि} = \frac{\text{औसत प्राप्य (Average Receivables)}}{\text{प्रतिदिन उधार बिक्री (Credit Sales Per day)}}$$

(Average Collection Period

औसत संग्रहण अवधि की तुलना पिछले वर्षों से करके प्रबन्धकीय कुशलता तथा प्रवृत्ति का पता लगाया जा सकता है। यदि इनमें कोई अन्तर दिखाई देता है तो कारणों की जाँच की जाती है।

(द) **प्राप्यों की काल-क्रम सूची** : अशोध्य एवं डूबते ऋणों में कमी लाने तथा संग्रहण प्रक्रिया को तेज करने के लिए प्राप्यों या देनदारों की कालक्रम सूची बनाना आवश्यक होता है। इस सूची में निश्चित तिथि को समयावधि के आधार पर देनदारों पर कुल बकाया राशि, कुल देनदारों में प्रतिशत भाग खातों की संख्या प्रतिशत सहित दिखायी जाती है।

(य) **प्राप्यों का एबीसी विश्लेषण** : एबीसी विश्लेषण तकनीक स्कन्ध नियंत्रण के लिए विकसित की गई है। किन्तु प्राप्यों के नियंत्रण के लिए भी इसे अपनाया जाता है। इस विधि में देनदारों को वर्गीकृत करके ए बी सी श्रेणियाँ बनायी जाती हैं। ए श्रेणी के खातों पर अधिक प्रबन्धकीय नियंत्रण, ब श्रेणी पर कम नियंत्रण तथा सी श्रेणी के खातों पर सबसे कम नियंत्रण की आवश्यकता होती है। क्योंकि ए श्रेणी के खातों की राशि सबसे अधिक, बी श्रेणी के खातों राशि कम तथा सी श्रेणी के खातों की राशि सबसे कम होती है।

(र) **साख उपयोग प्रतिवेदन** : समय समय पर संस्था अपने ग्राहकों को स्वीकृत कुल साख सीमा तथा उसके उपयोग सम्बन्धी प्रतिवेदन तैयार करती है इन प्रतिवेदनों को साख उपयोगिता प्रतिवेदन कहा जाता है।

(ल) **लेखांकन अनुपात** : लेखाकंन अनुपात भी प्राप्यों के नियंत्रण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। प्राप्यों के नियंत्रण हेतु निम्नलिखित अनुपात विशेष उपयोगी होते हैं-

$$\text{देनदार आवृत अनुपात} = \frac{\text{उधार बिक्री (Credit Sales)}}{\text{औसत देनदार (Average Debtors)}}$$

(Debtors turnover Ratio)

$$\text{औसत उधार अवधि (दिनों मे)} = \frac{\text{औसत देनदार (Average Debtors)}}{\text{उधार बिक्री (Credit Sales)}} \times 365$$

(Average Credit Period in days)

$$\text{देनदारों का कुल सम्पत्तियों से अनुपात} = \frac{\text{देनदार (Creditors)}}{\text{चालू सम्पत्तियाँ (Current Assets)}} \times 100$$

(Debtors to total assets Ratio)

$$\text{डूबते ऋणों का देनदारों से अनुपात} = \frac{\text{डूबते ऋण (Bed Debts)}}{\text{देनदार (Debtors)}} \times 100$$

(Bed debts to Debtors Ratio)

इन अनुपातों की गणना निरन्तर की जानी चाहिए तथा इसकी तुलना संस्था के पिछले वर्षो के अनुपातों से की जानी चाहिए।

8.5 उदाहरण

श्याम लिमिटेड की चालू बिक्री 2 माह की संग्रहण अवधि के साथ 60,00,000 रू. है। वर्तमान में ग्राहकों को कोई बट्टा दर नहीं दी जा रही है। कम्पनी रोकड़ बिक्री पर 2 प्रतिशत बट्टा स्वीकृति सोच रही है। जिसके परिणाम स्वरूप-

(अ) औसत संग्रहण अवधि घट कर एक माह रह जायेगी।

(ब) 50 प्रतिशत ग्राहक 2 प्रतिशत बट्टे का लाभ लेंगे।

(स) कम्पनी अपने विनियोग पर 25 प्रतिशत प्रत्याय चाहती है प्रबन्ध को सलाह दीजिये क्या रोकड़ बिक्री पर बट्टा छूट दी जाये?

नकद बट्टे का प्रस्ताव

		रुपयों में
वर्तमान देनदार रू.	$60,00,000 \times \frac{2}{12}$	10,00,000
पुर्न निर्धारित देनदार	$60,00,000 \times \frac{1}{12}$	5,00,000
बट्टा जो प्रस्तावित किया जाना है		5,00,000
	$60,00,000 \times \frac{50}{100} \times \frac{2}{100}$	60,000
देनदारों में कमी के कारण लाभों में वृद्धि (5,00,000x25/100)		रु. 1,25,000
लाभों में शुद्ध वृद्धि (1,25,000-60,000)		रु. 65,000

सलाह : रोकड़ बिक्री पर 2 प्रतिशत बट्टा देने पर श्याम लिमिटेड के लाभों में 65000 रुपयों का लाभ होगा अत: इस प्रस्ताव को स्वीकार किया जा सकता है।

8.6 सारांश

प्राप्य उधार विक्रय का परिणाम होते हैं। बडे-बड़े व्यवसायों में पूंजी का बहुत बड़ा भाग प्राप्यों में विनियोजित होता है। इसलिये इनका उचित प्रबन्ध करना व्यवसायिक संस्था का महत्वपूर्ण कार्य होता है। उधार विक्रय से पूर्व ही संस्था को साख नीति का निर्धारण करना आवश्यक होता है। साख नीति के साथ-साथ साख शर्तें, साख की अवधि, संग्रहण नीति का निर्धारण आदि भी प्राप्यों के प्रबन्ध के लिए आवश्यक होता है। साख मूल्यांकन कार्य से डूबते ऋणों से होने वाली हानि को न्यूनतम किया जाता है। प्राप्यों का नियंत्रण संस्था उधार विक्रय राशि के संग्रहण में सहायक होता है। यदि संस्था का प्राप्यों पर नियन्त्रण नहीं होता है तो संस्था में तरलता की कमी हो सकती है और देय भुगतान करने में समस्या का सामना करना पड़ सकता है। अंत में यह कहना उचित होगा कि प्राप्यों का उचित प्रबन्ध एवं नियंत्रण संस्था का अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य होता है तथा पर्याप्त तरलता बनाये रखने में सहायक होता है।

8.7 शब्दावली

प्राप्य- माल एवं सेवाओं की बिक्री के कारण फर्म को देय राशि का प्रतिनिधित्व करने वाले सम्पत्ति खाते प्राप्य कहलाते हैं।

प्राप्यों का प्रबन्ध- प्राप्यों के प्रबन्ध से तात्पर्य उधार बिक्री से होने वाले लाभों तथा लागतों (ब्याज) हानियों (डूबते ऋणों) को संतुलित करने से होता है।

साख नीति - साख नीति वह नीति है जो ग्राहकों को साख देने के सम्बन्ध में बनाई जाती है।

साख कसौटियाँ - साख कसौटियाँ वे मापदण्ड हैं जिनके आधार पर ग्राहकों को साख स्वीकृत की जाती है।

संग्रहण प्रक्रिया - संग्रहण प्रक्रिया से तात्पर्य ग्राहकों द्वारा भुगतान में देरी करने पर की गई कार्यवाही से होता है।

साख सीमा - यह उधार की वह अधिकतम सीमा राशि है जो एक संस्था द्वारा एक निश्चित समय में स्वीकृत की जा सकती है।

साख शर्तों- ये वे प्रतिबन्ध हैं जिसके तहत संस्था ग्राहकों को उधार बिक्री करती है।

8.8 अति लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. प्राप्यों के प्रबन्ध का क्या तात्पर्य है?
2. प्राप्यों से सम्बन्धित लागतें कौनसी होती हैं?
3. साख नीति से क्या आशय है?
4. साख सीमा से क्या आशय है?

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. कठोर व उदार साख नीति में अन्तर बताइये।
2. प्राप्यों के ए बी सी विश्लेषण को समझाइये।

निबन्धात्मक प्रश्न-

1. प्राप्यों के प्रबन्ध का अर्थ समझाइये। प्राप्यों को किस प्रकार नियंत्रित किया जा सकता है?

8.9 उपयोगी पुस्तकें

1. एम. आए. अग्रवाल – वित्तीय प्रबन्ध के मूल तत्व
2. अग्रवाल, अग्रवाल – वित्तीय प्रबन्ध

इकाई - 9 : स्कन्ध प्रबन्ध / नियंत्रण (Inventory Management/ Control)

इकाई संरचना :

9.1 प्रस्तावना
9.2 स्कन्ध नियंत्रण का अर्थ एवं परिभाषा
9.3 स्कन्ध नियंत्रण प्रणाली की सारभूत आवश्यकताएँ
9.4 स्कन्ध प्रबन्ध के उद्देश्य
9.5 स्कन्ध नियंत्रण के लाभ
9.6 स्कन्ध को प्रभावित करने वाले तत्व
9.7 स्कन्ध निर्धारण के विभिन्न स्तर
9.8 स्कन्ध नियंत्रण की 'ए.बी.सी,' प्रणाली
9.9 पुन: आदेश मात्रा अथवा आर्थिक आदेश मात्रा
9.10 सामग्री अथवा स्कन्ध आवर्त
9.11 स्कन्ध नियंत्रण की न्यूनतम व अधिकतम प्रणाली
9.12 स्कन्ध नियंत्रण की आदेश चक्र प्रणाली
9.13 स्कन्ध नियंत्रण की बजटरी नियंत्रण प्रणाली
9.14 स्कन्ध नियंत्रण की द्विबिन प्रणाली
9.15 स्कन्ध नियंत्रण की भौतिक गणन पद्धतियाँ
(1) निरन्तर गणना प्रणाली
(2) सामयिक गणना प्रणाली
9.16 सारांश
9.17 शब्दावली
9.18 स्वपरख प्रश्न
9.19 व्यावहारिक प्रश्न
9.20 उपयोगी पुस्तकें

9.1 प्रस्तावना (Introduction)

एक संस्था की चालू सम्पत्तियों मे, कच्ची सामग्री, अर्द्ध-निर्मित माल तथा निर्मित माल का स्कन्ध सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग होता है। कोई भी संस्था जो स्कंध का कुशलतापूर्वक नियंत्रण नहीं कर सकती, उसकी दीर्घकालीन लाभदायकता कम हो जाती है, क्योंकि आवश्यकता से कम स्कंध होने पर उत्पादन-क्रिया बिना रुकावट के नही चल सकती तथा ग्राहकों को समय पर माल की पूर्ति नहीं की जा सकती। दूसरी ओर,

अधिक स्कंध रखने से संस्था की पूंजी अनावश्यक रूप से फंस जाती है जिससे पूंजी पर ब्याज एवं संग्रह लागतें बढ़ जाती हैं इसलिए कोई संस्था यदि चाहे तो स्कंध नियंत्रण की विधियों एवं तकनीकों का उपयोग करके बहुत कुछ सीमा तक उत्पादन एवं विक्रय को प्रभावित किए बिना स्कंध की मात्रा को नियंत्रित कर सकती है। ऐसा करके वह संस्था की लाभदायकता को अधिक सुदृढ़ बना सकती है।

9.2 स्कंध नियन्त्रण का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Inventory Control)

स्कन्ध नियन्त्रण का अर्थ कच्चे माल, अर्द्ध निर्मित माल तथा निर्मित माल की मात्रा तथा इनमें विनियोजन को नियन्त्रित करने से होता है। सरलतम भाषा मे स्कन्ध नियन्त्रण स्कन्ध प्रबन्ध का एक उपकरण है जिसका विनियोग से अधिकतम आय प्राप्त करने के उद्देश्य से सामग्री एवं उत्पादों में मितव्ययिता पूर्वक न्यूनतम विनियोग बनाये रखने के लिये उपयोग किया जाता है।

गॉर्डन बी. कारजन के शब्दों में, "स्कंध नियंत्रण वह प्रक्रिया है जिसमें स्टॉक में रखी सामग्री एवं पुर्जों में विनियोग का प्रबंध द्वारा निर्धारित स्कंध नीति के अनुसार पूर्व निर्धारित सीमाओं में नियमन किया जाता है।"

कोहलर, लेखाकारों का शब्दकोष के अनुसार, "स्कंध नियंत्रण माल, सामग्री, प्रक्रिया में माल, निर्मित माल तथा हस्तस्थ आपूर्तियों का लेखांकन एवं भौतिक विधियों से नियंत्रण है।"

अमेरिकन उत्पादन एवं स्कन्ध नियंत्रण सोसायटी के अनुसार, "स्कंध नियंत्रण कच्चे माल, अर्द्ध-निर्मित माल तथा निर्मित माल के स्टॉक को बनाये रखने एवं प्रत्येक मद को वांछित स्तर पर रखने की एक तकनीक है।"

इस प्रकार स्कंध प्रबन्ध स्कंध की मात्रा एवं मूल्य के नियोजन, संगठन एवं नियंत्रण की एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा स्कंध के अनावश्यक एवं अपर्याप्त स्तर को रोका जाता है तथा उत्पादन एवं विक्रय गतिविधियों को सुचारू रूप से चलाने के लिए पर्याप्त मात्रा में स्कंध रखा जाता है।

9.3 स्कंध नियन्त्रण प्रणाली की सारभूत आवश्यकताएँ (Essential Requirements of a System of Inventory Control)

एक आदर्श स्कंध नियन्त्रण प्रणाली में निम्न मूल तत्वों का होना अनिवार्य है -

1. सामग्रियों का उचित वर्गीकरण एवं संहिताकरण (Codification) करना चाहिए।
2. सामग्री की निरन्तर गणना प्रणाली को लागू करना चाहिए ताकि स्टॉक में प्रत्येक सामग्री की उपलब्ध मात्रा के बारे में नवीनतम सूचना लगातार प्राप्त होती रहे।
3. सामग्री को स्टोर में सुरक्षित रखने की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए।

4. प्रत्येक सामग्री के लिए अधिकतम मात्रा, न्यूनतम मात्रा, आदेश स्तर तथा आदेश मात्रा का निर्धारण सावधानी-पूर्वक किया जाना चाहिए।
5. उत्पादन में सामग्री के प्रयोग तथा उत्पादित वस्तुओं के स्टॉक पर नियन्त्रण की समुचित प्रणाली की स्थापना होनी चाहिए।
6. सामग्री के निर्गमन तथा मूल्यांकन की उचित व्यवस्था होनी चाहिए।
7. सामग्री के क्रम, निर्गमन एवं स्टॉक में सामग्री की मात्रा की रिपोर्ट निरन्तर आधार पर प्रबन्धकों को प्रस्तुत की जानी चाहिए।
8. अप्रचलित (Obsolete) सामग्री, दूषित सामग्री तथा विक्रेताओं को की गई वापसी की विशेष रिपोर्ट प्रबन्धकों को प्रस्तुत की जानी चाहिए।
9. सामग्री नियन्त्रण हेतु सामग्री के सभी लेन-देनों का आन्तरिक अंकेक्षण करवा लिया जाना चाहिए।
10. सामग्री के सम्पर्क में आने वाले सभी विभागों में आपसी समन्वय एवं सहयोग होना चाहिए - जैसे क्रय विभाग, स्टोर विभाग, सामग्री निरीक्षण एवं प्राप्ति विभाग, इत्यादि।
11. सामग्री क्रय में मितव्ययता हेतु सामग्री क्रय बजट बनाया जाना चाहिए।
12. सभी प्रकार के क्रय केन्द्रीय क्रय विभाग द्वारा किये जाने चाहिए जिसका प्रबन्धक एक सक्षम व विशेषज्ञ व्यक्ति होना चाहिए।

9.4 स्कन्ध प्रबन्ध के उद्देश्य (Objectives of Inventory management)

स्कन्ध प्रबन्ध के प्रमुख उद्देश्य निम्न होते हैं -

1. सामग्री में विनियोग न्यूनतम रखना, सामग्री रखने की लागत तथा सामग्री अप्रचलन की हानि को न्यूनतम करना।
2. प्रत्येक सामग्री के लिए आदेश बिन्दु तथा आदेश मात्रा का निर्धारण इस तरह से करना कि सामग्री नियन्त्रण का उद्देश्य पूरा हो तथा सामग्री की समय पर पूर्ति बनी रहे।
3. लागत लेखांकन क्रियाओं का सामग्री को उत्पादों एवं विभागों में बाँटने का उपयुक्त आधार प्रदान करके सुगम बनाना।
4. निरन्तर सामग्री मूल्यांकन की व्यवस्था करना तथा वित्तीय विवरणों के निर्माण हेतु सुसंगत एवं विश्वसनीय आधार प्रस्तुत करना।
5. सामग्री की क्षति को न्यूनतम करना।
6. सामग्री के क्रय को मितव्ययी बनाना।
7. सामग्री को चोरी तथा अन्य प्रकार की हानियों से उपयुक्त नियन्त्रण द्वारा सुरक्षित करना।
8. सामग्री प्रशासन की लागत को न्यूनतम करना।
9. ग्राहकों की माँग के ऊँचे प्रतिशत भाग की पूर्ति अत्यधिक सामग्री की मात्रा के बगैर ही पूरा करना अर्थात् न अत्यधिक स्कन्ध रखना और न ही स्कन्ध की मात्रा बिल्कुल कम रखना।

10. सामग्री सम्पत्तियों की पर्याप्त जवाबदेही सुनिश्चित करना।
11. भण्डारण के लिए उपलब्ध जगह का उपयोग करना तथा स्कन्ध की मात्रा को उसके लिए उपलब्ध जगह से अधिक होने को पूर्व में ही रोकना।
12. यह सुनिश्चित करना कि किस मद को स्कन्ध करके भण्डार में रखा जाय तथा किस मद को केवल आवश्यकता के समय प्राप्त किया जाय।
13. संस्था की लाभप्रदायकता में महत्वपूर्ण योगदान करना।

9.5 स्कन्ध नियन्त्रण के लाभ (Advantages of Inventory Control)

स्कन्ध नियन्त्रण के प्रमुख लाभ निम्न हैं :-

1. सामग्री के बारे में उचित जानकारी बनी रहती है।
2. सामग्री का क्षय एवं बर्बादी कम हो जाती है।
3. क्रय की लागत कम से कम हो जाती है।
4. सामग्री संग्रहण की उपयुक्त व्यवस्था रहती है।
5. सामग्री लेखांकन व लागत लेखांकन में सुविधा रहती हैं।
6. चोरी, गबन व बर्बादी का भय कम से कम हो जाता है।
7. प्रबन्धकों को निर्णय लेने में मदद मिलती है।
8. अनावश्यक पूंजी विनियोग को न्यूनतम किया जा सकता है।
9. उत्पादन कार्य में व्यवधान उत्पन्न नहीं होता है।
10. ग्राहकों को उचित कीमत पर माल की प्राप्ति होती है।
11. राष्ट्रीय अपव्यय को कम करने में सहायता मिलती है।
12. माल की लागत इकाइयों एवं लागत केन्द्रों में विभाजन करना सरल हो जाता।

9.6 स्कन्ध को प्रभावित करने वाले तत्व (Factors affecting the Inventory)

स्कन्ध में विनियोजन स्तर को प्रभावित करने वाले तत्वों को दो भागों - सामान्य तत्व तथा विशिष्ट तत्वों में बाँटा जा सकता है। प्रत्येक का विवरण निम्न प्रकार से है -

(अ) **सामान्य तत्व (General Factors)** - इसमें उन तत्वों को सम्मिलित किया जाता है जो प्रत्येक सम्पत्ति में विनियोजन-स्तर को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में प्रभावित करते हैं। इनमें व्यवसाय की प्रकृति, आकार एवं स्वरूप, बिक्री की अनुमानित राशि, मूल्य स्तर में होने वाले परिवर्तन, कोषों की उपलब्धता तथा प्रबन्धकों का दृष्टिकोण प्रमुख हैं।

(ब) **विशिष्ट तत्व (Specific Factors)** - विशिष्ट तत्व ऐसे तत्व होते हैं जिनका स्कन्ध में विनियोजन से प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है। इनमें निम्न तत्व प्रमुख हैं -

(1) **कच्चे माल की मौसमी प्रकृति (Seasonal Nature of Raw Material)**- यदि संस्था द्‌वारा उत्पादित उत्पाद से सम्बन्धित कच्चा माल किसी मौसम विशेष में ही उपलब्ध होता है तथा संस्था में उस कच्चे माल का प्रयोग पूरे वर्ष होता है तो संस्था

को उस मौसम विशेष में कच्चे माल को क्रय करके रखने में एक साथ पूँजी विनियोजित करनी होगी। इसी प्रकार मौसमी माँग वाली वस्तुओं के उत्पादन में लगी संस्थाओं को उस मौसम विशेष में कच्चे माल में अधिक विनियोग करना होता है।

(2) **क्रय की शर्तें (Terms of Purchase)** - यदि विक्रेता अधिक मात्रा में कच्चा माल खरीदने पर रियायती मूल्य, बट्टा लम्बे उधार की सुविधाऐं -देता है तो संस्था अधिक कच्चा माल खरीदने को प्रेरित हो सकती है, अत: कच्चे माल में विनियोजन अधिक होगा।

(3) **उत्पादन प्रक्रिया की लम्बाई एवं तकनीकी प्रकृति (Length and Technical Nature of the Production Process)** - जिस उत्पाद की उत्पादन प्रक्रिया लम्बी होती है या तकनीकी प्रकृति की होती है उसके माल में अधिक विनियोजन करना होता है। तकनीकी प्रकृति की उत्पादन प्रक्रिया होने पर कच्चे माल की किस्म नियन्त्रण पर अधिक बल दिया जाता है।

(4) **अन्तिम उत्पाद की शैली (Style of the End Product)** - निर्मित होने वाले उत्पाद की शैली का भी स्कन्ध में विनियोग की मात्रा पर प्रभाव पड़ता है। इसमें उत्पाद के चलने की क्षमता तथा नष्ट हो जाने की धार्मिता आदि तत्व सम्मिलित किये जाते हैं।

(5) **समय तत्व (Time Factor)** - समय तत्व से भी स्कन्ध में विनियोग पर्याप्त मात्रा में प्रभावित होता है। समय तत्व स्कन्ध में विनियोग को कच्चे माल की उपलब्धि में लगने वाले समय, माल खरीदने तथा निर्माण करने की अवधि में लगने वाले समय तथा माल के निर्माण होने के बाद की बिक्री में लगने वाले समय के कारण प्रभावित करता है।

(6) **पूर्ति की शर्तें (Supply Conditions)** - यदि कच्चे माल की आपूर्ति निरन्तर बनी रहती है तथा किसी प्रकार के व्यवधान का अनुमान नहीं है तो सामग्री में विनियोजन कम होगा लेकिन आपूर्ति परिस्थितियाँ निश्चित न होने पर सामग्री में विनियोजन अधिक होगा।

(7) **ऋण सुविधायें (Loan Facilities)** - प्रायः कच्चा माल उधार क्रय किया जाता है। बैंकों या अन्य वित्तीय संस्थाओं से कच्चे माल को बन्धक या जमानत के रूप में रखकर ऋण प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार प्राप्त ऋण से कच्चा माल क्रय किया जा सकता है। इस प्रकार ऋण की सुविधा के कारण कम विनियोजन से अधिक सामग्री का भण्डारण सम्भव हो सकता है।

(8) **मूल्य स्तर में उतार-चढ़ाव (Price Level Variations)** - यदि निकट भविष्य में मूल्य-वृद्धि मई सम्भावना हो तो कच्चे माल का भण्डारण अधिक किया जायेगा। अत: सामग्री में विनियोजन अधिक होगा। मूल्य स्तर में गिरावट की सम्भावना होने पर सामग्री में अपेक्षाकृत कम विनियोजन होगा।

(9) **अन्य तत्व (Other Factors)** - निकट भविष्य में राशनिंग, मूल्य नियन्त्रण, सरकारी नीति में परिवर्तन, कच्चे माल का उत्पादन इत्यादि भी सामग्री में विनियोजन को प्रभावित करते हैं।

9.7 स्कन्ध निर्धारण के विभिन्न स्तर (Various Levels of Inventory Valuation)

एक संस्थान द्वारा कितनी मात्रा में स्कन्ध रखा जाये, इसकी पुष्टि हेतु स्कन्ध निर्धारित करने के विभिन्न स्तरों का परिकलन किया जाता है। जो इस प्रकार हैं :-

1. **पुन: आदेश स्तर (Re-order Level)**:

यह संग्रहालय में सामग्री की मात्रा का वह स्तर है जिस पर स्टॉक पहुंचते ही सामग्री के क्रय के सम्बन्ध में आवश्यक कार्यवाही प्रारम्भ कर दी जाती है। यह अधिकतम तथा न्यूनतम स्तर के बीच की कोई मात्रा होती है। इस स्तर को निर्धारित करते समय सामग्री के उपभोग की अधिकतम दर तथा नया माल प्राप्त करने में लगने वाला अधिकतम समय का ध्यान रखा जाता है। इसका निर्धारण न्यूनतम स्तर से इतना ऊँचा किया जाता है जिससे आदेश पत्र जारी करने से सामग्री को प्राप्त करने तक, भण्डारगृह में सामग्री की वास्तविक मात्रा न्यूनतम स्तर से नीचे न चली जावे तथा उत्पादन के लिए पर्याप्त सामग्री रहे ताकि उत्पादन में किसी प्रकार की रूकावट न आने पाये। पुन: आदेश स्तर ज्ञात करने के लिए निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है।

पुन: आदेश स्तर = अधिकतम उपभोग की दर X अधिकतम पुन: आदेश अवधि

Reorder Level = Maximum Consumption Rate x Maximum Re-order Period)

2. **न्यूनतम स्टॉक स्तर (Minimum Stock Level)**: सामग्री की किसी भी मद के सम्बन्ध में न्यूनतम स्टॉक स्तर पर वह न्यूनतम सीमा है जिससे कम मात्रा में कभी भी भण्डार गृह में उस वस्तु का स्टॉक नहीं होना चाहिए। उत्पादन की निरन्तरता बनाये रखने के लिए सामग्री के क्रय की व्यवस्था इस प्रकार की जाती है कि वस्तु के न्यूनतम स्टॉक स्तर पर पहुंचने के पहले ही स्टोर में नये आदेश का माल प्राप्त हो जाता है। यह स्टॉक की एक ऐसी सुरक्षित मात्रा है जिस पर भावी उत्पादन संकट को दूर रखा जा सकता है। इसीलिए इसे संकटकालीन स्टॉक (Emergency Stock) भी कहते हैं। इसका निर्धारण सामग्री के उपभोग की औसत दर, नया माल प्राप्त करने में लगने वाला औसत समय तथा पुनर्आदेश स्तर को ध्यान में रखकर किया जाता है। इसकी गणना का सूत्र इस प्रकार है :

न्यूनतम स्टॉक स्तर = पुन: आदेश स्तर - (सामान्य उपभोग की दर x सामान्य पुन: आदेश अवधि)

Minimum Stock Level = Re-order Level - (Normal Consumption Rate x Normal Reorder Period)

(3) **अधिकतम स्टॉक स्तर (Minimum Stock Level)**

अधिकतम स्टॉक स्तर सामग्री की किसी मद के सम्बन्ध में वह अधिकतम सीमा हैं जिससे अधिक उस वस्तु की मात्रा सामान्यतया स्टोर में नहीं आने दी जाती है। भण्डार-गृहों में सामग्री की किसी मद की वास्तविक मात्रा सदैव न्यूनतम एवं अधिकतम सीमाओं के बची बनी रहती हैं अधिकतम स्टॉक स्तर का निर्धारण करते समय उपयोग की दर, नया माल प्राप्त करने में लगने वाला समय, वस्तु की किस्म व गुण, भण्डार गृह में स्थान की उपलब्धि, भण्डारन लागत, कार्यशील पूँजी की सलभता, सामग्री की उपलब्धता, मूल्य में उतार चढ़ाव, पूँजी की लागत, अप्रचलन का भय, बीमा व्यय, सरकारी नीति आदि तत्वों को ध्यान में रखा जाता है। सामग्री की अधिक मात्रा में माल क्रय से जहां एक ओर बचत होती है अधिक स्टॉक के कारण पूँजी पर ब्याज की हानि, भण्डार गृह के व्ययों में वृद्धि, टूटफूट, छीजत अप्रचलन आदि के कारण अधिक हानि होने का भी भय रहता है। अधिकतम स्टॉक स्तर की गणना निम्न सूत्र से की जाती है ।

अधिकतम स्टॉक स्तर = (पुन: आदेश स्तर + पुन: आदेश मात्रा) - (न्यूनतम उपभोग की दर X न्यूनतम पुन: आदेश की अवधि)

Maximum Stock Level = Re-order level + Re-order quantity - (Minimum Consumption Rate x Minimum Re-order Period)

(4) **औसत सामग्री स्तर (Average Stock Level):**

एक निर्माणी संस्था को अपने भण्डारगृह में औसतन जितनी सामग्री रखनी चाहिए उसे औसत सामग्री स्तर कहा जाता है। यह अधिकतम एवं न्यूनतम स्तर के बीच में होता है। इसे निम्न सूत्र की सहायता से ज्ञात किया जाता है।

औसत स्टॉक स्तर = 1/2 (अधिकतम स्टॉक सीमा + न्यूनतम स्टॉक सीमा)

Average Stock Level = ½ (Minimum Stock Level + Maximum Stock Level)

Average Stock Level = Minimum Stock Level + ½ of Reorder Quantity

औसत स्टॉक स्तर = न्यूनतम स्टॉक स्तर - 1/2 (पुन: आदेश मात्रा)

टिप्पणी : व्यावहारिक प्रश्नों में औसत स्टॉक स्तर के प्रथम सूत्र का प्रयोग किया जाता है।

(5) **जोखिम स्तर (Danger Level)**

सामान्यतया सामग्री का स्टॉक न्यूनतम स्टॉक स्तर से नीचे नहीं जाने दिया जाता है, किन्तु विशेष परिस्थितियों में स्टॉक की सीमा इस स्तर से नीचे हो जाती है। जोखिम स्तर सामग्री स्टॉक का वह स्तर है जिससे स्टॉक की मात्रा किसी भी परिस्थिति में

नीचे नहीं गिरनी चाहिए। सामग्री की मात्रा इस स्तर पर आते ही सामग्री की कमी के कारण उत्पादन न रोकना पड़े। कुछ संस्थानों में यह स्तर न्यूनतम स्टॉक स्तर से ऊपर किन्तु पुन: आदेश स्तर से नीचे निश्चित किया जाता है। इसकी गणना निम्न सूत्र से की जा सकती है।

Danger Level = Minimum rate of consumption x Emergency delivery time.

उदाहरण-। (Illustration): एक उत्पाद के निर्माण में एक कम्पनी A,B तथा C तीन प्रकार की सामग्री का प्रयोग करती है, जिसके लिए निम्न तथ्य लागू होते हैं -

A Company uses three raw materials A,B and C for manufacturing a particular product for which the following data apply:

Raw Materials	Usage per unit Product (Kgs)	Re-order Qty (Kgs)	Price Per Kg. (Rs.)	Delivery Period (in weeks)	Re-order Level (Kgs)	Mini Level (Kgs)
A	10	10,000	0.10	1 to 3	8,000	-
B	4	5,000	0.30	3 to 5	4,750	-
C	6	10,000	0.15	2 to 4	-	2,000

साप्ताहिक उत्पादन का विचरण 175 से 225 इकाइयाँ तक है जो औसतन 200 है। निम्न मात्राओं विषय में आपका अनुमान क्या है ?

Weekly Production varies from 175 to 225 units, averaging 200 units of the said product. What would be the following quantities :

(i) A का न्यूनतम स्टॉक (Minimum Stock of A)

(ii) B का अधिकतम स्टॉक (Maximum Stock of B)

(iii) C का पुन: आदेश स्तर (Re-order Level of C)

(iv) A का औसत स्टॉक (Average Stock of A)

हल (**Solution):**

(i) Minimum Stock of A:

= ROL-(Normal Usage x Average ROP)

= $8,000-(2,000\times 2)$

= $8,000-4,000=4,000$ Kgs.

Note : Normal Usage = Average weekly Production x Usage p.u.

= 200×10 Kgs. = $2,000$ Kgs.

(ii) Maximum Stock of B:

= {ROL + ROQ) - (Minimum Usage x Minimum ROP)

= $(4,750 + 5,000) - (700 \times 3)$

= $9,750 - 2,100 = 7,650$ Kgs.

Note : Minimum Usage = Mini Weekly Production x Usage p.u.

= $175 \times 4 = 700$ Kgs.

(iii) Re-order Level of C

= Maximum usage x Maximum ROP

= $1,350 \times 4 = 5,4000$ Kgs.

Note : Minimum Usage = Mini Weekly Production x Usage p.u.

= $225 \times 6 = 1,350$ Kgs.

(iv) Average Stock of A

$$= \frac{Minimum\,Stock + Maximum\,Stock}{2}$$

$$= \frac{4,000 + 16,250}{2}$$ =10,125 Kgs.

Note :

(i) Minimum Stock as per (i) above

(ii) Maxi. Stock =(ROL+ROQ) - (Min. Usage x Min. ROP)

a. = $(8,000 + 10,000) - (1,750 \times 1)$

b. = $18,000 - 1,750 = 16,250$ Kgs.

(iii) Minimum Usage = $175 \times 10 = 1750$ Kgs.

Where; ROL = Re-order Level; ROP =Re-order period;

ROQ = Re-order Quantity.

9.8 स्कन्ध नियन्त्रण की 'ए.बी.सी' प्रणाली (A.B.C. System of Inventory Control)

प्रत्येक व्यवसाय में उत्पादन के लिए कई प्रकार की सामग्रियों का प्रयोग किया जाता है। इन सभी सामग्रियों का मूल्य एक सा नहीं होता। कुछ सामग्रियाँ बहुत मूल्यवान होती हैं, कुछ बहुत सस्ती तथा कुछ मध्यम मूल्य की होती है।

सामग्री पर उचित नियन्त्रण रखने के लिए यह आवश्यक हे कि सामग्रियों का मूल्य के अनुसार वर्गीकरण किया जाए। सबसे अधिक कीमती सामग्री पर सबसे अधिक ध्यान

दिया जाना चाहिए तथा कम मूल्य की सामग्री पर अपेक्षाकृत कम ध्यान देना चाहिए। इस दृष्टिकोण से सामग्री को तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है :-

(1) **'ए' श्रेणी** - इस श्रेणी के अन्तर्गत वे सामग्रियाँ सम्मिलित की जाती हैं जो सबसे मूल्यवान हों। इनकी लागत सामग्री की कुल लागत का प्रायः 7० से 75 प्रतिशत होती है किन्तु इनकी मात्रा कुल मात्रा का केवल 5 से 10 प्रतिशत तक होती है।

(2) **'बी' श्रेणी** - इस श्रेणी में सामग्री की वे मदें सम्मिलित की जाती हैं तो मध्यम मूल्य वर्ग की हों। इनकी लागत प्रायः सामग्री की कुल लागत का 15 से 25 प्रतिशत होती है परन्तु इनकी मात्रा सामग्री की कुल मात्रा का 20 से 30 प्रतिशत होती है।

(3) **'सी' श्रेणी** - इस श्रेणी में वे सामग्रियाँ सम्मिलित की जाती है जो अपेक्षाकृत सस्ती तथा कम मूल्य की होती हैं। ये प्रायः कुल लागत का 5 से 10 प्रतिशत तथा कुल मात्रा का 60 से 75 प्रतिशत होती है।

तालिका द्वारा स्पष्टीकरण -

वर्ग	कुल मात्रा का प्रतिशत	कुल लागत का प्रतिशत
ए	10%	70%
बी	30%	25%
सी	60%	5%
कुल	100%	100%

सामग्री के इस वर्गीकरण का उद्देश्य यह है कि 'ए' श्रेणी की सामग्री पर कड़ा व सर्वाधिक नियन्त्रण रखा जाना चाहिए, 'बी' श्रेणी की सामग्री पर अपेक्षाकृत कम तथा 'सी' श्रेणी सामग्री पर कम ध्यान देना चाहिए।

उपर्युक्त विवरण सें स्पष्ट है कि विभिन्न मदों का अ, ब, स, तीन श्रेणियों में विभाजन उनके महत्व के अनुसार किया जाता है। नियन्त्रण की दृष्टि से 'अ' श्रेणी की वस्तुओं पर सर्वाधिक ध्यान दिया जाता है। 'ब' श्रेणी की वस्तुएँ लिपिकों के सामान्य नैत्यिक नियन्त्रण (Routine Control) के अधीन रखी जाती हैं तथा स श्रेणी की वस्तुओं पर अनुभव के आधार पर बनायी गई पद्धतियों द्वारा साधारण नियन्त्रण रखा जाता है। अ, ब, स, वर्गीकरण चुनिंदा नियन्त्रण (Selective Control) एवं अपवाद-स्वरूप प्रबन्ध (Management by Exception) के सिद्धान्त पर आधारित है। अत: इस पद्धति को चुनिंदा नियन्त्रण प्रणाली (Selective Control System) भी कहते हैं।

9.9 पुन: आदेश मात्रा अथवा आर्थिक आदेश मात्रा (Re-order Quantity or Economic Order Quantity)

सामग्री का क्रय आदेश देते समय यह निश्चित करना महत्वपूर्ण होता है कि कितनी मात्रा क्रय की जाए। सामग्री की वह मात्रा जिसके लिए एक समय पर क्रय आदेश दिया जाता है पुन: आदेश मात्रा कहलाती है। यह मात्रा आर्थिक रूप से उचित होनी चाहिए इसलिए इसे सर्वोत्तम अथवा आर्थिक आदेश मात्रा (Optimum Quantity or Economic Order Quantity) भी कहते हैं।

आर्थिक आदेश मात्रा निर्धारित करते समय निम्न दो प्रकार की लागतें ध्यान में रखी जानी चाहिए -

(i) **आदेश लागत** (Cost of ordering) - यह विक्रेता को क्रय आदेश देने तथा सामग्री प्राप्त करने की लागत है। इसमें लेखन सामग्री की लागत, क्रय विभाग तथा प्राप्ति विभाग की आनुपातिक लागत सम्मिलित है। आदेश पर क्रय की जाने वाली सामग्री की मात्रा जितनी कम होगी आदेशों की संख्या उतनी अधिक हो जाएगी। जितनी अधिक बार आदेश दिया जायेगा, कुल आदेश लागत उतनी ही अधिक होगी। इसी प्रकार प्रति आदेश क्रय मात्रा जितनी अधिक होगी, आदेशों की संख्या कम हो जाएगी तथा कुल आदेश लागत भी कम हो जाएगी।

(ii) संग्रह करने की लागत (Carrying Cost or Storage Cost) - यह सामग्री को संग्रह करने की लागत है। इसमें निम्नलिखित मदें सम्मिलित हैं -

1. संग्रह करने की लागत (इसमें स्टोर कीपर तथा अन्य स्टोर कर्मचारियों का वेतन, लेखन सामग्री, इत्यादि सम्मिलित हैं),
2. सामग्री में निवेश पूँजी पर ब्याज
3. बीमा व्यय,
4. सामग्री पुरानी पड़ने के कारण होने वाली हानियाँ, इत्यादि।

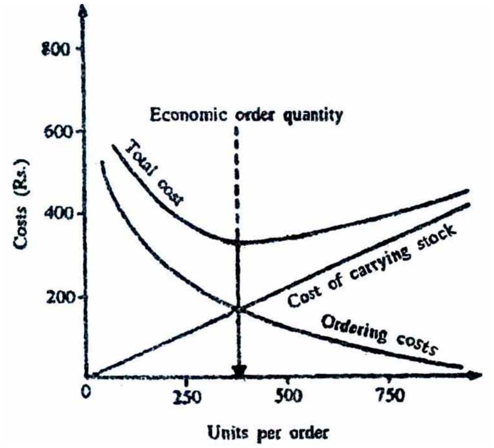

चित्र 9.1 - आर्थिक आदेश मात्रा

उपरोक्त दोनों प्रकार की लागतों का व्यवहार एक दूसरे के विपरीत है। जब प्रति आदेश क्रय की मात्रा कम होती हैं तो पूर्ण वर्ष में कुल आदेश लागत अधिक हो जाती है तथा संग्रह करने की कुल लागत कम हो जाती है। इसके विपरीत, जब प्रति आदेश क्रय की मात्रा अधिक हो तो कुल आदेश लागत कम हो जाती है परन्तु संग्रह करने की कुल लागत अधिक हो जाती है। इन दोनों प्रकार की लागतों में सन्तुलन प्राप्त करना ही मुख्य समस्या है। आर्थिक आदेश मात्रा उस स्तर पर निर्धारित की जाती है जहां पर दोनों प्रकार की लागतों का योग न्यूनतम हो। यह चित्र 9.1 से स्पष्ट किया गया है।

आर्थिक आदेश मात्रा का निर्धारण दो विधियों द्वारा किया जा सकता है -

(i) सूत्र विधि (Formula Method)

(ii) तालिका विधि (Tabular Method)

सूत्र विधि - इसके अर्न्तगत आर्थिक आदेश मात्रा निम्न सूत्र के द्वारा ज्ञात की जाती है:

EOQ (in units) = $\sqrt{\frac{2.A.B.}{C.S.}}$

where EOQ		आर्थिक आदेश मात्रा (Economic Order Quantity).
A	=	सामग्री के वार्षिक उपयोग की मात्रा (Annual Consumption in Units).
B	=	एक आदेश देने की लागत (Buying or ordering cost per order).
C	=	प्रति इकाई लागत (Cost per Unit)
S	=	एक इकाई के संग्रहण करने की वार्षिक लागत प्रतिशत में (Storage or carrying cost as a percentage of average inventory).

तालिका विधि (Tabular Method)

तालिका बनाकर भी आर्थिक आदेश मात्रा ज्ञात की जा सकतीं है। इस प्रकार की तालिका में विभिन्न आदेश की मात्राओं पर आदेश लागतों (Ordering Costs) तथा संग्रह करने की लागतों (Carrying costs) की गणना करके कुल लागतें ज्ञात की जाती हैं। आर्थिक आदेश मात्रा उस स्तर पर निश्चित की जाती है जहां पर कुल लागत न्यूनतम हो। यह निम्न उदाहरण से दर्शाया गया है।

उदाहरण-2 (Illustration)

वार्षिक उपभोग (Annual Consumption)	–	12,000 units
आदेश देने की लागत (Cost of ordering)	–	Rs. 15 per order
सामग्री की लागत (Cost of Material)	–	Rs. 1.25 per units
भण्डारण की लागत (Carrying Cost)	–	Rs. 20% of average inventory

निम्न तालिका बनाकर आर्थिक आदेश मात्रा ज्ञात की गई है -

No. of orders per year Assumed	Units per order	Value per order Rs.	Ordering cost Rs.	Carrying cost Rs.	Total cost Rs.
1	12,000	15,000	15	1,500	1,515
2	6,000	7,500	30	750	780
3	4,000	5,000	45	500	545
4	3,000	3,750	60	375	435
5	2,400	3,000	75	300	375
6	2,000	2,500	90	250	340
7	1,714	2,142	105	214	319
8	1,500	1,875	120	188	308
9	1,200	1,500	150	150	300
10	1,091	1,364	165	136	301
11	1,000	1,250	180	125	305
12	923	1,154	195	115	310
13	857	1,071	210	107	317
14	800	1,000	225	100	325

Notes : Units per order = Annual consumption $\div$ No. of orders

Value per order = Units per order x Cost per unit

Ordering cost = No. of orders x Rs. 15

Carrying cost = $20\% \times 1/2$ of value per order

Total cost = Ordering cost + Carrying cost

उपरोक्त तालिका में आर्थिक आदेश मात्रा 1,200 इकाइयाँ दर्शायी गई है क्योंकि इस मात्रा पर कुल लागत सबसे कम है। इसका तात्पर्य यह है कि एक वर्ष में आदेशों की संख्या दस $(12,000 \div 1,200)$ होनी चाहिए। यदि आदेश की मात्रा 1,200 इकाइयों से कम हो अथवा अधिक हो तो कुल लागत अधिक होगी। इस तालिका द्वारा दर्शाए गये परिणाम का सत्यापन सूत्र विधि से निम्न प्रकार से किया गया है :

EOQ = $\sqrt{\frac{2.A.B.}{C.S.}}$ $\sqrt{\frac{2 \times 12,000 \times 15}{1.25 \times 20\%}}$ =**1,200 units**

मात्रा छूट (Quantity Discount) - भारी मात्रा में माल का क्रय करने पर मात्रा छूट दी जाती है। अत: कई बार यह प्रश्न उत्पन्न होता हैं कि क्या मात्रा छूट का लाभ प्राप्त करने के लिए आर्थिक आदेश मात्रा से अधिक मात्रा में आदेश दिया जाये या नहीं यदि ऐसा किया जाता है तो कुल आदेश देने की लागत में कमी आती है, किन्तु दूसरी

ओर स्कन्ध रखने की लागत बढ़ जाती है इसलिए स्कन्ध रखने की लागत एवं आदेश देने की लागत में शुद्ध वृद्धि की तुलना मात्रा छूट के फलस्वरूप होने वाली बचत से करनी चाहिए। यदि बचत की राशि लागत वृद्धि से अधिक होती हो तभी आर्थिक आदेश मात्रा से अधिक मात्रा में आदेश देना चाहिए, अन्यथा नहीं। नीचे दिये गये उदाहरणों से इसे स्पष्ट किया गया है -

उदाहरण-3 (Illustration):

स्कन्ध की एक विशेष मद की वार्षिक माँग 10,000 इकाइयाँ है। स्कन्ध रखने की लागत प्रति इकाई प्रति वर्ष 20% है तथा आदेश देने की लागत प्रति आदेश 40 रू. है। पूर्तिकर्ता द्वारा उद्धत मूल्य 4 रू. प्रति इकाई है, किन्तु पूर्तिकर्ता 1,500 या अधिक से आदेश के लिए 5% बट्टा छूट देने को इच्छुक है। क्या बट्टा प्रस्ताव को स्वीकृत करना लाभप्रद है?

Annual demand for a particular item of inventory is 10,000 units. Inventory carrying cost per unit per year is 20% and ordering cost is Rs. 40 per order. The price quoted by the supplier is Rs. 4 per unit. However, the supplier is willing to give discount of 5% for orders of 1,500 or more is it worthwise to avail of the discount offer?

हल (Solution): Calculation of Total Cost -

(a) Without discount

Carrying cost per unit per year = 20% of Rs.4 = Rs.0.80

EOQ = $\sqrt{\frac{2 \times A \times B}{CS}}$

= $\sqrt{\frac{2 \times 10,000 \times Rs.40}{0.80}}$

= $\sqrt{10,00,000}$ = 1,000 units

Total Cost:	Rs.
Purchase Cost = $10,000 \times 4 =$	Rs.40,000
Ordering Cost = $\left(\frac{A}{EOQ} \times B\right)$ = $\left(\frac{10,000}{1,000} \times 40\right)$	= 400
Carrying Cost = $\left(\frac{EOQ}{2} \times CS\right)$ = $\left(\frac{1,000}{2} \times 0.80\right)$	= 400
Total Cost without discount	= 40,800

(b) With Discount of 5%

Purchase Price = Rs. 4 - 5% of Rs. 4 = Re. 3.80

Carrying Cost (C) = 20% of Rs. 3.80 = Re. 0.76

Total Cost :

Purchase Cost = $10,000 \times 3.80$ 38,000

Ordering Cost = $\left(\frac{A}{EOQ} \times B\right)$ = $\left(\frac{10,000}{1,500} \times 40\right)$ = 267

Carrying Cost = $\left(\frac{EOQ}{2} \times CS\right)$ = $\left(\frac{1,500}{2} \times 0.76\right)$ = 570

Total Cost at a discount of 5%=38,837

Savings, if discount is a availed = (40,800-38,837)1,963

Hence, discount offer of 5% should be availed. Orders should be placed at the rate of 1,500 units.

9.10 सामग्री अथवा स्कन्ध आवर्त (Material or Inventory Turnover)

सामग्री आवर्त से इस बात का ज्ञान होता है कि एक निश्चित अवधि मे औसत सामग्री का कितनी बार उपभोग हुआ तथा उसे प्रतिस्थापित (Replace) किया गया। सामग्री आवर्त जितना अधिक हो, स्टॉक नीति उतनी ही कुशल मानी जाती है। सामग्री आवर्त कम होने का अर्थ है कि सामग्री स्टोर में लम्बी अवधि तक पड़ी रहती है जिससे सामग्री में निवेश पूँजी पर ब्याज की हानि तथा स्टोर के व्ययों में अनावश्यक रूप से वृद्धि होती है। इसके अतिरिक्त सामग्री के अप्रचलित होने का भी भय रहता है। अत: सामग्री नियन्त्रण की एक कुशल नीति के लिए यह आवश्यक है कि सामग्री आवर्त युक्ति संगत हो। सामग्री आवर्त की दर निम्न सूत्र से निकाली जाती है :-

$$\text{सामग्री} = \frac{\text{एक अवधि में सामग्री की लागत}}{\text{अवधि में सामग्री का औसत स्टॉक}}$$

सामग्री आवर्त की दर सामग्री के उपभोग की दर का सूचक है, यानी इससे यह ज्ञात होता है कि सामग्री धीमे चलने वाली है अथवा तीव्रगामी। सामग्री आवर्त की ऊँची दर तीव्रगामी सामग्री का सूचक है तथा अल्प दर धीमे चलने वाली सामग्री की ओर संकेत करती है। विभिन्न सामग्रियों की आवर्त दरों की तुलना में निष्क्रिय सामग्रियों का पता चल जाता है।

सामग्री आवर्त की गणना दिनों में भी की जा सकती है। इसके लिए उस अवधि में कुल दिनों की संख्या (जैसे एक वर्ष में 365 दिन) को सामग्री आवर्त दर से विभाजित कर दिया जाता है। इसका सूत्र निम्न है ।

$$\text{सामग्री आवर्त (दिनों में)} = \frac{\text{अवधि में दिनों की संख्या}}{\text{सामग्री आवर्त दर}}$$

यदि यह दर कम दिनों की हो तो सामग्री को तीव्र गति का माना जाना चाहिए।

उदाहरण-4 (Illustration) : निम्न सूचना के आधार पर 3। मार्च 2009 को समाप्त होने वाले वर्ष के लिए ज्ञात कीजिए.

(अ) सामग्री के खपत की लागत

(ब) औसत स्कन्ध

(स) स्कन्ध आवर्त अनुपात

(द) निम्न में से स्कन्ध की कौनसी मदें अधिक गतिशील हैं।

From the following data for the year ending March 31, 2009, compute:

(a) Cost of Materials consumed.

(b) Average inventory.

(c) Inventory Turnover Ratio.

(d) Which of the two items of inventory is fast moving.

	Material A	**Material B**
	Rs.	**Rs.**
Opening Stock	40,000	36,000
Purchase during the year	2,08,000	1,08,000
Closing Stock	24,000	48,000

हल (Solution)

Materials consumed = Opening stock + Purchases - Closing Stock

Material A = 40,000+2,08,000-24,000

= Rs. 2,24,000

Material B = 36,000+1,08,000-48,000

= Rs. 96,000

(b)Average Inventory = $\frac{Opening\ Inventory + Clo\sin g\ Inventory}{2}$

Material A = $\frac{40,000 + 24,000}{2}$ = Rs. 32,000

Material B = $\frac{36,000 + 48,000}{2}$ = Rs. 42,000

(c)Inventory Turnover Ratio = $\frac{Materials\ consumed\ during\ the\ year}{Average\ inventory}$

Material A = 2,24,000 + 32,000

= 7 times per annum

Material B = 96,000 + 42,000

= 2.3 times per annum

यदि सामग्री आवर्त को दिनों में निकालना हो तो इसकी गणना निम्न प्रकार से की जाएगी :

$$= \frac{365 \text{ (एक वर्ष में दिन)}}{\text{सामग्री आवर्त की दर}}$$

Material A $= \frac{365}{7}$ = 52 days (approx)

Material B $= \frac{365}{2.3}$ = 159 days (approx)

(d) सामग्री B की तुलना में सामग्री A तीव्र गति की है क्योंकि सामग्री A के औसत स्टॉक का उपभोग करने में केवल 52 दिन लगते हैं जबकि सामग्री B के औसत स्टॉक का उपभोग करने में 159 दिन लगते हैं। सामग्री आवर्त की कम दर को देखते हुए, सामग्री B के स्टॉक स्तरों को पुन: स्थापना की जानी चाहिए और यदि तब भी इसके आवर्त की दर में कोई परिवर्तन नहीं हो तो इसके क्रयों को कम कर देना चाहिए। इस प्रकार सामग्री आवर्त दर सामग्री के उपयोग की कुशलता का एक अच्छा मापन हैं।

9.11 स्कन्ध नियन्त्रण की न्यूनतम व अधिकतम प्रणाली (Minimum and Maximum System of Inventory Control)

स्कन्ध नियन्त्रण की यह सबसे पुरानी तकनीक है। इस तकनीक के अर्न्तगत अधिकतम स्कन्ध स्तर का निर्धारण माँग या आवश्यकता के आधार पर किया जाता है तथा न्यूनतम स्तर उस स्तर पर निर्धारित किया जाता है जिस स्तर पर सामग्री क्रय आदेश देने पर आदेश अवधि में उत्पादन रुकने की सम्भावना न हो। इनके सूत्रों का वर्णन पहले ही किया जा चुका है। इस तकनीक के अनुसार स्कन्ध के न्यूनतम स्तर पर सामग्री का क्रय आदेश दे दिया जाता है जिससे सामग्री के प्राप्त होने के पश्चात् सामग्री का अधिकतम स्तर प्राप्त हो जाता है।

9.12 स्कन्ध नियन्त्रण की आदेश चक्र प्रणाली (Order cycling system of Inventory Control)

यहाँ चक्र (Cycling) से अभिप्राय एक निश्चित समयावधि के पश्चात् स्कन्ध की गणना से है। स्कन्ध गणना के पश्चात् ऐच्छिक स्तर बनाये रखने के लिए सामग्री का आदेश दे दिया जाता है। इस प्रकार निश्चित समयावधि के पश्चात् गणना करने का एवं सामग्री के आदेश का चक्र चलता रहता है।

9.13 स्कन्ध नियन्त्रण की बजटरी नियन्त्रण प्रणाली (Budgetary control system of Inventory Control)

इस तकनीक के अन्तर्गत विभिन्न सामग्री की आवश्यकताओं का अनुमान लगाकर उनको आवश्यकता के समय उपलब्ध कराने हेतु क्रय की सूचियाँ तैयार करना एवं स्कन्ध नियन्त्रण हेतु वास्तविक उपयोग व बजटीय उपयोग का अन्तर ज्ञात किया जाता है। सामग्री बजट की सफलता विक्रय पूर्वानुमान पर निर्भर करती है।

9.14 स्कन्ध नियन्त्रण की द्‌वि-बिन प्रणाली (Two-Bin system of Inventory Control)

इस पद्धति के अर्न्तगत दो बिने (Bins) रखी जाती है। प्रथम बिन में सामग्री प्राप्ति एवं पुन: आदेश देने के मध्य के समय से सम्बन्धित सामग्री रखी जाती है जबकि द्‌वितीय बिन में पुन: आदेश देने के मध्य के समय से सामग्री प्राप्ति तक के समय की सामग्री रखी जाती है। आदेश देने एवं सामग्री प्राप्ति के मध्य के समय को लीड टाइम (Lead Time) कहते हैं। अत: द्‌वितीय बिन में लीड टाइम की पूर्ति के लिए सामग्री रखी जाती हैं। इस पद्धति में जैसे ही प्रथम बिन की सामग्री समाप्त हो जाती हैं, पुन: सामग्री माँगने हेतु आदेश दे दिया जाता है तथा सामग्री प्राप्ति में लगने वाले समय या लीड टाइम के दौरान द्‌वितीय बिन की सामग्री का प्रयोग किया जाता है। पुन: आदेशित माल प्राप्त होने पर उसे फिर प्रथम एवं द्‌वितीय दोनों बिनों में रखा जाता है। इस प्रकार सामग्री, नियन्त्रण का यह क्रम चलता रहता है।

9.15 स्कन्ध नियन्त्रण की भौतिक गणन पद्धतियाँ (Physical Inventory Control System)

सामग्री के स्टॉक पर उचित नियन्त्रण रखने एवं क्षय, चोरी, गबन आदि से होने वाली हानि को रोकने के लिए लेखांकन की समुचित प्रणाली अपनाना तथा स्टॉक की भौतिक जाँच (Physical count) करना आवश्यक हैं इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए निम्न में से कोई एक पद्धति अपनाई जा सकती है:

I. **निरन्तर गणना प्रणाली (Perpetual Inventory System)**

निरन्तर गणना पद्धति नियन्त्रण विभाग द्‌वारा अपनायी जाने वाली सामग्री अभिलेखों की ऐसी पद्धति है जो सामग्री के भौतिक आवागमन तथा उसके वर्तमान शेष को प्रकट करती है। विस्तृत अर्थ में इस प्रणाली के अर्न्तगत बिन कार्ड तथा सामग्री खाता बही में सामग्री की प्राप्ति निर्गमन तथा शेष स्टॉक के सम्बन्ध में विस्तृत लेखे रखना तथा इन लेखों की सहायता से वास्तविक स्टॉक का निरन्तर भौतिक सत्यापन करना सम्मिलित किया जाता है। इस प्रणाली में सामग्री की निरन्तर भौतिक गणना (Continuous Stock taking) के लिए एक स्थायी जाँच दल नियुक्त कर दिया

जाता है। यह दल प्रतिदिन सामग्री की विभिन्न मदों की भौतिक गणना करता है। स्टॉक में सामग्री की वास्तविक मात्रा की तुलना बिन कार्ड व सामग्री खाता बही में सम्बन्धित शेषों में से की जाती है। सामग्री की वास्तविक मात्रा एवं लेखों के अनुसार शेष मात्रा में अन्तर पाये जाने पर इसे लिख लिया जाता है तथा कारणों का पता लगाया जाता है। इसमें सामग्री की विभिन्न मदों की स्थिति एवं सामग्री आवर्त दर (Material Turnover Rate) का भी अध्ययन किया जाता है। इस प्रणाली में सामग्री की भौतिक जाँच का कार्य निरन्तर पूरे वर्ष चलता रहता है और सामग्री की विभिन्न मदों की जाँच वर्ष में कई बार हो जाती है। इसमें जाँच का एक प्रतिवेदन तैयार किया जाता है जिसे सामग्री अंकेक्षण पत्र (Stock Audit Note) कहते हैं। इस प्रतिवेदन में जाँच की तिथि, बिन कार्ड के अनुसार मात्रा, वास्तविक मात्रा, अन्तर के कारण, आवश्यक समायोजन आदि से सम्बन्धित सूचना दी जाती है। सामग्री अंकेक्षण पत्र का नमूना इस प्रकार हो सकता है:

STORES AUDIT NOTE

Note No.................. Bin No. ....

Item....................... Location Code.....................

Code......................... Date.....................

Date of Verification	Actual Stock	Bin Card Stock	Surplus	Shortage	Reasons	Adjustment	Remark

Sd/- Sd/ Sd/-

Stock Verifier Store Keeper Cost Clerk

स्टॉक की मात्रा में अन्तर अनेक कारणों से हो सकता है। अन्तर के कारणों को निम्न दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है।

1. **परिहार्य कारण (Avoidable Causes)** :

स्टोर कीपर तथा स्टोर में कार्यरत कर्मचारियों का उत्तरदायित्व निश्चित करके इन कारणों को रोका जा सकता है। ये कारण निम्न हो सकते हैं :

(1) सामग्री की टूट फूट चोरी अथवा गबन

(2) सामग्री के रख रखाव में असावधानी से क्षय

(3) सामग्री का कम या अधिक मात्रा में निर्गमन

(4) सामग्री की प्राप्ति निर्गमन आदि में लिपिकीय त्रुटियां

2. अपरिहार्य कारण (Unavoidable Causes) :

यह ऐसे कारण होते हैं, जिनको मानवीय क्रियाओं के द्वारा नहीं रोका जा सकता है। ये कारण निम्न हो सकते हैं -

(1) सामग्री के वाष्पीकरण, सूखने या सिकुड़ने से वजन में कमी

(2) नमी सोख लेना

(3) भारी सामग्री के टुकड़े करने पर होने वाली हानि

(4) जलवायु सम्बन्धी स्थितियों के कारण वजन, लम्बाई आदि में विचरण होना।

निरन्तर गणना प्रणाली के लाभ (Advantages of Perpetual Inventory System):

सामग्री के अभिलेखन एवं जाँच की इस प्रणाली से निम्नलिखित लाभ है :-

1. इसमें लेखा वर्ष की समाप्ति पर स्टॉक भौतिक की जाँच करने की आवश्यकता नहीं रहती हैं, अत: अन्तिम खाते समय पर तैयार हो जाते हैं।
2. इस प्रणाली को अपनाने से सामग्री की प्रत्येक मद का अन्तिम शेष बिन कार्ड अथवा सामग्री खाता बही से किसी भी समय लिया जा सकता है, अत: अन्तरिम खाते बनाते समय स्टॉक गणना की आवश्यकता नहीं पड़ती है।
3. सामग्री के लेखे पूर्ण एवं विश्वसनीय हो जाती हैं क्योंकि अभिलेखों से प्रदर्शित अन्तिम शेष का सामग्री की वास्तविक मात्रा से मिलान कर दिया जाता है।
4. सामग्री की वास्तविक मात्रा एवं अभिलेखों के शेष में अन्तर का सुगमता से एवं शीघ्र पता चल जाता है, जिसमें अन्तर के कारणों की समय पर खोज करके आवश्यक समायोजन कर दिया जाता है और संचयी प्रभाव नहीं होने दिया जाता है।
5. इससे प्रभावशाली आन्तरिक जाँच प्रणाली जारी रहती है जिससे नैतिक प्रभाव के कारण असावधानी, चोरी, गबन, क्षय आदि पर नियन्त्रण रखा जा सकता है।
6. इससे सामग्री की विभिन्न मदों की उपभोग की गति का ज्ञान हो जाता है जिससे सामग्री के अधिकतम, न्यूनतम व पुन: आदेश स्तर निश्चित करने में सहायता मिलती है और सामग्री में पूँजी के विनियोग पर नियन्त्रण किया जा सकता है।
7. प्रबन्ध को प्रत्येक समय सामग्री स्टॉक स्थिति की जानकारी रहती है जिससे उत्पादन सम्बन्धी योजनायें बनायी जा सकती है और सामग्री के अभाव में उत्पादन में रूकावट नहीं आने दी जाती है।
8. लेखा वर्ष की समाप्ति पर सामग्री की भौतिक गणना के लिए उत्पादन कार्य नहीं रोकना पड़ता है।
9. अशुद्धियों व स्टॉक की कमी आदि का आसानी से पता चल जाता है जिससे भविष्य के लिए कदम उठाये जा सकते हैं।
10. इससे सामान्य हानि की प्रतिशत निश्चित की जा सकती है तथा क्षय और हानियों पर नियन्त्रण रखने के लिए पूर्व निश्चित प्रतिशत का पुन: अवलोकन किया जा सकता है।

निरन्तर गणना पद्धति की कमियाँ (Drawbacks of Perpetual Inventory System):

यद्यपि सामग्री अभिलेखन एवं जाँच की यह एक सर्वोत्तम पद्धति है फिर भी इसमें निम्न कमियां पाई जाती है:-

1. यह प्रणाली खर्चीली है अत: छोटी संस्थाओं के लिए उपयोगी नहीं है।

2. इससे सामग्री की किसी पद के वास्तविक स्टॉक की जानकारी दिन प्रतिदिन नहीं हो सकती है।

II. **सामयिक गणना प्रणाली (Periodic Inventory System)** :

इस प्रणाली में सामग्री क्रय के सम्बन्ध में लेखे रखे जाते हैं तथा निश्चित अवधि के अन्त में प्रारम्भिक एंव अन्तिम स्टॉक का सत्यापन किया जाता है। प्रारम्भिक स्टॉक में क्रय जोड़कर तथा अन्तिम स्टॉक घटाकर प्रयुक्त सामग्री की लागत ज्ञात कर ली जाती है। इस विधि में स्टॉक की भौतिक गणना लेखा वर्ष की समाप्ति पर अथवा एक निश्चित अवधि के पश्चात वर्ष में एक बार की जाती है। इसमें वास्तविक स्टॉक की भौतिक गणना करके उसका मिलान सम्बन्धित लेखों से किया जाता है तथा अन्तर होने पर कारण ज्ञात कर दूर करने के प्रयास किये जाते हैं।

इस प्रणाली के लाभ: सामयिक गणना प्रणाली के लाभ निम्न है:

1. यह प्रणाली मितव्ययी है क्योंकि इसमें जाँच कार्य के लिए अलग से स्थायी जाँच दल नियुक्त नहीं किया जाता है तथा जाँच वर्ष में केवल एक बार की जाती है।
2. इससे एक निश्चित तिथि को स्टॉक की वास्तविक मात्रा की जानकारी मिलती है।
3. यह प्रणाली वहां उपयुक्त है जहां सामग्री कीमती वस्तु नहीं होती हैं तथा बड़ी मात्रा में प्रयुक्त की जाती है जैसे कच्चा लोहा, कोयला, ईंट, पत्थर आदि।

इस प्रणाली के दोष : इसके दोष निम्न हैं:

1. सामग्री की भौतिक परीक्षण एक साथ एक निश्चित तिथि को किया जाता है, अत: जाँच कार्य जल्दबाजी में होता है।
2. जाँच कार्य के लिए विशेषज्ञ नियुक्त नहीं किये जाते हैं, जिससे सही परीक्षण नहीं हो पाता है।
3. जाँच की तिथि पहले से ही निश्चित रहती है अत: चोरी, गबन आदि को पकड़ना सम्भव नहीं है।
4. इसमें जाँच के दौरान उत्पादन कार्य रोकना पड़ता है।

9.16 सारांश

वस्तु का उत्पादन सामग्री, श्रम एवं मशीनों (Men, Material and Machines) की सहायता से ही होता है, फिर भी वस्तु की उत्पादन लागत का 40 से 60 प्रतिशत अंश सामग्री पर ही व्यय होता है। अंत: उत्पादन कार्य में प्रयुक्त की जाने वाली सामग्री का ठीक-ठीक प्रबन्ध न होने पर व्यवसाय को समुचित लाभ पर संचालित किया जाना सम्भव नहीं होता। स्कन्ध नियन्त्रण वह विधि है जिसके द्वारा न्यूनतम पूंजी विनियोजन से वांछित किस्म एवं वांछित मात्रा में, ठीक समय पर न्यूनतम लागत में सामग्री उपलब्ध हो सके व आवश्यकता पड़ने पर उत्पादन विभागों को सुगमतापूर्वक निर्गमित की जा सके। वस्तुतः स्कन्ध नियन्त्रण एक पद्धति है जिसके द्वारा सामग्री की मांग, क्रय, प्राप्ति, निरीक्षण, संग्रहण, निर्गमन, लेखांकन एवं अंकेक्षण की व्यवस्था की जाती है जिससे कि न्यूनतम लागत एवं उचित समय पर उचित मात्रा में आवश्यक

किस्म की सामग्री उत्पादन विभागों को आसानी से पहुंचाई जा सके। स्कन्ध नियन्त्रण का मुख्य उद्देश्य लागत को नियन्त्रित करके लागत में कमी करना होता है।

9.17 शब्दावली:

1. **लीड टाइम (Lead Time)** - लीड टाइम समय का वह अन्तराल है जो एक आदेश देने व वास्तव में माल प्राप्त करने में लगता है।
2. **पुन: आदेश स्तर (Re-order Point)** - पुन: आदेश स्तर स्कन्ध का वह स्तर है जिस पर क्रय का आदेश जारी कर देना चाहिए।
3. **सुरक्षा स्टॉक (Safety Stock)** - सुरक्षा स्वच्छ की वह मात्रा है जो एक फर्म स्वयं को स्कन्ध अप्राप्ति की जोखिम से बचाने के लिए रखती है।
4. **वेड विश्लेषण (Ved Analysis)** - वेड विश्लेषण का प्रयोग व्यवसाय में काम आने वाले पुर्जा के स्कन्ध में किया जाता है। इस विधि में स्कन्ध को अत्यावश्यक, आवश्यक तथा वांछनीय वर्गो में बांटा जाता है।
5. **एफ.एस.एन. विश्लेषण (F.S.N. Analysis)** - इसके अर्न्तगत सामग्री को उसके प्रयोग की गति के आधार पर तेज गति वाली, मन्द गति वाली एवं अगतिशील वर्गो में बांटा जा सकता है।
6. **संकट स्तर (Danger Level)** - संकट स्तर फर्म द्वारा रखे जाने वाले उस स्कन्ध की मात्रा को कहते हैं जो संकट काल में स्कन्ध अप्राप्ति की जोखिम से बचने के लिए रखी जाती है।

9.19 व्यावहारिक प्रश्न

1. नीचे दी गई सूचना से आर्थिक आदेश की मात्रा की गणना कीजिए:

   Find out the Economic Order Quantity from the information given below:

   Annual consumption of material = 600 units

   Ordering cost per order = Rs. 12

   Annual Inventory carrying cost = 20% of Inventory value;

   Cost of material per unit = Rs. 20
2. नीचे दिये गये तथ्यों से आर्थिक आदेश की मात्रा तथा एक वर्ष में दिये जाने वाले आदेशों की संख्या तथा दो आदेशों के बीच समय अन्तराल का परिकलन कीजिए।

   Total consumption of material per year = 10,000 kg.

   Buying cost per order = Rs. 50

   Units cost of material = Rs. 2 per kg.

   Carrying and storage cost 8% on average inventory.

3. श्रीनाथ एन्टरप्राइजेज एक विशेष मद की 90,000 इकाइयाँ वार्षिक चाहती हैं। प्रति इकाई लागत 3 रू. प्रति क्रय आदेश लागत 300 रू. तथा स्कन्ध रखने की लागत प्रति इकाईप्रति वर्ष 6 रू. है।

   (i) आर्थिक आदेश मात्रा क्या है?

   (ii) संस्था को क्या करना चाहिये, यदि पूर्तिकर्ता नीचे दिया गया बट्टा प्रस्तावित करता है -

आदेश मात्रा	बट्टा %
4500 - 5999	2
6000 व अधिक	3

Shrinath Enterprises require 90,000 units of a certain item annually. The cost per unit is Rs. 3, the cost per purchase order Rs. 300 and the inventory carrying cost Rs. 6 per unit per year.

(i) What is the Economic Order Quantity?

(ii) What should the firm do, if the supplier offers discount as below:

Order Quantity	Discount %
4500 - 5999	2
6000 and above	3

9.20 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. **वित्तीय प्रबन्ध के मूल तत्व** - एम.आर. अग्रवाल, मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर।
2. **वित्तीय प्रबन्ध**-डॉ. कुलश्रेष्ठ, साहित्य भवन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रा.लि., आगरा।
3. **Financial Management** - Agarwal & Agarwal, Ramesh Book Depot, Jaipur.
4. **Principal of Financial Management** - Khan & Jain.
5. **Financial Management** - R.S. Kulshreshtha.

इकाई-10 : वित्तीय नियोजन (Financial Planning)

इकाई संरचना

10.1 परिचय

10.2 अर्थ एवं परिभाषाऐं

10.3 वित्तीय नियोजन की प्रवृत्ति

10.4 वित्तीय नियोजन की आवश्यकता

10.5 वित्तीय नियोजन के उद्देश्य

10.6 वित्तीय नियोजन के प्रकार

10.7 वित्तीय नियोजन को प्रभावित करने वाले घटक

10.8 एक श्रेष्ठ वित्तीय योजना के लक्षण

10.9 वित्तीय नियोजन का महत्व

10.10 वित्तीय नियोजन की सीमाएं

10.11 वित्तीय नियोजन के सम्बन्ध में कुछ मार्गदर्शक नियम

10.12 सारांश

10.13 शब्दावली

10.14 अभ्यास प्रश्न

10.15 व्यावहारिक प्रश्न

10.16 संदर्भ ग्रंथ सूची

10.1 परिचय (Introduction)

किसी भी व्यावसायिक संस्था की सफलता एवं असफलता वित्तीय संसाधनों की उपलब्धता पर निर्भर करती है इसलिए वित्त को आधुनिक व्यवसाय का रक्त कहा जाता है। वित्त व्यवसाय में उसी प्रकार से कार्य करता है जिस प्रकार से मानव शरीर में रक्त। वित्त एक ऐसा शक्तिशाली साधन है जो व्यवसाय की गतिशीलता को बनाये रखता है, उत्पत्ति के साधनों के सहयोग से उत्पादों का विकास करता है तथा मानव मशीन की कार्यक्षमता को बनाये रखता है। कोई भी व्यवसाय या उद्योग प्रारम्भ करने से लेकर उसके प्रवर्तन, संचालन, विस्तार और उसके समापन तक की सभी परिस्थितियों में वित्त की आवश्यकता होती है। इसलिए वित्तीय प्रबन्धक का यह कर्त्तव्य एवं उत्तरदायित्व है कि वह कोषों के आगमन एवं बहिर्गमन की योजना बनाकर यह सुनिश्चित करें कि प्रत्येक समय आवश्यकतानुसार कोष उपलब्ध रहे; ताकि संस्था के स्थापित उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके एवं सम्बन्धित पक्षकारों के हितों को सुरक्षित रखा जा सके। संस्था या कम्पनी की भावी सफलता या असफलता भी वित्तीय नियोजन पर निर्भर करती है। इसी तरह वित्तीय विवरणों से प्राप्त परिणामों का पूर्वानुमान भी वित्तीय नियोजन का एक अंग है जिससे प्रबन्धक आर्थिक

प्रतियोगिता, तकनीकी एवं सामाजिक वैश्विक वातावरण ध्यान में रखते हुये एक निश्चित अवधि की समस्त क्रियाओं के नियोजन को वित्त में प्रकट करता है जो वित्तीय नियोजन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

10.2 अर्थ एवं परिभाषाऐं (Meaning and Definition)

वित्तीय नियोजन का आशय संस्था के लिए पूँजी की कुल राशि एवं स्वरूप का निर्धारण करना तथा उसके उचित प्रबन्ध एवं नियन्त्रण के लिए सम्बन्धित नीतियों के निर्धारण करने की प्रक्रिया से है। वित्तीय नियोजन दो शब्दों से मिलकर बना है, वित्त + नियोजन। वित्त का आशय वित्त साधनों से है तथा नियोजन का अभिप्राय पूर्वानुमान लगाने, उपलब्ध संसाधनों को व्यय करने के तरीके निश्चित करने तथा व्यय को नियन्त्रित करने की रूपरेखा बनाने से हैं। इस प्रकार वित्तीय नियोजन के अर्न्तगत निम्नलिखित बिन्दुओं को सम्मिलित किया जाता हैं-

(i) व्यवसाय में पूँजी की मात्रा का निर्धारण करना।

(ii) पूँजी प्राप्ति के स्रोतों का निर्धारण।

(iii) उपलब्ध संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग करना।

(iv) फर्म की चालू वित्तीय स्थिति का मूल्यांकन करना।

(v) भविष्य की लाभदायकता एवं वृद्धि दर का निर्धारण करना।

वित्तीय नियोजन के अर्थ के सम्बन्ध में सभी विद्वान एकमत नहीं हैं। इसके सम्बन्ध में वित्तीय नियोजन के सम्बन्ध में विद्वानों के विचारों को दो वर्गो में वर्गीकृत किया जा सकता हैं-

I. संकीर्ण अर्थ में वित्तीय नियोजन

II. विस्तृत अर्थ में वित्तीय नियोजन

I. **संकीर्ण अर्थ में वित्तीय नियोजन**-उक्त विचारधारा के समर्थकों के अनुसार वित्तीय नियोजन का तात्पर्य संस्था की पूँजी संरचना (Capital Structure) निश्चित करने से होता है अर्थात् संस्था कितना भाग पूँजी का अंशों से एवं कितना भाग ऋण-पत्रों से एकत्रित करें। इसके द्वारा वित्त सम्बन्धी समस्त समस्याओं का अध्ययन व विश्लेषण सम्भव नहीं हैं।

II. **विस्तृत अर्थ में वित्तीय नियोजन**-विस्तृत अर्थ में वित्तीय नियोजन के अर्न्तगत फर्म के लिए आवश्यक साधनों का अनुमान लगाने, उनको प्राप्त करने के लिए विभिन्न साधनों का चुनाव करने तथा वित्तीय नीतियों के निर्धारण एवं लागू करने को शामिल किया जाता है।

आर्थर एस. डेविंग के मतानुसार-"वित्तीय नियोजन में निम्न तीन बातें सम्मिलित की जाती हैं।

(i) **पूँजीकरण (Capitalisation)-**पूँजी की आवश्यक मात्रा का अनुमान लगाना।

(ii) **पूँजी संरचना (Capital Structure)-**पूँजी के विभिन्न स्रोत निश्चित करना एवं विभिन्न प्रतिभूतियों का पारस्परिक अनुपात निश्चित करना।

(iii) **पूँजी प्रबन्ध (Management of Capital)-**यह देखना कि पूँजी का अनुकूलतम प्रयोग लाभ के लिए हो रहा हैं या किसी ओर उद्देश्य के लिए।

Note:- डेविंग की वित्तीय नियोजन की परिभाषा काफी उचित हैं लेकिन यह वित्तीय नियोजन के स्वभाव व कार्य क्षेत्र को स्पष्ट नहीं करती है। इस सम्बन्ध में वॉकर एवं वॉगन की परिभाषा अधिक उपयुक्त हैं जो निम्न प्रकार से हैं-"वित्तीय नियोजन वित्त कार्य से सम्बन्धित हैं, जिसमें फर्म के वित्तीय लक्ष्यों का निर्धारण, वित्तीय नीतियों का निर्माण एवं अनुमान तथा वित्तीय प्रविधियों का विकास सम्मिलित हैं।"

विस्तृत अर्थ में वित्तीय नियोजन में निम्नलिखित बातें सम्मिलित होती हैं-

1. **वित्तीय लक्ष्यों का निर्धारण (Determining Financial Objectives)-**फर्म के दीर्घकालीन एवं अल्पकालीन लक्ष्यों का निर्धारण होना चाहिए। फर्म का दीर्घकालीन वित्तीय लक्ष्य अधिकतम सम्पत्तियों का प्रबन्ध करने से हैं जिससे उत्पादन के साधनों का अधिकतम तथा मितव्ययी उपयोग किया जा सके एवं अल्पकालीन वित्त का उद्देश्य फर्म की प्रत्येक क्रिया के लिए आवश्यक तरलता की व्यवस्था करना होना चाहिए।
2. **वित्तीय नीतियों का निर्माण (Formulaing Financial Policies)-**वित्तीय नीतियाँ ऐसी बनानी चाहिए जिससे वित्तीय आवश्यकताओं (लक्ष्यों के अनुसार) की पूर्ति हो सके। इस सम्बन्ध में निम्न वित्तीय नीतियाँ महत्वपूर्ण हैं-
   (i) पूँजी की आवश्यक मात्रा निश्चित करने वाली नीति
   (ii) फर्म एवं पूँजी प्रदान करने वाले पक्षों के सम्बन्ध निश्चित करने की नीति
   (iii) स्वामी-पूँजी एवं ऋण-पूँजी का अनुपात निर्धारित करने वाली नीति (El. & Dela Cop. Ratio)
   (iv) विभिन्न स्रोतों से पूँजी प्राप्त करने के सम्बन्ध में निर्णय लेने में सहायक नीतियाँ
   (v) आय के वितरण में सहायक नीतियाँ तथा
   (vi) स्थायी एवं चालू सम्पत्तियों के कुशल प्रबन्ध में सहायता देने वाली नीतियाँ।
3. **वित्तीय प्रविधियों का विकास (Developing Financial Procedures)-**इस कार्य के लिए वित्त कार्य को छोटे-छोटे टुकड़ों में बांटना, उन कार्यो तथा दायित्वों को अधीनस्थ कर्मचारियों को सौंपना तथा वित्तीय निष्पादन की व्यवस्था करना आवश्यक होता है। वित्तीय निष्पादन के लिए प्रमाप प्रगति को प्रमापों के सन्दर्भ में जाँच करके विचलन ज्ञात किये जाते हैं। विचलनों एवं विसंगतियों को रोकने के लिए वित्तीय नियंत्रण आवश्यक हैं। वित्तीय नियंत्रण के लिए बजटरी नियंत्रण, लागत नियंत्रण, वित्तीय विवरणों का विश्लेषण एवं निर्वचन आदि विधियों का प्रयोग किया जाता है।

   वाकर एवं वॉघन के अनुसार- "वित्तीय नियोजन वित्त कार्य से संबंधित है जिसमें फर्म के वित्तीय लक्ष्यों का निर्धारण, वित्तीय नीतियों का निर्माण प्रविधियों का विकास सम्मिलित है।

जे.एच. वानविले के अनुसार- ''राक निगम की वित्तीय योजना के दो पहलू हैं (i) निगम की पूँजी संरचना तथा (ii) निगम के द्वारा अपनाई जाने वाली वित्तीय नीतियों।''

गैस्टनबर्ग के अनुसार- "वित्तीय योजना का तात्पर्य किसी भी नवनिर्मित व्यवसाय के प्रारम्भिक सम्पत्ति, संगठन वैधानिक स्थापना व्ययों, स्थायी एवं कार्यशील पूँजी की व्यवस्था, वर्तमान में आवश्यक पूँजी का उचित अनुमान व उसकी व्यवस्था एवं प्राप्ति के संभावित स्रोतों के सही विश्लेषण है।''

10.3 वित्तीय नियोजन की प्रवृत्ति (Nature of Financial Planning):

विभिन्न प्रबन्ध शास्त्रियों की परिभाषाओं अनुसार वित्तीय नियोजन एक संगठन की वित्तीय क्रियाओं के उद्देश्यों का निर्धारण, व्यावसायिक नीतियों का निर्माण तथा प्राविधियों के विकास की एक प्रक्रिया है। इसके अन्र्तगत कोषों की प्राप्ति, प्राप्त कोषों के विनियोग तथा प्रशासन के लिए भावी योजनाएँ बनाना आदि को सम्मिलित किया जाता है। वित्तीय नियोजन में निम्नलिखित क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है -

1. **वित्तीय लक्ष्यों का निर्धारण** :- वित्तीय नियोजन का प्रमुख कार्य किसी भी संस्था के अल्पकालीन, मध्यमकालीन एवं दीर्घकालीन उद्देश्यों का निर्धारण करना है। एक संस्था के अल्पकालीन वित्तीय उद्देश्य संस्था की अल्पकालीन वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कार्यशील पूँजी की पर्याप्त व्यवस्था करना है जिससे संस्था अपनी क्षमता के अनुसार दीर्घकालीन वित्तीय उद्देश्य संस्था के पास उपलब्ध उत्पत्ति के संसाधनों का प्रभावी एवं मितव्र्यायतापूर्वक उपयोग द्वारा लाभार्जन क्षमता में वृद्धि करना है। उत्पत्ति के संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग तभी सम्भव हैं जब कोषों की न्यूनतम लागत हो, पूँजी प्राप्ति की मात्रा का अनुसान पूँजी संरचना का निर्धारण, अंशों एवं चरण पत्रों का स्वरूप, सम्बन्ध एवं अनुपात आदि।
2. **वित्तीय नीतियों का निर्माण** :- वित्तीय नियोजन का द्वितीयक उद्देश्य नीतियों का निर्माण करना है ताकि संस्था अपने पूर्व निर्धारित वित्तीय लक्ष्यों की पूर्ति कर सके। 'वित्तीय नीतियों में पूँजी की आवश्यक मात्रा निश्चित करने, ऋण एवं समता पूँजी का परस्पर अनुपात निश्चित करने, पूँजी के विभिन्न विकल्पों का चुनाव करने, आय का वितरण करने तथा स्थायी एवं चालू सम्पत्तियों के कुशल प्रबन्ध सम्बन्धी नीतियाँ आदि सम्मिलित है।
3. **वित्तीय प्राविधियों का विकास**:- वित्तीय नियोजन विभिन्न वित्तीय कार्यो को छोटे-छोटे विभागों में बाटा जाता है। इसके पश्चात समस्त वित्तीय कार्यो को वित्तीय अधिकारियों में बांटकर उनके नियमन, निष्पादन एवं नियंत्रण की व्यवस्था की जाती है। इस कार्य के लिए बजटरी नियंत्रण, लागत नियंत्रण, पूँजी बजटन, पूँजी लागत, कार्यशील पूँजी का

प्रबन्धन, वित्तीय लेखों का निर्वचन एवं विश्लेषण आदि प्राविधियों का प्रयोग किया जाता है।

आर्थर एस. डेविंग ने वित्तीय नियोजन में निम्नलिखित बातों का समावेश बताया है-

(i) पूँजीकरण निश्चित करना,

(ii) पूँजी संरचना निश्चित करना तथा

(iii) पूँजी के प्रबन्धन एवं प्रशासन सम्बन्धी नीतियों का निर्धारण करना।

10.4 वित्तीय नियोजन की आवश्यकता (Need for Financial Planning)

जे. बेटी के शब्दों में, "रोकड़ का पर्याप्त शेष और प्रवाह आवश्यक है। व्यवसाय को हमेशा ही अपने वायदों को पूरा करने योग्य होना चाहिए। इसके अतिरिक्त व्यवसाय को स्थिर नहीं रखा जा सकता। किसी भी प्रतिस्पर्धी क्षेत्र में नये उत्पादों को बाजार में लाने एवं विस्तार करने के लिए व्यवसाय में सुधार लाना आवश्यक होता है। अनुभव यह बताता है कि व्यवसाय स्थिर नहीं रह सकता, व्यवसाय की प्रवृत्ति आगे की ओर बढ़ने या पीछे की ओर हटने की होती है, स्थिर रहने की नही। यदि व्यवसाय का विस्तार किया जाना है तो पर्याप्त वित्तीय साधनों की आवश्यकता होगी।''

वित्तीय नियोजन की आवश्यकता निम्न कारणों से उत्पन्न होती है:

1. खर्चो, आकस्मिकताओं और कार्यशील पूँजी के स्तर में उतार-चढ़ावों को पूरा करने के लिए पर्याप्त रोकड़ उपलब्ध कराने के लिए।
2. वर्ष भर तरलता बनाये रखने के लिये।
3. यह बताने के लिए कि कोषों की आवश्यकता कब और कहां होगी।
4. विस्तार के लिए या बाहरी विनियोग के लिए उपलब्ध आधिक्य कोषों को बताने के लिए।
5. आगे और अधिक कोषों को आवश्यकता का अनुमान लगाने के लिए।
6. संस्था को वित्त प्रदान करने वालों को उचित वित्तीय नीतियाँ अपना कर विश्वास बढ़ाने के लिये।

उपर्युक्त कारणों के अतिरिक्त वॉकर एवं वॉन ने वित्तीय योजनाएँ बनाने के निम्नलिखित कारण भी बताये हैं:

(a) आधुनिक व्यावसायिक संस्था को गलाकाट प्रतिस्पर्धा के युग में चलाना पड़ रहा है जिससे संस्था को लाभ की सीमा कम ही रखनी पड़ती है। इसलिए भविष्य की प्रवृत्ति के बारें में पूर्वानुमान लगाना पड़ता है। अत: प्रबन्धकों को व्यवसाय के लाभदायकता क्षेत्र में स्पष्ट निर्णय लेने पड़ते हैं।

(b) पूँजी को सुरक्षित रखने का कार्य बहुत ही कठिन है, विशेष रूप से जबकि हम 'अन्तरिक्ष युग' के द्वार पर खड़े हैं। सम्पत्तियों का एक बहुत बडा भाग जो आज नवीन है, निकट भविष्य में अप्रचलित हो सकता है। अत: भविष्य में पुनर्स्थापित की जाने वाली

सम्पत्तियों एवं भविष्य की बढ़ती हुई आवश्यकता के लिए नई सम्पत्तियों के संस्थापन के संबंध में वर्तमान में ही आयोजन कर लेना चाहिए।

(c) मुद्रा स्फीति कारक परिस्थितियों के कारण मूल्य-स्तर में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है इसलिए सामान्यतया मूल विनियोग के पुनर्स्थापन की लागत अधिक होगी। इसलिए ऐसी वित्तीय योजना की आवश्यकता होगी जो सम्पत्तियों को बनाये रखने के साथ-साथ उनका भविष्य में पुर्नस्थापना भी कर सके।

(d) वित्त-सम्पूर्ण उत्पादन एवं वितरण कार्य की सफलता या विफलता को प्रभावित करता है। इसलिए यह अत्यंत आवश्यक है कि प्रत्येक वित्तीय क्रिया को सावधानीपूर्वक नियोजित किया जाये।

(e) सरकार भी दिन-प्रतिदिन निजी क्षेत्र से कोषों को उन्हीं के साधनों से प्राप्त करने में प्रतिस्पर्धा कर रही है जिनसे निजी क्षेत्र प्राप्त करता है अत: निजी क्षेत्र की संस्थाओं के लिए उपयुक्त वित्तीय योजना बनाना जरूरी हो गया है ताकि समय पर पर्याप्त कोष प्राप्त किये जा सके।

10.5 वित्तीय नियोजन के उद्देश्य (Objects of Financial Planning)

व्यवसाय के संचालन का प्राथमिक उद्देश्य लाभ को अधिकतम करना होता है तथा यही उद्देश्य वित्तीय नियोजन का भी है। वित्तीय नियोजन का प्राथमिक उद्देश्य पर्याप्त पूँजी की इस प्रकार व्यवस्था करना है ताकि व्यवसाय के संचालन के सभी आवश्यक साधन इस प्रकार उपलब्ध हों कि उससे उपार्जित आय में से समस्त व्यय घटाने के बाद जो शुद्ध लाभ बचे वह अंशधारियों को विनियोजित पूँजी का उचित प्रत्याय हो तथा उनके द्वारा उठाई गई जोखिम की पूर्ति के लिए पर्याप्त समझा जाये। वित्तीय नियोजन के इस प्राथमिक उद्देश्य के साथ-साथ इसके कुछ अन्य सहायक उद्देश्य भी हैं- न्यूनतम मूल्य पर पूँजी साधनों की व्यवस्था, पूँजी की मात्रा एवं अनुपात में आवश्यकतानुसार लोचपूर्ण परिवर्तनीयता जैसे :- पूँजी साधनों में उचित समन्वय, अंशधारियों के हितों की सुरक्षा, पूँजी पर नियन्त्रण में सुविधा आदि।

10.6 वित्तीय नियोजन के प्रकार (Types of Financial Planning)

वित्तीय नियोजन विभिन्न समयों के हिसाब से अलग-अलग हो सकता है। समय के आधार पर वित्तीय नियोजन को निम्न भागों में बांटा जा सकता है:

1. **अल्पकालीन वित्तीय नियोजन (Short-term Financial Planning)**

इसके अन्तर्गत सामान्यत: नियोजन एक वर्ष के लिए लिया जाता है। इस वित्तीय नियोजन में संस्था की अल्पकालीन वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति करने का प्रयास किया जाता है तथा रोकड़-प्रवाह को सन्तुलित बनाये रखने का प्रयास किया जाता है जिससे संस्था को किसी कठिनाई का सामना नहीं करना पड़े। यह कार्य विभिन्न प्रकार

के बजटों का निर्माण करके तथा प्रक्षेपित लाभ-हानि खातों व चिट्ठा (Projected Profit & Loss a/c and Balance Sheet) बनाकर किया जाता है।

2. **मध्यकालीन वित्तीय नियोजन (Medium-term Financial Planning)**

इसके अन्र्तगत एक वर्ष से अधिक तथा पाँच वर्ष से कम अवधि के लिए बनाई गई योजनाएँ शामिल की जाती है। ऐसी योजनाओं का उद्देश्य पूँजी के ऐसे साधनों की खोज करने से संबंधित है जिससे पूँजी लागत कम आए तथा पूँजी-संरचना में लोच बनी रहे। मध्यमकालीन वित्तीय नियोजन में सम्पत्तियों के प्रतिस्थापन, रख-रखाव, अल्पावधि के उत्पादन कार्यक्रम चलाने, शोध एवं विकास कार्यो को चलाने तथा विशेष कार्यशील की आवश्यकताओं को पूरा करने संबंधी बातों का समावेश होता है।

3. **दीर्घकालीन वित्तीय नियोजन (Long-term Financial Planning)**

सामान्यत: पाँच वर्ष से अधिक की अवधि के लिए किया गया नियोजन दीर्घकालीन वित्तीय नियोजन कहलाता है। यह संस्था की दीर्घकालीन वित्तीय समस्याओं के निराकरण हेतु किया जाता है। इसके अन्र्तगत संस्था के दीर्घकालीन वित्तीय लक्ष्य पूँजीकरण की मात्रा, पूँजी-संरचना, भविष्य के विस्तार हेतु अतिरिक्त पूँजी व्यवस्था की योजना तथा स्थायी सम्पत्तियों के प्रतिस्थापन के लिए वित्त आदि सम्मिलित की जाती है।

10.7 वित्तीय नियोजन को प्रभावित करने वाले घटक (Factors Determining Financial Planning)

प्रत्येक संस्था के लिए ऐसी वित्तीय योजना का निर्माण करना जो उसके लिए अच्छी हो और उसे तुरन्त स्वीकार किया जा सके, बहुत मुश्किल है। प्रत्येक संस्था अलग-अलग परिस्थितियों में कार्य कर रही होती है इसलिए उसके लिए ऐसी वित्तीय योजना का निर्माण किया जाये जो उन परिस्थितियों में संस्था के लिए उपयुक्त हो। अत: किसी भी संस्था के लिए उपयुक्त वित्तीय योजना का निर्माण करते समय निम्न घटकों का ध्यान अवश्य रखना चाहिए:

1. **व्यवसाय की प्रकृति (Nature of Business)**

व्यवसाय की प्रकृति का वित्तीय योजना पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है। यदि व्यवसाय पूँजीगत साधनों पर अधिक आश्रित होगा तो उसके लिए अधिक पूँजी की आवश्यकता होगी, इसके विपरीत श्रमगत साधनों पर आश्रित व्यवसायों के लिए उतनी अधिक पूँजी की आवश्यकता नहीं होगी। नियमित एवं स्थिर आय वाले व्यवसाय का काम कम पूँजी से भी चलाया जा सकता है। जबकि आय में उच्चावचन वाले व्यवसाय, भविष्य में अधिक विक्रय संभावना वाले व्यवसाय तथा उत्पादन प्रक्रिया, यंत्रीकरण, वैज्ञानिक सुधार की संभावना वाले व्यवसाय के लिए अधिक पूँजी की आवश्यकता होगी।

2. **व्यवसाय की स्थिति और आकार (Status and Size of Business)**

जिस व्यवसाय का आकार बड़ा होता है उसके लिए अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है इसके विपरीत छोटे आकार के व्यवसाय के लिए अपेक्षाकृत कम पूँजी की आवश्यकता होती है। अच्छी स्थिति, बड़े आकार, अधिक आयु, अच्छी साख, अच्छे संगठन आदि से युक्त व्यवसाय के लिए वित्तीय साधन जुटाना सरल होता है जबकि किसी नये व्यवसाय के लिए वित्तीय साधन एकत्रित करने में कठिनाई होती है क्योंकि विनियोक्ता अपने धन का विनयोग करते समय व्यवसायिक संस्था की स्थिति का विश्लेषण करने के बाद ही उसमें धन का विनयोग करते है।

3. **जोखिम की मात्रा (Amount of Risk)**

   सामान्यत: अधिक जोखिम वाले व्यवसाय स्वामित्व पूँजी पर अधिक आश्रित रहते हैं, जबकि कम जोखिम वाले व्यवसाय ऋण पूँजी पर अधिक आश्रित रह सकते हैं। अधिक जोखिम वाले व्यवसायों में ऋणपत्रों के रूप में विनियोजित करने में प्रायः विनियोक्ता डरते हैं। जोखिम वाले उद्योगों में तरलता भी अपेक्षाकृत कम रहती है। इसके विपरीत कम जोखिम वाले उद्योगों में ऋणपत्रों के रूप में अधिक कोष प्राप्त करके स्वामियों को 'समता पर व्यापार' (Trading on Equity) का लाभ दिया जाता सकता है तथा इनमें तरलता (Liquidity) भी बनी रहती है।

4. **विभिन्न वित्तीय साधनों का मूल्यांकन (Evaluation of Different Sources of Finance)**

   वित्तीय योजना का निर्माण करते समय बाजार में उपलब्ध विभिन्न वित्तीय साधनों का मूल्यांकन करना आवश्यक है। इस कार्य के लिए बाजार, विभिन्न साधनों का प्रचलित मूल्य, उनकी लोकप्रियता, अंकित मूल्य तथा निर्गमन लागत का अध्ययन करना जरूरी है। इसके साथ ही यह भी देखना जरूरी है कि ऐसी प्रतिभूतियों के निर्गमन का समय भी उचित है या नहीं। इन सभी बातों पर विचार करके विभिन्न विकल्पों का मूल्यांकन करते हुए उनमें से सर्वोत्तम विकल्प का चुनाव करना चाहिए।

5. **प्रबन्ध का दृष्टिकोण (Attitude of Management)**

   वित्तीय योजना का स्वरूप बहुत कुछ प्रबन्ध के दृष्टिकोण पर भी निर्भर करता है। यदि प्रबन्धक व्यवसाय का प्रबन्ध व नियन्त्रण अपने ही हाथों में केन्द्रित रखना चाहते हैं तो वे सामान्य अंशों का निर्गमन बहुत कम करेंगे अथवा यदि निर्गमन करेंगे तब भी बाद में उन्हें बाजार में स्वयं क्रय कर लेंगे। वित्त के लिए साधारण जनता की अपेक्षा संस्थागत विनियोक्ताओं को प्राथमिकता दी जायेगी अथवा ऋण द्वारा वित्त व्यवस्था (Debt financing) की जायेगी। ऐसे प्रबन्धक भावी विस्तार कार्यक्रमों के लिए भी नये अंशों का निर्गमन न करके लाभों के पुनर्विनियोजन (Ploughing back of Profits) की व्यवस्था करेंगे। इसके विपरीत यदि प्रबन्धक नियन्त्रण अपने हाथों में नहीं रखना चाहेंगे तब सभी प्रकार की प्रतिभूतियों का उचित अनुपात रखेंगे। इसके अतिरिक्त प्रबन्ध की 'समता पर व्यापार' करने की नीति एवं पूंजी दन्तिकरण (Capital gearing) की नीति भी वित्तीय योजना को प्रभावित करेगी।

6. **विस्तार की संभावना (Possibility of Expansion)**

संस्थाएँ जैसे-जैसे पुरानी होती जाती है आकार में भी बड़ी होती जाती है, उनके विस्तार एवं विकास की संभावनाएँ भी बढ़ती जाती है। यदि व्यवसाय में विकास, विस्तार, वैज्ञानिकरण आदि की संभावनाएँ हों तो पूँजी योजना में विविधता एवं लोचता का ध्यान रखना अत्यंत आवश्यक है। यदि वित्तीय योजना के निर्माण के समय इसे ध्यान नहीं रखा तो भविष्य में समायोजन करने में कठिनाई उत्पन्न हो सकती है ।

7. **सरकारी नीतियाँ (Government Policies)**

वित्तीय योजना विभिन्न सरकारी नीतियों, नियन्त्रणों तथा नियमों से भी प्रभावित होती है। जैसे औद्योगिक प्रतिभूतियों के निर्गमन से पूर्व पूँजी निर्गमन नियन्त्रक (Controller of Capital Issues) की अनुमति लेनी पड़ती है। यह अनुमति तभी दी जाती है जबकि सभी प्रतिभूतियों में उचित संतुलन रखा जाये। इसी तरह प्रतिभूतियों का स्कन्ध बाजार में सूचियन कराने के लिए भी कुल पूँजी में सामान्य अंशों का एक निश्चित प्रतिशत होना आवश्यक है। अत: वित्तीय योजना के निर्माण के समय इन नियमों को भी ध्यान में रखना आवश्यक है।

8. **व्यवसाय की आय (Income of the Business)-**वित्तीय नियोजन के समय व्यवसाय की आय का पूर्वानुमान भी आवश्यक है। यदि अनुमानों के अनुसार आय अर्जन करने में व्यवसाय सफल होता हैं तो व्यवसाय सफलता की ओर अग्रसर होगा एवं इसके विपरित स्थिति में व्यवसाय असफलता की ओर अग्रसर होगा।

9. **व्यवसाय की प्रतिष्ठा एवं आकार (Status and the Size of the Business)-** व्यवसाय के वित्तीय स्रोतों का निर्धारण करने से पूर्व व्यवसाय की प्रतिष्ठा एवं आकार का निर्धारण आवश्यक है। आवश्यकता के अनुसार ही वित्तीय संसाधनों का नियोजन किया जाता है जिससे उपलब्ध संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग किया जा सके।

10. **वैकल्पिक वित्तीय साधन (Alternative Sources of Finance)-**व्यवसाय प्रारम्भ करने से पूर्व प्रबन्धकों द्वारा वैकल्पिक वित्तीय संसाधनों का पता लगना आवश्यक होता है। उपलब्ध वित्तीय स्रोतों में से कोई स्रोत के असफल होने का अनुमान एवं आवश्यकता से कम पूँजी उपलब्ध कराने की स्थिति में वैकल्पिक वित्तीय साधन के द्वारा वित्त की आवश्यकता की पूर्ति की जा सकती है जिससे व्यवसाय की कार्यकुशलता एवं लाभदायकता पर विपरित प्रभाव नहीं पड़े।

10.8 एक श्रेष्ठ वित्तीय योजना के लक्षण (Characteristics of Sound Financial Plan)

जैसा कि पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि किसी भी व्यावसायिक संस्था की सफलता उसकी वित्तीय योजना पर निर्भर करती है। एक व्यवसाय तभी सफल हो सकता है जबकि उसकी वित्तीय योजना अच्छी हो। वित्तीय योजना अच्छी तभी कही जायेगी जबकि उसमें निम्न गुणों का समावेश हो :

1. **सरलता (Simplicity):**

   वित्तीय योजना ऐसी हो जिसका प्रबन्ध एवं नियन्त्रण सरलता से किया जा सके साथ ही वह संस्था के उद्देश्यों के अनुरूप भी हो। पूँजी संरचना इतनी सरल होनी चाहिए ताकि विनियोगकर्ता उसकी ओर सहज आकर्षित हो सके। विभिन्न प्रकार की प्रतिभूतियों के निर्गमन एवं विविध साधनों से पूँजी प्राप्त करने का प्रयास नहीं करना चाहिए। विभिन्न प्रकार की प्रतिभूतियों के कारण पूँजी संरचना इतनी जटिल हो जाती है जिससे लोग अनावश्यक ही उनमें संदेह करने लगते है। इसके बारे में हॉगलैण्ड ने लिखा है कि किसी भी निगम को चाहे उसका अधिकार-पत्र कितना ही उदार क्यों न हों, क्षितिज की ओर लक्ष्य भेद नहीं करना चाहिए।" उसके प्रबन्धकों के मस्तिष्क में निश्चित लक्ष्य होना चाहिए तथा उन्हें प्राप्त करने के साधनों का पूर्ण जान होना चाहिए। वित्तीय योजना ऐसी नहीं चाहिए जिसमें पूँजी को अनेक प्रकार के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए विचार किया जाए।

2. **नियोजन-संबंधी दूरदर्शिता (Planning Foresight):**

   वित्तीय योजना में व्यवसाय की अल्पकालीन आवश्यकताओं के साथ-साथ भावी आवश्यकताओं का भी ध्यान रखना चाहिए। पूँजीकरण इतना होना चाहिए कि उस धनराशि से सभी प्रकार के स्थायी एवं चालू व्यय पूरे किये जा सके। वित्तीय योजना ऐसी हो ताकि भविष्य में होने वाले उत्थान तथा पतन में वित्तीय स्थिति में संतुलन बना रहे तथा संस्था किसी भी परेशानी का मुकाबला आसानी से कर सके।

3. **पूँजी का गहन उपयोग (Intensive Utilisation of Capital):**

   पूँजीकरण ऐसा होना चाहिए ताकि उपलब्ध साधनों का यथासंभव अधिकतम उपयोग किया जा सके। इसके लिए आवश्यक है कि पूँजी न तो आवश्यकता से अधिक हो तथा न ही कम, बल्कि उचित पूँजीकरण होना चाहिए। स्थायी एवं कार्यशील पूँजी में उचित सामंजस्य होना चाहिए। इसके अतिरिक्त स्थायी पूँजी का प्रयोग कार्यशील पूँजी के लिए तथा कार्यशील पूँजी का प्रयोग स्थायी पूँजी के लिए नहीं करना चाहिए अन्यथा संस्था आर्थिक संकट में पड़ सकती है।

4. **तरलता (Liquidity):**

   व्यवसाय के दिन-प्रतिदिन के कार्यो के संचालन करने के लिए यह आवश्यक है कि व्यवसाय की कार्यशील पूँजी पर्याप्त एवं नकदी के रूप में हो। नकदी का यह अनुपात संस्था के आकार, उसकी साख स्थिति, व्यापार चक्र की दशा तथा व्यवसाय की प्रकृति पर निर्भर करता है। संस्था में हर समय आवश्यक मात्रा में तरलता होने से दैनिक कार्यो के निष्पादन में कोई रूकावट नहीं आती। इसलिए वित्तीय योजना में पर्याप्त तरलता की व्यवस्था होना आवश्यक है।

5. **लोचशीलता (Flexibility):**

   व्यवसाय का संचालन भली प्रकार से करने के लिए यह आवश्यक है कि संस्था का पूँजी ढाँचा लोचपूर्ण हो ताकि उसे व्यवसाय की आवश्यकतानुसार घटाया-बढ़ाया जा सके।

मंदी के युग में व्यवसाय को लाभ कम होते हैं अत: उस समय पूँजी ढाँचा में ऋणपत्रों को कम स्थान देना चाहिए इसके विपरीत तेजी के युग में स्वामियों को अधिक लाभ पहुँचाने के लिए ऋण पूँजी को अधिक स्थान दिया जाना चाहिए। यह तभी संभव हो सकता है जबकि संस्था का पूँजी-ढाँचा लोचशील हो।

6. **मितव्ययिता (Economy):**

पूँजी के निर्गमन के समय कई प्रकार के व्यय होते है; जैसे-छपाई, विज्ञापन, अभिगोपन कमीशन, दलाली आदि। अत: वित्तीय योजना दासी होनी चाहिए जिसके अनुसार पूँजी प्राप्त करने तथा प्रतिभूतियों के निर्गमन का व्यय कर से कम हो। इसके साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि स्वामियों की पूँजी पर दिया जाने वाला लाभांश तथा ऋणपत्रधारियों एवं लेनदारों को दिया जाने वाला ब्याज किसी भी स्थिति में संस्था पर असहनीय भार न बने।

7. **भावी संभावनाओं पर विचार (Contingencies Anticipated):**

व्यवसाय के जीवनकाल में कुछ आकस्मिक घटनाएं भी संभव हो सकती है, जिनका पहले से अनुमान लगाया जाना अत्यंत ही कठिन कार्य है। अत: वित्तीय योजना में यह निश्चत कर लेना चाहिए कि इन आकस्मिक घटनाओं का किस प्रकार सामना किया जायेगा तथा उनके, लिए पूँजी की व्यवस्था किस स्रोत से, किस प्रकार की जायेगी जिससे कि भविष्य में परेशानी का सामना नहीं करना पड़े।

10.9 वित्तीय नियोजन का महत्व (Importance of Financial Planning):

किसी भी व्यवसाय की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि उसके पास उपलब्ध साधनों का अनुकूलतम ढंग से उपयोग किया जाये। यह तभी संभव है जबकि संस्था की वित्तीय योजना में वर्तमान तथा भावी पूँजी संबंधी आवश्यकताओं का सही अनुमान लगाया जाये। अच्छी वित्तीय योजना का निर्माण किये बिना व्यवसाय का संचालन करने के कारण कई व्यवसाय असफल हो जाते है। अत: व्यवसाय के कुशल संचालन एवं उससे उत्तम परिणाम प्राप्त करने के लिए वित्तीय नियोजन का होना अत्यंत आवश्यक है। ऐसी संस्था के लिए वित्तीय नियोजन का महत्व इस प्रकार है:

1. **प्रवर्तन की सफलता (Success of Promotion):**

नये व्यवसाय की स्थापना के समय प्रवर्तक का सबसे महत्वपूर्ण कार्य उचित पूँजीकरण एवं उत्तम पूँजी संरचना का निर्माण करने का है, अत: वित्तीय नियोजन प्रवर्तन का एक महत्वपूर्ण अंग है। यदि वित्तीय नियोजन पर ध्यान नहीं दिया जाये तो संस्था में अति-पूँजीकरण (Over-Capitalisation) या अल्प पूँजीकरण (Under-Capitalisation) की स्थिति उत्पन्न हो सकती है जो संस्था के भविष्य के लिए खतरा हो सकती है। इसी तरह पूँजी के साधनों का गलत चुनाव भी व्यवसाय की

लाभदायकता में बाधा बन सकता है। अत: यह कहा जा सकता है कि वित्तीय नियोजन प्रवर्तन की आधारशिला है।

2. **व्यवसाय का सफल संचालन (Successful Operation of Business):**
   वित्त किसी भी व्यवसायिक संस्था का जीवन रक्त होता है। बिना पर्याप्त एवं उचित पूँजी के व्यवसाय की सफलता तो दूर उसके अस्तित्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती। व्यवसाय के संचालन के लिए सामग्री, श्रम एवं संयंत्र आदि की तथा इन सबके लिए वित्त की आवश्यकता पड़ती है। अत: वृत्तिय नियोजन की व्यवसाय संचालन में महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

3. **पूँजी साधनों में उचित समन्वय (Co-ordination in Sources of Capital):**
   संस्था की कुल पूँजी अनेक साधनों से प्राप्त की जाती है। इन विभिन्न साधनों से पूँजी प्राप्ति की लागत अलग-अलग होती है। किसी भी एक साधन विशेष से पूँजी एकत्रित करना संस्था के लिए महंगा एवं जोखिमपूर्ण हो सकता है। अत: आवश्यक पूँजी की राशि प्राप्त करने हेतु विभिन्न सस्ते एवं जोखिमपूर्ण साधनों का अनुपात निश्चित करना पड़ता है। ऐसा केवल वित्तीय नियोजन द्वारा ही संभव है जिसमें पूँजी के विभिन्न साधनों का अनुकूलतम अनुपात पहले ही निर्धारित कर लिया जाता है।

4. **व्यवसाय का विकास एवं विस्तार (Growth and Expansion of Business)**:
   व्यवसाय के प्रारम्भ होने के बाद धीरे-धीरे संस्था का आकार बढ़ता जाता है एवं उसके विकास तथा विस्तार की आवश्यकता होती है इसके लिए अधिक वित्तीय साधनों की आवश्यकता पड़ती है। अत: वित्तीय योजना का प्रारम्भ में ही खूब सोच समझकर निर्माण करने से भविष्य में व्यवसाय के विकास एवं विस्तार के लिए वित्तीय साधनों की पूर्ति हेतु पहले से ही योजना बना लेने पर भविष्य में, इस कार्य हेतु व्यवसाय को कठिनाईयों का सामना नहीं करना पड़ता है।

5. **सम्पत्तियों का प्रतिस्थापन (Replacement of Assets):**
   आज जिस आर्थिक वातावरण में संस्थाएँ कार्य कर रही हैं उसमें तीव्र गति से मूल्य-स्तर में वृद्धि हो रही है ऐसी स्थिति में सम्पत्तियों की प्रतिस्थापन लागत उनकी मूल्य लागत से बहुत अधिक होना स्वाभाविक है। इसलिए इन सम्पत्तियों में विनियोजित धन की सुरक्षा के साथ-साथ इनका बढ़े हुए मूल्य पर प्रतिस्थापन भी आवश्यक है। इस कार्य हेतु जिस अतिरिक्त धन की आवश्यकता होगी उसकी व्यवस्था समुचित वित्तीय नियोजन द्वारा ही सम्भव हो सकती है।

10.10 वित्तीय नियोजन की सीमाएं (Limitation of Financial Planning):

वित्तीय नियोजन कई प्रकार के तथ्यों को ध्यान में रखकर दूरदर्शिता पूर्वक किया जाता है किन्तु फिर भी इसकी कुछ सीमाएं हो सकती हैं जो इस प्रकार हैं :

1. **परस्पर सहयोग एवं समन्वय का अभाव**: वित्तीय योजना के सफल कार्यान्वयन के लिए सभी अधिकारियों एवं विभागों में परस्पर सहयोग एवं समन्वय की आवश्यकता होती है। परस्पर सहयोग एवं समन्वय के अभाव में अच्छी से अच्छी वित्तीय योजना भी असफल हो सकती है।
2. **भविष्य अनिश्चित**: वित्तीय नियोजन अधिकांशतः भावी पूर्वानुमानों पर आधारित होता है। चूँकि भविष्य अनिश्चित है एवं उसके बारे में दावे से कुछ नहीं कहा जा सकता, इसलिए यदि भविष्य में कोई पूर्वानुमान गलत निकल जाये तो वित्तीय नियोजन भी असफल हो जाता है।
3. **प्रभावहीन**: सामान्यत: एक बार वित्तीय योजना तैयार हो जाने के बाद उस पर कठोरता से अमल किया जाता है और प्रबन्ध योजना के प्रति कठोर दृष्टिकोण अपनाता है। वह योजना में सामयिक परिवर्तन करने को तैयार नहीं होता। परिणामस्वरूप वित्तीय योजना धीरे-धीरे प्रभावहीन होने लगती है।

10.11 वित्तीय नियोजन के सम्बन्ध में कुछ मार्गदर्शक नियम (Some Guidelines Regarding Financial Planning)

1. स्थायी पूँजी की आवश्यकता की पूर्ति का अर्थ-प्रबन्ध स्थायी साधनों द्वारा करना चाहिए न कि चालू साधनों द्वारा यथा-स्थायी सम्पत्तियों को क्रय करने हेतु पूँजी अंशों एवं ऋणपत्रों से प्राप्त की जानी चाहिए न कि अल्पकालीन ऋणों से।
2. चालू सम्पत्ति के प्रमुख भाग का अर्थ-प्रबन्ध दीर्घकालीन या स्थायी साधनों से किया जाना चाहिए क्योंकि इनका कुछ भाग कार्यशील पूँजी के रूप में व्यवसाय में स्थायी रूप से रहता है।
3. भविष्य की वित्तीय आवश्यकताओं का भी अनुमान लगा लेना चाहिए और यह देखना चाहिए कि उनकी पूर्ति किस प्रकार होगी।
4. वित्तीय कार्यक्रमों को पर्याप्त रूप से लोचशील रखा जाना चाहिए।
5. ऋण व समता पूँजी का न्यायपूर्ण ढंग से उपयोग किया जाना चाहिए। ऋण पूँजी का प्रयोग उसको प्राप्त करने की लागत की तुलना में अधिक प्रत्याय दें और सामान्य पूँजी उसको पर्याप्त सुरक्षा प्रदान करे तो इसे व्यवसाय में काम में लेना चाहिये।
6. कोषों को छोटी-छोटी कई किश्तों में प्राप्त करने की अपेक्षा बडी मात्रा में प्राप्त किया जाना चाहिए।
7. एक नई संस्था को प्रारम्भिक वर्षो में स्थायी सम्पत्तियों को खरीदने की तुलना में यदि लाभदायक हो तो किराये पर या पट्टे पर लेना चाहिए।

10.12 सारांश (Summary):

वित्तीय नियोजन का तात्पर्य संस्था पूँजी की कुल राशि की मात्रा के निर्धारण करने से है तथा उसके उचित प्रबन्ध एवं नियंत्रण से सम्बन्धित नीतियों के निर्धारण करने की

प्रक्रिया से है। किसी भी संस्था की सफलता एवं असफलता वित्तीय नियोजन करते समय व्यवसाय को प्रभावित करने वाले आवश्यक तत्वों एवं अन्य प्रभावों को दृष्टिगत रखा जाता है। वित्त की अधिकता एवं अल्पता दोनों ही व्यवसाय के लिए हानिकारक है। अत: व्यवसाय में वित्त की पर्याप्त मात्रा बनी रहे जिससे व्यवसाय का संचालन बाधित न हो एवं अतिरिक्त कार्यशील पूँजी व्यवसाय में नहीं रहे। इस प्रकार का वित्तीय नियोजन श्रेष्ठ कहलाता है।

10.13 शब्दावली (Terminology):

1. नियोजन (Planning)
2. वित्तीय संसाधन (Financial resources)
3. प्रवर्तन (Promotion)
4. कोष (Funds)
5. लाभदायकता (Profitability)
6. स्फीति (Inflation)
7. निजी क्षेत्र (Private Sector)
8. प्रत्याय दर (Rate of return)
9. अल्पकाल (Short term)
10. दीर्घकाल (Long term)
11. तरलता (Liquidity)
12. समता पर व्यापार (Trading on Equity)
13. पूँजी दंतिकरण (Capital Gearing)
14. पूँजीकरण (Capitalisation)
15. अति पूँजीकरण (Over Capitalisation)
16. अल्प पूँजीकरण (Under Capitalisation)

10.14 अभ्यास प्रश्न (Practice Question)

1. वित्तीय नियोजन की परिभाषा दीजिए।
2. वित्तीय नियोजन में किन बातों का समावेश किया जाता है?
3. श्रेष्ठ वित्तीय योजना के चार लक्षण बताइए।
4. 'वित्तीय नियोजन सफल व्यावसायिक कार्यो की कुंजी है।" समझाइए।
5. वित्तीय नियोजन की सीमाएँ बतलाइए।
6. एक औद्योगिक संस्था की वित्तीय योजना बनाते हुए किन-किन तत्त्वों को ध्यान में रखेंगे?

10.15 व्यावहारिक प्रश्न (Practical Question):

1. वित्तीय नियोजन से आप क्या समझते है? एक श्रेष्ठ वित्तीय योजना के आवश्यक लक्षण बताइये।

2. व्यवसाय में वित्तीय नियोजन के महत्व एवं सीमाओं पर व्याख्यात्मक टिप्पणी कीजिये।

10.16 संदर्भ ग्रंथ सूची (Bibliography):

1. अग्रवाल-अग्रवाल : **वित्तीय प्रबन्ध,** रमेश बुक डिपो, जयपुर, 2007
2. एम.आर. अग्रवाल : **वित्तीय प्रबन्ध के मूल तत्व,** गरिमा पब्लिकेशन, जयपुर, 2008
3. ओसवाल, दीक्षित, शर्मा, **वित्तीय प्रबन्ध के तत्व,** कैलाश बुक डिपो, जयपुर, 1994
4. आई.एम.पांडे : **फाइनेन्सियल मैनेजमेंट,** विकास पब्लिसिंग हाउस प्रा.लि. नई दिल्ली, 2008
5. खान एवं जैन : **फाइनेन्सियल मैनेजमेंट,** टाटा, मैगेटीस पब्लिसिंग कम्पनी लि., नई दिल्ली, 2008

इकाई 11- वित्तीय पूर्वानुमान (Financial Forecasting)

इकाई संरचना

11.0 उद्देश्य
11.1 प्रस्तावना
11.2 अर्थ एवं परिभाषा
11.3 उपयोगिता
11.4 महत्व
11.5 सीमाएँ
11.6 तकनीकें
11.7 उदाहरण
11.8 सारांश
11.9 शब्दावली
11.10 अभ्यास
11.11 उपयोगी पुस्तकें

11.0 उद्देश्य

वित्तीय पूर्वानुमान वित्तीय विवरणों की सहायता से भावी क्रियाओं का अनुमान लगाना होता है। वित्तीय पूर्वानुमान में संस्था के लेखों, कोष प्रवाह विवरणों, रोकड प्रवाह विवरण, अनुपातों आदि के आधार भावी वित्तीय स्थिति को स्पष्ट किया जाता है। वित्तीय पूर्वानुमान के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं -

1. व्यावसायिक संस्था के भूतकालीन समंकों का उपयोग करते हुये भावी दशाओं का मूल्यांकन करना।
2. व्यवसाय में उपलब्ध नकद शेषों का अनुकूलतम उपयोग करना।
3. वित्तीय क्रियाओं का नियन्त्रण करना।
4. व्यवसाय में निष्पादन प्रमापों से वास्तविक निष्पत्ति की तुलना करना तथा विचलन ज्ञात करना।
5. व्यावसायिक क्षेत्र में संस्था की साख योग्यता में वृद्धि करना।
6. पूंजी विनियोजन निर्णयों में सहायता करना।
7. संस्था में रोकड़ अन्तर्वाह, बहिर्वाह तथा रोकड़ शेष का अनुमान लगाना।
8. व्यवसाय में पर्याप्त तरलता बनाये रखना।
9. वित्त पूर्ति के आवश्यक स्त्रोतों का चुनाव करना।

11.1 प्रस्तावना

वित्त व्यवसाय की आत्मा है। वित्त व्यवसाय में रक्त संचार करता है उसे जीवन प्रदान करता है। वित्त व्यवसायिक संस्था को संचालित करता है, उत्पादन की गति को बनाये रखता है तथा मानवीय साधनों व मशीनों के कार्य में निरन्तरता बनाये रखता

है। वित्त की कमी व्यवसाय के सत्त संचालन में बाधक होती है। व्यवसाय के प्रारम्भ से लेकर प्रवर्तन, संचालन, विस्तार और समापन सभी परिस्थितियों में वित्त अर्थात् पूंजी की आवश्यकता होती है। पूंजी कोष व्यवसाय के सुचारू संचालन में सहायक होते हैं। वित्तीय प्रबन्धक का यह कर्तव्य एवं दायित्व है कि वह संस्था की आवश्यकतानुसार कोषों के अन्तर्वाह तथा बहिर्वाहों का पूर्वानुमान लगाकर वित्तीय योजना बनाये ताकि व्यवसाय में जब भी आवश्यकता हो कोष उपलब्ध हो सकें। किसी भी संस्था की भावी सफलता सही वित्तीय पूर्वानुमानों पर निर्भर करती है। जब प्रबन्ध निरन्तर परिवर्तनशील, प्रतिस्पर्धात्मक, तकनीकी एवं सामाजिक वातावरण को ध्यान में रखते हुए एक निश्चित अवधि की क्रियाओं की योजना को वित्त में दर्शाता है तो उसे वित्तीय पूर्वानुमान कहा जाता है।

वित्तीय पूर्वानुमान का उद्देश्य योजना निर्माण हेतु मूलभूत सूचनाएँ उपलब्ध करवाना होता है।

11.2 वित्तीय पूर्वानुमान का अर्थ एवं परिभाषा

वित्तीय पूर्वानुमान व्यवसाय की भावी दशाओं का मूल्यांकन है। वित्तीय पूर्वानुमान द्वारा फर्म की संभावित आर्थिक दशाओं के आधार पर वित्तीय स्थिति को स्पष्ट किया जाता है। इससे संस्था की क्रय लगाते, उत्पादन की मात्रा, विक्रय, कार्यशील पूंजी की आवश्यकता, वित्त की मात्रा अदि का अनुमान लगाया जा सकता है। वित्तीय पूर्वानुमान से तात्पर्य संस्था के लाभ-हानि खाते एवं चिट्ठे में दी गयी मदों से सम्बन्धित सूचनाओं एवं भूतकालीन समंकों का उपयोग करके भावी वित्तीय आवश्यकताओं का पूर्वानुमान लगाने से होता है। संस्था के भूतकालीन लेखों, कोष प्रवाह विवरणों, वित्तीय अनुपातों तथा उद्योगों एवं फर्म की सम्भावित आर्थिक दशाओं के आधार पर भावी वित्तीय स्थिति को अनुमानित किया जाता है। यह फर्म या संस्था की वित्तीय आवश्यकताओं की मात्रा तथा उचित समय के सम्बन्ध में अग्रिम निर्णय की क्रिया है। एक वित्तीय प्रबन्धक का प्रमुख कार्य उचित वित्तीय पूर्वानुमान लगाना होता है।

डा. आर. एम. श्रीवास्तव के अनुसार "वित्तीय पूर्वानुमान वित्तीय कार्यो का एक अभिन्न अंग है तथा एक उपक्रम की वित्तीय आवश्यकताओं की मात्रा तथा उचित समय के सम्बन्ध में अग्रिम निर्णय की प्रक्रिया

11.3 वित्तीय पूर्वानुमानों की उपयोगिता

वित्त प्रत्येक व्यवसाय का जीवन रक्त अर्थात् जीवनदायिनी शक्ति होता है। वित्त की आवश्यकता उत्पादन से लेकर वितरण तक की सभी क्रियाओं में होती है। व्यवसाय लघु आकार का हो या दीर्घ आकार का प्रत्येक में वित्त की आवश्यकता पड़ती है। यदि वित्त का अनुमान व्यवसाय की आवश्यकता से कम हो अथवा अधिक हो तो यह स्थिति उस व्यवसाय के अच्छी नहीं होती है। अत: उचित एवं पर्याप्त वित्तीय

आवश्यकता का निर्धारण सुदृढ़ वित्तीय पूर्वानुमानों द्वारा ही सम्मव होता है। वित्तीय पूर्वानुमानों की उपयोगिता निम्न लिखित है :-

1. **रोकड़ शेषों का अनुकूलतम उपयोग** - वित्तीय पूर्वानुमान की तकनीकों से रोकड़ शेष का अनुकूलतम उपयोग किया जा सकता है। जो पूंजीकोष व्यवसाय में बेकार पड़े रहते हैं, वित्तीय पूर्वानुमानों की सहायता उनका विनियोग करके संस्था की आय अर्जन क्षमता को बढ़ाया जा सकता है।
2. **वित्तीय कार्य कलापों पर नियन्त्रण** : वित्तीय पूर्वानुमान का प्रयोग नियंत्रण तकनीक के रूप में भी किया जाता है। इसके आधार पर संस्था में निष्पादन प्रमाप निर्धारित किये जाते हैं तथा इनकी वास्तविक स्थिति से तुलना करके परिणामों का मूल्यांकन किया जाता है। इससे वित्तीय प्रबन्धक को निर्धारित प्रभापों से विचलन की जानकारी प्राप्त होती है, जिसके लिए सुधारात्मक कार्यवाही की जाती है। विचलन योजनाओं की कमियों को दर्शाते हैं। जिसके आधार पर प्रबन्धक योजनाओं में संशोधन कर सकते है।
3. **उच्च साख योग्यता** : विस्तृत वित्तीय पूर्वानुमान संस्था की व्यावसायिक क्षेत्र में साख योग्यता बढ़ाने में सहायक होते हैं। बैंक इन वित्तीय पूर्वानुमानों के आधार पर संस्था को सरल व सुविधाजनक शर्तों पर ऋण देने के लिए तैयार हो जाते हैं। बैंक वित्तीय पूर्वानुमानों के आधार पर संस्था की वित्तीय आवश्यकताओं की मात्रा तथा समय की जानकारी प्राप्त कर लेते हैं और साथ ही संस्था के लाभों एवं तरलता पर होने वाले साख योग्यता के प्रभाव को भी ज्ञात कर लेते हैं।
4. **निर्णयण में सहायक** : वित्तीय पूर्वानुमान व्यावसायिक संस्था के वार्षिक उत्पादन स्तर के निर्णयण में सहायक होते हैं। संस्था वित्तीय पूर्वानुमानों द्वारा कार्यशील पूंजी की मात्रा का निर्धारण, रोक प्रवाह, दीर्घकालीन कोषों की आवश्यकता एवं प्राप्ति स्त्रोत, बिक्री वृद्धि सम्बन्धी निर्णय सरलता से कर सकती

11.4 वित्तीय पूर्वानुमान का महत्व

किसी भी व्यवसाय की सफलता उपलब्ध साधनों के अनुकूलतम उपयोग पर निर्भर करती है। यह तभी संभव होता है जबकि संस्था की भावी विकास की नीति का सही पूर्वानुमान लगाया जाए। अनेक व्यवसायिक संस्थाऐं सही पूर्वानुमान ने होने के कारण असफल हो जाती हैं। संक्षेप में निम्न बिन्दु संस्था में वित्तीय पूर्वानुमान के महत्व पर प्रकाश डालते हैं-

1. **न्यूनतम लागत पर पूंजी की उपलब्धता** : वित्तीय पूर्वानुमानों के द्वारा संस्था की वित्तीय आवश्यकताओं को ज्ञात किया जाता है और उसकी लागत को जाना जाता है। उसी के पश्चात् पूंजी प्राप्ति के स्त्रोत तथा मात्रा का निर्णय किया जा सकता है।
2. **पूंजी साधनों में समन्वय** : व्यवसाय में पूंजी प्राप्ति के अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन स्त्रोत होते हैं। इन स्त्रोतों से पूंजी प्राप्ति की लागत भी भिन्न-भिन्न होती है। अत: पूंजी साधनों की लागत का पूर्वानुमान लगाकर उनका अनुपात तय कर किया जा सकता है।

3. **लाभों की मात्रा का निर्धारण** : वित्तीय पूर्वानुमान के द्वारा भविष्य में संस्था के लाभों की मात्रा का निर्धारण किया जा सकता है।
4. **संचालन व्ययों में मितव्ययिता तथा समन्वय** :" वित्तीय पूर्वानुमान द्वारा संस्था के संचालन व्ययों में मितव्ययिता लायी जा सकती है तथा यह अपव्ययों को भी रोकने में सहायक होते हैं। व्यवसाय की विभिन्न क्रियाओं में समन्वय करके अनावश्यक लागतों में कमी की जा सकती है।
5. **पर्याप्त तरलता बनाये रखने में सहायक** : वित्तीय पूर्वानुमान संस्था में पर्याप्त सरलता बनाये रखने में सहायक होते हैं। पर्याप्त तरलता संस्था की साख का आधार होती है तथा अति व्यापार पर की स्थिति पर भी नियन्त्रण करने में सहायक होती है।

11.5 वित्तीय पूर्वानुमान की सीमाएँ

वित्तीय पूर्वानुमान व्यवसाय के लिए एक आवश्यक प्रक्रिया है। इसकी व्यवसाय में बहुत अधिक उपयोगिता होती है। फिर भी यह आलोचनाओं तथा सीमाओं से मुक्त नहीं है। आलोचकों का मत है कि यह भावी समय के लिये अनुमान मात्र है और भविष्य पूर्णतया अनिश्चित होता है। अत: वित्तीय पूर्वानुमानों की निम्नलिखित सीमाएँ हैं -

1. **शत प्रतिशत सत्यता का अभाव** : वित्तीय पूर्वानुमान व्यवसाय के भविष्य के अनुमान होते हैं। भविष्य अज्ञात होता है, कल क्या होगा यह कहना कठिन होता है। अत: पूर्वानुमानों का शत प्रतिशत सही होना मुश्किल होता है।
2. **मान्यताओं पर आधारित** : पूर्वानुमान लगाते समय यह माना जाता है कि अर्थव्यवस्था एवं व्यवसाय में कोई परिवर्तन नहीं होगा। जबकि आर्थिक परिस्थितियाँ निरन्तर परिवर्तनशील होती हैं।
3. **त्रुटियों के रह जाने की संभावनाएँ** : प्रत्येक वित्तीय पूर्वानुमान अनुमान पर आधारित होता है। आर्थिक विश्लेषण, गणितीय सूत्र, अनुभव की कमी आदि तत्व पूर्वानुमान की प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। यदि इनके विश्लेषण में कोई कमी रह जाती है तो प्रबन्धकीय निर्णयों पर भी इनका विपरीत प्रभाव पडता है।

11.6 वित्तीय पूर्वानुमान की तकनीकें

वित्तीय पूर्वानुमान के लिए निम्नलिखित विधियों का प्रयोग किया जाता है -

1. प्रक्षेपित वित्तीय विवरण
2. रोकड़ बजट
3. रेखीय एवं बहुगुणी प्रतिगमन
4. सूक्ष्मग्राहयता विश्लेषण
5. अनुरूपण

1. प्रक्षेपित वित्तीय विवरण

प्रक्षेपित वित्तीय विवरण के विवरण होते हैं जो संस्था की परिचालन लागत, लाभों की स्थिति तथा भावी वित्तीय स्थिति को दर्शाते हैं। ये प्रक्षेपित विवरण वित्तीय बजट के समान होते हैं। जिन्हें अल्पकालीन वित्तीय नियोजन में प्रयोग में लाया जा सकता है।

विगत अवधि के विवरणों तथा उस अवधि के संस्था के विभागीय बजटों की सहायता से प्रक्षेपित वित्तीय विवरणों को तैयार किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त संस्था की प्राप्तियाँ, व्ययों तथा परिचालन से प्राप्त सूचनाओं का प्रयोग भी प्रक्षेपित वित्तीय विवरण बनाते समय किया जा सकता है। साधारणतया ये विवरण भूतकालीन तथ्यों तथा अनुपातों पर आधारित होते है। इन विवरणों में प्रक्षेपित आय विवरण तथा प्रक्षेपित चिट्ठा बनाया जाता है इनके निर्माण की विधि निम्नलिखित है :-

2. **प्रक्षेपित आय विवरण** : यह विवरण संस्था की भावी आय के प्रक्षेपण को दर्शाता है। इस विवरण के निर्माण का उद्देश्य संस्था की संभावित बिक्री, लागतों, लाभों, कर लाभांश तथा वित्तीय हितों का उचित अनुमान लगाना है। प्रक्षेपित आय विवरण बनाने के लिए निम्नलिखित सूचना की आवश्यकता होती है :-
    1. **विक्रय** : यह विवरण संस्था की भावी अवधि की अनुमानित बिक्री के द्वारा तैयार किया जाता है। बिक्री का अनुमान सर्वेक्षण, बाजार शोध, विक्रेताओं द्वारा लगाये गये अनुमान पर लगाया जा सकता है।
    2. **बिक्रीत माल की लागत** : प्रक्षेपित आय विवरण बनाने के लिए बिक्रीत माल की लागत का अनुमान लगाना इसका महत्वपूर्ण कार्य होता है। कच्चे माल की क्रय लागत, श्रम त था उपरिव्यय लागतों के विश्लेषण के द्वारा बिक्री किये जाने वाले माल की लागत का अनुमान लगाया जा सकता है। बिक्री किये जाने वाले माल की लागत का अनुमान विगत अवधि में बेचे गये माल की लागत की बिक्री से अनुपात के आधार पर लगाया जा सकता है। यह बिक्री के एक निश्चित प्रतिशत 65% या 75% हो सकता है। यदि भविष्य में लागतों में कोई वृद्धि संभावित हो तो उसे भी शामिल किया जाना आवश्यक होता है।
    3. **विक्रय एवं प्रशासनिक व्यय** : विक्रय एवं प्रशासनिक व्ययों का सही अनुमान लगाना कठिन कार्य है। इसलिये इन दोनों मदों के सम्बन्ध में अग्रिम बजट बनाना आवश्यक हो जाता है। फिर भी इन मदों को विक्रय के एक निश्चित प्रतिशत के रूप में अनुमानित किया जाता है।
    4. **अन्य मदें** : आय विवरण बनाते समय कर से पूर्व आय की गणना का अनुमान लगाया जाता है। कर को घटाने के पश्चात् शुद्ध आय को ज्ञात किया जाता है। अन्त में आय में से लाभांश के भुगतान का अनुमान लगाकर घटाया जाता है।
3. **प्रक्षेपित चिट्ठा** :

    प्रक्षेपित चिट्ठा बजट अवधि के अन्त में संस्था के वित्तीय स्थिति के अनुमान को प्रकट करता है अर्थात् वित्तीय पूर्वानुमानों के आधार पर जो नियोजन किया गया था क्या वह नियोजन संस्था की आर्थिक स्थिति को सुद्दढ करने में सहायक रहा है या उससे संस्था की आर्थिक स्थिति कमजोर हो रही है। प्रक्षेपित चिट्ठे को तैयार करने के लिए आवश्यक सूचना विभिन्न स्त्रोतों से एकत्र की जा सकती है, जैसे (1) गत वर्ष का आय विवरण (2) प्रक्षेपित आय विवरण, (3) विक्रय बजट (4) संस्था की पूंजी की स्थिति तथा (5)

अन्य सूचनाएँ। प्रक्षेपित चिट्ठे बनाते समय निम्नलिखित सूचना की आवश्यकता होती है :-

1. नियोजित उत्पादन स्तर को प्राप्त करने हेतु स्थायी एवं चालू सम्पत्तियों का पूर्वानुमान लगाना।
2. दायित्वों का पूर्वानुमान लगाना।
3. भावी वर्ष के लिये शुद्ध सम्पदा को अनुमानित करना।
4. प्रेक्षेपित सम्पत्तियों की कुल स्त्रोतों (शुद्ध सम्पदा + अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन दायित्वों) से तुलना करना।

प्रेक्षेपित सम्पत्तियों एवं दायित्वों के पूर्वानुमान की विस्तृत प्रक्रिया निम्नलिखित हैं-

1. **स्थायी सम्पत्तियाँ** : स्थायी सम्पत्तियों जैसे अधिग्रहण, प्रतिस्थापन अथवा निस्तारण हेतु भावी वर्षो के लिए पूंजी बजट योजना तैयार की जाती है। स्थायी सम्पत्तियों में क्रय की गई सम्पत्तियों को जोड़कर तथा बेची गई सम्पत्तियों को घटाकर प्रक्षेपित चिट्ठे में दर्शाया जाता है तथा साथ ही स्थायी सम्पत्तियों के मूल्य का पूर्वानुमान करते समय ह्रास को भी ध्यान में रखना चाहिए। अन्य सम्पत्तियों का वही मूल्य रहेगा जैसा कि विगत चिट्ठे में दिया होता है जब तक अन्य कोई परिवर्तन सम्बन्धी सूचना नहीं दी गई हो। अमूर्त सम्पत्तियों (ख्याति, एकस्व, ट्रेडमार्क, लाइसेन्स) के मूल्य में कोई परिवर्तन नहीं होगा जब तक परिवर्तन सम्बन्धी कोई विशेष सूचना न दी गई हो, इनके सम्बन्ध में यह मान्यता है कि इनके मूल्य में परिवर्तन नहीं होता है।

चालू सम्पत्तियाँ : विभिन्न प्रकार की चालू सम्पत्तियों के मूल्यों का पूर्वानुमान निम्नलिखित विधि से लगाया जाता है

(अ) देनदार एवं प्राप्य विपत्र चालू सम्पत्तियों का महत्वपूर्ण भाग होते हैं। इनकी राशि का पूर्वानुमान देनदार आवर्त अनुपात अथवा देनदारों को स्वीकृत उधार अवधि के आधार पर निम्नलिखित सूत्रों की सहायता से किया जा सकता है-

देनदार आवृत अनुपात = $\frac{\text{उधार विक्रय (Credit Sales)}}{\text{औसत देनदार (Average Debtors)}}$ प्रारम्भिक देनदार+अन्तिम प्राप्य

(Debtors Turnover)

औसत संग्रहण अवधि

(Average Collection = $\frac{\text{देनदार (Debtors)}}{\text{उधार विक्रय (Credit Sales)}} \times 365$

Period)

(ब) स्कन्ध स्तर का निर्धारण प्रबन्ध द्वारा किया जाता है। यह स्तर स्कन्ध आवर्त अनुपात के आधार पर तय किया जाता है। स्कन्ध आवर्त अनुपात की गणना बेचे गये माल की लागत तथा औसत स्कन्ध के द्वारा की जाती है। बेचे गये माल की लागत निकालते समय कच्चा माल, प्रत्यक्ष श्रम, प्रत्यक्ष व्यय, निर्माणी उपरिव्यय को जोड़ा जाता है। इसमें प्रारम्भिक स्कन्ध को जोड़कर अन्तिम स्कन्ध को घटाया जाता है। औसत स्कन्ध

की गणना प्रारंभिक स्कन्ध एवं अन्तिम स्कन्ध को जोड़कर उसमें दो का भाग देकर की जाती है। स्कन्ध आवर्त की गणना का सूत्र निम्नलिखित है

स्कन्ध आवर्त अनुपात

Stock or Inventory)= $\frac{\text{बिक्रीत माल की लागत (Cost of Goods Sold)}}{\text{औसत स्कन्ध (Average Stock)}}$

Turnover

प्रारंभिक स्कन्ध+क्रय+निर्माणी लागत-अन्तिम स्कन्ध= $\frac{\text{प्रारंभिक स्कन्ध+अन्तिम स्कन्ध}}{2}$

(स) न्यूनतम रोकड़ शेष व्यवसाय में हमेशा आवश्यक होता है ताकि संस्था की समस्त वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति आसानी से की जा सके। संस्था की साख स्थिति, संस्था की उत्पादन नीति, माल की मांग की प्रकृति क्रय विक्रय की शर्त भी न्यूनतम रोकड़ शेष को प्रभावित करते हैं। प्राप्यों की वसूली अवधि भी न्यूनतम रोकड़ शेष की मात्रा को कम अथवा अधिक करती है। यदि वसूली अवधि लम्बी है तो उत्पादन सम्बन्धी व्ययों के लिये अतिरिक्त नकद राशि कोष में रखनी आवश्यक होगी।

3. **दायित्व** : विभिन्न दायित्वों लेनदार या देयविपत्र बकाया दायित्वों, कर व लाभांश प्रावधानों दीर्घ कालीन दायित्वों का निर्धारण निम्न के पूर्वानुमान द्वारा लगाया जा सकता है-

(अ) लेनदार तथा देय विपत्र का अनुमान लेनदार आवर्त अनुपात या पूर्ति कर्ताओं द्वारा स्वीकृत उधार अवधि के आधार पर निम्न सूत्रों का प्रयोग करके किया जा सकता है :

लेनदार आवर्त अनुपात = $\frac{\text{उधार क्रय (Credit Purchases)}}{\text{औसत लेनदार (Average Creditors)}}$

(Creditors Turnover)

या

औसत भुगतान अवधि = $\frac{\text{लेनदार (Creditors)}}{\text{उधार क्रय (Credit Purchases)}} \times 365$

(Average Payment Period)

(ब) बकाया दायित्व जैसे उपार्जित मजदूरी एवं अन्य व्ययों की गणना, उनके भुगतान की विधि को, भुगतान अन्तराल के आधार पर अनुमानित किया जाता है। प्रक्षेपित चिट्ठा बनाते समय इनसे सम्बन्धित भूतकालीन समंकों को भी ध्यान में रखा जाना चाहिये।

(स) कर एवं लाभांश के लिए प्रावधान को भी प्रक्षेपित चिट्ठा बनाते समय ध्यान में रखना चाहिये। विगत वर्ष में करों की राशि में होने वाली वृद्धि को जोड़कर प्रावधान बनाया जाता है। कर एवं लाभांश दोनों के प्रारंभिक शेष में नये प्रावधानों की राशि को जोड़कर तथा उस विशेष अवधि में किये जाने वाले भुगतानों को घटाकर अनुमान लगाया जाता है।

(द) दीर्घकालीन दायित्व का पूर्वानुमान आसानी से लगाया जा सकता है क्योंकि इनकी राशि दीर्घकालीन ऋण की मात्रा अवधि एवं चुकाने की वित्तीय योजना पर निर्भर करती है।

4. **शुद्ध सम्पदा** : अंश पूंजी, संचयों तथा लाभ हानि खाते का आधिक्य का जोड़ शुद्ध सम्पदा कहा जाता है। लेकिन प्रक्षेपित चिट्ठा बनाते समय नये अंशों को जारी करना, अंशों का शोधन तथा फर्म द्वारा अपने अंशों का पुन: क्रय, संचयों में वृद्धि आदि समायोजनों का किया जाना आवश्यक होता है।

5. **प्रक्षेपित चिट्ठे को सन्तुलित करना** : प्रक्षेपित चिट्ठे को सन्तुलित करने का कार्य वित्तीय प्रबन्धक का होता है। प्रक्षेपित चिट्ठा तैयार होने के पश्चात् फर्म की सम्पत्तियों तथा दायित्वों का मिलान किया जाता है। चिट्ठे की सभी मदों को संस्था के भावी विकास एवं नीतियों के सन्दर्भ में अनुमानित किया जाता है इसलिए सम्पत्तियों एवं दायित्वों का योग समान हो, ऐसा आवश्यक नहीं है। यदि अनुमानित सम्पत्तियाँ दायित्व तथा शुद्ध सम्पदा से अधिक होती हैं तब शेष राशि अतिरिक्त कोष मानी जाती हैं। इसके विपरीत यदि कोषों के साधन (दायित्व+शुद्ध सम्पद्घा) सम्पत्तियों से अधिक हो जाते हैं तो वह आधिक्य न्यूनतम नकद राशि के अतिरिक्त रोकड़ या बैंक के शेष को दर्शायेगी।

प्रक्षेपित वित्तीय विवरणों के लाभ: प्रक्षेपित वित्तीय विवरण संस्था की वित्तीय स्थिति के नियोजन एवं नियंत्रण के उपकरण हैं। ये भावी अवधि की वित्तीय स्थिति का चित्र बनाने में सहायक होते हैं। ये वित्तीय विवरण न केवल पूर्वानुमान में सहायक होते हैं बल्कि संस्था की भावी उत्पादकता, लाभदायकता तथा वित्तीय निष्पादन के अग्रिम विश्लेषण का आधार भी प्रस्तुत करते हैं। प्रक्षेपित वित्तीय विवरणों के लाभ निम्नलिखित हैं-

1. **स्पष्ट पूर्वानुमान**: ये प्रक्षेपित वित्तीय विवरण संस्था के लाभों, लाभांश तथा भविष्य में रोकड़ की आवश्यकता का अग्रिम व स्पष्ट पूर्वानुमान होते हैं।
2. **कोषों के स्त्रोतों व उपयोगों का विवरण**: प्रक्षेपित वित्तीय विवरणों की सहायता से विश्लेषक एवं ऋणदाता प्रक्षेपित कोष प्रवाह विवरण बना सकते हैं तथा कोषों के स्त्रोतों तथा उपयोगों का विश्लेषण कर सकते हैं अर्थात कोष कहीं से प्राप्त होंगे तथा किन मदों पर व्यय किये जायेगें
3. **तुलना में सहायक:** प्रक्षेपित वित्तीय विवरणों की तुलना वास्तविक समंकों से करके यह ज्ञात किया जा सकता है कि संस्था अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में कहीं तक सफल हुई है।
4. **अनुपातों की गणना** : संस्था की निष्पति का मूल्यांकन करने हेतु प्रक्षेपित आय विवरण तथा प्रक्षेपित चिट्ठे पर आधारित अनुपातों की गणना की जा सकती है।

प्रक्षेपित वित्तीय विवरणों के दोष

प्रक्षेपित वित्तीय विवरणों की संस्था की वित्तीय योजनाओं को सुदृढ़ करने में महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। फिर भी इन विवरणों में अनेक कमियाँ पायी जाती हैं जो अग्रलिखित हैं-

1. **मान्यताओं पर आधारित** : वित्तीय विवरण अनेक मान्यताओं पर आधारित होते हैं किन्तु ये पूर्वानुमान प्रत्येक व्यवसाय में एक से नहीं रहते हैं तथा व्यवसाय की विभिन्न मदों के मध्य सम्बन्ध पूर्वानुमान अवधि के मध्य एक सा नहीं रहता है जैसा कि प्रक्षेपित वित्तीय विवरणों में दर्शाया जाता है।
2. **विक्रय पूर्वानुमानों पर आधारित** : प्रक्षेपित वित्तीय विवरण विक्रय पूर्वानुमानों पर पूर्ण रूप से निर्भर करते हैं यदि विक्रय पूर्वानुमान सही हैं तो प्रक्षेपित वित्तीय विवरण भी सत्यता के नजदीक होते हैं।

रोकड़ बजट (Cash Budget)

रोकड़ बजट संस्था की भावी समयावधि के प्रत्याशित रोकड अन्तर्वाहों एवं रोकड़ बहिर्वाहों का लेखा जोखा होता है। रोकड़ बजट वित्तीय पूर्वानुमान की महत्वपूर्ण तकनीक है। रोकड़ बजट बनाकर यह अनुमान लगाया जाता है कि भावी अवधि में संस्था के परिचालन हेतु अनुमानित व्ययों के लिये कितनी राशि की आवश्यकता होगी तथा संस्था के सामान्य कार्यो से कितनी रोकड़ एकत्र हो सकेगी। यह बजट समय समय पर रोकड़ शेष की स्थिति को दर्शाता है। इस बजट की अवधि सामान्यत: एक वर्ष होती है। जिसे माह, तिमाही, छ: माही अवधि के आधार पर पुन: विभाजित किया जा सकता है। रोकड़ बजट को तीन भागों में बाँटा जा सकता है-

(अ) **रोकड अन्तर्वाहों का पूर्वानुमान लगाना**: किसी भी संस्था में रोकड़ प्राप्तियाँ या रोकड़ अन्तर्वाह परिचालन अथवा गैर परिचालन स्त्रोतों एवं पूंजीगत लेनदेन से हो सकती है। परिचालन से रोकड़ प्राप्तियों का मुख्य स्त्रोत बिक्री है जिसका निर्धारण रोकड़ बजट से किया जा सकता है। बिक्री दो प्रकार की होती है नकद बिक्री एवं उधार बिक्री, नकद बिक्री की दशा में रोकड़ नकद बिक्री के समय ही प्राप्त होता है जबकि उधार बिक्री दशा में बिक्री की राशि संस्था की साख नीति द्‌वारा निर्धारित औसत भुगतान अवधि पर निर्भर करता है। रोकड़ बिक्री तथा देनदारों से वसूली की राशि का अनुमान लगाते समय रोकड़ बट्टा, विक्रय वापसी, छूटें तथा डूबते ऋण पर भी विचार करना आवश्यक होता है क्योंकि इससे रोकड़ अन्तर्वाह प्रभावित होता है।

गैर परिचालन रोकड़ प्राप्तियों में व्यवसाय की सामान्य उत्पादन एवं विक्रय प्रक्रिया के अतिरिक्त दूसरे स्त्रोतों प्राप्त रोकड को सम्मिलित किया जाता है।

ब्याज, लाभांश, कमीशन, किराया, रॉयल्टी, अपशिष्ट की बिक्री तथा कर वापसी आदि से प्राप्त होने वाली रोकड प्राप्तियों गैर परिचालन रोकड़ प्राप्तियाँ कहलाती हैं। इसी प्रकार स्थायी सम्पत्तियों व विनियोगों के विक्रय अंश व ऋण पत्रों के निर्गमन आदि से प्राप्त रोकड़ को पूंजी व्यवहारों से प्राप्त रोकड़ प्राप्तियों में शामिल किया जाता है। उपरोक्त सभी मदों की अग्रिम योजना बनायी जाती है अत: इनका पूर्वानुमान आसानी से किया जा सकता है।

(ब) **रोकड़ बहिर्वाहों का पूर्वानुमान** : व्ययसाय में क्रय व्यवहारों, स्थायी सम्पत्तियों के क्रय तथा अन्य भुगतानों के बदले में रोकड़ बहिर्वाह होता है। अर्थात् नकद की आवश्यकता परिचालन क्रियाओं गैर परिचालन क्रियाओं तथा पूंजीगत लेन-देनों सभी के लिए होती है।

परिचालन क्रियाओं के लिए भुगतान में कच्चे माल का क्रय के हेतु विक्रेताओं को दी - जाने वाली अग्रिम राशि, नकद क्रय हेतु किया नकद भुगतान एवं उधार क्रय सम्बन्धी लेनदारों को किये गये भुगतान शामिल किये जाते हैं। लेनदारों को किये जाने वाले भुगतान की अवधि की गणना कच्चे माल के क्रय की तिथि तथा भुगतान के बीच लगने वाले समय को ध्यान में रखकर की जाती है। इसके अतिरिक्त व्यवसाय में प्रत्यक्ष व्यय एवं प्रशासनिक व्ययों जैसे श्रम प्रशासन विक्रय तथा वितरण हेतु भी भुगतान करने पड़ते हैं। गैर परिचालन व्ययों के भुगतान के अन्तर्गत व्याज किराया, लाभांश, बोनस, दान, आयकर आदि व्ययों के भुगतान सम्मिलित होते हैं। इन व्ययों की पिछली अवधि के अनुसार चुकायी गई राशि को सम्मिलित किया जाना चाहिए। पूजी व्यवहारों के लिए रोकड़ भुगतानों में बजट अवधि में क्रय किये जाने वाली प्लान्ट एवं मशीनरी, भूमि भवन तथा प्रतिभूतियों के लिए किये जाने वाले भुगतान सम्मिलित किये जाते है इसके अतिरिक्त अन्य दायित्वों तथा बैंक अधिविकर्ष, ऋणपत्र, शोध्य अधिमान अंशों आदि के भावी भुगतान का भी अनुमान लगाया जाता है।

रोकड़ बजट बनाते समय केवल नकद या रोकड़ सौदों का ही विवरण दिया जाता है। प्राप्तियों एवं भुगतानों की राशि ज्ञात करते समय समायोजनों, उपार्जित व्ययों तथा गैर रोकड़ व्यय को सम्मिलित नहीं किया जाता है।

(स) **रोकड़ शेष का पूर्वानुमान** : प्रति माह होने वाले रोकड़ अन्तर्वाह तथा रोकड बहिर्वाह का अनुमान लगाकर शुद्ध रोकड़ शेष की गणना की जाती है। प्रत्येक माह का शुद्ध शेष अधिक्य या कमी की स्थिति की सूचना प्रदान करता है। यदि न्यूनतम शेष में कमी पायी जाती है तो अन्य स्त्रोतों से ऋण लेकर न्यूनतम नकद राशि बनाये रखने की व्यवस्था की जा सकती है।

रोकड़ बजट की उपयोगिता

रोकड़ बजट व्यवसाय में प्रबन्धकीय नियन्त्रण का महत्वपूर्ण उपकरण है इसकी सहायता से वित्तीय प्रबन्धक वित्तीय संतुलन बनाये रख सकते हैं। रोकड़ अन्तर्वाहों तथा बहिर्वाहों में उचित सामन्जस्य स्थापित करके लाभों को अधिकतम किया जा सकता है। अत: प्रत्येक संस्था में रोकड़ बजट बनाना एक अनिवार्यता है। रोकड़ बजट बनाने की उपयोगिता निम्न बिन्दुओं से स्पष्ट होती है :-

1. **रोकड की भावी आवश्यकताओं का अनुमान:** रोकर बजट बनाकर संस्था की रोकड़ आवश्यकता का पूर्वानुमान लगाना सम्भव होता है। यदि न्यूनतम रोकड़ शेष में कमी पायी जाती है तो वित्तीय प्रबन्धक ऋण व्यवस्था करके उत्पन्न होने वाली परेशानियों से संस्था को बचा लेते हैं।
2. **उपयुक्त वित्त स्त्रोतों का चुनाव** : रोकड़ बजट बनाकर यह ज्ञात किया जा सकता है कि रोकड़ की आवश्यकता अल्पकाल के लिए होगी या दीर्घकाल के लिए। अल्पकालीन वित्तीय आवश्यकता की बैंक से ऋण लेकर पूर्ति की जा सकती है जबकि दीर्घकालीन वित्तीय आवश्यकता की पूर्ति अंशों या ऋण पत्रों से की जानी चाहिए।

3. **तरलता बनाये रखना** : रोकड़ बजट व्यवसाय में पर्याप्त तरलता बनाये रखने में सहायक होता है। यदि रोकड़ शेष में कमी आती है तो संस्था के उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ सकता है और आय लाभ की मात्रा में कमी आ सकती है।
4. **नकद धनराशि का पूर्ण सदुपयोग** : बजट बनाकर संस्था मैं नकद धनराशि की मात्रा को ज्ञात किया जा सकता है। अतिरिक्त शेष को विनियोजित करके लाभ प्राप्त किया जा सकता हैं।
5. **रोकड़ स्थिति को प्रभावित करने वली तत्वों को ज्ञात करना** : रोकड़ बजट के द्वारा व्यवसाय को प्रभावित करने वाले तत्वों को ज्ञात किया जा सकता है। विक्रय की मात्रा, डूबते ऋण, उधार वसूली, लाभांश आदि तत्वों का व्यवसाय की नकद स्थिति पर क्या प्रभाव पड़ेगा, ज्ञात किया जा सकता है।

प्रतीपगमन विश्लेषण

प्रतीपगमन विश्लेषण भी वित्तीय पूर्वानुमानों की एक सांख्यिकीय तकनीक है जो दो या दो से अधिक अन्तः सम्बन्धित श्रेणियों में तुलनात्मक प्रवृति को दर्शाती हैं। प्रतीपगमन विश्लेषण में एक चर में परिवर्तन का दूसरे चर के सम्भावित मूल्य पर क्या प्रभाव होता है, ज्ञात किया जा सकता है। पूंजी के आधार पर लाभ तथा मूल्य के आधार पर मांग का अनुमान लगाने में प्रतीपगमन विश्लेषण अत्यन्त सहायक होता है। व्यवसाय की सफलता में इस प्रकार के अनुमान अत्यन्त अनिवार्य होते हैं। प्रतीपगमन विश्लेषण की सहायता से चर मूल्यों में सह सम्बन्ध की मात्रा व दिशा का माप किया जा सकता है।

सूक्ष्मग्राहयता विश्लेषण

अनिश्चितता और जोखिम के इस युग में, प्रक्षेपित वित्तीय विवरणों तथा रोकड़ प्रवाह अनुमान पूर्णतया सही सिद्ध नहीं होते हैं। इसलिये पूर्वानुमानों के साथ संभावित पूंजी आवश्यकताओं के विस्तार अनुमान भी आवश्यक हो गया है। सूक्ष्मग्राहयता विश्लेषण भी पूंजी आवश्यकता के विस्तार अनुमान हेतु किया जाता है। सूक्ष्मग्राहयता विश्लेषण में, अनिश्चित चरों के मूल्य परिवर्तन द्वारा संशोधित परिणामों की गणना की जाती है। इस विश्लेषण से निवेश चरों की अनिश्चिता के सूक्ष्मग्राहयता पर प्रभाव को जाना जा सकता

इस विश्लेषण के माध्यम से वित्तीय प्रबन्धक द्वारा अनिश्चित निवेश चरों- जैसे बिक्री, प्राप्यों, स्टॉक आदि में परिवर्तन को जाना जाता है तथा बाहरी पूंजी की आवश्यकताओं की सूक्ष्मग्राहयता का निर्धारण किया जाता है। इसी कारण से भिन्न भिन्न बिक्री स्तरों पर प्रक्षेपित आय विवरण तथा चिट्ठा तैयार किया जाता है।

सूक्ष्मग्राहयता विश्लेषण पूर्वानुमान की एक महत्वपूर्ण तकनीक है जबकि निवेश चर अनिश्चित हो। किन्तु इस विश्लेषण की एक महत्वपूर्ण कमी है कि यह एक बार में एक ही अनिश्चित चर का अध्ययन कर सकता है।

अनुरूपण

अनुरूपण व्यावसायिक निर्णयन की नवीन तकनीक है जो व्यावसायिक अधिकारियों के लिए रोकड़ योजना निर्माण में अत्यन्त उपयोगी है। अनुरूपण समानताओं तथा सम्भाव्यता वितरण का एक गणितीय प्रतिमान है।

11.7 उदाहरण

उदाहरण - निम्नलिखित सूचनाओं से एक संस्था के लिए मार्च, अप्रेल व मई माह का प्रक्षेपित आय विवरण तैयार कीजिए

(अ) मार्च, अप्रेल व मई के लिए विक्रय क्रमशः 4,50,000रू, 480,000 रू. तथा 4,30,000रू. प्रक्षेपित किया गया है ।

(ब) माल की लागत 1,00,000 रू. तथा प्रतिमाह विक्रय मूल्य का 30% है।

(स) विक्रय व्यय, विक्रय का 3% है।

(द) किराया प्रतिमाह 15000 रू.; प्रशासनिक व्यय मार्च माह के लिए 120000 रू. सम्भावित है, किन्तु गत माह के व्ययों में प्रतिमाह 1% की वृद्धि अपेक्षित है।

(य) संस्था को 6,00,000 रू. का 8०% ऋण चुकाना है, जिस पर व्याज प्रति माह देय है।

(र) निगम कर की दर 70% है।

हल

आय विवरण का प्रतिरूप

विवरण		मार्च	अप्रेल	मई
विक्रय		4,50,000	4,80,000	4,30,000
(-) बेचे गए माल की लागत		2,35,000	2,44,000	2,29,000
	सकल लाभ (1)	**2,15,000**	**2,36,000**	**2,01,000**
परिचालन व्यय :				
प्रशासनिक व्यय		1,20,000	1,21,200	1,22,412
किराया		15,000	15,000	15,000
विक्रय व्यय (विक्रय का 3%)		13,500	14,400	12,900
	कुल परिचालन व्यय (2)	**1,48,500**	**1,50,600**	**1,50,312**
ब्याज व कर पूर्व लाभ (1-2)		66,500	85,400	50,688
(-) ब्याज		4,000	4,000	4,000
	कर पूर्व लाभ	**62,500**	**81,400**	**46,688**
	कर@ 70%	**43,750**	**56980**	**32682**
	कर पश्चात लाभ	**18750**	**24420**	**14006**

संक्षिप्त टिप्पणी

1. बेचे गए माल की लागत की गणना :

स्थिर लागत	100,000	100,000	100,000
(+) जोड़े विक्रय का **30%**	1,35,000	1,44,000	1,29,000
	2,35,000	**2,44,000**	**2,29,000**

2. प्रशासनिक व्यय की गणना:

मार्च- 1,20,000

अप्रेल- 1,20,000 1% (रू. 1,20,000) = 1.20,000+1200=121200

मई- 1,21,200+ 1% रू. 1,21,200 = 121200+1212=1,22,412

उदाहरण :

राम एण्ड संस के पास 1 जनवरी 2009 को 3,75,000 रू. अंश पूंजी व 45000 रू. संचयों तथा 3,00,000 की स्थायी सम्पत्तियों में विनियोजित हैं स्टाक व देनदार 40000 रू. व 97500 रू. तथा व्यापारिक लेनदार 15000 रू हैं। क्रियाशीलता में वृद्धि को जारी रखने के लिए वर्ष के अंत तक स्टॉक के स्तर में 50% वृद्धि का प्रस्ताव है। पूंजी बजट के अनुसार वर्ष में 15000 रू. की मशीन खरीदने का प्रस्ताव है। 30000 रू. ह्रास तथा 50% आयकर घटाने के उपरान्त वर्ष का लाभ 52500 रू. अनुमानित किया गया है। अग्रिम आयकर भुगतान का अनुमान 45000 रू. है। व्यापारिक लेनदार दो गुने होने का अनुमान लगाया गया है। 5% लाभांश भुगतान किया जाना है तथा अगले वर्ष के लिए 10% लाभांश का प्रावधान करना है। देनदार 3 माह के लिए बकाया रहने का अनुमान है। विक्रय बजट 7,50,000 रू. की बिक्री दर्शाता

31 दिसम्बर 2009 को समाप्त होने वाले वर्ष के लिये प्रक्षेपित चिट्ठा बनाइये।

प्रक्षेपित चिट्ठा

31 दिसम्बर 2009

दायित्व		राशि (रू.)	सम्पत्तियाँ		राशि (रू.)
अंश पूंजी		3,75,000	**स्थायी सम्पत्तियाँ :**		
संचय एवं अधिक्य शेष :			शेष	3,00,000	
	45,000		नयी मशीन	15000	
(-) लाभांश	18,750		(-) ह्रास	30000	2,85,000
	26,250				
(+) कर पश्चात लाभ	52,500		**चालू सम्पत्तियाँ** :		
	78,750		स्टॉक		60,000
(-) प्रस्तावित लाभांश	37,500	41250	देनदार		1,87,500
			अग्रिम आयकर		45000
चालू दायित्व :					
व्यापारिक लेनदार	30000				

प्रस्तावित लाभांश	37500			
कर के लिए प्रावधान	52500			
अधिविकर्ष	41250			
	5,77,500			5,77,500

टिप्पणियाँ देनदार

(i) स्टॉक की राशि में 50% की वृद्धि संभावित है, अत: स्टॉक की राशि होगी :
40,000 रू. ×1.5 = 60,000 रू.

(ii) विक्रय तीन माह के बराबर है इसलिए देनदारों की राशि होगी? 7,50,000×3

11.8 सारांश

वित्तीय पूर्वानुमान व्यवसाय की भावी वित्तीय आवश्यकताओं का निर्धारण में सहायक होते है वित्तीय पूर्वानुमानों के आधार पर संस्था वार्षिक उत्पादन स्तर, कार्यशील पूंजी की मात्रा, रोकड़ प्रवाह, दीर्घकालीन कोषों की आवश्यकता एवं प्राप्ति स्त्रोत, बिक्री वृद्धि सम्बन्धी निर्णय सरलता से कर लेती है। वित्तीय पूर्वानुमान नियन्त्रण तकनीक के रूप में भी प्रयोग में लाये जाते हैं। पूर्वानुमानों के आधार पर संस्था में प्रमाप निर्धारित किये जाते हैं। जिनकी वास्तविक निष्पति से तुलना करके विचलन को ज्ञात किया जाता है। वित्तीय प्रबन्धक विचलन के आधार योजना में सुधार हेतु कार्यवाही करते हैं।

11.9 शब्दावली

वित्तीय पूर्वानुमान - वित्तीय पूर्वानुमान व्यवसाय की भावी वित्तीय स्थिति का अनुमान

प्रक्षेपित वित्तीय विवरण- प्रक्षेपित वित्तीय विवरण वे विवरण हैं जो संस्था की भावी आय, लाभ की स्थिति तथा वित्तीय स्थिति को दर्शाते हैं।

प्रक्षेपित आय विवरण- प्रक्षेपित आय विवरण, एक निश्चित भावी समयावधि की विक्रय से होने वाली आय परिचालन लागतों, लाभों तथा कर, लाभांश एवं अन्य हितों का अनुमान है।

प्रक्षेपित चिट्ठा - प्रक्षेपित चिट्ठा बजट अवधि के अन्त में सम्पत्तियों तथा दायित्वों के माध्यम से संस्था की वित्तीय स्थिति को दर्शाता है।

प्रतीपगमन विश्लेषण - प्रतीपगमन विश्लेषण वित्तीय पूर्वानुमानों की एक सांख्यिकीय तकनीक है जो दो श्रेणियों जोकि परस्पर एक दूसरे से सम्बन्धित होती है; तुलनात्मक प्रवृति को दर्शाती है।

अनुरूपण- अनुरूपण समानताओं एवं प्राथमिकता वितरण का एक गणितीय प्रतिमान है जो संस्था को जोखिम पूर्ण निर्णय लेने में सहायक होता है। इस विधि विभिन्न चरों का निरूपण करके वित्तीय पूर्वानुमान लगाया जाता है।

11.10 अभ्यास

प्रश्न1. वित्तीय पूर्वानुमानों का अर्थ स्पष्ट कीजिए तथा वित्तीय पूर्वानुमानों की विधियों का वर्णन कीजिये।

प्रश्न 2. एक औद्योगिक संस्था की वित्तीय आवश्यकता का अनुमान किस प्रकार लगाया जा सकता है? समझाइये।

11.11 उपयोगी पुस्तकें

1. अग्रवाल, एम आर – वित्तीय प्रबन्ध के मूल तत्व
2. अग्रवाल, अग्रवाल – वित्तीय प्रबन्ध
3. खान एण्ड जैन – वित्तीय प्रबन्ध

इकाई-12 :लागत मात्रा लाभ विश्लेषण अथवा सम विच्छेद विश्लेषण

(Cost-Volume Profit Analysis or Break-even Analysis)

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 सम विच्छेद विश्लेषण का अर्थ एवं परिभाषा

12.3 सम विच्छेद विश्लेषण की मान्यताऐं

12.4 सम विच्छेद विश्लेषण के लाभ

12.5 सम विच्छेद विश्लेषण की सीमाएँ

12.6 सम विच्छेद बिन्दु की गणना

12.7 लाभ कारकों में परिवर्तनों का प्रभाव

12.8 सम विच्छेद विश्लेषण के प्रयोग

12.9 सुरक्षा सीमा का अर्थ

12.10 सुरक्षा सीमा का महत्व

12.11 लाभ मात्रा अनुपात

12.12 लाभ मात्रा अनुपात के प्रयोग

12.13 लाभ मात्रा अनुपात में सुधार के उपाय

12.14 सम विच्छेद चार्ट

12.15 उदाहरण

12.16 सारांश

12.17 शब्दावली

12.18 स्वपरख प्रश्न

12.19 व्यावहारिक प्रश्न

12.20 कुछ उपयोगी पुस्तकें

12.0 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- सम विच्छेद विश्लेषण का अर्थ समझ सकें।
- सम विच्छेद विश्लेषण की मान्यताऐं, लाभ व सीमायें समझ सकें।
- सम विच्छेद बिन्दु की गणना समझ सकें।

- लाभ कारकों में परिवर्तन का सम विच्छेद बिन्दु और सुरक्षा सीमा पर होने वाले प्रभाव का अध्ययन कर सकें।
- सम विच्छेद विश्लेषण के विभिन्न प्रयोगों को समझ सकें।
- लाभ मात्रा अनुपात एवं उनके विभिन्न प्रयोगों को जान सकें। इन्हें किस प्रकार से सुधारा जा सकता है, यह समझ सकें।
- लागत-मात्रा-लाभ सम्बन्ध का अध्ययन कर सकें।

12.1 प्रस्तावना (Introduction)

आज के इस प्रतिस्पर्धात्मक युग में प्रत्येक प्रबन्धक अपने व्यवसाय के लाभ को अधिकतम करना चाहता है। किसी भी उत्पाद के लाभ को अधिकतम केवल दो तरीकों से किया जा सकता है - (1) उत्पाद के विक्रय मूल्य में वृद्धि द्वारा (2) उत्पाद की लागत पर नियंत्रण द्वारा। वर्तमान परिपेक्ष्य में केवल दूसरा विकल्प ही अपनाया जा सकता है। अत: किसी भी उत्पाद के लाभ को अधिकतम करने के लिए उससे सम्बन्धित तत्वों जैसे - उत्पाद की लागत, विक्रय मूल्य व उत्पादन मात्रा का सापेक्षिक अध्ययन करना आवश्यक है। वस्तु की लागत, उत्पाद मिश्रण, उत्पादन मात्रा व विक्रय मूल्य में परिवर्तन होने पर संस्था के लाभ प्रभावित होते हैं। जब प्रबन्धक उत्पादन के किसी स्तर पर इन तत्वों का विश्लेषण करके इनमें आपसी सम्बन्ध स्थापित करता है तो इसे ही लागत मात्रा लाभ विश्लेषण कहते हैं।

12.2 सम विच्छेद विश्लेषण का अर्थ एवं परिभाषा

सम विच्छेद विश्लेषण से तात्पर्य किसी निश्चित कार्य स्तर पर सम्भावित लाभों का निर्धारण करने हेतु लागत को उसके स्थिर एवं परिवर्तनशील घटकों में विश्लेषण करने की तकनीक से है। इस प्रकार यह सीमान्त लागत लेखांकन प्रविधि का विस्तार है।

मैट्स, करी और **फ्रैंक** के अनुसार ' सम विच्छेद विश्लेषण यह इंगित करता है कि किस स्तर पर लागत एवं आगम में संतुलन होता है।" अत: सम विच्छेद विश्लेषण से आशय विक्रय के ऐसे स्तर से है जहाँ **संस्था को न लाभ होता है और न हानि।**

12.3 सम विच्छेद विश्लेषण की मान्यताएँ (Assumption of Break Even Analysis)

सम विच्छेद बिन्दु सम्बन्धी गणनाएँ निम्न मान्यताओं पर आधारित है-

1. समस्त लागतों को स्थायी तथा परिवर्तनशील में वर्गीकृत किया जा सकता है।
2. स्थायी लागतें उत्पादन के प्रत्येक स्तर पर स्थिर रहती है तथा उत्पादन मात्रा में परितर्वन का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।
3. परिवर्तनशील लागतें उसी अनुपात में परिवर्तित होती हैं जिस अनुपात में उत्पादन या विक्रय की मात्रा में परिवर्तन आता है।
4. प्रति इकाई विक्रय मूल्यों में कोई परिवर्तन नहीं होता।

5. समस्त उत्पादन बेच दिया जाता है अर्थात् उत्पादन व विक्रय की मात्रा में कोई अन्तर नहीं होता। दूसरे शब्दों में, निर्मित माल का कोई आरम्भिक या अन्तिम स्टॉक नहीं होता।
6. केवल एक ही वस्तु का उत्पादन होता है। यदि एक से अधिक वस्तु का उत्पादन हो तो उनके मिश्रण (Product Mix) में कोई परिवर्तन नहीं होता।
7. संचालन कार्य-क्षमता (Operating efficiency) के स्तर में कोई परिवर्तन नहीं होता।

12.4 सम विच्छेद विश्लेषण के लाभ (Uses of Break-even Analysis)

सम विच्छेद विश्लेषण के अनेक लाभ हैं जिनमें से कुछ महत्त्वपूर्ण निम्नलिखित हैं -

1. इससे हम विक्रय का ऐसा स्तर ज्ञात कर सकते है जिस पर न लाभ हो और न ही हानि हो।
2. इससे यह भी ज्ञात होता है कि लाभ की निश्चित राशि अर्जित करने के लिए विक्रय मूल्य कितना होना चाहिए।
3. लाभ की निश्चित राशि अर्जित करने के लिए आवश्यक विक्रय की मात्रा भी ज्ञात की जा सकती है।
4. विक्रय अथवा उत्पादन की मात्रा में परिवर्तन से लागतों तथा लाभ पर प्रभाव का पूर्वानुमान लगाया जा सकता है।
5. लागतों में परिवर्तन से लाभ पर प्रभाव का अध्ययन किया जा सकता है।
6. उत्पादन के विभिन्न स्तरों पर लागतों व विक्रय की राशि पूर्व निश्चित की जा सकती है।
7. उत्पाद मिश्रण (Product Mix) में परिवर्तन का लाभ पर प्रभाव अध्ययन करके लाभ को अधिकतम किया जा सकता है।

12.5 सम विच्छेद विश्लेषण की सीमाएँ (Limitations of Break-even Analysis)

यद्यपि सम विच्छेद विश्लेषण प्रबन्धकों के लिए एक अमूल्य देन है, तथापि इसकी कुछ सीमाएँ प्रमुख रूप से सम विच्छेद विश्लेषण की अवास्तविक मान्यताओं के कारण हैं। दूसरे शब्दों में, सम विच्छेद विश्लेषण जिन मान्यताओं पर आधारित है वे व्यवहार में पूर्णत: सही नहीं होती। सम विच्छेद विश्लेषण की सीमाओं का संक्षेप में वर्णन यहाँ किया गया है:

1. सम विच्छेद विश्लेषण इस मान्यता पर आधारित है कि सभी लागतों को स्थाई तथा परिवर्तनशील में वर्गीकृत किया जा सकता है। परन्तु व्यवहार में पूर्णत: सही नहीं होती। कुछ लागतें ऐसी भी होती हैं जो उत्पादन की मात्रा के सन्दर्भ में न तो पूर्णत: स्थायी होती हैं और न ही पूर्णत: परिवर्तनशील।

2. यह मान्यता कि स्थायी लागतें सदा स्थिर रहती हैं, परन्तु व्यवहार में स्थायी लागतें सदा पूर्णत: स्थिर नहीं रहती तथा उत्पादन के स्तर में परिवर्तन होने से उनमें भी परिवर्तन होता हैं।
3. परिवर्तनशील लागतें भी उत्पादन की मात्रा में परिवर्तन से सदैव उसी अनुपात में परिवर्तित नहीं होती है। यह अनुपात कई बार घट जाता है और कई बार बढ़ जाता है। दूसरे शब्दों में, वास्तव में, प्रति इकाई परिवर्तन लागत सदा एक समान नहीं रहती।
4. सम विच्छेद विश्लेषण इस मान्यता पर आधारित है कि प्रति इकाई विक्रय मूल्यों में परिवर्तन नहीं होता। किन्तु व्यवहार में, उत्पादन में वृद्धि होने पर विक्रय मूल्य कम कर दिए जाते हैं ताकि कुल विक्रय आय में वृद्धि की जा सके। वैसे भी, विक्रय मूल्यों में बढ़ोतरी व गिरावट की सम्भावनाएँ अनेक होती है।
5. सम विच्छेद विश्लेषण की यह मान्यता कि कम्पनी एक ही वस्तु का उत्पादन करती है अथवा एक से अधिक वस्तु की स्थिति में वस्तु मिश्रण में परिवर्तन नहीं होता, वास्तव में नहीं पाई जाती।
6. सम विच्छेद विश्लेषण में यह मान लिया जाता है कि उत्पादन तथा विक्रय समकालिक हैं। परन्तु वास्तव में सदा ऐसा नहीं होता क्योंकि विक्रय की मात्रा उत्पादन से कम हो सकती है। ऐसी स्थिति में निर्मित माल का स्टॉक होता है जिससे आय प्रभावित होती है।
7. व्यवसाय में लगी हुई पूँजी की राशि लाभ विश्लेषण में एक महत्वपूर्ण घटक है। परन्तु सम विच्छेद विश्लेषण में इस घटक की पूर्ण रूप से अवहेलना की जाती है।

उपरोक्त सीमाओं के बावजूद, सम विच्छेद विश्लेषण प्रबन्धकों के लिए एक उपयोगी उपकरण हैं'। परन्तु इसका प्रयोग करते समय इसकी सीमाओं के प्रति जागरूक रहना आवश्यक है ताकि इस विधि का पूर्ण उपयोग किया जा सके।

12.8 सम विच्छेद बिन्दु की गणना

इसकी गणना की दो तकनीकें हैं :-

(1) **समीकरण तकनीक (Equation Technique)** - इसमें निम्नलिखित समीकरणों का प्रयोग किया जाता है -

(A) B.E.P. in unit : PQ = F + VQ

When P = Selling Price per unit

Q = Quantity of goods sold

F = Fixed Costs

(B) B.E.P.in value : Sales revenue at Break even Point

= Fixed Costs + Total Variable Cost

OR S= F+V

(2) **अंशदान तकनीक (Contribution Technique)** - इस तकनीक में विभिन्न सूत्रों का प्रयोग करके सम विच्छेद बिन्दु ज्ञात किया जाता है। इसके लिए प्रमुख सूत्र निम्नलिखित है :-

(A) B.E.P.in units = $\frac{Fixed\ cost}{Selling\ price\ per\ unit - variable\ cost\ per\ unit}$ or $\frac{F}{p-V}$

Or $\frac{Fixed\ cost}{Contribution\ per\ unit}$ or $\frac{F}{C}$

(B) B.E.P.in value - इसके लिये निम्नलिखित में से किसी भी सूत्र का प्रयोग किया जा सकता है -

(1) जब कुल परिवर्तनशील व्यय और कुल विक्रय राशि के अंक दिये हों -

$$B.E.P. = \frac{F\ X\ S}{S-V}\ or\ \frac{F}{1-V/S}$$

When, F = Fixed cost

V = Total Variable Cost

S = Total Sales Revenue

(2) जब प्रति इकाई विक्रय मूल्य और प्रति इकाई परिवर्तनशील व्यय के अंक दिये हों -

$$B.E.P. = \frac{F\ X\ P}{P-V}\ or\ \frac{F}{1-V/P}$$

When F = Fixed cost

V =Total Variable Cost

P = Selling Price per Unit

(3) जब अंशदान प्रतिशत (Contribution percentage) या लाभ-मात्रा अनुपात (P/V Ratio) दिया हो ।

B.E.P. = $\frac{f}{Contribution\ percentage\ or\ P/V\ Ratio}$

When , Contribution Percentage or P/V Ratio =

$$\frac{Total\ \text{Sales Revenue} - \text{Total Variable Costs}}{Total\ Sale\ Revenue} \times 100$$

नोट- सम-विच्छेद बिन्दु को रेखाचित्र से भी ज्ञात किया जा सकता है। इसके लिये सम-विच्छेद चार्ट और लाभ-मात्रा ग्राफ तैयार किये जाते है। सम-विच्छेद बिन्दु को पूर्णक्षमता के रूप में भी व्यक्त किया जाता है। सूत्र रूप में :

Break-even point as percentage of full capacity =

$$\frac{\text{B. E. Sales Volume}}{\text{Normal Sales Volume}} \times 100$$

12.7 लाभ कारकों में परिवर्तनों का प्रभाव

(1) **विक्रय मूल्य में परिवर्तन** - इससे अंशदान सीमा और लाभ-मात्रा अनुपात प्रभावित होते हैं जिससे सम-विच्छेद बिन्दु और लाभ-शैलियॉ परिवर्तित होते हैं। विक्रय मूल्य के परितर्वन दो प्रकार के हो सकते है-

(अ) **विक्रय मूल्य में वृद्धि** - विक्रय मूल्य के बढ़ा देने से अंशदान (और लाभ-मात्रा अनुपात) बढ़ जाता है और स्थिर लागतों की वसूली की दर तेज हो जाती है। इसके परिणामस्वरूप सम-विच्छेद बिन्दु गिर जाता है, सुरक्षा सीमा बढ़ जाती है और सम-विच्छेद बिन्दु के बाद लाभ अधिक हो जाते है तथा इस बिन्दु के नीचे हानियाँ कम हो जाती है।

(ब) **विक्रय मूल्य में कमी** - इससे अंशदान (और लाभ-मात्रा अनुपात) कम हो जाता है और स्थिर लागतों की वसूली की दर धीमी पड़ जाती है। इसके फलस्वरूप सम-विच्छेद बिन्दु ऊपर चढ़ जाता. है, सुरक्षा-सीमा घट जाती है तथा इस बिन्दु के पश्चात् लाभ कम हो जाते हैं तथा बिन्दु के नीचे हानियाँ बढ़ जाती है।

नोट - विक्रय मूल्य में परिवर्तन के कारण व्यवसाय के लाभों और हानियों में प्रतिशत परिवर्तन विक्रय-मूल्य की तुलना में अधिक होता है।

(2) **परिवर्तनशील लागतों में परिवर्तन** - विक्रय मूल्य में परिवर्तन की तरह इससे भी अंशदान सीमा, सम-विच्छेद बिन्दु और लाभ-शैलियाँ प्रभावित होती हैं। यह परिवर्तन दो प्रकार का हो सकता है -

(अ) **परिवर्तनशील लागतों में वृद्धि** - इसका प्रभाव विक्रय मूल्य में कमी जैसा ही होता है।

(ब) **परिवर्तनशील लागतों में कमी** - इसका प्रभाव विक्रय मूल्य में वृद्धि जैसा ही जोता है।

नोट - परिवर्तनशील लागतों में परिवर्तन का लाभों पर प्रभाव इन लागतों में परिवर्तन के अनुपात में नहीं होगा।

(3) **स्थिर लागतों में परिवर्तन** - स्थिर लागतों में परिवर्तन हो जाने पर अंशदान और लाभ-मात्रा अनुपात प्रभावित नहीं होते। अत: स्थिर लागतों की वसूली की दर पूर्ववत् ही रहती है। ये परिवर्तन दो प्रकार के हो सकते है -

(अ) **स्थिर लागतों में वृद्धि** - इससे सम-विच्छेद बिन्दु ऊँचा हो जाता है तथा सुरक्षा-सीमा घट जाती है। सम-विच्छेद बिन्दु के पश्चात् लाभ स्थिर व्ययों में बढ़ी हुई राशि से घट जाते हैं और इस बिन्दु के नीचे हानियाँ स्थिर व्ययों में बढ़ी हुई राशि से बढ़ जाती है।

(ब) **स्थिर लागतों में कमी** - इससे सम-विच्छेद बिन्दु नीचा हो जाता है तथा सुरक्षा सीमा बढ जाती है। सम-विच्छेद बिन्दु के पश्चात् लाभ स्थिर लागतों से बढ़ी हुई राशि से बढ़ जाते हैं और इस बिन्दु के नीचे हानियाँ स्थिर लागतों में बढ़ी हुई राशि से घट जाती है।

विक्रय मूल्य और लागतों में एक साथ परिवर्तन में बहुत से संयोग हो सकते हैं। यदि ये परिवर्तन एक ही दिशा में होते हैं तो इसका अंशदान, सम-विच्छेद बिन्दु और लाभ शैली पर प्रभाव बहुत ही अमहत्त्वपूर्ण होगा क्योंकि एक कारक में परिवर्तन का प्रभाव दूसरे कारक में परिवर्तन से मत: ही लोप हो जाता है। फिर भी इससे लाभ-मात्रा अनुपात में परिवर्तन हो जाता है दूसरी ओर यदि विक्रय मूल्य और लागतों में परिवर्तन एक दूसरे के विपरीत दिशा में होते हैं तो इसका अंशदान, लाभ-मात्रा अनुपात, सम-विच्छेद बिन्दु और लाभ-शैली पर बहुत ही गहरा प्रभाव पड़ेगा।

(4) **मात्रा में परिवर्तन** - मात्रा में परिवर्तन का अंशदान और सम-विच्छेद बिन्दु पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। विक्रय मात्रा में वृद्धि से सुरक्षा-सीमा बढ़ जाती है तथा इसमें कमी से सुरक्षा सीमा घट जाती है। इसी तरह मात्रा में वृद्धि से लाभ प्रति इकाई अंशदान की दर से बढ़ जाते हैं और मात्रा में कमी से लाभ घट जाते हैं।

(5) **विक्रय मिश्रण में परिवर्तन** - विक्रय मिश्रण में परिवर्तन हो जाने से लाभ-मात्रा अनुपात में परिवर्तन हो जाता है। इससे सम-विच्छेद बिन्दु और लाभ-शैली भी बदल जाते हैं। विक्रय-मिश्रण के प्रतिकूल परिवर्तन (अर्थात् उच्च लाभ-मात्रा अनुपात वाली वस्तु के विक्रय में वृद्धि) से लाभ कम हो जाते हैं और सम-विच्छेद बिन्दु ऊपर चढ़ जाता है। इसके विपरीत विक्रय मिश्रण के अनुकूल परिवर्तन से लाभ बढ़ते हैं और सम-विच्छेद बिन्दु गिर जाता है।

12.8 सम-विच्छेद विश्लेषण के प्रयोग (Uses or Applications of B.E. Analysis)

सम-विच्छेद विश्लेषण प्रबन्ध के समक्ष व्यावसायिक संस्था के लाभों का सूक्ष्मदर्शी चित्र प्रस्तुत करता है। यह संस्था में आर्थिक शक्ति और दुर्बलताओं के क्षेत्रों को प्रकाशमय ही नहीं करता है अपितु यह उन युक्तियों को भी प्रकाश में लाता है जिनसे व्यवसाय की लाभप्रदता बढ़ सकती है। सतत् परिवर्तन आधुनिक व्यापारिक जीवन की विशेषता है। सम-विच्छेद विश्लेषण द्वारा प्रबन्ध के लिये व्यावसायिक दशाओं के सम्भावित परिवर्तनों पर (जैसे, विक्रय, लागत व्यवहार आदि में परिवर्तन) संस्था की लाभार्जन शक्ति की जाँच करना सम्मव होता है। इस विश्लेषण के विशिष्ट प्रबन्धकीय प्रयोग निम्नलिखित हैं -

(1) **विभिन्न विक्रय मात्राओं पर लाभ की गणना** (Calculation of profit for different sales volumes) - निर्दिष्ट विक्रय राशि में से परिवर्तनशील और स्थिर लागतों के घटाने पर लाभ की मात्रा ज्ञात की जाती है -

सूत्र रूप में.

(1) pt. = S-(V+F)

(2) Pt. =S (1-V/P)-F

Or Pt. = S(1-V/S)-f

Or Pt. = s (P/V Ratio)-F

(3) Pt. = Sale Units (P-V)-F

(2) **इच्छित लाभ प्राप्त करने के लिये आवश्यक विक्रय मात्रा की गणना** (Calculation of sales volume to produce desired profit) - सम-विच्छेद विश्लेषण से प्रबन्ध यह ज्ञात कर सकता है कि अमुख लाभ प्राप्त करने के लिये कितना विक्रय करना आवश्यक है। यह 'रूपया' व 'इकाई' दोनों ही रूपों में ज्ञात किया जा सकता है। सूत्र रूप में : ।

(1) S(in units) $= \frac{F + Pt.}{P - V}$ or $\frac{F + Pt.}{C}$

(2) S(in Rs.) = $\frac{F + Pt.}{1 - V/P}$ or $\frac{F + Pt.}{1 - V/S}$ or $\frac{F + Pt.}{P/V\ Ratio}$

(3) **एक निश्चित सम-विच्छेद बिन्दु के लिये प्रति इकाई विक्रय मूल्य की गणना** (Calculation of Selling price per unit for a particular Break-even point) - सूत्र :

Contribution per unit = $\frac{fixed\ \ Cost}{Break\ \ Even\ Po\text{int}\ in\ units}$

And Selling Price per unit Contribution per unit + Variable Cost per unit

Hance, P = $\frac{f}{B.E.P.}\ +V$

(4) **प्रस्तावित व्ययों को पूरा करने के लिये आवश्यक विक्रय मात्रा की गणना** (Calculation of volume required to meet proposed expenditure) - विक्रय प्रबन्धक विक्रय व्ययों में वृद्धि कर विक्रय की योजनायें तैयार करते रहते हैं। ऐसी स्थिति में इन व्ययों के लिये अनुमति देने से पूर्व सर्वोच्च प्रबन्ध यह ज्ञात करना चाहेगा कि प्रस्तावित विक्रय व्ययों में वृद्धि को पूरा करने के लिए विक्रय मात्रा में कितनी वृद्धि आवश्यक है। सम-विच्छेद विश्लेषण यह समंक प्रदान करने में समर्थ है। सूत्र रूप में.

Additional Volume Required = $\frac{\text{Pr}oposed\ \ Expenditure}{Contribution\ \ per\ units}$

(In units)

Or $\frac{P.E.}{1 - V/S}$ or $\frac{P.E.}{1 - p/V}$

(5) **सुरक्षा-सीमा का निर्धारण** (Determination of Margin of Safety) - सम-विच्छेद विश्लेषण प्रबन्ध को सुरक्षा सीमा के अंक भी प्रदान करता है। सुरक्षा सीमा व्यवसाय की सुदृढ़ता का माप होती है। कुल विक्रय और सम-विच्छेद बिन्दु पर स्थित विक्रय का अन्तर सुरक्षा सीमा कहलाता है। सूत्र रूप में

(1) Margin of Safety (or M.S.)= Total Sales - B.E. Sales

(2) M.S. = Profit÷ $\frac{Contribution}{Sales}$ or $\frac{Profit}{P.V.Ratio}$

इसे कुल विक्रय के प्रतिशत के रूप में भी व्यक्त किया जाता है।

सूत्र M.S. = $\frac{Sales - B.E.Sales}{Sales} \times 100$

(6) **विक्रय मूल्य की कमी को पूरा करने के लिए आवश्यक विक्रय मात्रा की गणना** (Calculation of Sales volume required to offset price reduction) प्रबन्धक के समक्ष बहुधा यह समस्या आती है कि मूल्य में कटौती की जाय या नहीं। विक्रय मूल्य में कमी करने से प्रति इकाई अंशदान घट जाता है। अत: संस्था में लाभों को वर्तमान स्तर पर बनाये रखने के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि विक्रय मात्रा में वृद्धि की जाय। यदि अन्य बातें समान रहती है तो सम-विच्छेद विश्लेषण द्वारा विक्रय मात्रा का यह अंक ज्ञात किया जा सकता है जिस पर प्रबन्ध लाभों के वर्तमान स्तर को बनाये रख सकता है। अपने अनुभव और ज्ञान के आधार पर विक्रय प्रबन्धक यह निश्चित कर सकता है कि नये मूल्यों पर आवश्यक विक्रय सम्भव है या नहीं। नई विक्रय मात्रा के ज्ञात करने के लिये निम्न सूत्रों का प्रयोग किया जा सकता

(1) In Units : $Q_n = \frac{F + Pt.}{P_n - V}$ Where Q_n=New Volume of sale

and p_n = New Selling Price

(2) In Value : S= $\frac{F + Pt.}{1 - V/P_n}$

उपर्युक्त सूत्रों से यह भी ज्ञात किया जा सकता है कि मूल्य वृद्धि की दशा में विक्रय मात्रा में कितनी कमी पर लाभों का वर्तमान स्तर बनाये रखा जा सकता है।

सम-विच्छेद विश्लेषण से मूल्य कमी को पूरा करने के लिये विक्रय मात्रा में आवश्यक वृद्धि का प्रतिशत भी ज्ञात किया जा सकता है। सूत्र रूप में -

% increase in sales volume units = $\frac{Decrease\ in\ per\ unit\ contribution}{New\ per\ unit\ contribution}$

(7) **परिवर्तनशील और स्थिर लागतों में परिवर्तन के प्रभाव को दूर करने के लिये विक्रय मात्रा या विक्रय मूल्य में परिवर्तन** (Chang in sale volume or selling price to offset the impact of change in variable costs and fixed costs) :

(अ) **यदि परिवर्तनशील लागतों में परिवर्तन हो** - इससे अंशदान सीमा में परिवर्तन आ जाता है। अत: लाभों को वर्तमान स्तर पर बनाये रखने के लिये विक्रय मात्रा अथवा विक्रय मूल्य में परिवर्तन करना होगा। इनकी गणना के लिये निम्नलिखित सूत्रों का प्रयोग किया जाता है- ।

(i) The new quantity × (or Q_n) $=\frac{F+Pt.}{1-V_n}$

(ii) The new selling price (or P_n)= P+ (V_n-V)

(ब) **यदि स्थिर लागतों में परिवर्तन हो** - इससे सम-विच्छेद बिन्दु और लाभ की राशि में परिवर्तन हो जाता है। अत: लाभों को वर्तमान स्तर पर बनाये रखने के लिए विक्रय मात्रा या विक्रय मूल्य पर परिवर्तन करना होगा। सूत्र रूप में: ज़, - ।

(i) The new quantity $(orQ_n)=Q+\frac{F_n-F}{P-V}$

(ii) The new selling price $(orP_n)=P+\frac{F_n-F}{Q}$

(8) **लाभ कारकों में परिवर्तन के प्रभाव का मापन** (Measuring the effect of changes in profit factors) सम-विच्छेद बिन्दु विश्लेषण से लाभ कारकों में परिवर्तनों (विक्रय मूल्य में परिवर्तन, परिवर्तनशील व स्थिर लागतों में परिवर्तन, विक्रय मूल्य व लागतों में एक साथ परिवर्तन, विक्रय की मात्रा में परिवर्तन और विक्रय मिश्रण में परिवर्तन) का लाभ मात्रा अनुपात, अंशदान सीमा, सम विच्छेद बिन्दु और सुरक्षा सीमा पर पड़ने वाले प्रभावों को मापा जा सकता

(9) **सर्वाधिक लाभप्रद विकल्पों का चुनना** (Choosing the most profitable alternative) - सम विच्छेद विश्लेषण युक्ति का प्रयोग विभिन्न वैकल्पिक प्रयोगों में से (जैसे दो मशीन, दो विधियाँ आदि) सबसे लाभदायक या मितव्ययी प्रयोग के चुनाव में भी किया जा सकता है। सूत्र रूप में :

B.E.P of More expensive alternative = $\frac{F-PI}{VI-V}$

When F = Fixed costs of more Expensive alternative.

FI = Fixed Costs of less expensive alternative

VI = Variable cost of alternative having lesser fixed Costs.

V = Variable Cost of alternative having higher fixed costs.

सम विच्छेद बिन्दु से अधिक विक्रय का उत्पादन के लिये अधिक स्थिर व्यय वाला विकल्प लाभदायक या मितव्ययी रहता है। इस बिन्दु से कम उत्पादन या विक्रय की दशा में कम स्थिर व्यय वाला विकल्प चुना जाएगा। इस युक्ति का प्रयोग तभी किया जाता है जबकि:

(1) विकल्पों के स्थिर व्यय असमान हों, और

(2) अधिक स्थिर व्यय वाले विकल्प की परिवर्तनशील लागत कम स्थिर व्यय वाले विकल्प की परिवर्तनशील लागत से कम हो अन्यथा विश्लेषण की आवश्यकता ही नहीं होगी।

(10) **अनुकूलतम विक्रय मिश्रण का निर्धारण** (determining the optimum sales mix) - एक से अधिक प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन करने वाली संस्थाओं में प्रबन्ध का उद्देश्य एक ऐसे विक्रय-मिश्रण को निश्चित करना होता है जिस पर संस्था के लाभ अधिकतम

हों। इसमें सम-विच्छेद विश्लेषण पर्याप्त सहायक होता है। आधुनिक समय में इस समस्या के हल के लिये Linear Programming की तकनीक का प्रयोग बढ़ता जा रहा है।

(11) **क्षमता परिवर्तन पर निर्णय** (Deciding on change in capacity)- प्रायः प्रबन्ध के समक्ष यह समस्या आती है कि वस्तु की बढ़ी हुई माँग को पूरा करने के लिये उत्पादन क्षमता में विस्तार किया जाय या नहीं। यह तो सही है कि क्षमता विस्तार से संस्था की लाभ-सम्भाव्यता (Profit Potentiality) बढ़ जाती है परन्तु यह भी नहीं है कि इससे संस्था के स्थिर व्यय भी बढ़ जाते हैं जिससे सम विच्छेद बिन्दु ऊँचा हो जाता है। ऐसे मामले पर निर्णय लेने से पूर्व प्रबन्ध को समस्या की जटिलताओं की सूक्ष्मता से जाँच करनी चाहिये। सम विच्छेद विश्लेषण इस कार्य में प्रबन्ध के लिये बहुत सहायक होता है।

12.9 सुरक्षा सीमा का अर्थ (Meaning of Margin of Safety)

Charles T. Horngren, के शब्दों में "बजटीय या वास्तविक विक्रय का सम विच्छेद कुल विक्रय मात्रा पर आधिक्य सुरक्षा सीमा कहलाता है।" दूसरे शब्दों में कुल विक्रय और सम विच्छेद बिन्दु पर स्थित विक्रय का अन्तर सीमा-सुरक्षा होता है।

सूत्र रूप में -

Margin of Safety = Sales Volume - Break Even Sales Volume

सुरक्षा सीमा को कुल विक्रय के प्रतिशत के रूप में भी व्यक्त किया जाता है।

सूत्र रूप में.

$$\text{Margin of Safety} = \frac{Sales - Break\ Even\ Sales}{Sales} \times 100$$

लाभ और लाभ मात्रा अनुपात के ज्ञात होने पर भी सुरक्षा सीमा ज्ञात की जा सकती है।

सूत्र के रूप में.

$$\text{Margin of Safety} = \frac{\text{Pr}\,ofit}{P/V\ Ratio}$$

सुरक्षा सीमा को सम विच्छेद चार्ट और लाभ-मात्रा ग्राफ पर भी दर्शाया जा सकता है।

12.10 सुरक्षा सीमा का महत्व (Importance of Margin of Safety)

सुरक्षा सीमा का आकार व्यापार की शक्ति का माप करने के लिए एक अत्यधिक महत्त्वपूर्ण सूचक है। यह आकार जितना अधिक होगा, व्यवसाय में हानि की सम्भावनायें उतनी ही दूर होंगी अर्थात् यदि सुरक्षा सीमा पर्याप्त है तो इसका आशय यह होता है कि विक्रय में पर्याप्त कमी होने पर भी व्यवसाय में लाभ बने रहेंगे। दूसरी ओर यदि सुरक्षा सीमा का आकार बहुत कम है तो विक्रय में थोड़ी सी कमी होने पर ही व्यवसाय में हानि होने लगेगी। सुरक्षा सीमा कम होने का सामान्य कारण स्थिर

व्ययों की अधिकता हैं। अत: ऐसे व्यवसायों में क्रियाशीलता का उच्च स्तर आवश्यक होता है।

सामान्यतया जिस व्यवसाय में सुरक्षा सीमा जितनी अधिक होगी, वह व्यवसाय उतना ही अधिक सुदृढ़ माना जाता है और व्यवसाय में लाभार्जन के अवसर भी उतने ही अधिक होते हैं। यदि किसी व्यवसाय की सुरक्षा सीमा में कमी होती जा रही है, तो व्यवसाय के लिए यह एक चिन्ताजनक विषय हो जाता है। यदि सुरक्षा सीमा असंतोषजनक है तो इसे सुधारने के लिए निम्नलिखित उपाय किये जा सकते हैं -

(1) विक्रय मूल्य में वृद्धि करना।

(2) स्थिर लागतों में कभी करना।

(3) परिवर्तनशील लागतों में कमी करना।

(4) उत्पादन मात्रा में वृद्धि करना।

(5) अलाभकारी वस्तुओं का उत्पादन बन्द करके केवल लाभकारी वस्तुओं के उत्पादन पर ही ध्यान केन्द्रित करना।

12.11 लाभ-मात्रा अनुपात (P/V Ratio)

लाभ मात्रा अनुपात व्यवसाय की लाभप्रदता का सूचक होता है। लाभ मात्रा अनुपात शब्द का प्रयोग कुछ भ्रामक है क्योंकि यह अनुपात लाभों को विक्रय से भाग देकर नहीं ज्ञात किया जाता हैं और न इसे लाभ-हानि का अनुमान लगाने के लिए विक्रय पर क्रियाशील ही किया जा सकता है। वास्तव में यह अनुपात लाभों और विक्रय मात्रा के बीच सम्बन्ध स्थिर लागतों की वसूली तथा सम विच्छेद बिन्दु के प्राप्त करने के पश्चात् ही करता है। यह प्रतिशत के रूप में व्यक्त किया जाता है।

सरल शब्दों में लाभ मात्रा अनुपात अंशदान और विक्रय राशि के बीच प्रतिशत सम्बन्ध प्रदर्शित करता है। यह स्थिर व्ययों को पूरा करने और लाभ प्राप्ति के लिये उपलब्ध विक्रय राशि का अनुपात होता है। वास्तव में लाभ-मात्रा अनुपात के स्थान पर ' अंशदान ' विक्रय अनुपात ' (Contribution/Sales Ratio) शब्द का प्रयोग अधिक संगत लगता है। इसको ज्ञात करने के लिये निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है-

$$\text{P/V Ratio} = \frac{Sales - TotalVariableCosts}{sales} \times 100$$

$$\text{Or } \frac{S-V}{S} \times 100 \text{ or } \frac{C}{S} \times 100$$

12.12 लाभ-मात्रा अनुपात के प्रयोग (Applications of P/V Ratio)

यह अनुपात सम विच्छेद विश्लेषण में बहुत सहायक होता है। इसकी सहायता से निम्नलिखित गणना की जा सकती है -

(1) सम विच्छेद बिन्दु का निर्धारण (Determination of B.E.P) -

$$\text{B.E.P} = \frac{F}{P/VRatio}$$

(2) अंशदान का निर्धारण (Determination of Contribution) -

Contribution = S$\times$P/V Ratio

(3) सुरक्षा सीमा का निर्धारण (Determination of Margin of Safety) -

Margin of Safety = $\frac{Pt.}{P/VRatio}$

(4) विक्रय की किसी भी मात्रा पर परिवर्तनशील लागतों का निर्धारण (Determination of variable costs for any volume of sales) -

Variable Costs = S (1- P/V Ratio)

(5) लाभ-हानि का निर्धारण (Determination of profit and loss) -

(i) Profits = (Sales $\times$P/V Ration) - Fixed Cost

(ii) Profits = P/V Ratio (Sales - Break - even Sales

Or P/V Ratio $\times$ Margin of Safety

(6) व्ययों में वृद्धि को पूरा करने के लिए आवश्यक विक्रय वृद्धि का निर्धारण (Determination of increase in sale to meet increase in expenditure)-

Additional Sales Required = $\frac{IncreasedAmount}{P/VRatio}$

(7) स्थिर व्ययों के बढ़ने या घटने से सम विच्छेद बिन्दु में परिवर्तन की गणना (Calculation of change in the break- aven point, if non- variable cost are increased or decreased) -

Change in B.E.P. = $\frac{ChangeinNon-VariableCosts}{P/VRatio}$

यदि स्थिर लागतें बढ़ती हैं तो सम विच्छेद बिन्दु ऊपर चढ़ जाता है और यदि स्थिर लागतें घटती हैं तो सम विच्छेद बिन्दु गिर जाता है।

(8) मूल्यों में कमी को पूरा करने के लिये आवश्यक विक्रय मात्रा का निर्धारण (Determination of Sale required to offset price reduction)-

New Sales Volume = $\frac{F+Pt.}{NewP/VRatio}$

(9) इच्छित लाभ की प्राप्ति के लिए विक्रय मात्रा का निर्धारण (Determination of Sales volume to produce desired profit) -

सूत्र

S = $\frac{F+Pt.}{P/VRatio}$

(10) लाभ-मात्रा अनुपात का प्रयोग प्रत्येक कारक की आपस में तुलना हेतु किया जा सकता है। तुलना में कुछ प्रमुख क्षेत्र निम्नलिखित हैं -

(अ) विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के लाभ-मात्रा अनुपात की तुलना।

(ब) विभिन्न विक्रय क्षेत्रों के लाभ-मात्रा अनुपात की तुलना।

(स) विभिन्न विक्रय पद्धतियों (जैसे थोक और खुदरा विक्रय पद्धतियाँ) के लाभ-मात्रा अनुपात की तुलना।

(द) विभिन्न कारखानों के लाभ-मात्रा अनुपात कीं तुलना।

(इ) विभिन्न कम्पनियों के लाभ-मात्रा अनुपात की तुलना।

12.13 लाभ-मात्रा अनुपात में सुधार के उपाय

लाभ-मात्रा अनुपात में वृद्धि सदैव अच्छी होती है। अत: प्रत्येक कम्पनी का उद्देश्य इस अनुपात को बनाये रखना या सम्मव हो तो इसमें वृद्धि करना होता है। यदि किसी कम्पनी में लाभ-मात्रा अनुपात नीचा है तो उसमें सुधार के लिये निम्नलिखित उपाय किये जा सकते हैं-

(1) विक्रय मूल्य में वृद्धि करना।

(2) परिवर्तनशील लागतों में कमी करना।

(3) विक्रय मिश्रण में परिवर्तन करना। जिन वस्तुओं पर लाभ-मात्रा अनुपात असंतोषजनक हो, उनके स्थान पर ऐसी वस्तुओं का विक्रय बढ़ाया जाय जिनका लाभ-मात्रा अनुपात संतोषजनक हो।

12.14 सम विच्छेद चार्ट (Break - even Chart)

ऐसा चार्ट जो उत्पादन का वह बिन्दु दर्शाता है जिस पर न लाभ होगा और न हानि अर्थात् सम विच्छेद बिन्दु प्रदर्शित करने वाला चार्ट सम विच्छेद चार्ट कहलाता है। यह चार्ट उत्पादन के विभिन्न स्तरों पर लाभ/हानि की स्थिति भी स्वाभाविक रूप से दर्शाता है। निम्न सारणी की सहायता से ऐसा चार्ट बनाया जा सकता है :

Output	Direct Material Rs.	Direct Labor Rs.	Variable Over-Heads Rs.	Fixed Over-Heads Rs.	Total Cost Rs.	Sales Rs.	Profit Rs.
1,000	20,000	10,000	20,000	1,20,000	1,70,000	1,00,000	-70,000
2,000	40,000	20,000	40,000	1,20,000	2,20,000	2,00,000	-20,000
3,000	60,000	30,000	60,000	1,20,000	2,70,000	3,00,000	30,000
4,000	80,000	40,000	80,000	1,20,000	3,20,000	4,00,000	80,000

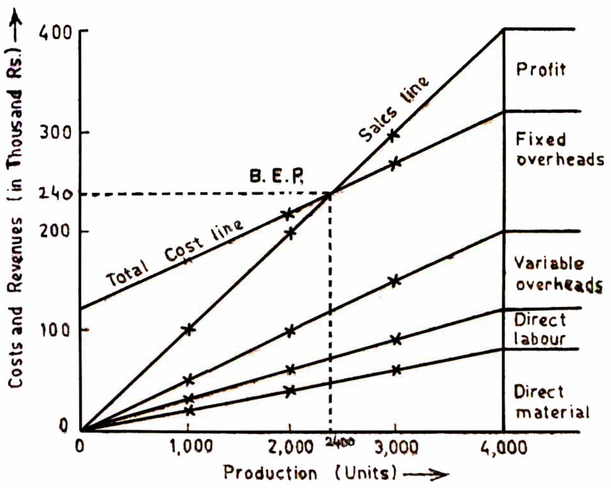

उक्त चार्ट से यह स्पष्ट हो जाता है कि यदि फर्म द्वारा 2400 इकाईयों का उत्पादन किया जावे तो फर्म BEP की स्थिति (No profit No Loss) में होगी -

Output (In Unit)	Direct Material @20/-p.u. Rs.	Direct Labour @10/p.u. Rs.	Variable Overheads @20/-p.u. Rs.	Fixed Overheads Rs.	Total Cost Rs.	Sales @100/-p.u. Rs.	Profit or Loss
2400	48,000	24,000	48,000	1,20,000	2,40,000	2,40,000	No profit No loss

इस प्रकार उत्पादन के उक्त स्तर से जितनी अधिक बिक्री होगी, उतना ही अधिक फर्म को लाभ होगा।

12.15 उदाहरण (Illustration)

उदाहरण (Illustration) 1

निम्न समंक कवि बन्धु से सम्बन्धित 31 मार्च, 2009 को समाप्त वर्ष के लिए है.

The following data relate to Kavi Bros. for the years ended 31st March 2009

Unit Selling Price of a product	Rs.10
Unit Manufacturing cost (Variable)	Rs.5.50
Unit selling Cost (fixed)	Rs. 1.50
Factory Overhead (fixed)	Rs. 2,70,000
Sales Overheard (fixed)	Rs. 1,26,000

(i) सम विच्छेद हेतु कितनी बिक्री की मात्रा आवश्यक है? (1।) 30,000 रू. का लाभ अर्जित करने हेतु कितनी विक्रय मात्रा चाहिए? (ii) लागत पर 25% लाभ अर्जित करने हेतु कितनी विक्रय मात्रा आवश्यक है? (1v) 20 लाख रू. की बिक्री पर कम्पनी कितना लाभ अर्जित करेगी? (v) 1,20,000 इकाइयों पर समविच्छेद बिन्दु उपलब्ध करने हेतु प्रति इकाई विक्रय मूल्य क्या होना चाहिए?

(i) How many unit are needed to the sold to break even? (ii) how much sales volume required to earn a profit of Rs. 30,000 (iii) how may units are to be sold to earn a profit of 25% on cost ? (iv) how much profit is earned at Rs. 20 lakh sales ; (v) what should be the selling price per unit to attain break even point at 1,20,000 units?

हल (Solution) :

Unit S.p - unit V.C. C per unit

Rs. 10-(Rs.5.50 +Rs. 1.50 = Rs.3 per unit

(i) B.E.P. (units) = $\frac{F}{C\ per\ unit}$ or $\frac{Rs.3,96,000}{3}$ = 1,32,000 units

(ii) Sales needed in units = (F+desired profit ÷ C per unit

$\frac{(3,96,000+30,000)}{Rs.3}$ or $\frac{4,26,000}{Rs.3}$ = 1,42,000 units

(iii) लागत पर 25% लाभ का आशय विक्रय पर 20%' लाभ से होना अर्थात् यदि लागत मूल्य 100 रू. है तो लाभ 25 रू. तथा विक्रय मूल्य 125 रू. होगा। इसी प्रकार विक्रय मूल्य 1 है तो लाभ $\frac{25}{125}$ और यदि विक्रय मूल्य 100 रू. हो तो लाभ = $\frac{25}{125}\times$ 100=20% होगा। माना कि विक्रय मूल्य पर 20% लाभ अर्जित करने हेतु X इकाईयाँ विक्रय करनी होगी अत:

Sales = (Rs10×), profit = (20%of 10x) or Rs. 2X, Variable Cost =7x

Sale = variable cost + fixed cost + profit

Or 10x =7x + 3,96,000+2x

Or x = 3,96,000 units

इस प्रकार विक्रय पर 20% लाभ अर्जित करने हेतु कम्पनी को 3,96,000 इकाइयाँ बेचनी होगी।

(iv) Profit when sales are 20,00,000

P/V = $\frac{c}{s}\times 100$ or $\frac{3}{10}\times 100$ or 30%

P= (S × P/V) - F or P = (20,00,000 x 30% - 3,96000

Or rs 6,00,000-3,96,000= Rs. 2,04,000

(v) Selling price per unit to attain B.E.P. at 1,20,000 units:

S.P= $\frac{Fixed\ cost}{B.E.P.}$ + variables cost per unit

= $\frac{3,96,000}{1,20,000}$ +Rs. 7 or 3.30+ 7 = Rs 10.30

इस प्रकार समविच्छेद बिन्दु 1,20,000 इकाइयों पर उपलब्ध करने हेतु विक्रय मूल्य 10.30 रू. प्रति इकाई निर्धारित किया जाना चाहिए।

उदाहरण (Illustration) 2

विक्रय पर परिवर्तनशील लागतों का अनुपात 60 प्रतिशत है। लाभालाभ बिन्दु 80 प्रतिशत विक्रय पर उपलब्ध होता है। स्थायी लागतें 2,00,000 रू. है। लाभालाभ बिन्दु पर विक्रय तथा विक्रय क्षमता ज्ञात कीजिए। विक्रय की 9०% तथा 100% क्षमता पर लाभ ज्ञात कीजिए।

The ratio of variable cost to sales is 60%. The break even point occurs at 80% of sales. Fixed costs are Rs. 2,00,000. Find Sales capacity and the sales at Break even point. Also determine profit at 90% and 100% sales capacity.

हल (Solution)

Suppose Selling Price is Rs. 100.

Variable Cost is 60% of Selling Price,

So, P/V Ratio is 100-60 = 40%

$$Sales\ at\ B.E.P. = \frac{Fixed\ Cost}{P/V} = \frac{2,00,000}{40} \times 100$$

= Rs. 5,00,000

टिप्पणी - इस प्रकार यह स्पष्ट है कि लाभालाभ बिन्दु पर विक्रय 5,00,000 रु. तथा कुल विक्रय क्षमता 6,25,000 रू. की है।

Determination of Profits at :	90% Capacity	100% Capacity
Sales	Rs. 5,62,500	Rs. 6,25,000
P/V Ratio	40%	40%
Fixed Cost	Rs. 2,00,000	Rs. 2,00,000
Contribution = S x P/V	= $\frac{5,62,500 \times 40}{100}$	= $\frac{5,62,500 \times 40}{100}$
	= 2,25,000	= 2,25,000
Less : Fixed Costs	2,00,000	= 2,00,000
	25,000	50,000

टिप्पणी - इस प्रकार यह स्पष्ट है कि 90 प्रतिशत विक्रय क्षमता पर कम्पनी को 25,000 रू. का लाभ अर्जित होगा, जबकि 100 प्रतिशत विक्रय क्षमता पर 50,000 रू. का लाभ उपलब्ध होगा।

उदाहरण (Illustration) 3

दो अवधियों से सम्बन्धित विक्रय की राशि तथा लाभ निम्न प्रकार हैं

The turnover and profits during two periods were as follows :

	Period I	**Period II**
Sales (विक्रय)	Rs.5,00,000	Rs.7,50,000
Profit (लाभ)	Rs.50,000	Rs.1,00,000

परिकलन कीजिए (i) लाभ मात्रा का अनुपात, (iii) समविच्छेद विक्रय, (iii) 1,25,000 रू. का लाभ अर्जित करने हेतु आवश्यक विक्रय की राशि, (iv)3,50,000 रू. की विक्रय पर अर्जित होने वाले लाभ की राशि।

(i) P/V Ratio,k (ii) Break even sales, (iii) Sales required to earn a profit of Rs.1,25,000, (iv) Profit earn when sales are Rs. 3,50,000.

हल (Solution) :

(i) **P/V Ratio**

$$= \frac{Change\,in\,\Pr ofit}{Change\,in\,Sales} \times 100$$

$$= \frac{1,00,000 - 50,000}{7,50,000 - 5,00,000} \times 100 = 20\%$$

(ii) **Break-even Sales** :

समविच्छेद विक्रय की राशि ज्ञात करने के पूर्व स्थिर लागत (Fixed Cost) ज्ञात करनी होगी। इसके लिए किसी भी अवधि की बिक्री को आधार मन सकते हैं।

प्रथम अवधि में बिक्री 5 लाख रू. है तथा, लाभ-मात्रा अनुपात 20% अत:

Contribution = Sales x P/V Ratio

Contribution = 5,00,000 x 20% = Rs. 1,00,000

Profit during this period (1) is Rs. 50,000, so,

F = C - P or Rs. 1,00,000 - 50,000 = Rs. 50,000

BEP = $\frac{FixedCost}{P/V} = \frac{50,000 \times 100}{20} = Rs.2,50,000$

(ii) **Required Sales for a Profit of Rs. 1,25,000** :

$$Sales\ Needed = \frac{Fixed\ Cost + Desired\ \Pr ofit}{P/V\ Ratio}$$

$$= \frac{50,000 + 1,25,000}{20\%}\ or\ Rs.8,75,000$$

(iv) **Profit when Sales are Rs. 3,50,000** :

Profit = (Sales x P/V) - Fixed Cost

or (3,50,000 x 20%) - Rs. 50,000

or Rs. 70,000 - 50,000 = Rs. 20,000

12.16 सारांश

लागत-मात्रा लाभ का सम्बन्ध परिव्यय उत्पादन मात्रा व उत्पाद मिश्रण पर निर्भर करता है। इस प्रकार वस्तु की लागत, मात्रा, उत्पाद मिश्रण, उसकी मांग एवं विक्रय मूल्य में यदि कोई परिवर्तन आता है तो उसका सीधा प्रभाव संस्था के लाभों पर पड़ता है। लागत-मात्रा-लाभ विश्लेषण में परिव्यय विक्रय मूल्य मात्रा व उत्पाद मिश्रण में होने वाले परिवर्तनों का लाभ पर पड़ने वाला शुद्ध प्रभाव ही लागत-मात्रा-लाभ सम्बन्ध कहलाता है। यह प्रबन्धकीय निर्णयन के सभी क्षेत्रों में उपयोगी है। यह उत्पाद-निर्णयन, मूल्य निर्धारण, वितरण के तरीकों के चुनाव, विभिन्न विकल्पों में से श्रेष्ठ विकल्प के चयन सम्बन्धी निर्णयों, पूंजीगत विनियोगों सम्बन्धित निर्णय आदि में इनका महत्वपूर्ण योगदान है।

12.17 शब्दावली

1. **अंशदान** (Contribution) - अंशदान से आशय उस राशि से है जो विक्रय मूल्य में से परिवर्तनशील लागत घटाने पर शेष बचती है।
2. **सम विच्छेद बिन्दु** (Break-even Point) - बिक्री का ऐसा स्तर जिस पर व्यवसाय को न लाभ होता और न हानि अर्थात् कुल आगम और कुल व्यय बराबर हों।
3. **लाभ-मात्रा अनुपात** (Profit Volume Ratio) - अंशदान राशि का विक्रय से अनुपात ही लाभ-मात्रा अनुपात कहलाता है।
4. **सुरक्षा सीमा** (Margin of Safety) - सीमा सुरक्षा से तात्पर्य कुल बिक्री व सम-विच्छेद बिन्दु पर बिक्री के अन्तर से लिया जाता है।
5. **प्रमुख घटक** (Key Factor) - प्रमुख घटक अथवा तत्व से तात्पर्य ऐसे तत्वों से है जो उस संस्था के उत्पादन, विक्रय एवं लाभ को प्रतिबंधित कर देते हैं।
6. **सीमान्त लागत** (Marginal Cost) - किसी दी हुई उत्पादन की मात्रा पर, उत्पादन की मात्रा को एक इकाई से बढ़ाने या घटाने पर कुल लागत में जो परिवर्तन होता है, उसी राशि को सीमान्त लागत कहते हैं।
7. **प्रभाव क्षेत्र का कोण** (Angle of Incidence) - सम विच्छेद बिन्दु पर कुल विक्रय तथा कुल लागत रेखाऐं जिस बिन्दु पर एक दूसरे को काटते हुए कोण बनाती हैं, वह प्रभाव क्षेत्र का कोण कहलाता है।
8. **सम-विच्छेद चार्ट** (Break-even Chart) - सम विच्छेद चार्ट वह साधन है जो कि उत्पादन के विभिन्न स्तरों पर सीमान्त लागत, स्थिर लागत, विक्रय मात्रा तथा लाभ-

हानि सम्बन्धों का प्रभावी ढंग से विश्लेषण करता है। इसके द्वारा सम विच्छेद बिन्दु, प्रभाव क्षेत्र का कोण तथा सुरक्षा सीमा की गणना की जा सकती है।

12.18 स्वपरख प्रश्न

1. सम विच्छेद विश्लेषण का अर्थ समझाइए।
2. अंशदान के दो उपयोग बताइए।
3. सुरक्षा सीमा का क्या महत्व है?
4. सीमान्त लागत समीकरण बनाइए।
5. यदि शुद्ध लाभ 10 प्रतिशत, और लाभ-मात्रा अनुपात 50 प्रतिशत है तो सुरक्षा सीमा क्या होगी?
6. लाभ-मात्रा अनुपात 60 प्रतिशत, विक्रय 1,20,000 रू. तथा स्थायी लागत 30,000 रू। लाभ की राशि ज्ञात कीजिए।
7. लाभ-मात्रा अनुपात 75 प्रतिशत, स्थायी व्यय 50,000 रू. तथा इच्छित लाभ 70,000 रू। आवश्यक बिक्री की राशि बताइए।

12.19 व्यावहारिक प्रश्न

(i) मॉडर्न कम्पनी की अधिकतम उत्पादन क्षमता 4,40,000 इकाइयाँ प्रति वर्ष है। सामान्य कार्यक्षमता 3,60,000 इकाइयाँ प्रति वर्ष मानी जा सकती हैं परिवर्तनशील निर्माणी व्यय (सामग्री तथा श्रम सहित) रूपये 2.20 प्रति इकाई तथा स्थायी निर्माणी व्यय 1,08,000 रूपये प्रति वर्ष है। विक्रय तथा विवरण के स्थिर प्रकृति के व्यय 50,400 रूपये प्रति वर्ष तथा परिवर्तनशील व्यय 60 पैसे प्रति इकाई है। विक्रय मूल्य 4.00 रू. प्रति इकाई है।

ज्ञात कीजिये :

(i) सम विच्छेद बिन्दु अंशदान अनुपात तथा सुरक्षा सीमा,

(ii) रू. 36,000 वार्षिक का लाभ अर्जित करने हेतु की जाने वाली इकाइयों की संख्या।

(iii) विक्रय पर 10% लाभ अर्जित करने हेतु आवश्यक विक्रय की राशि।

(iv) 1,00,000 इकाइयों पर सम-विच्छेद बिन्दु उपलब्ध करने हेतु प्रति इकाई विक्रय मूल्य।

Modern Company has maximum capacity of 4,40,000 units per annum. Normal capacity is regarded as 3,60,000 units in a year. Variable manufacturing cost (including material and labour) is Rs. 2.20 per unit. Fixed factory overhead is Rs. 1,08,000 per annum. Selling and distribution cost of the fixed nature is Rs. 50,400 per annum whereas variable is Rs. 0.60 per unit. Sale price is Rs. 4.00 per unit.

Calculate:

(i) Break-even point, P/V Ratio and margin of safey.

(ii) Number of units to be sold to earn a profit of Rs. 36,000 in year.

(iii) Sales value needed to earn a profit of 10% on sales.

(iv) Selling price per unit to bring down B.E.P. to 1,00,000 units of the product.

[**Ans.** (i) B.E.P. Rs. 5,28,000; P/V Ratio 30%; M.S. Rs. 9,12,000 (ii) 1,62,000 units (iii) Rs. 7,92,000 (iv) 4.38 per unit]

2. फ्लीट कम्पनी की वार्षिक उत्पादन क्षमता 2,20,000 इकाईयाँ हैं। सामान्य कार्य क्षमता 1,80,000 इकाईयाँ प्रति वर्ष मानी गई है। परिवर्तनशील निर्माणी लागत 11 रू. प्रति इकाई है। कारखाना स्थिर उपरिव्यय 5,40,000 रू. वार्षिक है। परिवर्तनशील विक्रय लागत 3 रू. प्रति इकाई और स्थिर विक्रय लागत 2,52,000 रू. वार्षिक है। विक्रय मूल्य 20 रू. प्रति इकाई है।

   (i) सम विच्छेद बिन्दु कितनी विक्रय की राशि पर प्राप्त होगा?

   (ii) 60,000 रू. प्रतिवर्ष शुद्ध लाभ अर्जित करने के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कितनी इकाईयों का विक्रय किया जावे।

   (iii) विक्रय पर 10% आय अर्जित करने के लिए कितनी इकाईयों का विक्रय जावे।

   (iv) समविच्छेद बिन्दु 1,00,000 इकाइयों पर ही उपलब्ध करना हो तो प्रति इकाई वस्तु का विक्रय मूल्य कितना निर्धारित किया जाना चाहिए?

   Fleet Company has a maximum capacity of 2,20,000 units per year. Normal capacity is regarding as 1,80,000 units per year. Variable manufacturing costs are Rs. 11 per units, Fixed factory overheads is Rs. 5,40,000 per year. Variable selling costs are Rs. 3 per unit while fixed selling costs are Rs. 2,52,000 per year. Sale price is Rs. 20 per unit,

   (i) What is the Break-even point expressed in rupee sales?

   (ii) How many units must be sold to earna target net income or Rs. 60,000 per year?

   (iii) How many units must be sold to earn a net income of 10 percent of sales?

   (iv) What should be the selling price per unit if break even pointy is to be brought down on 1,00,000 units?

   [**Ans.** (i) Rs. 26,40,000; (ii) 1,42,000 units; (iii) 1,98,000 units; (iv) Rs. 21.92 per unit]

3. निम्नलिखित विवरण जुलाई, 2008 माह के लिए एक निर्माणी उद्योग से सम्बन्धित हैं:

   Following particulars relates to a manufacturing factory for the month of July, 2008 :

	Rs.
Variable Cost per unit	30
Fixed Expenses	1,08,000
Selling Price per unit	40

(अ) अंशदान अनुपात एवं समविच्छेद बिन्दु का परिकलन कीजिए।

(ब) यदि समविच्छेद बिन्दु 6,000 इकाइयों पर ही प्राप्त करना हो तो वस्तु का प्रति इकाई विक्रय मूल्य कितना निर्धारित किया जाना चाहिए?

(a) Calculate P/V Ratio and break even point; (b) What should be the selling price per unit if the Break even point is to be brought down to 6,000 units?

[**Ans.** P/V Ratio 25%; B.E.P. 10,800 units, Rs. 48 per unit]

12.20 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. **Financial Management** - S.C. Kuchhal.
2. **Principals of Financial Management** - R.S. Kulshreshtha.
3. **Fundamentals of financial Management** - Van Horne, C James.
4. **Financial Management** - I.M. Pandey.
5. **प्रबन्ध लेखांकन** - एस.पी. गुप्ता
6. **प्रबन्धकीय लेखाविधि** - डॉ. अग्रवाल एवं मेहता
7. **लागत लेखांकन** - वी.के. मेहता

इकाई - 13 : लाभांश (Dividend)

इकाई संरचना :

13.0 उद्देश्य

13.1 परिचय

13.2 लाभांश का अर्थ एवं परिभाषाएं

13.3 लाभांश घोषणा एवं वितरण के सम्बन्ध में भारतीय कम्पनी अधिनियम 1956 के प्रावधान

13.4 लाभांश के प्रकार

13.5 बोनस अंश या स्कन्ध लाभांश

13.6 सारांश

13.7 शब्दावली

13.8 स्वपरख प्रश्न

13.9 उपयोगी पुस्तकें

13.0 उद्देश्य

इस अध्याय को पढ़ने के पश्चात् आप समझ पायेंगे -

1. लाभांश का अर्थ एवं प्रकार
2. लाभांश वितरण के सम्बन्ध, में भारतीय कम्पनी अधिनियम 1956 के प्रावधान
3. बोनस अंश या स्कन्ध लाभांश
4. बोनस अंश निर्गमन के सम्बन्ध में सेबी के दिशा निर्देश

13.1 परिचय

एक संस्था द्वारा अपनी आय में से समस्त व्ययों एवं आयोजनों को कम करने के पश्चात शेष राशि, जो इसके अंशधारियों में बांटी जाती है, लाभांश कहलाती है। लाभांश का वितरण करते समय संचालकों को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि न केवल उचित लाभांश का वितरण कर अंशधारियों को संतुष्ट रखा जा सके वरन् कम्पनी अपने भावी विकास एवं विस्तार हेतु कोषों की व्यवस्था भी उचित एवं पर्याप्त मात्रा में कर सके।

संयुक्त प्रमण्डल या कम्पनी एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें सदस्यों से पूंजी प्राप्त करके संस्था का वित्त-पोषण किया जाता है। सदस्य कम्पनी में पूंजी का विनियोग निरन्तर आय प्राप्त करने के उद्देश्य से करते हैं। यह आय उन्हें लाभांश के रूप में प्राप्त होती है। यदि सदस्यों को लाभांश वितरित न किया जाये या प्रचलित दर से कम दर पर लाभांश दिया जाये तो उनमें निराशा होगी तथा वे बचत व विनियोग के प्रति हतोत्साहित होंगे। यदि कम्पनियां अंशधारियों को इतना लाभांश नहीं दे सकतीं जितना वे सामान्यत: विनियोजित राशि पर ब्याज प्राप्त कर सकते हैं तो फिर ऐसी कम्पनियों

के लिए अतिरिक्त पूंजी की व्यवस्था करना कठिन होगा तथा नयी कम्पनियों के लिए पूंजी जुटाना और भी अधिक कठिन हो जायेगा। अत: लाभांश केवल कम्पनी व उससे सम्बद्ध सदस्यों के लिए ही महत्वपूर्ण नहीं है, बल्कि राष्ट्रीय बचत को गति प्रदान करने तथा विनियोग को प्रोत्साहित करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। लाभांश नीति का समुचित अर्थ समझने के लिए लाभांश का अर्थ समझना आवश्यक है।

13.2 लाभांश का अर्थ एवं परिभाषाएं

विभाजन योग्य लाभ का वह भाग जो कम्पनी के प्रत्येक सदस्य को उसके द्वारा धारित अंशों के अनुपात में प्राप्त होता है, 'लाभांश' कहलाता है। विभाजन योग्य लाभ से आशय कम्पनी के उन लाभों से है, जो वैधानिक तौर पर अंशधारियों में लाभांश के रूप में बांटे जा सकते हैं। इस आशय के लिए शुद्ध लाभ का अभिप्राय उस लाभ से होता है जो कम्पनी अधिनियम, 1956 की धारा 394 की व्यवस्थाओं के अनुसार है तथा इसमें से आयकर की राशि घटा दी गई है व कम्पनी अधिनियम की धारा 205 के अनुसार ह्रास घटा दिया गया है। कम्पनी द्वारा लाभांश की घोषणा तब तक नहीं की जा सकती है जब तक कि कम्पनी के पास पर्याप्त लाभ न हो, संचालक मण्डल सिफारिश न करें एवं वार्षिक साधारण सभा में अंशधारियों द्वारा अनुमोदन न हो।

परिभाषाएं

एस.एम. शाह के अनुसार, "लाभांश एक व्यावसायिक कम्पनी के लाभ हैं जो उसके सदस्यों में अंशों के अनुपात में बांटे जाते हैं।"

सर्वोच्च न्यायालय के अनुसार, "लाभांश कम्पनी के लाभों का वह भाग है जो अंशधारियों में बांटने के लिए नियत कर दिया गया है।"

इंस्टीट्यूट ऑफ चार्टर्ड एकाउण्टेण्ट्स ऑफ इंडिया के अनुसार "उपलब्ध लाभों एवं रिजर्व में से अंशधारियों को किया गया वितरण ही लाभांश है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि लाभांश का आशय कम्पनी की अर्जनों के उस भाग से है जो कम्पनी के अंशधारियों में बांटा जाता है। लाभांश वस्तुतः कुल अर्जनों में से समस्त व्ययों के घटाने एवं विभिन्न प्रकार के कोषों व करों के लिए उचित प्रावधान करने के पश्चात बचे आधिक्य का ही एक भाग होता है। इस आधिक्य पर सामान्य अंशधारियों का ही अधिकार होता है यद्यपि वे इसके तत्काल वितरण के लिए कम्पनी को बाध्य नहीं कर सकते हैं। यदि कम्पनी को अतिरिक्त पूंजी की आवश्यकता है तो ऐसी स्थिति में संचालक गण चाहें तो कम्पनी का समस्त अर्जित लाभ व्यवसाय में धारित कर सकते हैं। ऐसी स्थिति में लाभांश की घोषणा नहीं की जावेगी तथा समस्त अर्जनों को विभिन्न कोषों अथवा अधिकोषों के रूप में रहने दिया जाएगा। लाभांश की घोषणा करते समय कम्पनी के संचालक मण्डल को निम्न दो बातों को अवश्य ध्यान में रखना चाहिए -

(अ) **कम्पनी की आवश्यकताएं** - लाभांश की घोषणा करने से पूर्व कम्पनी की वित्तीय आवश्यकताओं को अवश्य ध्यान में रखा जाना चाहिए। यदि कम्पनी की निकट भविष्य में विस्तार व विकास की योजना हो तो उसके लिए कम्पनी को वित्त की आवश्यकता होगी। ऐसी स्थिति में लाभांश कम घोषित किया जा सकता है तथा अधिक आवश्यक हो तो लाभांश घोषित ही नहीं किया जाये। इस प्रकार कम्पनी की वित्तीय सुदृढ़ता बनाए रखना अधिक आवश्यक है चाहे इसके लिए अंशधारियों को कम लाभांश ही क्यों न देना पड़े।

(ब) **अंशधारियों को उचित प्रतिफल** - अंशधारी अंशों में विनियोग प्रत्याय प्राप्त करने की आशा से करते हैं। अतः संचालकों को इस बात का अनुमान होना चाहिए कि अंशधारियों को उचित प्रतिफल दे सके। यदि ऐसा नहीं किया जाए तो अंशधारियों में असन्तोष होगा जिससे कम्पनी के अंशों के बाजार मूल्य एवं कम्पनी की साख पर विपरीत प्रभाव पड़ सकता है।

13.3 लाभांश घोषणा एवं वितरण के सम्बन्ध में भारतीय कम्पनी अधिनियम 1956 के प्रावधान

भारत में लाभांश की घोषणा एवं वितरण के सम्बन्ध में कम्पनी को अपने अन्तर्नियमों, कम्पनी अधिनियम 1956 की धारा 205 तथा 206 एवं सारणी 'अ' के नियमों का पालन करना अनिवार्य है। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित व्यवस्थाएं उल्लेखनीय हैं -

(1) **पूंजी में से लाभांश न बांटा जाये** - कम्पनी किसी भी अवस्था में पूंजी में से लाभांश नहीं बांट सकती है। लाभांश वर्ष के लाभों या अन्य किन्हीं अवितरित लाभों में से ही दिया जाना चाहिए।

(2) **पार्षद सीमानियम तथा अन्तर्नियमों का पालन** - संस्था के पार्षद सीमा नियमों तथा अन्तर्नियमों में विभाजन-योग्य लाभ के सम्बन्ध में कुछ निर्देश दिये हैं तो उनका पालन किया जाना चाहिए। लाभांश घोषित करने व उनको भुगतान करने की रीति का उल्लेखनीय वर्णन संस्था के अन्तर्नियमों में दिया जाता है। ये अन्तर्नियम कम्पनी अधिनियम की व्यवस्थाओं के विरूद्ध नहीं हो सकते।

सारणी 'अ' के अधिनियम 85-94 के अधीन. लाभांश के सम्बन्ध में निम्नलिखित नियम हैं -

(i) कम्पनी अपनी साधारण सभा में लाभांश घोषित कर सकती है। लाभांश उस धनराशि से अधिक नहीं हो सकते जिसके लिए संचालक मण्डल ने स्वीकृति दी है।

(ii) संचालक मण्डल समय-समय पर ऐसे लाभांशों का भुगतान कर सकता है जो कि कम्पनी के लाभों को देखते हुए उसे उचित प्रतीत होते हैं।

(iii) संचालक मण्डल कम्पनी में लाभांश की स्वीकृति देने से पहले एक निश्चित धनराशि सुरक्षित कोषों अथवा कोषों के लिए नियोजित कर सकता है और ऐसे कोषों का प्रयोग ऐसे कार्यों के लिए कर सकता है जिनके लिए कम्पनी के लाभ उचित रूप से प्रयोग किये जा सकते हैं। संचालक मण्डल कम्पनी के कुछ लाभों को उक्त कोषों से नियोजित न करके अगले वर्ष के लिए हस्तान्तरित कर सकता है।

(iv) ऐसे व्यक्तियों को, जिन्हें अपने अंशों के लिए लाभांश के विशेष अधिकार हैं, लाभांश की घोषणा तथा भुगतान प्रदत्त धनराशि के आधार पर किया जाएगा। पूर्व प्राप्त मांगों की धनराशि इस आशय के लिए प्रदत्त राशि नहीं मानी जाएगी।

(v) संचालक मण्डल किसी सदस्य को देय लाभांश में से ऐसी धनराशि रोक सकता है जो कि उस सदस्य द्वारा कम्पनी को लाभों के लिए अथवा कम्पनी के अंशों के सम्बन्ध मे अन्य किसी रूप में उस समय देय हो।

(vi) नकदी में देय लाभांश अंशधारियों के रजिस्टर्ड पते पर चैक अथवा अधिपत्र भेजकर भुगतान किया जा सकता है। ऐसा प्रत्येक चैक अथवा अधिपत्र आदेशित चैक होगा।

(vii) संयुक्त अंशधारियों की दशा में कोई भी अंशधारी लाभांश प्राप्त कर सकता है।

(viii) घोषित किये गये लाभांश की सूचना सदस्यों को देना आवश्यक है।

(ix) किसी भी लाभांश पर कम्पनी द्वारा ब्याज देय नहीं होगा।

(3) **लाभांश का भुगतान केवल लाभों में से** - लाभांश का भुगतान केवल लाभों में से किया जा सकता है, पूंजी में से नहीं। कम्पनी अधिनियम के अधीन, कम्पनी द्वारा किसी लेखा-वर्ष के लाभांश की घोषणा अथवा भुगतान - (i) ह्रास की व्यवस्था करने के पश्चात् कम्पनी के उस लेखा वर्ष के लाभों में से किया जा सकता है, अथवा (ii) जहां केन्द्रीय अथवा प्रान्तीय सरकार ने लाभांश की प्रतिभूति दी है वहां उसके फलस्वरूप प्राप्त होने वाली धनराशि में से किया जा सकता है। यह भी व्यवस्था है कि केन्द्रीय सरकार ऐसी आज्ञा (बिना मूल्य ह्रास की व्यवस्था किये लाभांश वितरण की) दे सकती है, यदि ऐसा करना जनता के हित में हो। (धारा 205)

(4) **लाभांश का भुगतान केवल नकदी में** - अधिनियम की धारा 205(3) के अनुसार केवल निम्नलिखित परिस्थितियों को छोड़कर लाभांश का भुगतान नकद में किया जा सकता है- (i) लाभों का पूँजीकरण करना, (ii) कम्पनी के संचय को पूर्णदत्त अधि लाभांश अंशों के निर्गमन के लिए प्रयोग करना, (iii) सदस्यों को पूर्व निर्गमित अंशों के अदत्त भाग का भुगतान करना।

(5) **लाभांश का भुगतान केवल निर्दिष्ट व्यक्तियों को** - लाभांश का भुगतान (i) रजिस्टर्ड अंशधारियों को अथवा उसके बैंकर को, अथवा (ii) यदि अंश अधिपत्र निर्गमित किया जा चुका है तो ऐसे अधिपत्र के वाहक को अथवा उसके बैंकर को किया जा सकता है, अन्य किसी व्यक्ति को नहीं किया जा सकता।

(6) **लाभांश का भुगतान 30 दिन में** - यदि कम्पनी द्वारा लाभांश घोषित कर दिया गया है तो घोषणा की तिथि से 30 दिन के अन्दर उसका भुगतान भी कर दिया जाना चाहिए। त्रुटि के लिए दायी व्यक्ति को तीन वर्ष तक का साधारण कारावास और 1,000 रूपये प्रति दिन का जुर्माना दोष जारी रहने तक किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त दोष जारी रहने की अवधि के लिए कम्पनी 18 प्रतिशत की दर से ब्याज चुकाने हेतु उत्तरदायी होगी (कम्पनी (संशोधन) अधिनियम 2000 द्वारा संशोधित धारा 207)।

13.4 लाभांश के प्रकार

लाभांश विभिन्न रूपों में वितरित किया जा सकता है। साधारणतया यह नकद के रूप में ही वितरित किया जाता है, किन्तु यह बोनस अंशों के रूप में भी वितरित किया जा सकता है। लाभांश नकद या बोनस अंशों के अतिरिक्त अन्य रूपों में भी वितरित किया जा सकता है। ये रूप निम्नलिखित हैं -

(1) **नकद लाभांश** - लाभांश का यह सबसे प्रचलित एवं लोकप्रिय रूप है। साधारणतया अंशधारी इस रूप में लाभांश लेना सबसे अधिक पसन्द करते हैं, क्योंकि लाभांश प्राप्ति का यह एक सुविधाजनक तरीका है। जिन कम्पनियों की तरल स्थिति ठीक होती है वे कम्पनियां लाभांश नकद में ही वितरित करना पसन्द करती हैं। भारतीय कम्पनी अधिनियम की धारा 205 के अनुसार भारतीय कम्पनियां नकद व स्कन्ध लाभांश के अलावा अन्य किसी प्रकार से लाभांश नहीं बांट सकती है।

(2) **स्कन्ध लाभांश** - स्कन्ध लाभांश को **'बोनस अंशों'** के रूप में लाभांश के नाम से जाना जाता है तथा ऐसा संचित कोषों या लाभों का पूंजीकरण करके किया जाता है जिन कम्पनियों की तरल स्थिति ठीक नहीं होती, वे साधारणतया अपने लाभों का पूंजीकरण करके स्कन्ध लाभांश वितरित करती हैं। इसके अन्तर्गत कम्पनी नकद लाभांश नहीं देती है। ऐसे अंशों को बोनस अंश के नाम से जाना जाता है। ऐसा करने से लाभ का समुचित उपयोग व्यवसाय में ही हो जाता है तथा लाभांश का वितरण भी संभव हो जाता है।

(3) **बन्ध-पत्रों के रूप में लाभांश** - कम्पनी नकद लाभांश न देकर बन्ध-पत्रों या ऋण पत्रों के रूप में भी लाभांश वितरित करती है। **बन्ध-पत्र या ऋण-पत्र** दीर्घकालीन हो सकते हैं। इसका अभिप्राय यह हुआ कि कम्पनी लाभांश का वितरण तत्काल न करके भविष्य की किसी तिथि को करना चाहती है। इस प्रकार का लाभांश तभी वितरित किया जाता है जब कम्पनी ब्याज सम्बन्धी बढ़े हुए दायित्वों का सम्पूर्ण भार उठाने में अपने आपको असमर्थ पाये। कभी-कभी लाभांश के लिए प्रतिज्ञा-पत्र भी दिये जाते हैं जिन पर ब्याज भी दिया जा सकता है। इसे **स्क्रिप्ट लाभांश** कहा जाता है। स्क्रिप्ट लाभांश की अवधि अल्पकालीन होती है।

(4) **सम्पत्ति लाभांश** - नकद के अतिरिक्त लाभांश सम्पति के रूप में भी वितरित किया जा सकता है। अन्य कम्पनियों की तथा सरकार की प्रतिभूतियों को लाभांश के रूप में वितरित किया जा सकता है। इसी प्रकार कम्पनी की अन्य किसी विभाजन योग्य सम्पत्ति को भी लाभांश रूप में वितरित किया जा सकता है।

(5) **संयुक्त लाभांश** - जब लाभांश का कुछ हिस्सा नकद में तथा शेष सम्पत्ति के रूप में दिया जाता है, तो यह संयुक्त लाभांश कहलाता है।

भुगतान के अनुसार लाभांश को निम्न तीन वर्गों में बांटा जाता है -

(i) **अन्तरिम लाभांश** - साधारणतया लाभांश की घोषणा कम्पनी के वित्तीय वर्ष के अन्त में की जाती है। ऐसी स्थिति में इसे 'नियमित लाभांश' कहा जाता है, किन्तु कभी-कभी जब कम्पनी यह महसूस करे कि व्यवसाय में लाभ पर्याप्त मात्रा में अर्जित कर लिये गये हैं,

ऐसी स्थिति में वर्ष की समाप्ति के पूर्व ही कुछ लाभांश घोषित कर देती है तो इसे अन्तरिम लाभांश के नाम से जाना जाता है। कम्पनी इस अन्तरिम लाभांश के बाद अन्तिम लाभांश भी घोषित करती है।

(ii) **अतिरिक्त अथवा विशिष्ट लाभांश** - एक सुदृढ़ लाभांश नीति के लिए यह आवश्यक है कि लाभांश की दर में अत्यधिक परिवर्तन न किया जाये। नियमित लाभांश दर वह दर होती है जिसके अनुसार पिछले कई वर्षों से लाभांश का भुगतान किया जा रहा है। यह कोई निश्चित या स्थायी दर नहीं होती है तथा इसमें थोड़ा बहुत परिवर्तन लाभों की मात्रानुसार किया जा सकता है। अतिरिक्त लाभांश का प्रश्न तभी उठता है जब संस्था किसी वर्ष अप्रत्याशित या अत्यधिक मात्रा में लाभांश अर्जित करती है। ऐसी स्थिति में कम्पनी नियमित लाभांश के अलावा कुछ अतिरिक्त या विशिष्ट लाभ भी दे देती है। अतिरिक्त लाभांश देने का उद्देश्य अंशधारियों को यह जानकारी देना होता है कि अतिरिक्त लाभांश की राशि अस्थायी है।

(iii) **नियमित लाभांश** - एक कम्पनी द्वारा वित्त वर्ष की समाप्ति के बाद संचालक मण्डल द्वारा प्रस्तावित तथा साधारण वार्षिक सभा द्वारा पारित लाभांश भुगतान को नियमित लाभांश के नाम से पुकारा जाता है।

भारतीय कम्पनी अधिनियम, 1956 की धारा 205(3) के अनुसार नकद के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार से लाभांश का भुगतान नहीं किया जा सकता है, लेकिन लाभों का पूंजीकरण करके बोनस अंशों के रूप में लाभांश का वितरण इसका अपवाद है। इसी प्रकार अंशधारियों द्वारा लिये गये अंशों पर अदत्त राशि को चुकता करके भी लाभांश का भुगतान किया जा सकता है। भारतीय कम्पनियां अन्तरिम एवं अतिरिक्त लाभांश का वितरण भी कर सकती है लेकिन सम्पत्ति या बन्ध पत्र के रूप में लाभांश का भुगतान नहीं कर सकती हैं।

13.5 बोनस अंश या स्कन्ध लाभांश

बोनस अंश या स्कन्ध लाभांश का अभिप्राय लाभांश के रूप में कम्पनी के अंशों के वितरण से होता है। ऐसी स्थिति में कम्पनी नकद में लाभांश वितरित न करके अंशों में लाभांश वितरित करती है। ऐसे निर्गमित अंशों को **'अधिलाभांश अंश'** भी कहा जाता है। बोनस अंश साधारणतया कम्पनी अपनी नकद स्थिति अच्छी न होने पर या नकद कोषों की कम्पनी में आवश्यकता होने पर निर्गमित करती है। इससे एक ओर कम्पनी की नकद स्थिति पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता है, दूसरी ओर अंशधारी भी अंशों के रूप में लाभांश पाकर संतुष्ट हो जाते हैं। बोनस अंश निर्गमित करने के लिए संचित कोषों में से बोनस अंशों के बराबर राशि अंश पूंजी खाते में हस्तान्तरित कर दी जाती है तथा बोनस अंश के हकदार अंशधारियों को बदले में आनुपातिक रूप में अंश प्रमाण-पत्र निर्गमित कर दिये जाते हैं। इस प्रक्रिया को लाभों का पूंजीकरण भी कहते हैं, क्योंकि बोनस अंश निर्गमन में लाभों को पूंजी में परिवर्तित कर दिया जाता है। बोनस अंश निर्गमन के निम्न तीन प्रभाव होंगे -

(1) **निर्गमित अंशों की संख्या में वृद्धि हो जाती है।** उदाहरण के लिए, माना कि पहले कम्पनी में 5,000 अंश थे और कम्पनी 5:1 के अनुपात में बोनस अंश निर्गमित करती है, अत: बोनस अंश निर्गमन के पश्चात अंशों की कुल संख्या 5000+1000 = 6000 हो जायेगी।

(2) **स्वामी-पूंजी की राशि पर इसका कोई प्रभाव नहीं पडता,** इसकी राशि वही रहती है जो निर्गमन से पहले थी। माना कि कम्पनी के पास 5000 अंश100-100 रूपये वाले हैं तथा 2,00,000 रूपये का संचित कोष है, अत: स्वामी पूंजी की राशि 5,00,000+2,00,000 = 7,00,000 रूपये हुई। 5,000 अंशों पर 1,000 नये अंश निर्गमित किये गये, अत: नये अंश भी 1000 x 100 =1,00,000 रूपये के निर्गमित किये गये। ये 1,00,000 संचित कोषों से अंश पूंजी खाते में हस्तान्तरित हो जायेंगे। इस प्रकार अंश पूंजी 6,00,000 /- रूपये की तथा संचित कोष 1,00,000 के रह जायेंगे। अत: स्वामी पूंजी की राशि 6,00,000 + 1,00,000 = 7,00,000 रूपये की रहेगी।

(3) **प्रति अंश आय बोनस अंश निर्गमन के अनुपात** में गिर जाती है। उदाहरणार्थ, पहले यदि प्रति अंश आय 10 रूपये होती थी तो अब रूपये की ही प्रति अंश रह जायेगी, क्योंकि 10 रूपये प्रति अंश के हिसाब से पहले 5000 अंशों पर कुल लाभ 50,000 रूपये का होता था अब इस 50000 रूपये के लाभ का विभाजन 6000 अंशों में होगा, अत: प्रति अंश आय रूपये प्रति अंश की होगी। बोनस अंश निर्गमन से प्रति अंश लाभांश व अंशों के बाजार मूल्य में गिरावट की सम्भावना रहती है। यह आवश्यक नहीं है कि 'प्रति अंश आय', 'प्रति अंश लाभांश' तथा अंशों के बाजार मूल्य में समान अनुपात में कमी हो।

अधिलाभांश अंश निर्गमन या स्कन्ध लाभांश के लाभ - स्कन्ध लाभांश एक तरफ कम्पनी की लाभांश नीति को प्रभावित करता है तथा दूसरी तरफ अंशधारियों को। स्कन्ध लाभांश के महत्व का अध्ययन अंशधारियों व कम्पनी के दृष्टिकोण से अलग-अलग किया जा सकता है।

(अ) **कम्पनी को लाभ** - स्कन्ध लाभांश से कम्पनी को निम्नवर्णित लाभ प्राप्त होते हैं -

(1) **उचित तरल स्थिति बनाये रखने में सहायक** - यदि किसी संस्था की तरल अथवा नकद स्थिति डावांडोल है तो उसे नकद लाभांश नहीं देना चाहिए बल्कि स्कन्ध लाभांश देकर वह नकद स्थिति को बिगड़ने से बचा सकती है तथा अपने अंशधारियों को भी सन्तुष्ट कर सकती है।

(2) **अपने लाभांश की दर को कम करने के लिए -** संस्था द्वारा बहुत ऊंची दर से दिया गया लाभांश सब की नजरों में आता है। श्रमिक, उपभोक्ता एवं सरकार, तीनों ही ऐसी लाभदायक संस्था से बहुत अधिक आशाएं करने लगते हैं। समय-समय पर बोनस अंश देकर संस्था अपने नकद लाभांश की दर उचित सीमा के अन्दर रख सकती है तथा अल्प-पूंजीकरण के दोष से छुटकारा पा सकती है।

(3) **स्वामित्व का विकेन्द्रीकरण** - संस्था में कई सदस्य जिन्हें रूपों की आवश्यकता नहीं होती है, वे अपने बोनस अंशों को बेच देते हैं। इससे कम्पनी के स्वामित्व के ढांचे में धीरे-धीरे परिवर्तन होता रहता है तथा अधिक से अधिक लोगों को सदस्य बनने का अवसर मिलता है।

(4) **अंश-पूंजी का मितव्ययी निर्गमन** - स्कन्ध लाभांश के रूप में अंश वितरित कर देने से पूंजी निर्गमन के विभिन्न व्यय नहीं करने पड़ते। स्कन्ध लाभांश के निर्गमन में विद्यमान अंशधारियों को उनकी अंश पूंजी के अनुपात में अंश निर्गमित कर दिये जाते हैं ऐसा करने पर कम्पनी अभिगोपन व्यय तथा अन्य व्ययों की बचत कर लेती है।

(5) **अन्य लाभ** - अधिलाभांश के माध्यम से संस्था लाभों का पूंजीकरण कर लेती है जो वित्त-पोषण के लिए सर्वश्रेष्ठ साधन है। अधिलाभांश निर्गमन से संस्था की अंशपूंजी भी बढ़ जाती है और साथ ही साथ समता अंश पूंजी के माध्यम से किया जाने वाला नियन्त्रण भी पूर्ववत् बना रहता है।

(ब) **अंशधारियों को लाभ** - स्कन्ध लाभांश से अंशधारियों को निम्नांकित लाभ प्राप्त होते हैं -

(1) **कर में बचत** - नकद लाभांश की अपेक्षाकृत स्कन्ध लाभांश की स्थिति में अंशधारियों को आयकर में छूट मिलती है। इस प्रकार अंशधारी स्कन्ध लाभांश के माध्यम से करों में बचत का लाभ प्राप्त कर लेते हैं।

(2) अन्य लाभ - स्कन्ध लाभांश से सदस्यों को भी लाभ होता है। कम्पनी की अंश पूंजी में उनका हिस्सा बढ़ जाता है यद्यपि उसका अनुपात पहले जैसा ही बना रहता है। उन्हें आने वाले वर्षो में अधिक अंशों पर अधिक आय मिलने की आशा बंधती है। जो संस्थाएं अधिलाभांश अंश निर्गमन करती हैं उनके अंशों का बाजार मूल्य भी बढ़ जाता है। इस प्रकार अंशधारियों को पूंजीगत लाभ प्राप्त होता है।

स्कन्ध लाभांश की हानियां - स्कन्ध लाभांश से संस्था को निम्नलिखित हानियां हो सकती है -

(1) सभी प्रकार के अंशधारी इन्हें लेना पसन्द नहीं करते। कुछ अंशधारी जो अपनी आय के लिए केवल औद्योगिक प्रगति में किये गये विनियोगों पर मिलने वाले प्रतिफल पर ही निर्भर करते हैं, वे स्कन्ध लाभांश लेना पसंद न करके नकद लाभांश लेना पसन्द करते हैं।

(2) संस्था के लिए भी भविष्य में लाभांश सम्बन्धी दायित्व बढ़ जाता है 1 यदि संस्था की आय इतनी बढ़ी है कि वह बढ़ी हुई अंश-पूंजी पर लाभांश समुचित दर से बांटने में समर्थ हो सके तब तो ठीक है, अन्यथा उसकी ख्याति व अंशों का बाजार मूल्य दोनों ही गिर सकते हैं। परिणामस्वरूप नये अंशों को जारी कर पूंजी उपलब्ध करने में प्रबन्ध को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ सकता है। अत: स्कन्ध लाभांश उन्हीं संस्थाओं द्वारा वितरित किया जाना चाहिए जो भविष्य में अधिक आय की आशा रखती हैं अन्यथा बढ़ी हुई अंश पूंजी पर लाभांश की दर गिर जाने से अंशधारियों को मनोवैज्ञानिक असन्तोष हो सकता है।

(3) प्रायः असन्तुष्ट अंशधारी इन अतिरिक्त अंशों को बाजार में बेचकर नकद धन प्राप्त कर सकते हैं लेकिन इसमें दो कमियां हैं - पहली, अधिलाभांश अंशों के निर्गमन की घोषणा तथा बोनस कूपनों को जारी करने में काफी समय का अन्तर हो जाता है। दूसरी, यदि कोई अंशधारी अपने ऐसे अंशों का विक्रय कर देता है तो इससे कम्पनी में उसके हित-अनुपात तथा कम्पनी के स्वामित्व ढांचे में परिवर्तन हो जाता है।

(4) यदि पूंजी संरचना पर ध्यान करके स्कन्ध लाभांश वितरित नहीं किया गया है तो कम्पनी अति-पूंजीकृत भी हो सकती है।

बोनस अंश निर्गमन के सम्बन्ध में सेबी के दिशा-निर्देश

सन् 2000 में सेबी द्वारा बोनस अंशों के निर्गमन के सम्बन्ध में निम्न संशोधित दिशा-निर्देश जारी किये गये हैं :

(1) ये दिशा निर्देश विद्यमान सूचीबद्ध कम्पनियों पर ही लागू होंगे।

(2) बोनस अंशों का निर्गमन कम्पनी द्वारा सार्वजनिक / अधिकार निर्गमन से 12 माह की अवधि में नहीं किया जा सकता है।

(3) बोनस अंशों का निर्गमन कम्पनी द्वारा निर्मित स्वतन्त्र संचयों में से किया जा सकता है। संचय का निर्माण लाभ या अंश प्रीमियम की राशि में से किया जा सकता है।

(4) लाभांश के प्रतिस्थापन के रूप में बोनस अंशों का निर्गमन नहीं किया जा सकता।

(5) अंशतः प्रदत्त अंशों को पूर्णदत्त बनाये बिना बोनस अंशों का निर्गमन नहीं किया जा सकता।

(6) संचालक मण्डल की अनुमति के 6 माह के अन्दर बोनस अंशों का निर्गमन कर दिया जाना चाहिए।

(7) बोनस अंश निर्गमन के सम्बन्ध में कम्पनी के अन्तर्नियमों में प्रावधान होना चाहिए।

(8) बोनस अंश निर्गमन का प्रस्ताव सामान्य सभा द्वारा पास होना चाहिए।

(9) बोनस अंश निर्गमन से ऋणपत्रधारियों के अधिकार प्रभावित नहीं होने चाहिए।

(10) एक सूचीबद्ध कम्पनी को सेबी के द्वारा जारी दिशा-निर्देशों के अन्तर्गत शर्तों के पालन के सम्बन्ध में एक प्रमाण-पत्र, जो कि वैधानिक सलाहकार / वैधानिक अंकेक्षक / पूर्णकालिक पेशेवर सचिव द्वारा प्रमाणित हो, सेबी को भेजना होगा।

13.6 सारांश

सामान्यतया किसी भी कम्पनी के द्वारा अपनी पूंजी के लिए कोषों का प्रबन्ध अनेक प्रकार के ऋण पत्रों व अंश पत्रों को पूंजी बाजार में निर्गमन करके किया जाता है विनियोगकर्ता कम्पनी में विनियोग, निरन्तर आय प्राप्ति के उद्देश्य से करते हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपनी अल्प पूंजी का विनियोग अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए करता है जो उसे लाभांश के रूप में मिलती है यदि अंशधारियों को लाभांश के रूप में मिलने वाला प्रतिफल बाजार की प्रचलित दर से कम मिलता है तो अंशधारी में बचत व विनियोग के प्रति अरुचि पैदा होने लगती है व विनियोग कर्ता का कम्पनी पर से विश्वास उठने लगता है अत: लाभांश वह कड़ी है जो अंशधारी को कम्पनी से जोड़े रखता है लाभांश वह प्रतिफल है जो अंशधारियों को उनकी पूंजी के विनियोजन के बदले में प्राप्त होता है।

13.7 शब्दावली

लाभांश - शुद्ध लाभों का वह भाग जो कम्पनी द्वारा अपने अंशधारियों को प्रतिधारित लाभों के अलावा नकद में भुगतान किया जाता है।

बोनस अंश - बोनस अंश का आशय कम्पनी द्वारा विद्यमान अंशधारियों को नकद लाभांश वितरित न करके अंशों में लाभांश वितरित करती है। ऐसे निर्गमित अंशों को बोनस अंश कहा जाता है।

अन्तरिम लाभांश - कभी कभी जब कम्पनी यह महसूस करें कि व्यवसाय में लाभ पर्याप्त मात्रा में अर्जित कर लिये गये हैं ऐसी स्थिति में वर्ष की समाप्ति के पूर्व ही कुछ लाभांश घोषित कर देती है इसे अन्तरिम लाभांश के नाम से जाना जाता है।

13.8 स्वपरख प्रश्न

1. लाभांश से आपका क्या अभिप्राय है? कम्पनियों द्वारा दिये जाने वाले विभिन्न प्रकार के लाभांशों का वर्णन कीजिए।
2. स्कन्ध लाभांश से आपका क्या अभिप्राय है? इसके लाभ व हानियों का वर्णन कीजिए।
3. बोनस अंशों के निर्गमन के विषय में सेबी के नवीन दिशा निर्देशों का वर्णन कीजिए।

13.9 उपयोगी पुस्तकें

1. अग्रवाल एवं अग्रवाल - **वित्तीय प्रबन्ध के तत्व,** रमेश बुक डिपो, जयपुर
2. एम.आर. अग्रवाल - **वित्तीय प्रबन्ध के मूल तत्व,** गरिमा पब्लिकेशन, जयपुर

इकाई संख्या - 14 लाभांश नीति (Dividend Policy)

इकाई संरचना

14.0 उद्देश्य

14.1 लाभांश नीति का अर्थ

14.2 एक सुदृढ़ लाभांश नीति के आवश्यक तत्व

14.3 लाभांश नीति का निर्धारण एवं प्रकार

14.4 सुस्थिर लाभांश नीति के लाभ

14.5 सुस्थिर लाभांश-नीति का निर्माण

14.6 लाभांश नीति को प्रभावित करने वाले तत्व

14.7 लाभांश की प्रासंगिकता एवं लाभांश प्रमेय

14.8 समीक्षा

14.9 गॉर्डन फार्मूला अथवा प्रमेय

14.10 सारांश

14.11 शब्दावली

14.12 स्वपरख प्रश्न

14.13 व्यवहारिक प्रश्न

14.14 उपयोगी पुस्तकें

14.0 उद्देश्य

इस अध्याय को पढ़ने के पश्चात् आप समझ पायेंगे -

1. लाभांश नीति का अर्थ
2. लाभांश नीति को प्रभावित करने वाले तत्व
3. लाभांश नीति के प्रारूप
4. लाभांश प्रतिमान - वाल्टर प्रतिमान
   - गॉर्डन प्रतिमान
   - मोदी ग्लियानी व मिलर प्रतिमान

14.1 लाभांश नीति का अर्थ

लाभांश नीति एक बहुत ही एवं व्यापक शब्द है। लाभांश नीति दो शब्दों लाभांश + नीति से मिलकर बना है। **लाभांश से अभिप्राय** कम्पनी की आय में से अंशधारियों को मिलने वाले हिस्से से है। नीति से अभिप्राय 'व्यवहार के तरीके' या कार्य करने के सिद्धान्तों से होता है। दूसरे शब्दों में **कार्य करने की योजना को नीति कहते हैं।** अत: लाभांश नीति का अर्थ लाभांश वितरित करने के सिद्धान्तों व योजना से होता है। लाभांश वितरण के सम्बन्ध में योजना संचालको द्वारा बनाई जाती है। लाभांश नीति

या योजना बनाते समय पिछले वर्षों में बांटा गया लाभांश, वर्तमान वर्ष के लाभ, उद्योग की स्थिति इत्यादि तत्वों को ध्यान में रखा जाता है।

लाभांश नीति को परिभाषित करते हुए **वैस्टन एवं ब्रिघम** ने लिखा है कि, "लाभांश नीति अर्जनों का अंशधारियों को भुगतान एवं प्रतिधारित अर्जनों में विभाजन निश्चित करती है।"

लाभांश नीति समता अंश पूँजी से सम्बन्धित नीति है। पूर्वाधिकार अंश पूँजी पर लाभांश की घोषणा एवं दर पूर्व निर्धारित होने के कारण ये अंश लाभांश नीति से सम्बन्धित नहीं होते हैं।

14.2 एक सुदृढ लाभांश नीति के आवश्यक तत्व

1. **स्थायित्व** - स्थिरता का आशय लाभांश के वितरण में नियमितता बनाये रखने से है। यदि कोई संस्था एक वर्ष तो बहुत अच्छा लाभांश घोषित कर देती है लेकिन अगले वर्ष लाभांश नहीं बांट पाती तो इसे अच्छा नहीं कहा जा सकता।
2. **लाभांश दरों में क्रमशः वृद्धि** - संस्था को हमेशा इस बात पर प्रयत्नशील रहना चाहिए कि उसकी लाभांश दरों में वृद्धि हो। मूल्य-स्तर बढ़ने व कम्पनी की आय अधिक होने पर अंशधारी भी यह चाहते हैं कि उनकी आय में भी वृद्धि हो। अत: संस्था को अपनी लाभांश दरों को भी थोड़ा-थोड़ा बढ़ाते रहना चाहिए।
3. **लाभांश का नकद में वितरण** - लाभांश का वितरण अधिकतर नकदी के रूप में ही किया जाना चाहिए परन्तु जब संस्था में संचित कोषों की राशि बहुत अधिक हो जाए तो स्कन्ध लाभांश भी घोषित किया जा सकता है।
4. **प्रारम्भ में कम लाभांश** - संस्था को प्रारम्भ के वर्षों में कुछ समय तक कम दर पर ही लाभांश घोषित करना चाहिए जिससे संस्था की वित्तीय स्थिति सुदृढ़ हो जाती है।
5. **अन्य बातें** - लाभांश का भुगतान केवल अर्जित लाभों में से ही किया जाना चाहिए। यदि लाभ-हानि खाते में कोई हानि पिछले वर्षों से चली आ रही है तो पहले उसे अपलिखित करना चाहिए, उसके बाद लाभांश की घोषणा करनी चाहिए। लाभांश अधिकांशतः वर्ष में एक बार ही दिया जाता है लेकिन अंशधारियों के उत्साह में वृद्धि के लिए अन्तरिम लाभांश भी वितरित किये जा सकते हैं।

14.3 लाभांश नीति का निर्धारण एवं प्रकार

लाभांश नीति के निर्धारण के लिए कोई सामान्य या सर्वमान्य सूत्र नहीं दिया जा सकता है जो प्रत्येक स्थिति में लागू होता हो। लाभांश नीति प्रबन्धकीय नीति एवं कम्पनी की परिस्थितियों पर निर्भर करती है। प्रबन्धकों द्वारा प्रायः निम्न वर्णित तीन प्रकार की लाभांश नीतियां अपनायी जा सकती है-

1. **कठोर लाभांश नीति** : कठोर या अनुदार लाभांश नीति अपनाने पर प्रबन्धकगण कम्पनी की वित्तीय सुदृढ़ता एवं व्यवसाय को सर्वोपरि रखते हैं तथा अंशधारियों की वर्तमान आशाओं को गौण स्थान देते हैं। इस नीति में प्रबन्धक लाभ का अधिकांश भाग व्यवसाय

में पुनर्विनियोजित करना चाहते हैं तथा सदस्यों को लाभांश कम से कम देते हैं। इसलिए इस नीति को अनुदार या कठोर लाभांश नीति के नाम से जाना जाता है।

2. **उदार लाभांश नीति** : लाभांश की इस नीति में प्रबन्धक लाभ के अधिकांश भाग का वितरण सदस्यों में लाभांश के रूप में कर देते हैं। कम्पनी द्वारा लाभ का केवल उतना ही भाग प्रतिधारित किया जाता है जितना अत्यन्त आवश्यक समझा जाये। इस नीति में भुगतान अनुपात उच्च होता है जैसे 90 प्रतिशत या 95 प्रतिशत - अर्थात् प्रति सौ रूपये की आय में 90 या 95 रूपये लाभांश के रूप में वितरित कर दिये जाते हैं तथा व्यवसाय में केवल 10 या 5 रूपये ही रखे जाते हैं। इस नीति में सदस्यों के दीर्घकालीन हितों की अपेक्षा वर्तमान हितों को अधिक महत्व दिया जाता है।
3. **सुस्थिर लाभांश नीति** : लाभांश भुगतान की यह नीति दीर्घकालीन होती है तथा इसमें साधारणतया लम्बी अवधि तक कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं किये जाते हैं। इस नीति में कम्पनी की भावी आवश्यकताओं व सदस्यों की वर्तमान अपेक्षाओं को समान महत्व दिया जाता है। साधारणतया जितना लाभ लाभांश के रूप में वितरित किया जाता है, लगभग उतना ही लाभ व्यवसाय में पुनर्विनियोजित भी किया जाता है। सम्पन्न वर्षा में भी साधारणतया उतना ही लाभांश दिया जाता है जितना कि सामान्य अथवा प्रतिकूल वर्षों में। सम्पन्नता या अधिक लाभ वाले वर्षों में पर्याप्त कोषों का निर्माण कर लिया जाता है जिनका प्रयोग कम लाभ वाले वर्षों में लाभांश दर को स्थिर बनाये रखने में किया जाता है। अत: यह एक मध्यममार्गी नीति है। निश्चित एवं अनिश्चित सभी सम्भावनाओं के लिए पर्याप्त आयोजन कर लिये जाते हैं। अत: यह नीति कम्पनी की साख एवं प्रतिष्ठा बनाये रखने में सहायक होती है।

14.4 सुस्थिर लाभांश नीति के लाभ

सुस्थिर लाभांश नीति की प्रमुख विशेषताएं लाभांश की स्थिरता एवं नियमितता है। यदि लाभांश नीति में स्थायित्व का अभाव होता है तो इससे संस्था की स्थायी साख नहीं बन पाती तथा अंशधारियों की स्थिति भी संदिग्ध हो जाती है। जब अंशों के बाजार मूल्यों में उतार-चढ़ाव होता रहता है तो इससे संस्था व अंशधारियों दोनों पर ही बुरा प्रभाव पड़ता है।

(1) **अंशधारियों के मन में विश्वास** - नियमित एंव स्थायी लाभांश मिलते रहने से अंशधारियों के मन में अंशों के प्रति विश्वास जम जाता है।

(2) **अंशधारियों में सन्तोष** - कुछ अंशधारी आय के प्रति बहुत ही सतर्क एवं जागरूक होते हैं और वे नियमित दर से प्रति वर्ष मिलने वाले लाभों को अधिक महत्व देते हैं। अत: एक नियमित लाभांश नीति अपना कर अंशधारियों को सन्तुष्ट रखा जा सकता है।

(3) **अंशों के बाजार मूल्यों में स्थिरता** - जिन अंशों पर नियमित दर से लाभांश मिलता है उनके बाजार मूल्यों में अपेक्षाकृत कम उतार-चढ़ाव आते हैं तथा ऐसे अंशों में सट्टेबाजी की संभावनाएं कम रहती हैं।

(4) **साख में वृद्धि** - संस्था की साख बढ़ जाने से संस्था सफलतापूर्वक ऋण प्राप्त कर सकती है।

(5) **दीर्घकालीन नियोजन में सहायक** - संस्था के प्रबन्धक संस्था के विकास के लिए दीर्घकालीन योजना बना सकते हैं, क्योंकि इस नीति के अन्तर्गत वित्तीय आवश्यकताओं तथा उनकी पूर्ति के साधनों का मूल्यांकन किया जा सकता है।

(6) **राष्ट्रीय आय में स्थायित्व** - यदि राष्ट्र की अधिकांश संस्थाएं सुस्थिर लाभांश नीति का पालन करती हैं तो इससे राष्ट्रीय आय में भी स्थायित्व आता है जो सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के स्थायित्व का सूचक है।

14.5 सुस्थिर लाभांश-नीति का निर्माण

प्रत्येक संस्था के लिए एक सुस्थिर लाभांश नीति का निर्माण करना एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य है जिस पर प्रबन्धकों को सबसे अधिक ध्यान देना चाहिए। संस्था की भावी प्रगति तथा बाजार में उसकी साख एवं प्रतिष्ठा के लिए सुस्थिर लाभांश नीति अनिवार्य है। सुस्थिर लाभांश-नीति का निर्माण करते समय निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखा जाना चाहिए-

(1) लाभांश की स्थिरता एवं नियमितता।

(2) कम्पनी की नकद स्थिति।

(3) केवल अर्जित लाभ अथवा अधिशेष में से ही लाभांश का भुगतान किया जाना चाहिए।

(4) अधिक लाभ के वर्षों में नियमित लाभांश की दर में अचानक वृद्धि करने की अपेक्षा अतिरिक्त लाभांश दिया जाना चाहिए।

(5) स्कन्ध लाभांश का वितरण उचित सीमा के अन्दर ही रखा जाना चाहिए, अन्यथा आये दिन स्कन्ध लाभांश देने से अति-पूंजीकरण की स्थिति आ सकती है।

(6) प्रारम्भिक वर्षों में कुछ समय मामूली लाभांश दिया जा सकता है। बाद में संस्था की प्रगति के साथ-साथ इसमें वृद्धि की जा सकती है।

(7) यदि लाभ-हानि खाते में पहले से हानि की रकम चली आ रही है तो जब तक वह अपलिखित न हो जाए तब तक लाभांश की घोषणा नहीं करनी चाहिए।

(8) स्थायित्व को बनाये रखने के लिए लाभांश समानीकरण कोष की स्थापना की जानी चाहिए जिससे कम लाभ के वर्षों में उसमें से लाभांश दिया जा सके।

14.6 लाभांश नीति को प्रभावित करने वाले तत्व

लाभांश नीति को प्रभावित करने वाले तत्व निम्नवर्णित हैं -

(1) **लाभों की स्थिति** - लाभांश का वितरण लाभों में से ही किया जाता है। अत: कम्पनी को यह देखना चाहिए कि उस वर्ष का लाभ पर्याप्त है या नहीं। लाभ की मात्रा पिछले वर्षों के लाभों की तुलना में कम है या ज्यादा, तथा वह लाभ उसी तरह की व्यावसायिक संस्थाओं की तुलना में कैसा है? साथ ही कम्पनी को यह भी ध्यान रखना चाहिए कि अगले वर्षों में लाभ की इस राशि के कम व अधिक होने की क्या सम्भावनाएं हैं?

(2) **व्यापार-चक्र की अवस्था** - यदि किसी संस्था में कारोबार कभी मन्द तथा कभी तेज हो जाता है तो वहां पर स्थिर लाभांश देने तथा संस्था की वित्तीय स्थिति को सुदृढ़ रखने के लिए यह आवश्यक है कि अधिक लाभ के वर्षों में लाभ का अधिकांश भाग मन्दी के समय का सामना करने के लिए संचित कर लिया जावे।

(3) **अतिरिक्त पूंजी की आवश्यकता** - यदि संस्था अपना कारोबार वर्ष के दौरान बढ़ाने या अपनी पुरानी सम्पत्तियों को नयी तथा आधुनिक सम्पत्तियों में बदलने की योजना रखती है तो उसके लिए उसे अतिरिक्त आन्तरिक पूंजी की आवश्यकता पड़ेगी, ऐसी स्थिति में संस्था उस वर्ष सम्पूर्ण लाभ व्यवसाय में ही प्रतिधारित कर सकती है या कम दर से लाभांश वितरित कर सकती है।

(4) **कोषों की तरलता** - लाभांश प्रायः नकदी के रूप में दिया जाता है और यह तभी सम्भव है जब कम्पनी के पास लाभांश की घोषणा के समय पर्याप्त नकद शेष उपलब्ध हों। यदि लाभांश का भुगतान बैंकों आदि से ऋण लेकर करना पड़ता है तो यह वित्तीय दृष्टिकोण से अवांछनीय होगा, क्योंकि ऐसा करने पर कम्पनी की वित्तीय स्थिति नाजुक होने की संभावना रहती है।

(5) **वैधानिक व्यवस्थाएं तथा समझौते** - कम्पनी के प्रबन्धकों को वैधानिक (कम्पनी अधिनियम, पार्षद सीमानियमों तथा अन्तर्नियमों) व्यवस्थाओं को ध्यान में रखकर ही लाभांश सम्बन्धी निर्णय लेना चाहिए।

(6) **पुरानी लाभांश नीतियां** - लाभांश की घोषणा करते समय कम्पनी के प्रबन्ध को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि पिछले वर्षों में वे कितना लाभांश घोषित करते रहे हैं।

(7) **सरकारी नियन्त्रण** - लाभांश की घोषणा विभिन्न वैधानिक नियन्त्रणों को मद्दे नजर रखते हुए की जानी चाहिए इस सम्बन्ध में कम्पनी के आन्तरिक नियमों के अतिरिक्त कम्पनी अधिनियम व आयकर अधिनियम को ध्यान में रखना आवश्यक है।

(8) **कराधान नीति** - कभी-कभी सरकार पूंजी निर्माण की गति को बढ़ाने के लिए आय संचित करने वाली संस्थाओं को आयकर की सुविधा देती है। ऊंची दर पर लाभांश वितरित करने वाली संस्थाओं पर अतिरिक्त कर लगाकर लाभों के प्रतिधारण को प्रोत्साहित किया जा सकता है। ऐसी दशा में कर बचत की सुविधा पाने के उद्देश्य से लाभों का अधिकाधिक भाग संचित करने की नीति अपना ली जाती है।

(9) **ऋणों का भुगतान** - पिछले वर्षों में लिये गये ऋणों के भुगतान के लिए संस्था के पास दो साधन होते हैं - (i) ऋण पत्र जारी करके, व (ii) आय से व्यवस्था करके। यदि संस्था आय के ऋणों का भुगतान करने की नीति अपनाती है तो ऐसी दशा में उसे कठोर लाभांश नीति का अनुसरण करना पड़ेगा।

(10) **आय में स्थायित्व** - स्थायी रूप से आय अर्जित करने वाली संस्थाएं, आय में उच्चावचन होने वाली संस्थाओं की अपेक्षा आय का अधिक भाग लाभांश के रूप में वितरित करती हैं। अस्थायी रूप से आय अर्जित करने वाली संस्थाएं, यह निश्चित रूप से नहीं जानती हैं कि उन्हें भविष्य में कितनी आय प्राप्त होगी। भविष्य में आय कम

होने पर लाभांश बनाये रखने के उद्देश्य से ये संस्थाएं आय का अधिकांश हिस्सा संचित कोषों में जमा कर लेती है।

(11) **कम्पनी की आयु** - नयी कम्पनियां प्रारम्भ में इस स्थिति में नहीं होती हैं कि वे कुछ वर्षों तक उचित लाभांश अपने सदस्यों को दे सकें। शुरू में सभी संस्थाओं को विकास के लिए पूंजी की पर्याप्त आवश्यकता पड़ती है। जिसे वे सरलता से बाजार से प्राप्त नहीं कर सकतीं। अत: उन्हें अपने आन्तरिक साधनों पर निर्भर होना पड़ता है। इस कारण इन संस्थाओं को कठोर लाभांश नीति अपनानी पड़ती है।

(12) **लोक मत** - संस्थाओं की लाभांश नीति पर जनमत तथा सार्वजनिक प्रतिक्रियाओं का भी प्रभाव पड़ता है। प्रायः बहु त अधिक लाभांश वितरित करने वाली संस्थाओं की आलोचना सभी क्षेत्रों में होने लगती है जिससे कर्मचारी अपने वेतनों में वृद्धि की मांग करने लगते हैं और उपभोक्ता माल की कीमतों में कमी चाहते हैं तथा संस्था के अधिकारी भी उस लाभ में से अधिक बोनस दिये जाने की मांग करते हैं।

14.7 लाभांश की प्रासंगिकता एवं लाभांश प्रमेय

अनेक बार यह प्रश्न उठता है कि क्या किसी कम्पनी अथवा फर्म के लिए लाभांश वितरित करना अंशधारियों के सम्पत्ति मूल्य को अधिकतम करने के उद्देश्य की दृष्टि से प्रासंगिक है अथवा नहीं?

इस सम्बन्ध में दो तरह के विचार दिखायी देते हैं। प्रथम वर्ग में उन विचारों को शामिल किया जाता है, जिनके अनुसार लाभांश का वितरण कम्पनी की सम्पत्ति मूल्य को प्रभावित करता है, अत: लाभांश नीति अंशधारियों तथा कम्पनी के लिए प्रासंगिक है। इसमें वाल्टर तथा गोर्डन के विचार महत्वपूर्ण हैं तथा उन्होंने अपने प्रमेय भी बताये हैं।

दूसरी तरफ **मोदी-गिलयानी व मिलर** जैसे विद्वानों के विचार हैं जिनका कहना है कि लाभांश का वितरण तथा प्रतिधारित अर्जनों का कम्पनी के मूल्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

लाभांश की प्रासंगिता के प्रमेय

इसमें हम निम्न दो प्रमेयों का अध्ययन करेगें:

1. **वाल्टर फार्मूला या प्रमेय** : लाभांश नीति के निर्धारण के लिए प्रोफेसर जेम्स ई. वाल्टर ने एक बीजगणितीय सूत्र का प्रतिपादन किया, जिसे वाल्टर फार्मूला के नाम से जाना जाता है। इस फार्मूले की सहायता से कम्पनी के प्रबन्धक लाभांश नीति का निर्धारण इस प्रकार कर सकते हैं जिससे कि कम्पनी के अंशधारियों द्वारा किये गये पूंजी विनियोग के मूल्य में पर्याप्त अभिवृद्धि हो सके। यह सूत्र निम्न मान्यताओं पर आधारित है -

   (अ) अंशों के बाजार मूल्य भविष्य में सम्भावित लाभांशों के वर्तमान मूल्यों से प्रभावित होते हैं; तथा

(ब) व्यवसाय की प्रतिधारित अर्जनें - भविष्य में प्राप्त होने वाले लाभांश को प्रभावित करती हैं तथा इस प्रकार अंशों के बाजार मूल्य पर इनका भी प्रभाव पड़ता है।

वाल्टर ने कम्पनी अथवा फर्म के अंशों के सैद्धान्तिक मूल्य को ज्ञात करने के लिए एक फार्मूला दिया है जो सरलीकृत रूप से निम्न प्रकार लिखा जा सकता है -

$$p = \frac{D}{K_e} + \frac{r(E-D)/K_e}{K_e}$$

इसे इस तरह भी लिखा जा सकता है -

$$p = \frac{D}{K_e} + \frac{(r/K_e)(E-D)}{K_e}$$

Where P = Price of a share

D = Dividend per share

E = Earnings per share

r = Rate of Return on investment of the firm

K_e = Cost of equity capital of the firm or capitalization rate.

illustration 1 :

तीन कम्पनियों के बारे में विस्तृत सूचना नीचे दी गई हैं -

A Ltd.	B Ltd.	C Ltd.
r = 12%	r = 6%	r = 8%
K_e = 8%	K_e = 8%	K_e 8%
E = Rs. 10	E = Rs. 10	E = Rs. 10

वाल्टर के फार्मूले का प्रयोग करते हुए इन कम्पनियों के एक अंश का मूल्य ज्ञात कीजिए जब लाभांश भुगतान अनुपात (Dividend Payout Ratio) (a)20%, (b) 60%, (c) 0% तथा (d) 100% है। निष्कर्षों पर टिप्पणी कीजिए।

Solution:

$$p = \frac{D}{K_e} + \frac{r(E-D)/K_e}{K_e}$$

वाल्टर के उपरोक्त फार्मूले का प्रयोग करते हुए एक अंश का मूल्य निम्नप्रकार ज्ञात किया जा सकता है :

A Ltd.	B Ltd.	C Ltd.
(a) When dividend payout is 20% (जब लाभांश वितरण अनुपात 20% है)		
$\frac{2}{.08} + \frac{.12(10-2)/.08}{.08}$	$\frac{2}{.08} + \frac{.6(10-2)/.08}{.08}$	$\frac{2}{.08} + \frac{.08(10-2)/.08}{.08}$
= 25+150 = Rs. 175	= 25+75 = Rs. 100	= 25+100 = Rs. 125

(b) When Dividend payout is 60% (जब लाभांश वितरण अनुपात 60% है)

$\frac{6}{.08}+\frac{.12(10-6)/.08}{.08}$ $\frac{6}{.08}+\frac{.6(10-6)/.08}{.08}$ $\frac{6}{.08}+\frac{.8(10-6)/.08}{.08}$

= 75+75 = Rs. 150 75+37.5 = Rs. 112.5 75+50 = Rs. 125

(c) When dividend payout ratio is 0% (जब लाभांश वितरण अनुपात 0% है)

$\frac{0}{.08}+\frac{.12(0-0)/.08}{.08}$ $\frac{0}{.08}+\frac{.6(0-0)/.08}{.08}$ $\frac{10}{.08}+\frac{.08(10-10)/.08}{.08}$

=0+187.5 = Rs. 187.50 0+93.75 = Rs.93.75 125 + 0 = Rs. 125

(d) When dividend payout ratio is 100% (जब लाभांश वितरण अनुपात 100%है)

$\frac{10}{.08}+\frac{.12(10-10)/.08}{.08}$ $\frac{10}{.08}+\frac{.6(10-10)/.08}{.08}$ $\frac{10}{.08}+\frac{.08(10-10)/.08}{.08}$

= 125 + 0 = Rs. 125 125 + 0 = Rs. 125 125 + 0 = Rs. 125

14.8 समीक्षा

ए लिमिटेड एक ऐसी फर्म है जिसकी विनियोग पर प्रत्याय दर r फर्म की समता पूंजी की लागत Ke की तुलना में अधिक है अर्थात र=12% है जबकि K_e = 8% है, अत: यह एक विकासमान फर्म है और ऐसी फर्म में फर्म के समता अंश का मूल्य अधिकतम करने हेतु रोपण अनुपात अधिकतम (100%) रखा जाय अथवा भुगतान अनुपात कम से कम (0%) रखा जाए। ए लिमिटेड में भुगतान अनुपात शून्य होने पर कम्पनी के अंश का मूल्य सर्वाधिक 187.5 रूपये है जबकि भुगतान अनुपात 100% रखने पर अंश का मूल्य सबसे कम 125 रूपये है। इसलिए अनुकूलतम भुगतान अनुपात 0% है।

बी लिमिटेड में विनियोग प्रत्याय की दर r तथा उसकी अंश पूंजी की लागत K_e से कम है, अत: इसे ह्रासमान फर्म का नाम दिया जा सकता है। ऐसी फर्म में अनुकूलतम भुगतान अनुपात 100% होता है, क्योंकि फर्म के समता अंश का मूल्य 100% भुगतान अनुपात की स्थिति में ही अधिकतम होता है। उपरोक्त उदाहरण में यह 125 रूपया (भुगतान अनुपात 100 होने पर) है, जबकि भुगतान अनुपात 0% होने पर यह मूल्य सबसे कम 93.75 रूपया है।

सी लिमिटेड में विनियोग पर प्रत्याय की दर [तथा उसकी समता अंश पूंजी की लागत Ke दोनों समान हैं। यह एक सामान्य फर्म मानी जा सकती है। ऐसी फर्म में भुगतान अनुपात कुछ भी रखा जाय, फर्म के समता मूल्य पर इसका कोई प्रभाव नहीं होगा। उपरोक्त उदाहरण में शून्य भुगतान अनुपात होने अथवा 100% भुगतान अनुपात होने या अन्य भुगतान अनुपात होने पर फर्म के अंश का मूल्य 125 रूपया ही रहता है।

वाल्टर प्रतिमान की आलोचनाएं :

अन्त में हम यहां यह बताना चाहेंगे कि वाल्टर का फार्मूला या प्रमेय केवल एक सैद्धान्तिक दृष्टिकोण ही प्रस्तुत करता है। यह लाभांश नीति के सम्बन्ध में केवल

आधार प्रस्तुत करता है, लेकिन बाजार मूल्य सैद्धान्तिक मूल्य के अनुरूप ही परिवर्तित हो, यह आवश्यक नहीं है। बाजार में अंशों कं मूल्य प्रतिधारित आय एवं लाभांश दर के अतिरिक्त अनेक तत्वों से प्रभावित होते रहते हैं। जैसे लाभांश पर कर, लाभांश वितरण पर वैधानिक प्रतिबन्ध, बोनस अंशों के निर्गमन पर सरकार की नीति, कम्पनी की तरल स्थिति, इत्यादि। संक्षेप में इसकी प्रमुख आलोचनाएं इस प्रकार हैं -

1. **बाहय वित्तीय स्रोतों की अवहेलना** - प्रो. वाल्टर की आन्तरिक वित्त पोषण कल्पना वास्तविकता से परे है। अधिकांश उपक्रमों द्वारा अपनी वित्त व्यवस्था नए अंशों अथवा ऋण-पत्रों के द्वारा ही की जाती है।
2. **आन्तरिक अर्जन दरों की स्थिरता कल्पनीय -** उपक्रमों की अर्जन दर अस्थिर होती है विनियोगों में परिवर्तन के साथ-साथ लाभों की दरों में भी परिवर्तन होते रहते हैं अत: स्थिर अर्जन दर की कल्पना एक मिथ्या धारणा है।
3. **पूजी लागत अस्थिर** - पूंजी लागत की स्थिरता की मान्यता भी अवास्तविक है, क्योंकि उपक्रमों की जोखिम का स्वरूप परिवर्तनीय है अत: पूंजी लागत दर भी परिवर्तनशील होती है।

14.9 गॉर्डन फार्मूला अथवा प्रमेय

गॉर्डन ने भी एक प्रमेय अथवा मॉडल का निर्माण किया है जो वाल्टर से मिलता-जुलता है। गॉर्डन के अनुसार कम्पनी की लाभांश नीति का कम्पनी के अंशों के बाजार मूल्यों पर सीधा प्रभाव पड़ता है। गॉर्डन के मॉडल में जो प्रमुख अन्तर देखने को मिलता है वह यह है कि अंश का बाजार मूल्य अंश पर अनन्त समय तक प्राप्त होने वाले लाभांश के वर्तमान मूल्य के बराबर होता है।

गॉर्डन के मॉडल की मान्यताएं - गॉर्डन ने अपने लाभांश मॉडल का निर्माता निम्न मान्यताओं के आधार पर किया है -

1. वाल्टर की तरह से गॉर्डन का मॉडल यह स्पष्ट करता है कि विनियोग निर्णयों के लिए लाभांश निर्णय महत्वपूर्ण होते हैं।
2. फर्म के विनियोग पर प्रत्याय स्थिर होता है।
3. फर्म अपनी विनियोग क्रियाएं केवल समता अंश पूंजी द्वारा करती है।
4. गॉर्डन का मॉडल विनियोग में निहित जोखिम की उपेक्षा करता है तथा मानता है कि फर्म की बट्टा दर स्थिर होती है।
5. निगम कर नहीं होते हैं।
6. रोपण अनुपात एक बार निर्धारित करने के बाद स्थिर रहता है।
7. फर्म का निरन्तर अस्तित्व रहता है।

गॉर्डन का फार्मूला अथवा सूत्र - गॉर्डन का सूत्र निम्न प्रकार है -

$$P = \frac{E(1-b)}{K_e - b_r} or \;\; P = \frac{D}{K_e - g}$$

Where P = Market Price of an Equity share

E = Earnings per share

D = Dividend per share

b = Retained earnings (1 - Payout ratio)

r = Rate of Return on investment of the firm

K_e = Cost of equity capital or capitalisation rate.

b_r or g = Growht rate or b x r

लाभांश नीति के फर्म के मूल्य या इसके अंशों के मूल्यों पर पड़ने वाले प्रभावों को नीचे एक तालिका में विकासमान फर्म, सामान्य फर्म तथा पतन की ओर फर्म पर प्रभावों का अध्ययन उदाहरण के आधार पर किया जा सकता है

Illustration 2 :

तीन कम्पनियों के बारे में विस्तृत सूचना दी गई है -

Growth Ltd.	**Normal Ltd.**	**Declining Ltd.**
r > Ke r = Ke	r < Ke	
r = 0.15	r = 0.10	r = 0.08
K_e = 0.10	K_e = 0.10	K_e = 0.10
E = Rs. 10	E = Rs. 10	E = Rs. 10

गॉर्डन के फार्मूले का प्रयोग करते हुए प्रत्येक कम्पनी का बाजार मूल्य ज्ञात कीजिए जब भुगतान अनुपात (i)40%(ii)60% तथा (iii) 90% हो।

Solution :

इसका हल निम्न तालिका में प्रस्तुत किया गया है :

गॉर्डन मॉडल का फर्मों के अंश मूल्य पर प्रभाव

विकासमान फर्म r>Ke	सामान्य फर्म r = Ke	पतन की ओर फर्म r < Ke
आधारभूत समंक		
r = 0.15	r = 0.10	r = 0.08
K_e = 0.10	K_e = 0.10	K_e = 0.10
E = Rs. 10	E = Rs. 10	E = Rs. 10

(i) **Payout Ratio = (1-b) = 40%**

Retention Ratio (b) = 60%

g = b_r = 0.6 x 0.15= 0.09	g = b_r = 0.6 x 0.10= 0.06	g = b_r = 06. x 0.08= 0.048
$P=\frac{10(1-0.6)}{0.10-0.09}$	$P=\frac{10(1-0.6)}{0.10-0.06}$	$P=\frac{10(1-0.6)}{0.10-0.048}$

$= \frac{4}{0.01} = Rs.400$ $\frac{4}{0.04} = Rs.100$ $\frac{4}{0.052} = Rs.70$

(ii) **Payout Ratio = (1 - b) = 60%**

Retention Ratio (b) = 40%

g = b_r = 0.4 x 0.15= 0.06 g = b_r = 0.4 x 0.10= 0.04 g = b_r = 0.4 x 0.08 = 0.032

$$P = \frac{10(1-0.4)}{0.10-0.06} = \frac{6}{0.04} = Rs.150$$

$$P = \frac{10(1-0.4)}{0.10-0.04} = \frac{6}{0.06} = Rs.100$$

$$P = \frac{10(1-0.4)}{0.10-0.032} = \frac{6}{0.068} = Rs.88$$

(iii) **Payout Ratio = (1-b) = 90%**

Retention Ratio (b) = 10%

g = b_r = 0.10 x 0.15= 0.015 g = b_r = 0.10 x 0.08= 0.01 g = b_r = 0.10 x 0.08= 0.008

$$P = \frac{10(1-0.1)}{0.10-0.015} = \frac{9}{0.085} = Rs.106$$

$$P = \frac{10(1-0.1)}{0.10-0.01} = \frac{9}{0.09} = Rs.100$$

$$P = \frac{10(1-0.1)}{0.10-0.008} = \frac{9}{0.092} = Rs.98$$

टिप्पणियां:

उपरोक्त अध्ययन से निम्न निष्कर्ष निकलते हैं -

(i) विकासमान फर्म के अंशों का बाजार मूल्य ऊंचे रोपण अनुपात से बढ़ता है।

(ii) पतन की ओर अग्रसर फर्म के अंशों का बाजार मूल्य ऊंचे लाभांश भुगतान अनुपात से बढ़ता है।

(iii) एक सामान्य फर्म के बाजार मूल्यों में उस समय तक भुगतान अनुपात में परिवर्तन का प्रभाव नहीं पड़ेगा, जब तक इसके विनियोगी की लाभदायकता तथा पूंजी की लागत समान रहती है।

मोदी गिलयानी तथा मिलर का अप्रासंगिकता सिद्धान्त

मोदी-गिलयानी तथा मिलर का तर्क है कि फर्म की लाभांश नीति का फर्म की सम्पत्तियों के मूल्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। उदाहरण के लिए यदि कम्पनी ने लाभांश की घोषित दर नीची रखी है तो इससे इसकी प्रतिधारित अर्जनें तथा कम्पनी का शुद्ध मूल्य बढ़ जायेगा और यदि कम्पनी ऊंची लाभांश दर घोषित करेगी तो प्रतिधारित अर्जनें तथा शुद्ध मूल्य कम हो जायेगा। उनका कहना है कि फर्म का मूल्य लाभांश नीति से अप्रभावित रहता है, अत: अंशधारियों की सम्पदा के लिए लाभांश अप्रासंगिक होते हैं। मोदी-गिलयानी तथा मिलर का तर्क निम्न मान्यताओं पर आधारित है -

(i) व्यक्तिगत तथा निगम कर अनुपस्थित होते हैं।

(ii) स्कन्ध निर्गमन अथवा सौदा लागतें नहीं होती हैं।

(iii) लाभांश नीति का फर्म की पूंजी लागत पर कोई प्रभाव नहीं होता है।

(iv) फर्म की विनियोग नीति फर्म की लाभांश नीति से स्वतन्त्र होती है।

(v) भावी अवसरों के बारे में विनियोक्ताओं तथा प्रबन्धकों के पास सूचनाएं उपलब्ध होती हैं।

एम.एम. सिद्धान्त के अनुसार फर्म का मूल्य इसकी आधारभूत अर्जन शक्ति तथा इसकी जोखिम श्रेणी पर निर्भर करती है, इसलिए फर्म का मूल्य इसकी सम्पत्ति विनियोग नीति पर निर्भर करता है न कि अर्जनों को लाभांश तथा प्रतिधारित अर्जनों में विभाजित करने पर। एम.एम. सिद्धान्त -उपरोक्त मान्यताओं के अन्तर्गत स्पष्ट करता है कि यदि एक फर्म अधिक लाभांश वितरित करती है तो इसे अधिक स्टॉक नये विनियोक्ताओं को बेचना होता है तथा नये नियोक्ताओं को यह दिया गया कम्पनी के मूल्य का हिस्सा भुगतान किये गये लाभांश के बराबर होता है। फर्म का मूल्य लाभांश भुगतान से निर्धारित नहीं होता है, बल्कि परियोजना की आय अर्जन शक्ति पर निर्भर होती है जिसमें फर्म ने अपनी मुद्रा विनियोजित की है।

एम.एम. सिद्धान्त द्वारा उपरोक्त मान्यता के लिए जिस तर्क का प्रयोग किया जाता है उसे 'ग्राहक प्रभाव' के नाम से पुकारते हैं। ग्राहक प्रभाव बताता है कि फर्म उन अंशधारियों को अपनी ओर आकर्षित करेगी जिनका लाभांश पेटर्न तथा स्थायित्व की पसन्द फर्म के भुगतान पैटर्न तथा स्थायित्व के अनुरूप होगा। चूंकि फर्म के अंशधारी अथवा ग्राहक वर्ग जो आशा करते हैं वे ही प्राप्त करते हैं, अत: फर्म के स्टॉक का मूल्य लाभांश नीति से अप्रभावित रहता है।

एम.एम. मॉडल के अनुसार अंश का बाजार मूल्य लाभांश घोषित करने के बाद निम्न सूत्र की सहायता से ज्ञात किया जा सकता है:

सूत्र: $P_0 = \dfrac{P_1 + D_1}{1 + K_e}$

जहां पर:

P_0 = अंश का प्रचलित बाजार मूल्य

K_e = समता पूंजी की लागत

D_1 लाभांश जो पहली अवधि के अन्त में प्राप्त होगा

P_1 पहली अवधि के अन्त में अंश का बाजार मूल्य

नई परियोजना को लागू करने के लिए निर्गमित किये जाने वाले अंशों की संख्या निम्न सूत्र से ज्ञात की जा सकती है :-

$$\Delta N = \frac{I - (E - nD_1)}{P_1}$$

Where :

n = Number of shares outstanding at the beginning of the period.

N = No. of New shares to be issued.

I = Total investment amount needed for the project.

E = Earning or net income of the firm during the period.

14.10 सारांश

लाभांश निर्णय लेते समय अंशधारियों की सम्पदा के मूल्य पर पड़ने वाले प्रभाव को ध्यान में रखा जाता है। यदि लाभांश भुगतान इस उद्देश्य की प्राप्ति में सहायक होता है तो लाभांश दिया जाता है, अन्यथा लाभों को प्रतिधारित करके विनियोजन कार्यक्रमों के वित्त पोषण हेतु उपयोग किया जाता है। इस प्रकार लाभांश निर्णय इस बात पर आधारित है कि यह अंशधारियों की संस्था में विनियोजित सम्पदा के मूल्य अर्थात अंशों का मूल्य बढ़ाने में कहां तक प्रभावशाली है। लाभांश नीति का मूल्यांकन करने के लिए अनेक प्रतिमान प्रस्तुत किये गये हैं। एक विचारधारा के अनुसार, जो कि वाल्टर, गॉर्डन आदि से सम्बन्धित हैं, के अनुसार लाभांश भुगतान अंशों के बाजार मूल्य को प्रभावित करते हैं। परिणाम स्वरूप लाभांश नीति फर्म के मूल्य के लिए प्रासंगिक है। दूसरी ओर मोदी ग्लियानी एवं मिलन की विचारधारा के अनुसार लाभांश निर्णय अप्रासंगिक है यह अंशों के बाजार मूल्य को प्रभावित नहीं करता, जिससे विनियोजक लाभांश या पूंजी लाभों के रूप में प्रत्याय से मूलत: उदासीन होते हैं।

14.11 शब्दावली

लाभांश नीति - वह नीति है जो लाभांश के रूप में वितरित किये जाने वाले लाभों की मात्रा निर्धारित करती है।

स्थिर लाभांश नीति - स्थिर दर से लाभांश की नीति है जो इसके अर्जन स्तर में उच्चावचनों के बावजूद प्रत्येक समय बनायी रखी जाती है।

कठोर लाभांश नीति - इस नीति में प्रबन्धक लाभ का अधिकांश भाग व्यवसाय में पुनर्विनियोजित करना चाहते हैं। सदस्यों को लाभांश कम से कम देते हैं इसलिए इस नीति को कठोर लाभांश कहते हैं।

14.12 स्वपरख प्रश्न

1. लाभांश नीति का अर्थ स्पष्ट कीजिए तथा एक समुचित लाभांश नीति के आवश्यक तत्वों को विस्तार से समझाइए।
2. लाभांश नीति तथा लाभांश नीति के प्रकारों की विवेचना कीजिए। सुस्थिर लाभांश नीति के लाभों की समीक्षा कीजिए।
3. लाभांश नीति से सम्बन्धित 'वाल्टर सूत्र' की समीक्षा कीजिए।
4. एक कम्पनी की लाभांश नीति को निर्धारित करने वाले घटकों का परीक्षण कीजिए।

14.13 व्यावहारिक प्रश्न

1. तीन कम्पनियों ए. लिमिटेड, बी. लिमिटेड तथा सी. लिमिटेड के बारे में निम्न विवरण उपलब्ध हैं -

A Limited	**B Limited**	**C Limited**
r = 15%	r = 5%	r = 10%
K_e = 10%	K_e = 10%	K_e = 10%
E = Rs. 8	E = Rs. 8	E = Rs. 8

इन कम्पनियों में प्रत्येक कम्पनी के एक समता अंश के मूल्य की गणना वाल्टर फार्मूले को लागू करके कीजिये जब लाभांश भुगतान अनुपात (अ) 25% (ब) 50%तथा (स) 75% हो। आप क्या निष्कर्ष निकालेंगे?

2. एक्स वाई जेड लिमिटेड के बारे में निम्न सूचनाएं उपलब्ध हैं -

EPS	Rs. 10
Rate of Return	20%
Required Rate of return on equity investment (K_e)	16%

यदि कम्पनी 50% अथवा 25% भुगतान अनुपात लागू करती है तो गॉर्डन मॉडल के द्वारा प्रति अंश बाजार मूल्य ज्ञात कीजिये।

The market price of a share as per Gardon Model:

(a) When 50% payout ratio P = Rs. 83.333

(b) When 25% payout ratio P = Rs. 250.

14.14 उपयोगी पुस्तकें

(i) अग्रवाल एवं अग्रवाल - वित्तीय प्रबन्ध के तत्व, रमेश बुक डिपो, जयपुर।

(ii) एम.आर.अग्रवाल - वित्तीय प्रबन्ध के मूल तत्व, गरिमा पब्लिकेशन, जयपुर।

इकाई संख्या - 15 : पूँजी बजटन (Capital Budgeting)

इकाई संरचना :

15.0 उद्देश्य
15.1 परिचय
15.2 पूंजी बजटन का अर्थ एवं परिभाषाएं
15.3 पूंजी बजटन की प्रक्रियाएं
15.4 पूंजी बजटन मूल्यांकन प्रविधियां
15.5 सारांश
15.6 शब्दावली
15.7 स्वपरख प्रश्न
15.8 व्यावहारिक प्रश्न
15.9 उपयोगी पुस्तकें

15.0 उद्देश्य

इस अध्याय को पढ़ने के पश्चात् आप समझ पायेंगे -

1. पूंजी बजटन क्या है?
2. पूंजी बजटन की प्रकृति एवं विशेषताएं
3. पूंजी बजटन के उद्देश्य एवं महत्व
4. परियोजनाओं के प्रकार
5. पूंजी बजटन निर्णयन के प्रकार
6. पूंजी बजटन के लिए आवश्यक सूचना
7. लागतें एवं लाभ अथवा रोकड़ प्रवाहों का अनुमान
8. पूंजी बजटन की तकनीकें
   - परम्परागत विधियां
   - अपहारित रोकड़ प्रवाह विधियां

15.1 परिचय

एक व्यावसायिक उपक्रम की सफलता के लिए पूंजी बजटन से बढ़कर अन्य कोई महत्वपूर्ण निर्णय क्षेत्र नहीं होता है। पूंजी बजटन प्रबन्ध की वह तकनीक है जिसके अन्तर्गत फर्म के लिए पूंजीगत व्यय का इस प्रकार नियोजन किया जाता है जिससे फर्म के उद्देश्यों की सरलता से प्राप्ति हो सके।

पूंजी व्यय का तात्पर्य ऐसे व्यय से होता है कि जिससे फर्म को अनेक वर्षों तक आय अथवा लाभ प्राप्त होता रहता है। लेखांकन में स्थायी सम्पत्तियों के क्रय अथवा विस्तार पर किये गये व्यय को ही पूंजी व्यय माना जाता है, लेकिन वित्तीय प्रबन्ध में पूंजी व्यय का दृष्टिकोण थोड़ा व्यापक होता है। वित्तीय प्रबन्ध विषय में पूंजी व्यय

तथा आगम व्यय में अन्तर, किये गये व्यय को रोकड़ में वापस प्राप्त करने में लगने वाले समय के आधार पर किया जाता है। आगम व्यय सामान्यतया एक-दो माह अथवा अधिक से अधिक एक वर्ष के अन्तर्गत वापस वसूल हो जाते है, जबकि पूंजी व्यय को वापस प्राप्त करने में अनेक वर्ष लग जाते है। अत: किसी परियोजना पर किये गये व्यय को पूंजी व्यय तभी कहा जायेगा, जब इसकी रोकड़ वसूली में एक से अधिक वर्ष लगे। स्थायी सम्पत्तियों का अधिग्रहण करने में किया गया व्यय पूंजी व्यय होता है, क्योंकि इन सम्पत्तियों से अगले अनेक वर्षों तक आय प्रवाहित होती रहेगी। कार्यशील पूंजी में स्थायी वृद्धि के लिए आवश्यक व्यय, विज्ञापन तथा अनुसंधान एवं विकास पर व्यय आदि पूंजी व्यय माना जाता है, क्योंकि ये फर्म की आय को दीर्घकाल तक प्रभावित करते हैं!

15.2 पूंजी बजटन का अर्थ एवं परिभाषाएं

पूंजी बजटन एक प्रबन्धकीय तकनीक है जिसका प्रस्तावित पूंजी व्ययों एवं उनके अर्थ प्रबन्धन पर विचार करने तथा उपलब्ध साधनों से सर्वोत्तम विनियोजन की योजना बनाने तथा उसे क्रियान्वित करने के लिए प्रयोग किया जाता है।

(1) **आर.एम. लिंच** के अनुसार, "पूंजीगत बजटन संस्था की दीर्घकालीन लाभदायकता (विनियोग पर प्रत्याय) को अधिकतम करने के उद्देश्य से उपलब्ध पूंजी के विकास के नियोजन से सम्बन्धित है।"

(2) **केलर एवं फरेरा** के अनुसार, "पूंजी बजटन किसी बजट अवधि में स्थायी सम्पत्तियों में विनियोग एवं व्यय के लिए बनाई गई योजनाओं का प्रतिनिधित्व करता है।“

पूंजी बजटन के उद्देश्य

1. **प्रस्तावित पूंजी व्ययों का मूल्यांकन**: पूंजी बजटन की सहायता से किसी संस्था द्वारा अपने भावी पूंजी व्ययों का मूल्यांकन किया जा सकता है। इससे प्रत्येक व्यय की सार्थकता को जांचा जा सकता है।
2. **प्राथमिकता**: पूंजी बजटन द्वारा विभिन्न परियोजनाओं का तुलनात्मक मूल्यांकन करके उनके बीच प्राथमिकताओं का निर्धारण किया जा सकता है।
3. **पूंजी व्ययों में समन्वय** : पूंजी बजटन का उद्देश्य विभिन्न विभागों द्वारा दिये जाने वाले विभिन्न पूंजी व्ययों में समन्वय एवं संतुलन स्थापित करना भी है।
4. **पूंजी व्ययों पर नियंत्रण:** पूंजी बजटन का एक प्रमुख उद्देश्य किसी संस्था के विभिन्न विभागों द्वारा किये जाने वाले पूंजी व्ययों को नियंत्रित करना है। इस हेतु वास्तविक व्ययों की तुलना पूर्व निर्धारित व्ययों से की जाती है।
5. **पूंजी व्ययों हेतु कोषों की व्यवस्था**: पूंजी बजटन द्वारा भविष्य में विभिन्न पूंजी परियोजनाओं पर होने वाले पूंजी व्ययों की जानकारी प्राप्त हो जाती है जिससे संस्था के प्रबन्धक समय पर वांछित राशि के लिए उचित कोषों की व्यवस्था कर लेते है।

पूंजी बजटन की आवश्यकता

प्रायः सभी प्रकार के व्यावसायिक उपक्रमों में कुल विनियोग का एक महत्वपूर्ण भाग पूंजी सम्पत्तियों में विनियोजित किया जाता है। पूंजी बजटन की आवश्यकता निम्नलिखित कारणों से होती है -

1. **श्रेष्ठ विकल्प के चुनाव** - प्रबन्ध के सामने अनेक परियोजनाएं हो सकती है। प्रबन्ध द्वारा पूंजी व्यय विश्लेषण की उपयुक्त तकनीकों का प्रयोग करके विभिन्न विकल्पों में से श्रेष्ठ विकल्प को चुना जा सकता है।
2. **हानि से बचना** - पूंजी व्यय प्रायः अधिक बड़ी राशि में लम्बी अवधि के लिए किया जाता है। पूंजी सम्पत्तियों में किया गया व्यय स्थायी प्रतिबन्धन होता है, अत: उसे बिना महत्वपूर्ण हानि उठाये परियोजनाओं से वापिस नहीं निकाला जा सकता है। अत: इस तरह की हानि से बचने के लिए पूंजी बजटन आवश्यक होता है।
3. **अनिश्चितता एवं जोखिमों का विश्लेषण** - पूंजी व्यय के निर्णय किसी एक ही वर्ष की अवधि से सम्बन्धित नहीं होते हैं, बल्कि इनका प्रभाव अनेक वर्षों तक रहता है। अत: इन अनिश्चितताओं एवं जोखिमों का अनुमान लगाने तथा इन्हें कम करने के लिए पूंजी बजटन आवश्यक होता है।
4. **पूंजी सरंचना नियोजन** - पूंजी बजटन द्वारा पूंजी संरचना नियोजन स्वत: ही हो जाता है, क्योंकि किसी भी परियोजना की शुद्ध प्रत्याय पूंजी लागत पर निर्भर करती है, तथा पूंजी की लागत संस्था की पूंजी संरचना पर निर्भर करती है।
5. **अंशधारियों की सम्पदा को अधिकतम करना** - पूंजी बजटन द्वारा श्रेष्ठतम दीर्घकालीन विनियोजन परियोजनाओं का चयन संभव होता है, जिससे अधिकतम प्रत्याय की प्राप्ति होती है, परिणामस्वरूप अंशधारियों की सम्पदा में वृद्धि होती है।

पूंजी बजटन का महत्व -

पूंजी बजटन का महत्व किसी उपक्रम में केवल इसलिए नहीं होता कि पूंजीगत व्यय बड़ी राशि में किया जाता है इसका महत्व निम्न कारणों से भी होता है -

1. यह विक्रय बजट में दिखलाई गई अतिरिक्त विक्रय राशि को पूरा करने के लिए उत्पादन सुविधाओं को बढ़ाने की संभावना को स्पष्ट करता है।
2. यह नष्ट हुई अथवा अप्रचलित हुई सम्पत्तियों के पुनर्स्थापन के लिए उपलब्ध वैकल्पिक सम्पत्तियों की तुलनात्मक स्थिति प्रकट करता है तथा उनमें से श्रेष्ठ सम्पत्ति के चुनने में सहायक होता है।
3. यह स्थायी सम्पत्ति अथवा सम्पत्तियों की लाभदायकता की जांच में सहायक होता है।
4. यह दीर्घकालीन वित्तीय नियोजन करने तथा नीति निर्धारण में सहायक होता है।
5. यह लागत घटाने तथा नियंत्रित करने के उपायों पर विचार करते समय सहायक सिद्ध होता है।
6. इसकी सहायता से फर्म ह्रास तथा सम्पत्तियों के पुनर्स्थापन के सम्बन्ध में सुदृढ़ नीति का निर्माण कर सकती है।

15.3 पूंजी बजटन की प्रक्रियाएं

सामान्यतया एक बड़ी फर्म में पूंजी बजटन की निम्नलिखित प्रक्रियाएं अथवा विधियां अपनाई जाती है :

1. **विनियोग प्रस्तावों का उद्गम** - विनियोग प्रस्तावों का उद्गम प्रबन्ध के किसी भी स्तर पर हो सकता है। उदाहरण के लिए उत्पादन क्रिया में सुधार के लिए सुझाव किसी फोरमैन से आ सकता है। कुछ प्रस्ताव उच्च प्रबन्ध द्वारा किये जा सकते हैं।
2. **प्रस्तावों का प्रस्तुतीकरण** - जब विनियोग प्रस्तावों का उद्भव हो जाता है तब उन्हें उचित अधिकारियों के सामने व्यवस्थित प्रस्तावों के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। प्रायः प्रत्येक विभागाध्यक्ष अपने विभाग के पूंजी व्ययों का निर्धारण करता है तथा उन्हें उचित प्रस्ताव के रूप मे बजट अथवा योजना समिति को प्रस्तुत करता है।
3. **प्रस्तावों की जांच** - जब विभिन्न विभागों द्वारा विनियोग प्रस्ताव बजट समिति के पास भेजे जाते हैं तब बजट समिति इन प्रस्तावों की गहराई से जांच करती है। जिन प्रस्तावों को जांच के बाद उपयुक्त पाया जाता है, उनका आगे आर्थिक विश्लेषण किया जाता है।
4. **प्रस्तावों का आर्थिक विश्लेषण** - जिन प्रस्तावों को आर्थिक जांच के बाद बजट समिति विचारणीय मानती है, उनका प्रारम्भिक विश्लेषण किया जाता है। इस विश्लेषण में प्रत्येक परियोजना की लागत एवं आर्थिक लाभों का विश्लेषण किया जाता है।
5. **परियोजना का चयन** - जब विभिन्न परियोजनाओं का आर्थिक विश्लेषण किया जाता है, तब उनमें से उन परियोजनाओं को छोड़ दिया जाता है, जो अनार्थिक अथवा अलाभप्रद होती है। जो लाभदायक परियोजनाएं बच जाती हैं, उनमें से फर्म के वर्तमान साधनों व भावी साधनों को देखते हुए विभिन्न परियोजनाओं को फर्म की पूर्व निर्धारित प्राथमिकताओं के अनुसार चुना जाता है।
6. **परियोजना पर अन्तिम निर्णय** - बजट समिति विभिन्न परियोजनाओं का विश्लेषण करके उसमें से उपयुक्त परियोजनाओं को चुनती है तथा उन्हें विस्तृत सिफारिशों के साथ संचालक मण्डल के पास भेज देती है। संचालक मण्डल उनकी अनिवार्यता, लाभदायकता तथा उपलब्ध साधनों को ध्यान में रखकर अपना अन्तिम निर्णय घोषित करता है।
7. **पूंजी बजट निर्माण** - विभिन्न पूंजी व्यय प्रस्तावों पर संचालक मण्डल की स्वीकृति मिल जाने पर उनके लिए कोषों का नियोजन किया जाता है। कोषों के नियोजन की व्यवस्था करना ही पूंजी बजट कहलाता है।
8. **पूंजी व्ययों का अधिकरण** - किसी परियोजना को जब पूंजी बजट में सम्मिलित कर लिया जाता है तब विभिन्न विभागाध्यक्षों को अपने-अपने विभागों की परियोजनाओं को क्रियान्वित करने हेतु अधिकृत किया जाता है।
9. **परियोजना का क्रियान्वयन** - परियोजना के व्यय के लिए जब खर्चों अथवा व्यय की स्वीकृति प्रदान कर दी जाती है तब परियोजना का क्रियान्वयन विभिन्न चरणों में किया जाता है।

10. **अनुवर्तन** - परियोजना के क्रियान्वयन में वास्तविक व्यय का बजट व्ययों से समय-समय पर मिलान किया जाता है तथा अन्तर पूर्व निर्धारित सीमा से अधिक होता है तो इसका विश्लेषण किया जाता है तथा लागत अनुमानों में संशोधन किया जाता है अथवा लागत नियंत्रण के लिए प्रभावी कदम उठाये जाते है।

पूंजी व्यय परियोजनाओं के प्रकार -

प्रायः पूंजी व्यय निम्न प्रकार की परियोजनाओं के जाते हैं -

(i) **विस्तार परियोजनाएं** - जब एक व्यवसाय अपनी विद्‌यमान परियोजनाओं का विस्तार करता है, तब विस्तार निर्णय करने होते है। नई मशीनों एवं भवनों का क्रय, वर्तमान मशीनों व भवनों के विस्तार, दूसरी व्यावसायिक इकाइयों का क्रय आदि।

(ii) **पुनर्सस्थापन परियोजनाएं** - मशीनों का लगातार प्रयोग करने से वे नष्ट हो जाती है। कुछ मशीनें नष्ट तो नहीं होती हैं, परन्तु अच्छी किस्म की नई मशीनों के आ जाने के कारण अप्रचलित हो जाती है। दोनों ही स्थितियों में मशीनों का पुनर्सस्थापन आवश्यक होता है।

(iii) **परिवर्द्धन परियोजनाएं** - बाजारों में माल की खपत अधिक बढ़ाने, नये बाजार प्राप्त करने अथवा वस्तु की किस्म या रूप में परिवर्तन करने से सम्बन्धित परियोजनाएं इस वर्ग में सम्मिलित की जाती है।

(iv) **उत्पादन अथवा प्रक्रिया विकास परियोजनाएं** - नये उत्पादों का विकास करने अथवा पुराने उत्पादों के निर्माण की प्रक्रिया में सुधार करके लागत कम करने अथवा लाभ बढ़ाने के उद्देश्य से इस तरह की परियोजनाएं प्रारम्भ की जाती है।

(v) **गृह व्यवस्थी परियोजनाएं** - ये वे परियोजनाएं होती हैं, जिनमें विनियोग करने से प्रत्यक्ष रूप से प्रत्याय प्राप्त नहीं होती है किन्तु इस परियोजनाओं पर किये गये व्यय से कर्मचारियों की कुशलता तथा मनोबल बढ़ता है।

(vi) **शोध एवं विकास परियोजनाएं** - उपक्रम के विभिन्न कार्य क्षेत्रों के सम्बन्ध में किये जाने वाले शोध एवं विकास की योजनाएं इनके अन्तर्गत सम्मिलित की जाती है। बाजार शोध नवीन वस्तु की खोज, उत्पादन की किस्म सुधार के लिए खोज इत्यादि शोध एवं विकास परियोजनाएं होती है।

पूंजी बजटन में महत्वपूर्ण विचाराणीय घटक

पूंजी व्यय निर्णय करते समय निम्न महत्वपूर्ण तथ्यों अथवा घटकों पर सावधानीपूर्वक विचार करना चाहिए।

1. **शुद्ध विनियोग की राशि अथवा कुल रोकड़ बहिर्वाह** - शुद्ध विनियोग क तात्पर्य किसी परियोजना में लगने वाली कुल धन राशि से होता है जो मुद्रा में निर्धारित की जाती है। यह राशि कुल रोकड बहिर्वाह के बराबर होती है।

   प्रतिस्थापन परियोजना की स्थिति में पुरानी सम्पत्ति का नई सम्पत्ति से प्रतिस्थापन किया जाता है, अत: नई सम्पत्ति में विनियोग की शुद्ध राशि ज्ञात करते समय उसकी लागत व स्थापना व्ययों में से पुरानी सम्पत्ति को बेचने से प्राप्त अवशिष्ट या

निस्तारण मूल्य को घटा दिया जाता है। इस प्रकार ज्ञात राशि शुद्ध विनियोग राशि कहलाती है।

2. **शुद्ध रोकड़ अन्तर्वाह अथवा रोकड़ लाभ** - पूंजी लय निर्णयों में परियोजना की शुद्ध विनियोजन राशि ज्ञात करने के पश्चात् उस परियोजना से प्राप्त होने वाले भावी शुद्ध रोकड़ अन्तर्वाह अथवा लाभों की गणना की जाती है। शुद्ध रोकड़ अन्तर्वाह का तात्पर्य पूंजी 'सम्पत्ति पर ह्रास घटाने से पूर्व परन्तु कर घटाने के बाद बची राशि से होता है।
3. **अन्तिम रोकड़ अन्तर्वाह** - अन्तिम रोकड़ अन्तर्वाहों के अन्तर्गत अवशिष्ट या निस्तारण मूल्य तथा मुक्त की गई कार्यशील पूंजी को शामिल किया जाता है। किसी भी सम्पत्ति की बिक्री से प्राप्त रोकड़ को अवशिष्ट या निस्तारण मूल्य कहते हैं, जिसे अन्तिम वर्ष का रोकड़ अन्तर्वाह माना जाता है। इस मूल्य में से सम्पत्ति को हटाने की लागत को समायोजित किया जाना चाहिए। इसी प्रकार परियोजना अवधि की समाप्ति पर मुक्त की गई कार्यशील पूंजी की राशि को अन्तिम वर्ष के रोकड़ प्रवाहों में सम्मिलित किया जाता है।
4. **ह्रास एवं सम्पत्ति की बिक्री या निस्तारण पर लाभ-हानि का व्यवहार** - भारतीय कम्पनी अधिनियम, 1958 की अनुसूची XIV के अनुसार विभिन्न सम्पत्तियों पर मूल्य ह्रास अपलिखित मूल्य विधि सीधी रेखा पद्धति अथवा कोई भी ऐसी विधि से लगाया जा सकता है, जिसके अन्तर्गत सम्पत्ति के मूल्य का 95 प्रतिशत उसके जीवनकाल में अपलिखित हो सके। सम्पत्ति को बेचते समय या उसके बेकार हो जाने पर उसके निस्तारण मूल्य की तुलना अपलिखित मूल्य से करके पूंजी लाभ या पूंजी हानि की गणना की जाती है।
5. **परियोजना का जीवनकाल** - प्रत्येक परियोजना का एक निश्चित जीवनकाल होता है जिसमें उस परियोजना से आय प्राप्ति की आशा होती है। इस जीवनकाल का निर्धारण सम्पत्ति की प्रकृति, उसके उपयोग, रखरखाव, तकनीकी परिवर्तन आदि को ध्यान में रखकर किया जाता है। हमें सम्पत्ति के आर्थिक जीवनकाल पर ध्यान देना चाहिए।
6. **वांछित न्यूनतम प्रत्याय दर** - उपक्रम के प्रबन्धकों की दृष्टि से यह वह न्यूनतम दर होती है जिसके प्राप्त होने पर ही किसी पूंजी विनियोग निर्णय को स्वीकार किया जाता है। यदि प्रत्याय इससे कम होती है तो उसे स्वीकार नहीं किया जा सकता है।
7. **अवसर लागत** - पूंजी व्यय निर्णयों में अवसर लागत की धारणा का अत्यधिक महत्व होता है। किसी विनियोग प्रस्ताव को स्वीकार करने की अवसर लागत उसके फलस्वरूप वैकल्पिक आय की होने वाली हानि होती है।
8. **अप्रचलन से जोखिम** - अत: किसी भी परियोजना का चुनाव करते समय उसके अप्रचलन से उत्पन्न होने वाली जोखिमों पर गहराई से विचार किया जाना चाहिए। इन जोखिमों से बचने के लिए उन परियोजनाओं को चुना जा सकता है जिनकी पुनर्भुगतान अवधि कम से कम हो।
9. **उपलब्ध कोष** - पूंजी व्यय निर्णयों का सम्बन्ध अधिक विनियोजन से होता है। अत: किसी परियोजना को स्वीकार करने से पूर्व संस्था के आन्तरिक तथा बाह्य वित्तीय

साधनों पर पूर्ण रूप से विचार कर लिया जाना चाहिए तथा ऐसी परियोजनाओं को स्वीकार नहीं करना चाहिए जिनके लिए संस्था के पास साधन नहीं है।

10. **गैर आर्थिक कारक** - पूंजी व्यय निर्णयों को करते समय केवल आर्थिक तत्वों पर ही नहीं, गैर आर्थिक तत्वों पर भी विचार करना होता है। चुनी जाने वाली परियोजना का कर्मचारियों के मनोबल एवं अनुशासन पर क्या प्रभाव होगा? क्या सरकारी नीति इनके प्रतिकूल तो नहीं है? क्या श्रम संघ उसका विरोध तो नहीं करेंगे? आदि प्रश्नों पर विचार करना चाहिए।

15.4 पूंजी बजटन मूल्यांकन प्रविधियां

1. **पुनर्भुगतान अथवा अदायगी अवधि विधि** -

पूंजी व्यय का मूल्यांकन करने के लिए प्रयुक्त की जाने वाली विधियों में यह सबसे सरल तथा सबसे अधिक प्रचलित विधि है। किसी परियोजनाओं में विनियोजित राशि जितनी अवधि में वापस प्राप्त हो जाती है, उस अवधि को पुनर्भुगतान अवधि कहते है। विनियोजित पूंजी से प्रति वर्ष जो आय अर्जित की जाती है अथवा इस बचत प्राप्त की जाती है उसे रोकड़ बचत अथवा 'शुद्ध करोड़ अन्तर्वाह' कहा जाता है। इस शुद्ध रोकड़ अन्तर्वाह के आधार पर पूंजी सम्पत्ति में किये गये विनियोग के पुनर्भुगतान की अवधि ज्ञात की जाती है। यदि सभी वर्षों में शुद्ध रोकड़ अन्तर्वाह की राशि समान रहती है तो विनियोजित राशि में इस रोकड़ अन्तर्वाह की वार्षिक राशि का भाग देकर परियोजना के पुनर्भुगतान की अवधि ज्ञात कर ली जाती है।

(i) **प्रति वर्ष समान शुद्ध रोकड़ अन्तर्वाह होनें पर** - सम्पत्ति में किये विनियोग से यदि प्रति वर्ष समान शुद्ध रोकड़ अन्तर्वाह होता है तो परियोजना के पुनर्भुगतान की अवधि को निम्न सूत्र की सहायता से ज्ञात किया जा सकता है -

$$Pay\,Back\ period = \frac{Intial\ Investment(1)}{Net\ Annual\ Cash\,\text{in f}\ lows}$$

(ii) **प्रति वर्ष असमान रोकड़ अन्तर्वाह होने पर** - जब किसी सम्पत्ति से प्रति वर्ष समान रोकड़ अन्तर्वाह नहीं होता है, तब पुनर्भुगतान अवधि की गणना संचयी बचत की सहायता से की जाती है। प्रत्येक वर्ष की बचत को अगले वर्ष की बचत की राशि में उस समय तक जोड़ा जाता है जब तक संचयी बचत की राशि सम्पत्ति में किये गये कुल विनियोग की राशि के बराबर नहीं हो जाती है। जिस अवधि की बचत विनियोग की वास्तविक लागत के बराबर हो जाती है, उसी अवधि को पुनर्भुगतान अवधि कहेंगे। सूत्र के रूप में इसे निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है-

$$Pay\,Back\ period = (Completed\,Years)\frac{Intial + Investment - Cash\,\text{in f}\ low\,in\,completed\ years\,before\ pay\,back\ year}{Cash\ flow\,\text{in t}\,he\ pay\,back\ year}$$

निर्णय मापदण्ड :

एक ही परियोजना की स्थिति में यदि यह अवधि प्रबन्ध की स्वीकार्य अवधि के बराबर अथवा उससे कम होती है तो उस परियोजना को स्वीकार कर लिया जाता है अन्यथा अस्वीकार कर दिया जाता है। एक से अधिक वैकल्पिक परियोजनाओं में से किसी एक

ही परियोजना को इस विधि के अनुसार चुनना हो तो उस परियोजना को चुना जाता है, जिसकी पुनर्भुगतान अवधि सबसे कम हो।

2. **औसत प्रत्याय दर विधि**

इस विधि के अनेक नाम है। इसे लेखांकन प्रत्याय दर विधि या विनियोग पर प्रत्याय या औसत प्रत्याय दर या असमायोजित प्रत्याय दर विधि भी कहते है। इस विधि में समय समायोजन नहीं किया जाता है। इस विधि के अनुसार जब विभिन्न परियोजनाओं का मूल्यांकन करके उनमें से किसी एक को चुनना होता है तब सभी परियोजनाओं की प्रत्याय दर ज्ञात की जाती है तथा सबसे ऊंची प्रत्याय दर वाली परियोजना को स्वीकार कर लिया जाता है।

गणना विधि :

(i) प्रारम्भिक विनियोग या विनियोग की मूल लागत पर प्रत्याय दर

$$\frac{Average\ Rate\ of\ Return}{ARR} = \frac{Average\ Annual\ Income\ After\ Tax\ \&\ Dep.}{Initial\ /\ Original\ Investment} \times 100$$

(ii) औसत विनियोग पर प्रत्याय दर:

(अ) यदि कर व ह्रास के पश्चात् लाभ ज्ञात हो -

$$ARR = \frac{Average\ Annual\ Income\ After\ Tax\ \&\ Dep.}{Average\ Investment} \times 100$$

(ब) प्रतिस्थापन परियोजनाओं की दशा में प्रत्याय दर

$$ARR = \frac{Increase\ in\ Annual\ Profit\ After\ Tax\ \&\ Dep.}{Incremental\ Investment} \times 100$$

यहां औसत विनियोग:

$$Average\ Investment = \frac{Initial\ Investment + Salvage\ Value}{2}$$

यदि कार्यशील पूंजी भी लगाई जाती हो तो औसत विनियोग की गणना निम्न सूत्र की सहायता से की जाएगी-

$$Average\ Investment \left(\frac{Initial\ Investment + Salvage\ Value}{2} \right) + Net\ Working\ Capital$$

निर्णय मापदण्ड:

औसत प्रत्याय दर विधि के अन्तर्गत किसी परियोजना को स्वीकृत या अस्वीकृत करने हेतु सामान्यतया सभी संस्थाएं प्रत्याय की एक न्यूनतम दर निर्धारित कर लेती है। इस न्यूनतम दर से अधिक प्रत्याय देने वाली योजनाओं को स्वीकृत कर दिया जाता है तथा न्यूनतम प्रत्याय दर से कम प्रत्याय वाली परियोजनाओं को अस्वीकृत कर दिया जाता है।

3. **समय समायोजित प्रत्याय दर विधियां**

पुनर्भुगतान अवधि विधि तथा लेखांकन विधि या विनियोग पर प्रत्याय विधि में 'समय-कारक' पर विचार नहीं किया जाता है। अत: वे विधियां दोषपूर्ण है। "आज वित्तीय-

प्रबन्धक के भावी वचनबद्धता तथा परियोजनओं से सम्बन्धित निर्णयों में समय-समायोजित दर अत्यधिक महत्वपूर्ण औजार बन गई है।" समय-समायोजित प्रत्याय दर विधि इस धारणा पर आधारित है कि आज के एक वर्ष के बाद या किसी अन्य अवधि के बाद प्राप्त होने वाला एक रूपया वर्तमान में प्राप्त होने वाले एक रूपये से कम मूल्यवान होता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि भविष्य में प्राप्त होने वाले एक रूपये का मूल्य वर्तमान काल के एक रूपये से कम ही होगा। किसी विनियोग अथवा परियोजना से भविष्य में प्राप्त होने वाली आयों का समय-समायोजन किया जाना चाहिये तथा उसकी भावी आयों के वर्तमान मूल्य की तुलना करके निर्णय लेना चाहिए।

समय समायोजित प्रत्याय दर विधियों के अन्तर्गत निम्न प्रमुख विधियां है-

1. **शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि**

   इस विधि में विनियोग पर प्राप्त रोकड़ अन्तर्वाहों का प्रबन्ध द्वारा निर्धारित अपेक्षित प्रत्याय दर से बट्टा करके वर्तमान मूल्य ज्ञात किया जाता है। इस वर्तमान मूल्य की विनियोग लागत से तुलना की जाती है। यदि इस तुलना में विनियोग से प्राप्त अन्तर्वाहों के वर्तमान मूल्य विनियोग की लागत के बराबर अथवा उससे अधिक होता है तो विनियोग प्रस्ताव अथवा परियोजना को स्वीकार कर लिया जाता है अन्यथा अस्वीकार कर दिया जाता है। रोकड़ अन्तर्वाहों का वर्तमान मूल्य विनियोग या परियोजना की लागत से जितना अधिक होता है, वह विनियोग उतना ही अधिक आकर्षक माना जायेगा।

गणना विधि -

शुद्ध वर्तमान मूल्य की गणना के लिए निम्नलिखित प्रक्रिया अपनाई जाती है-

(1) **न्यूनतम प्रत्याय दर का निर्धारण** - शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि में रोकड़ अन्तर्वाहों एवं बहिर्वाहों के वर्तमान मूल्य की गणना बट्टा दर या ब्याज दर के आधार पर की जाती है। यह बट्टा दर या ब्याज दर संस्था की पूंजी लागत होती है जिसकी परियोजना से अर्जन की न्यूनतम अपेक्षा की जाती है।

(2) **वर्तमान मूल्य की गणना** - वर्तमान मूल्य की गणना हेतु परियोजना से प्राप्त रोकड़ अन्तर्वाहों को प्रबन्ध द्वारा निर्धारित दर से बट्टा करके रोकड़ अन्तर्वाहों का वर्तमान मूल्य ज्ञात कर लिया जाता है। परियोजना से रोकड़ बहिर्वाह परियोजना अवधि के प्रारम्भ में ही होता है अत: परियोजना की लागत ही वर्तमान मूल्य होता है, किन्तु यदि परियोजना अवधि के दौरान भी रोकड़ बहिर्वाह होते है तो उनका वर्तमान मूल्य बट्टा दर का प्रयोग करते हुए किया जा सकता है।

(3) **शुद्ध वर्तमान मूल्य की गणना** - शुद्ध वर्तमान मूल्य की गणना रोकड़ अन्तर्वाह के कुल वर्तमान मूल्य में से रोकड़ बहिर्वाहों के कुल वर्तमान मूल्य को घटाकर की जाती है। इस हेतु निम्न सूत्र भी प्रयुक्त किया जाता है:

Net Present Value (NPV) = Present Value of Cash Inflow - Present Value of Cash Outflows

अथवा

$$Net\ Present\ Value = \frac{C_1}{(1+r)} + \frac{C_2}{(1+r)} + ...\frac{C_n}{(1+r)^n} - Injitial\ Investment$$

निर्णय मापदण्ड - शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि से परियोजनाओं का चयन शुद्ध वर्तमान मूल्य के धनात्मक होने पर ही करते हैं, ऋणात्मक होते ही प्रस्ताव अस्वीकृत हो जाता है। एक से अधिक परस्पर अपवर्जी परियोजनाओं की दशा में जिस परियोजना का शुद्ध वर्तमान मूल्य अधिकतम हो उसे प्राथमिकता दी जाती है ।

2. **लाभदायकता निर्देशांक अथवा लाभ-लागत अनुपात**

शुद्ध वर्तमान मूल्य पद्धति का एक सबसे बड़ा दोष यह है कि इस विधि द्वारा उन परियोजनाओं का मूल्यांकन नहीं किया जा सकता है, जिनकी प्रारम्भिक लागतों में बहु त अधिक अन्तर हो। इसके लिए लाभदायकता निर्देशांक अथवा लाभ-लागत अनुपात विधि का प्रयोग किया जाता है। यह विधि शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि के समान है। लाभदायकता निर्देशांक विधि में परियोजना से प्राप्त प्रत्यायों का प्रति रूपया वर्तमान मूल्य मापा जाता है। इसका मापन निम्न गणितीय सूत्र द्वारा किया जा सकता है -

$$PVI\ or\ PI\ \frac{Present\ Value\ of\ Cash\ Inflows}{Present\ Value\ of\ Cash\ Outflows}$$

निर्णय मापदण्ड - लाभदायकता निर्देशांक विधि के अन्तर्गत किसी भी परियोजना को तब ही स्वीकार किया जाता है - जब लाभदायकता निर्देशांक एक या अधिक हो। अनेक परियोजनाओं में से किसी एक को चुनना हो तो उसे चुनना चाहिए जिसका निर्देशांक सबसे अधिक हो।

3. **प्रत्याय की आन्तरिक दर विधि**

प्रत्याय की आन्तरिक दर वह दर होती है जिससे किसी परियोजना के वार्षिक रोकड़ अन्तर्वाहों का वर्तमान मूल्य उस परियोजना के वर्तमान विनियोग मूल्य अथवा परियोजना की वर्तमान लागत के बराबर हो जाता है।

इस विधि में प्रबन्धकों को सर्वप्रथम परियोजना में विनियोजित होने वाली राशि तथा उस परियोजना से प्राप्त होने वाले रोकड़ अन्तर्वाहों का अनुमान लगाना होता है। तत्पश्चात् परियोजना से प्राप्त रोकड अन्तर्वाहों का किसी दर से वर्तमान मूल्य परियोजना की विनियोजित राशि के बराबर किया जाता है। यदि वह दर इच्छित दर या बाधा दर या कट-ऑफ रेट से अधिक होती है जो परियोजना को स्वीकार कर लिया जाता है, अन्यथा अस्वीकार कर दिया जाता है।

गणना विधि -

प्रत्याय की आन्तरिक दर की गणना हेतु निम्न दो विधियों का प्रयोग किया जाता है-

1. वार्षिक विधि

2. भूल एवं सुधार विधि

1. **वार्षिकी विधि**

प्रत्याय की आन्तरिक दर ज्ञात करने हेतु निम्न दो परिस्थितियां हो सकती है-

(अ) प्रति वर्ष रोकड़ अंतर्वाह की राशि समान होने पर।

(ब) प्रति वर्ष रोकड़ अन्तर्वाह की राशि असमान होने पर।

(अ) प्रति वर्ष रोकड़ अन्तर्वाह की राशि समान होने पर

ऐसी स्थिति में प्रारम्भिक विनियोग की राशि में रोकड़ अन्तर्वाह की राशि का भाग दे दिया जाता है तथा प्राप्त भागफल की राशि को वार्षिक सारणी में दिये गये मूल्य के सामने देखा जाता है। यह भागफल राशि जिस दर के अन्तर्गत आती है, वही आन्तरिक प्रत्याय की दर होती है।

(ब) रोकड़ अन्तर्वाह असमान होने पर

इस प्रत्याय दर के आधार पर विभिन्न वर्षों के रोकड़ अन्तर्वाहों के वर्तमान मूल्य की गणना की जाती है। इसके पश्चात् विभिन्न वर्षों के अर्न्तवाहों के वर्तमान मूल्य के योग की विनियोग की लागत से तुलना की जाती है। यदि यह वर्तमान मूल्य विनियोग की लागत से अधिक आता है तो अगली जांच के लिए पहले से ऊंची दर का प्रयोग करना चाहिए और इसके विपरीत यदि विनियोग का वर्तमान मूल्य विनियोग की लागत से कम आता है तो अगली जांच के लिए पहले से नीची दर चुननी चाहिए। जो दर वर्तमान मूल्य विनियोग की लागत के लगभग समान हो जाये, वही सही प्रत्याय दर होगी। सही प्रत्याय दर ज्ञात करने के लिए अनुमानित आन्तरिक प्रत्याय दर के आसपास की दो दरों से रोकड़ अन्तर्वाहों का वर्तमान मूल्य ज्ञात कर निम्न सूत्र का प्रयोग करते हैं-

$$IRR = LDR \frac{\text{Re}\,sidue\,of\ LDR}{\text{Re}\,sidue\,of\ LDR - \text{Re}\,siude\,of\ HDR}(HDR - LDR)$$

Where IRR = Internal Rate of Return

LDR = Lower Discount Rate

HDR = Higher Discount Rate

निर्णय मापदण्ड - आन्तरिक प्रत्याय दर विधि के अन्तर्गत यदि आन्तरिक प्रत्याय दर इच्छित दर या कट-ऑफ रेट से अधिक होती है तो परियोजना को स्वीकार कर लिया जाता है, अन्यथा अस्वीकार कर दिया जाता है।

उदाहरण - पांच विनियोग प्रस्तावों के सम्बन्ध में वित्तीय समंक निम्न हैं -

Proposal	Initial Outlay Rs.	Net annual cash flow Rs.	life in years Rs.
A	60,000	18,000	15
B	88,000	15,000	25

C	2,000	1,000	5
D	20,000	3,000	10
E	42,000	15,000	20

इन परियोजनाओं का निम्न के अनुसार श्रेणियन कीजिए -

(i) Pay-back Period Method,

(ii) Average Rate of Return Method

(iii) Net Present Value Method, and

(iv) Present Value Index Method

The cost of capital being 6%

Solution:

(i) Ranking according to Pay-Back Method

Proposal (1)	**Initial Outlay** (2)	**Annual Cash** (3)	**Pay-back Period 2/3** (4)	**Rank** (5)
	Rs.	Rs.		
A	60,000	18,000	3.33 years	3
B	88,000	15,000	5.87 years	4
C	2,000	1,000	2 years	1
D	20,000	3,000	6.67 years	5
E	42,000	15,000	2.8 years	2

(ii) **Ranking according to Average Rate of Return Method**

Proposal (1)	**Annual Cash flow** (2)	**Annual Depreciation** (3)	**Annual Income after Dep.(2-3)** (4)	**Average Investment** (5)	**Average Rate of Return (4/5) x 100** (6)	**Rank** (7)
	Rs.	Rs.	Rs.	Rs.		
A	18,000	4,000	14,000	30,000	46.67%	3
B	15,000	3,520	11,480	44,000	26.09%	4
C	1,000	400	600	1,000	60%	2
D	3,000	2,000	1,000	10,000	10%	5
E	15,000	2,100	12,900	21,000	61.43%	1

(iii) **Ranking according to Net Present Value Method**

Proposal (1)	Life in Years (2)	Annual Cash flow (3)	Present Value Factor at 6% (4)	Present Value of Total Cash flow (3x4) (5)	Initial Outlay (6)	Net Present Values (5-6) (7)	Rank (8)
		Rs.		Rs.	Rs.	Rs.	
A	15	18,000	9.712	1,74,816	60,000	1,14,816	2
B	25	15,000	12.783	1,91,745	88,000	1,03,745	3
C	5	1,000	4.212	4,212	2,000	2,212	4
D	10	3,000	7.360	22,080	20,000	2,080	5
E	20	15,000	11.470	1,72,050	42,000	1,30,050	1

(v) Ranking according to Present Value Index Method

Proposal (1)	Present Value of Total Cash flow (2)	Initial Outlay (3)	Present Value Index $(2 \div 3)$ (4)	Rank (5)
	Rs.	Rs.		
A	1,74,816	60,000	2.91	2
B	1,91,745	88,000	2.18	3
C	4,212	2,000	2.11	4
D	22,080	20,000	1.10	5
E	1,72,050	42,000	4.10	1

15.5 सारांश

1. Net Cash Inflows = Net Sales - Operating Expenses - Depreciation - Tax + Depreciation
2. Pay back Period:

   (i) Pay back Period = $\frac{Initial\ Investment}{Net\ Annual\ Cash\ Inflow}$

   (ii) Post Pay back Profitability:

(a) **If Cash inflows are Even**

Annual Cash Inflows (Economic Life of Project - Pay back Period)

(b) **If Cash inflows are Unevan**

Total Cash inflows - Initial Investment

Criterion:

If Pay back Period < Standard Pay back : Accept the Proposal

If Pay back Period < Standard Pay back : Reject the Proposal

Preference should be given to the Project having Lowest Pay back period.

3. **Average Rate of Return or Accounting Rate of Return**

$$ARR = \frac{Net\ Annual\ Earnings\ after\ Tax}{Initial\ Investment} x100$$

$$ARR = \frac{Net\ Annual\ Earnings\ after\ Tax}{Initial\ Investment} x100$$

OR

$$ARR \quad \frac{Net\ Annual\ Cash\ Inflows - Annual\ Depreciation}{Average\ Investment} x100$$

$$\text{Average Investment} = \frac{Initial\ Investment + Scrap\ Value}{2}$$

Criterion:

If ARR > Minimum Desired Rate Accept the Proposal

If ARR < Minimum Desired Rate Reject the Proposal

4. Present Value Method:

(i) Net Present Value (NPV)= Total Present Value of Cash Inflows- Total Present value of cash Outflows or Initial Investment

Criterion:

If NPV > Zero Accept the Proposal

If NPV < Zero Reject the Proposal

(ii) Profitability Index or Present Value Index (PVI)

$$PVI = \frac{Present\ Value\ of\ Cash\ Inflows}{Present\ Value\ of\ Cash\ Outflows}$$

If PVI > I Accept the Proposal

If PVI < I Reject the Proposal

5. **Internal Rate of Return (IRR)**

Calculation of Present Value Factor

(i) When Cash inflows are Even = $\frac{Initial\ Investment}{Annual\ Cash\ Inflows}$

(ii) When Cash inflows are Uneven = $\frac{Initial\ Investment}{Average\ Annual\ Cash\ Inflows}$

$$IRR = LDR + \frac{P_1 - O}{P_1 - P_2}(HDR - LDR)$$

LDR = Lower Discount Rate

HDR = Higher Discount Rate

P_1 = Present value of Cash inflows at LDR

P_2 = Present value of Cash inflows at HDR

O = Initial Investment or Capital Outlay

Criterion:

If IRR > Cost of Capital Accept the Proposal

If IRR < Cost of Capital Reject the Proposal

15.6 शब्दावली

1. **पूंजी बजटन अथवा पूंजी व्यय निर्णय** से आशय पूंजी व्यय विकल्पों के उद्भव, मूल्यांकन, चयन तथा अनुवर्तन की सम्पूर्ण प्रक्रिया से है।
2. **रोकड़ अन्तर्वाहों** से आशय ह्रास पूर्व किन्तु कर पश्चात् शुद्ध लाभों से है।
3. **शुद्ध वर्तमान मूल्य** से आशय संस्था की पूंजी लागत पर अपहारित भावी रोकड़ अन्तर्वाहों के वर्तमान मूल्य तथा रोकड़ बहिर्वाहों के वर्तमान मूल्य के अन्तर से है।
4. **लाभदायकता सूचकांक** अपेक्षित प्रत्याय दर पर भावी रोकड़ अन्तर्वाहों के वर्तमान मूल्य का प्रारम्भिक विनियोग लागत से अनुपात है।

15.7 स्वपरख प्रश्न

1. पूंजी बजटन से आप क्या समझते है ? एक औद्योगिक संस्था की दृष्टि से पूंजी बजटन के महत्व की विवेचना कीजिये।
2. पूंजी बजट प्रस्तावों के मूल्यांकन की विभिन्न विधियों की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये। उनके लाभ एवं हानियों का विवेचन कीजिये।
3. पूंजी व्यय प्रस्तावों के मूल्यांकन हेतु वर्तमान मूल्य विधि तथा आन्तरिक प्रत्याय दर विधि में अन्तर स्पष्ट कीजिये।

15.8 व्यावहारिक प्रश्न

1. दो वैकल्पिक पूंजी निर्णय प्रस्ताव प्रत्येक की लागत एक लाख रूपया, से निम्नलिखित शुद्ध रोकड़ अंतर्वाह उपलब्ध है -

Years	1	2	3	4	5
X	Rs.30,000	40,000	50,000	30,000	20,000
Y	Rs.10,000	30,000	40,000	60,000	40,000

निम्न आधारों पर इन प्रस्तावों का मूल्यांकन कीजिये - (अ) अदायगी अवधि विधि; (ब) अदायगी अवधि पश्चात लाभदायकता; (स) विनियोग पर प्रत्याय विधि; तथा (द) शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि।

10 प्रतिशत वार्षिक बट्टा दर का प्रयोग कीजिये।

15.9 उपयोगी पुस्तकें

1. अग्रवाल एवं अग्रवाल – **वित्तीय प्रबन्ध के तत्व,** रमेश बुक डिपो, जयपुर
2. एम.आर. अग्रवाल – **वित्तीय प्रबन्ध के मूल तत्व,** गरिमा पब्लिकेशन, जयपुर

इकाई-16 :वित्त प्राप्ति के अल्पकालीन तथा मध्यम कालीन साधन (Source of Short-term and Medium-term Finance)

इकाई संरचना

16.1 परिचय
16.2 व्यापारिक साख को निर्धारित करने वाले घटक
16.3 व्यापारिक साख के प्रकार
16.4 व्यापारिक साख के गुण
16.5 अल्पकालीन बैंक वित्त अथवा साख
16.6 आयातक के लिए अल्पकालीन वित्त की आवश्यकता
16.7 अल्पकालीन वित्त के चरण
16.8 अल्पकालीन वित्त व्यवस्था के स्रोत
16.9 विनिमय बिलों की स्वीकृति तथा कटौती
16.10 स्वीकृति गृहों की भूमिका
16.11 कटौती गृहों की भूमिका
16.12 आयतकों के लिए अल्पकालीन वित्त की आवश्यकता
16.13 बैंक साख का नियमन
16.14 जन-निक्षेप
16.15 नवीन वित्तीय पुर्जे
16.16 शब्दावली
16.17 अभ्यास प्रश्न
16.18 व्यावहारिक प्रश्न
16.19 संदर्भ ग्रंथ सूची

16.1 परिचय (Introduction)

किसी भी व्यावसायिक उपक्रम को सुचारू रूप से संचालित करने के लिए वित्तीय संसाधनों की आवश्यकता पड़ती है। कार्यशील पूँजी की अस्थायी आवश्यकताओं की पूर्ति अल्पकालीन वित्तीय साधनों से की जाती है तथा स्थायी सम्पत्तियों की व्यवस्था दीर्घकालीन पूँजी से की जाती है। कार्यशील पूँजी से तात्पर्य उस पूँजी से है जो व्यवसाय में वर्ष पर्यन्त काम आती है तथा इसकी प्राप्ति व्यापार के समापन पर ही सम्भव है। अल्पकालीन वित्त की अधिकतम अवधि एक लेखा वर्ष मानी जाती हैं। अल्पकालीन

वित्त की आवश्यकता कार्यशील पूँजी (कच्चे माल की खरीद, किराया, कर, बीमा, मजदूरी, वेतन, विद्युत एवं तैयार माल को उधार विक्रय की व्यवस्था आदि) के लिए होती है। वित्त प्राप्ति के अल्पकालीन एवं मध्यमकालीन वित्तीय साधन निम्नलिखित है:-

(अ) **बाह्य स्रोत (External Resources)**

1. व्यापारिक साख
2. अल्पकालीन बैंक वित्त
3. जन-निक्षेप
4. अन्तर कम्पनी निक्षेप
5. नवीन पुर्जे

(आ)**आन्तरिक स्रोत (Internal Resources)**

1. ग्राहकों से अग्रिम
2. प्रतिधरित अर्जनें
3. अन्य स्रोत

(अ)**बाह्य स्रोत (External Resources)**

1. **व्यापारिक स्रोत (Trade Resources):** भारतीय व्यापारिक परम्पराओं के अनुसार एक लेनदार अपने ग्राहकों को आदिकाल से ही साख प्रदान करता आया है। सामान्यत: पूर्तिकर्ता अथवा थोक व्यापारी अपने खुदरा व्यापारी को सदैव सात दिन से एक माह तक की उधार सुविधा प्रदान करता है इसे व्यापारिक साख कहते है। यह साख उन्हीं ग्राहकों को प्राप्त होती है जिनकी भुगतान करने की क्षमता श्रेष्ठ होती है। जो ग्राहक निर्धारित समय व शर्तों के अनुसार भुगतान करने में असमर्थ होते है उनको इस साख का लाभ प्राप्त नहीं होता है। एक व्यापारिक संस्था या प्रतिष्ठान दूसरे व्यापारिक संस्था या प्रतिष्ठान को माल अथवा सेवायें बेचकर व्यापारिक साख प्रदान करती है।

   एक बड़ी व्यवसायिक संस्था छोटी व्यवसायिक संस्था को माल अथवा सेवायें एक निशचित समयावधि के लिए उधार बेचती है। विक्रय करने वाली संस्था अपनी दूसरी क्रेता संस्थाओं को भुगतान शीघ्र प्राप्त करने के लिए नकद बहे की सुविधा प्रदान करती है। निर्धारित तिथि तक यदि क्रेता संस्था भुगतान नहीं करती है तो वस्तु या सेवा की विक्रेता संस्था क्रेता संस्था से मय ब्याज विक्रय मूल्य वसूली करती है।

   उदाहरण के लिए कोई पूर्तिकर्ता अथवा विक्रेता संस्था अपनी क्रेता संस्थाओं को 2 / 10 निवल 30 विक्रय शर्तों पर माल उधार बेचती है, तो इसका अर्थ है कि यदि क्रेता के पक्ष 10 दिन के बाद भुगतान करता है तो उसे बट्टे की छूट प्राप्त नहीं होगी और क्रेता पक्ष को 30 दिन में भुगतान करना अनिवार्य होगा अन्यथा विक्रय शर्तों के अनुसार एक निश्चित दर से ब्याज सहित भुगतान करना होगा तथा क्रेता पक्ष की साख भी खराब होगी जिसके परिणाम स्वरूप भविष्य में वस्तु अथवा सेवा बाजार में उधार नहीं प्राप्त होगी।

भारत में व्यापारिक साख अल्पकालीन वित्त का एक महत्तपूर्ण साधन मानी जाती है तथा कुल अल्पकालीन वित्त आपूर्ति का 25% से 50% धन व्यापारिक साख से ही प्राप्त होता है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण महाजन वर्ग में देखने को मिलता है। वे एक लाख रुपये की पूँजी से दो लाख रुपये का व्यापार करते हैं।

16.2 व्यापारिक साख को निर्धारित करने वाले घटक (Determinants of Trade Credit)

व्यापारिक साख भारत में नहीं अपितु वैश्विक स्तर पर भी पाई जाती है। व्यापारिक साख की उपलब्धता एवं उसकी मात्रा निम्नलिखित घटकों पर निर्भर करती है-

1. **जोखिम की प्रकृति**-व्यापारिक साख की मात्रा का निर्धारण जोखिम की प्रकृति एवं मात्रा के आधार पर किया जाता है। जोखिम की मात्रा अधिक होने पर साख सुविधा कम एवं अल्प समय के उपलब्ध कराई जाती है। जबकि इसके विपरीत जोखिम कम होने पर साख सुविधा अधिक एवं दीर्घकाल के लिए उपलब्ध कराई जाती है।
2. **उत्पादित वस्तु की स्थिति**-जिन उत्पादों का विक्रय आवर्त अनुपात अधिक होता है। वहां साख की अवधि कम होती है एवं जिन उत्पादों का विक्रय आवर्त अनुपात कम होता है वहां साख की अवधि अधिक पाई जाती है।
3. **व्यवसायिक प्रतियोगिता**-बाजार में व्यवसायिक प्रतियोगिता की स्थिति सभी स्थानों पर देखने को मिलती है। नई व्यवसायिक संस्थायें अपने विक्रय में वृद्धि करने के लिए ग्राहकों को सरल एवं सुविधाजनक साख सुविधायें प्रदान करती है जिससे ग्राहक आकर्षित हो सके। वर्तमान समय में सुविधाजनक साख के अनेक स्वरूप बाजार में देखते को मिलते हैं। यथा- व्यापारिक बट्टा, शून्य ब्याज दर पर वस्तुओं का विक्रय, किश्त भुगतान प्रणाली के माध्यम से विक्रय, त्यौहारों के अवसरों पर मेले एवं प्रदर्शनियां लगाकर वस्तुओं का विक्रय, विक्रय उपरान्त सेवायें, दूरभाष पर आर्डर लेकर वस्तुओं की पूर्ति आदि। इसके विपरीत एकाधिकार की स्थिति में उधार की सुविधा लगभग नहीं के बराबर प्रदान की जाती है तथा पहले से स्थापित प्रतिष्ठित संस्थायें नई संस्थाओं की तुलना में उधार की सुविधा कठोर शर्तें पर अति अल्पकालीन या अल्पकाल के प्रदान करती है।
4. **विक्रेता की आर्थिक स्थिति**-आर्थिक दृष्टि से कमजोर व्यक्ति अल्पावधि के लिए साख-सुविधा प्रदान कर सकते हैं जबकि आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न व्यक्ति अल्पावधि के लिए साख सुविधा प्रदान कर सकते हैं। परन्तु उनकी शर्तें कठिन होती है।
5. **क्रेता की आर्थिक स्थिति**-क्रेता की आर्थिक स्थिति भी साख-सुविधा को प्रभावित करती है। आर्थिक दृष्टि से सुदृढ़ क्रेता साख-सुविधा का चयन अपनी अनुकूल शर्तों के आधार पर कर सकता है। जबकि कमजोर आर्थिक स्थिति वाले क्रेता को साख मिलना भी कठिन होता है।
6. **नकद बट्टा**-नकद बट्टा साख-सुविधा को अधिक प्रभावित करता है। बट्टे की सुविधा अधिक दी जाने पर साख की अवधि में कमी व बट्टे की सुविधा कम प्रदान किये जाने पर साख की अवधि मैं वृद्धि की स्थिति पाई जाती है।

7. **बाजार की प्रकृति**-स्थानीय बाजारों में विक्रेता द्वारा अपने ग्राहकों को अधिक साख सुविधा प्रदान की जाती है क्योंकि सभी क्रेता स्थानीय होने के कारण विक्रेता से व्यक्तिगत रूप से जुड़े होते हैं। बाहरी बाजारों में विक्रेता का क्रेता पक्ष से व्यक्तिगत जुड़ाव एवं जान-पहचान नहीं होने के कारण कम साख सुविधा प्रदान की जाती है।

16.3 व्यापारिक साख के प्रकार (Types of Trade Credit)

व्यापारिक साख अनेक रूपों में प्राप्त हो सकती है। इसके प्रचलित रूप निम्न हैं-

1. **खुला खाता**-प्रत्येक व्यावसायिक संस्था के अनेक स्थायी ग्राहक होते हैं जो संस्था से माल का निरन्तर क्रय-विक्रय करते रहते हैं। ऐसे ग्राहकों को संस्थायें बाजार में प्रचलित उधार की शर्तों पर माल बेचती है। इसके लिए संस्था तथा ग्राहक के मध्य कोई औपचारिक समझौता नहीं होता है, परन्तु ग्राहक को एक निश्चित राशि तक माल निश्चित अवधि में भुगतान करने की शर्त पर उधार दिया जाता है। उधार की राशि का निर्धारण ग्राहक की आर्थिक स्थिति तथा भुगतान की पिछली प्रवृत्ति को ध्यान में रखकर किया जाता है। इस खाते पर ग्राहक से सामान्यत: कोई ब्याज वसूल नहीं किया जाता है।
2. **विनिमय विपत्र**-जब ग्राहक को खुले खाते की सुविधा उपलब्ध नहीं होती है तथा ग्राहक माल नकद खरीदने की स्थिति में नहीं होता है तो विनिमय विपत्र की विधि का प्रयोग किया जाता है। इस विधि में विक्रेता माल की राशि का बिल क्रेता पर लिख देता है, क्रेता उस पर अपनी स्वीकृति दे देता है। इस विपत्र को विक्रेता देय तिथि पर क्रेता के समक्ष प्रस्तुत कर देता है और क्रेता उसका भुगतान कर देता है। आजकल विनिमय विपत्रों के आधार पर माल के विक्रय का कार्य बहुत हो रहा है। इससे विक्रेता को यदि शीघ्र धन की आवश्यकता होती है तो बैंक से कटौती करा कर पैसा प्राप्त कर लेता है।
3. **प्रतिज्ञा विपत्र**-अनेक बार क्रेता माल खरीदने पर तुरन्त माल की राशि का प्रतिज्ञा-पत्र विक्रेता के नाम में लिख देता है। इसमें वर्णित तिथि को विक्रेता क्रेता से पैसा माँग लेता है तथा क्रेता इसका भुगतान कर देता है। प्रतिज्ञा-पत्रों का चलन भी बढ़ रहा है।

16.4 व्यापारिक साख के गुण (Merits of Trade Credit)

(i) सरलापूर्वक उपलब्ध हो जाती है।
(ii) किसी प्रकार की औपचारिकता की आवश्यकता नहीं होती है।
(iii) उधार की शर्तों में सरलता से परिवर्तन किया जा सकता है।
(iv) किसी सम्पत्ति पर प्रभार उत्पन्न नहीं होता है।
(v) यह लोचदार व्यवस्था है, क्योंकि व्यापारिक परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन किया जा सकता है।

व्यापारिक साख के दोष (Demerits of Trade Credit)

(i) माल उधार में महँगा मिलता है।
(ii) ग्राहक को प्रायः घटिया माल भी स्वीकार करना पड़ता है।
(iii) नये ग्राहकों अथवा संस्थाओं को यह सुविधा नहीं मिलती है।
(iv) समय पर भुगतान न करने पर ग्राहक की प्रतिष्ठा को धक्का लगता है।

(v) विक्रेता को अधिक कार्यशील पूँजी की व्यवस्था करनी होती है।

16.5 अल्पकालीन बैंक वित्त अथवा साख (Short-term Bank Finance or Credit)

बैंकों द्वारा अल्पकालीन वित्त निम्न रूपों में प्रदान किया जाता है-

(अ) **अधिविकर्ष (Overdraft)-**जिन ग्राहकों का बैंकों में चालू खाता होता है, बैंक उनको एक निश्चित सीमा तक अग्रिम की सुविधा दे सकता है, यही अधिविकर्ष कहलाता है। ग्राहक उस सीमा तक कभी भी अधिविकर्ष ले सकता है तथा कभी भी राशियों का भुगतान कर सकता है। ब्याज उसी राशि पर वसूल किया जाता है जो राशि वास्तव में प्रयोग की गई है।

(ब) **रोकड़ अथवा नकद साख (Cash Credit)-** व्यापारिक बैंक कैश क्रेडिट या नकद साख की सुविधा अपने ग्राहकों की अल्पकालीन वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए करते हैं। यह एक ऐसी शाश्वत् व्यवस्था है जिसके द्वारा बैंक निर्धारित सीमा के अंदर समय-समय पर ग्राहकों को पैसा निकालने की सुविधा देता है। ऐसी सुविधा वस्तुओं के स्कन्ध की जमानत अथवा ऐसे प्रतिज्ञा-पत्रों जिन पर किसी दूसरे व्यक्ति के हस्ताक्षर भी होते हैं, की जमानत पर दी जाती है।

(स) **व्यापारिक बिलों की कटौती अथवा क्रय (Discounting of Trade Bills or Purchase)-** विक्रेतागण अपने ग्राहकों पर विनिमय बिल लिखते हैं तथा उन बिलों को बैंकों से बट्टा करा लेते हैं अथवा बैंक उन बिलों का क्रय कर लेता है। इससे भी अल्पकालीन वित्त की प्राप्ति होती है। यह सुविधा देने से पूर्व ग्राहक की साख क्षमता की जाँच कर ली जाती है। बैंक इन बिलों को अग्रिमों के विरूद्ध प्रतिभूति रूप में रखते हैं।

(द) **साख-पत्रों का खोलना (Opening of Letters of Credit)-** अपने ग्राहकों के पक्ष में बैंक साख-पत्र खोलकर वस्तु / कच्चे माल के प्रदाताओं की जोखिम के प्रति सुरक्षा प्रदान करते हैं। इस व्यवस्था में बैंक वित्त प्रदान नहीं करता है, बल्कि अपने ग्राहकों की देनदारी का समादरण करने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेता है।

(य) **ऋण अथवा अग्रिम (Loans and Advances)-** व्यापारिक बैंक अपने कोषों का एक भाग अल्पकालीन ऋण एवं अग्रिम के रूप में व्यापारिक संस्थाओं को प्रदान करके उनकी अल्पकालीन आवश्यकताओं अथवा कार्यशील पूँजी की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। इसमें ऋण की अवधि व राशि निश्चित होती है तथा यह पर्याप्त जमानत के आधार पर ही दी जाती है ऋण की सम्पूर्ण राशि ग्राहक के खाते में स्वीकृति के समय तुरन्त जमा करा दी जाती है तथा सम्पूर्ण राशि पर ब्याज वसूल किया जाता है। ब्याज दर ऋण के उद्देश्य, अवधि, ग्राहक की साख, व्यवसाय की प्रकृति तथा मूल उधार दर पर निर्भर करती है।

(र) **गारन्टी सुविधा (Guaranteeing Facilities)**- जब व्यापारिक संस्थाओं द्वारा किन्हीं अन्य स्रोतों से ऋण लिये जाते हैं अथवा कोई स्थायी सम्पत्ति उधार क्रय की जाती है तो बैंक ऐसे ऋण या सम्पत्ति की राशि के भुगतान की तृतीय पक्ष को गारन्टी दे देते हैं।

इस सुविधा के लिए बैंक कुछ कमीशन लेते हैं। इससे भी व्यापारिक संस्थाओं की वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति होती है।

(ल) **अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर साख की व्यवस्था-**

(1) **निर्यातकों के लिए अल्पकालीन वित्त की आवश्यकता**-निर्यातकों को अल्पकालीन वित्त की सबसे ज्यादा जरूरत पड़ती है। ऐसा कहा जाता है कि अल्पकालीन साख सुविधा के अभाव में निर्यातक द्वारा निर्यात करना संभव नहीं हो पाता है। निर्यातकर्ता निम्न उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अल्पकालीन वित्त की आवश्यकता महसूस करता है-

(i) **माल निर्माण एवं संवारना**-निर्यातक द्वारा जब माल निर्यात करने का आदेश प्राप्त कर लिया जाता है तब यदि उसके पास तैयार माल स्टॉक में पड़ा हो तो उस माल को आसानी से निर्यात कर सकता है। माल का निर्माण यदि निर्यातक के स्वयं के कारखाने में होता है तो वहाँ उसका उत्पादन कर लिया जावेगा। इन विधियों से माल तैयार करते समय अल्पकालीन विनियोग की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार निर्माण एवं संवारने के उद्देश्य से निर्यातक द्वारा अल्पकालीन साख की माँग की जाती है।

(ii) **उत्पादकों को अग्रिम**-कभी-कभी निर्यातक के पास ऐसी वस्तु के निर्यात का आदेश होता है, जिस वस्तु का वह स्वयं उत्पादन नहीं करता है। ऐसी परिस्थिति में निर्यातक द्वारा उत्पादकों से माल तैयार करवाया जाता है, एवं जिसके लिये निर्यातकों द्वारा इन उत्पादकों को अग्रिम धनराशि देनी पड़ सकती है। इस प्रकार जब निर्यातक को अग्रिम धनराशि देने की आवश्यकता पड़ती है तो वह अल्पकालीन वित्त के लिए साख की व्यवस्था ढूंढता है। इस तरह से उत्पादक को दी गई अग्रिम धनराशि वस्तु की सुपुर्दगी पर भुगतान में समायोजित कर दी जाती है।

(iii) **कच्चे माल का क्रय**-जब निर्यातक द्वारा वस्तु / माल का निर्माण किया जाता है तो उसे कच्चे माल की आवश्यकता पड़ती है। कुछ विशेष कच्चा माल क्रय करते समय नकद भुगतान की भी आवश्यकता पड़ सकती है। इस प्रकार माल क्रय के लिए दिए जाने वाले नकद भुगतान को निर्यातक द्वारा अल्पकालीन वित्तीय साख सहायता द्वारा चुकाया जाता है।

(iv) **माल की पैकिंग**-अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में माल की पैकिंग बड़ी महत्वपूर्ण होती है। चूंकि माल को विभिन्न यातायात के साधनों से गुजरना पड़ता है और लंबी दूरी तय करनी पड़ती है, जिसमें लंबा समय लग जाता है अत: माल की पैकिंग उसी के अनुरूप करनी पड़ती है। पैकिंग बड़ी खर्चीली होती है। अत: अत्यधिक व्यय की पूर्ति प्रायः अल्पकालीन वित्त द्वारा ही की जाती है।

(v) **आन्तरिक यातायात व्यय**-प्रायः ऐसा होता है कि निर्यातक का कार्यालय तो बन्दरगाह के शहर में होता है जबकि माल का निर्माण देश के आन्तरिक हिस्से में किसी जगह होता है अथवा देश के विभिन्न आन्तरिक हिस्सों से माल का क्रय कर संग्रहण करना पड़ता है। विस्तृत क्षेत्रफल वाले देशों में तो कभी-कभी

आन्तरिक परिवहन की दूरी आयातक व निर्यातक देशों की पारस्परिक दूरी से ज्यादा हो जाती है। ऐसे में माल को बन्दरगाह तक पहुँचाने में ही अत्यधिक परिवहन-व्यय हो जाता है। इस राशि को चुकाने के लिए भी अल्पकालीन वित्त की आवश्यकता पड़ती है।

(vi) **बन्दरगाह पर गोदाम किराया**-कभी-कभी बन्दरगाह पर आयातक देश के लिए माल ले जाने के लिए जहाज तुरन्त समय पर नहीं मिलता है। माल के बन्दरगाह पर एकत्र होने के बाद भी कई सप्ताह तक माल जहाज के इंतजार में पड़ा रहता है। गर्मी, सर्दी, वर्षा आदि मौसमी परिवर्तनों तथा आग व लूटपाट आदि के संभावित खतरों के कारण इंतजार के समय में बन्दरगाहों पर बने हुए आधुनिक गोदाम की सुविधा देने के लिए कुछ शुल्क वसूल किया जाता है। यह शुल्क राशि कभी-कभी काफी बड़ी मात्रा में हो जाती है। जिसे अल्पकालीन वित्त की साख द्वारा ही निर्यातक चुका पाता है।

(vii) **जहाजी व्यय**-जहाज उपलब्ध होने के बाद माल को जहाज में लदाने का कार्य किया जाता है। इसके लिए पहले जहाजी कम्पनी से अनुबन्ध करना पड़ता है। किराये की शर्त तय की जाती है तथा यह निश्चित किया जाता है कि किराया पूर्व पेशगी दिया जायेगा अथवा माल की सुपुदर्गी पर आयातक चुका देगा। भाड़े की दोनों ही परिस्थितियाँ हो सकती है। जब निर्यातक द्वारा CIF (Cost Insurance Freight) मूल्यों पर माल की बिक्री की जाती है तो किराया निर्यातक द्वारा चुकाया जाता है। अत्यधिक माल होने की अवस्था में जहाजी भाड़ा भी अत्यधिक होता है अत: इसे चुकाने के लिए भी निर्यातक को अल्पकालीन वित्त की आवश्यकता पड़ती है।

(viii) **बीमा व्यय**-निर्यात किये जाने वाले माल में कई प्रकार की जोखिम रहती है। कुछ यातायात की जोखिमें होती हैं। माल के सामुद्रिक रास्ते से सुरक्षित पहुँचने, जहाज के मार्ग में डूबने की असुरक्षा के लिए माल का बीमा कराना बहुत जरूरी होता है। बीमा करने के लिए बहुत सी बीमा कम्पनियाँ सेवायें देती हैं। अनुबन्ध की शर्तों के अनुसार इनका भुगतान निर्यातक द्वारा किया जाता है। इसी तरह से अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में कुछ वाणिज्यिक व राजनैतिक जोखिमें भी होती है। इन जोखिमों के लिए भी बीमा करने का प्रावधान व व्यवस्था होती है। भारत में यह कार्य "निर्यात साख एवं गारन्टी निगम" करती है। ऐसा बीमा कराने के लिए भी निर्यातक को शुल्क देना पड़ता है। जो अल्पकालीन वित्त द्वारा पूरा किया जा सकता है।

(ix) **टेण्डर राशि जमा कराने के लिए**-कभी-कभी निर्यातक को निर्यात आदेश टेण्डर भरकर प्राप्त करने पड़ते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर टेण्डर आमन्त्रित किये जाते हैं तथा उन शर्तों के अनुसार आयात का आदेश दिया जाता है। इस राशि को जमा कराने के लिए भी किसी स्रोत से अल्पकालीन वित्तीय साख की व्यवस्था करनी पड़ती है, जो अल्पकाल बाद ही वापिस चुका दी जाती है।

(x) **दलाली का भुगतान**-निर्यात आयात व्यवहार में प्रायः दलालों के द्वारा मध्यस्थता सामान्य रूप से की जाती है। दलाल अपनी मध्यस्थता द्वारा आयातक व निर्यातक के मध्य अनुबंध कराते है। इस कार्य के लिए दलाल को उसकी सेवा के लिए कमीशन दिया जाता है, जिसे दलाली कहते हैं। यह दलाली की मात्रा कभी-कभी अधिक धनराशि की हो जाती है, जिसकी व्यवस्था निर्यातक किन्हीं अल्पकालीन स्रोतों से करता है।

(xi) **निर्यात ऋण सुविधा**-अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में उधार सौदे होते हैं कई बार आयातक उधार माल आयात करने में रूचि रखता है अथवा ऐसा भी संभव है कि कोई प्रतिस्पर्द्धी निर्यातक उधार सुविधा देने को तत्पर है तो अन्य निर्यातकों को भी फिर उसमें प्रतिस्पर्द्धा के वशीभूत साख पर माल निर्यात करना पड़ता है। जब माल उधार निर्यात किया जाता है तो निर्यातक को भुगतान तुरन्त नहीं मिलकर अनुबन्ध के अनुसार निश्चित अवधि के बाद ही उपलब्ध हो सकता है। अतः इस अवधि के अन्तर्गत उसे इस व्यवहार के लिए किसी अन्य साधन स्रोत से अल्पकालीन वित्त की आवश्यकता करनी पड़ती है। वस्तुतः ऐसी स्थिति में अल्पकालीन वित्त उसके व्यवसाय को सुचारू रूप से चलाने के लिए अनिवार्य आवश्यकता हो जाती है।

16.6 आयातक के लिए अल्पकालीन वित्त की आवश्यकता

आयातक को निम्न उद्देश्यों के लिए अल्पकालीन वित्त की आवश्यकता पड़ सकती है-

(i) **निर्यातक को अग्रिम**-अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में ऐसी परिस्थिति भी हो सकती है जब निर्यात योग्य, माल की पूर्ति कम हो अथवा आयाताकों की संख्या ज्यादा हो। ऐसी परिस्थिति में आयातक द्वारा निर्यातक को पेशगी रकम दे दी जाती है जिससे निर्यातक माल की पूर्ति करने के लिए बाध्य हो जाता है। कभी-कभी निर्यातक स्वयं भी पेशगी रकम की मांग कर लेता है, ऐसी स्थिति में आयातक द्वारा धनराशि पेशगी देना जरूरी हो जाता है जिसकी व्यवस्था वह अल्पकालीन वित्त के द्वारा ही करता है।

(ii) **जहाजी भाड़ा, बीमा आदि, चुकाना**- जब माल के क्रय की शर्तें ऐसी हों कि जहाजी भाड़ा व बीमा आदि के व्यय आयातक द्वारा चुकाये जायेंगे तो आयातक को इस कार्य के लिए अल्पकालीन वित्त की अवस्था करनी पड़ती है। जब F.O.B. (Free On Board) मूल्य संबंधी प्रसंविदा होता है तो निर्यातक केवल जहाज के पास बन्दरगाह तक माल पहुंचाने की जिम्मेदारी लेता है। बाकी व्यय जिनमें जहाजी भाड़ा, बीमा आदि शामिल है, आयातक को ही चुकाने पड़ते है जिसकी पूर्ति वह अल्पकालीन वित्त द्वारा करता है।

(iii) **निर्यातक को भुगतान**-जब निर्यातक उधार माल नहीं देता है तथा मील की सुपुर्दगी पर ही भुगतान प्राप्त करने का इच्छुक होता है तो ऐसी स्थिति मैं आयातक को भुगतान शीघ्र ही करना पड़ता है। सुपुदर्गी करने की स्थिति में आयातक को वित्त की आवश्यकता पड़ती है। जब ऐसे भुगतान की राशि छोटी होती है यथा उपभोक्ता वस्तुओं अथवा खुदरा इंजीनियर वस्तुओं आदि के लिए तो आयातक अल्पकालीन वित्तीय साख प्राप्त कर

उसका भुगतान कर सकने में सक्षम हो सकता है, जिसे वह वस्तु को बेचकर शीघ्र ही वापिस लौटा देता है

(iv) **आयात लाइसेंस शुल्क आदि**-कई देशों में आयात नीति के अन्तर्गत सरकार द्वारा ऐसे कानून बना दिये जाते हैं कि आयातक को आयात के लिए सरकार आज्ञा लेनी पड़ती है। सरकार कुछ वस्तुओं के आयात के लिए आयात शुल्क लगा देती है जो आयात-मूल्य के एक निश्चित प्रतिशत के रूप में होता है। यह राशि आयातकों को अग्रिम नकद जमा करानी पड़ती है, जिसके लिए भी उसे अल्पकालीन वित्त की आवश्यकता पड़ती है।

16.7 अल्पकालीन वित्त के चरण (Stages of Short-term Finance)

निर्यातक व्यवहार में अल्पकालीन वित्त की आवश्यकता को उसके प्रयोजन के अनुसार दो भागों में बाँटा जा सकता है- (i) लदान पूर्व साख, तथा (ii) लदानोत्तर साख।

(i) **लदान पूर्व साख**-निर्यातक को माल से संबंधित विभिन्न अवस्थाओं के लिए वित्त की आवश्यकता पड़ती है। निर्यात माल का आदेश प्राप्त होने पर माल के निर्माण से लेकर तैयार माल को जहाज पर लादने तक से संबंधित विभिन्न खर्चो व विनियोगों के लिए निर्यातकर्ता को वित्त की आवश्यकता पड़ती है, उसे **"लदान पूर्व साख"** कहते हैं। इसमें उन समस्त प्रयोजनों से संबंधित व्यय सम्मिलित किये जाते हैं जो माल को जहाज में लादने तक व्यय करने पड़ते हैं। ये सारे खर्चे प्रायः निर्यातक के स्वयं के ही देश में होते हैं तथा इनकी व्यवस्था निर्यातक द्वारा अपने पूँजी के स्रोतों के अलावा बैंकों आदि से वित्त प्राप्त कर की जाती है। भारत में इस तरह की साख को "पैकिंग साख'' के नाम से पुकारा जाता है। लदान पूर्व साख के अन्तर्गत जिन प्रयोजनों के लिए ऋण या साख दी जाती है। उनमें माल का निर्माण करना, संवारना, उत्पादकों को अग्रिम, पैकिंग, यातायात व्यय, बन्दरगाह व्यय, जहाजी व बीमा व्यय आदि आते हैं। लदान-पूर्व साख की व्यवस्था भारत में बैंकों से अधिविकर्ष अथवा ऋण लेकर की जाती है।

(ii) **लदानोत्तर साख**-लदानोत्तर साख के अन्तर्गत उन प्रयोजना के लिए वित्त की आवश्यकता को सम्मिलित किया जाता है जो माल को जहाज में लदाने के पश्चात् आवश्यक होती हैं। इस शीर्षक के अन्तर्गत प्रमुखतया उधार निर्यात की आवश्यकता के लिए ऋण व साख को सम्मिलित करते हैं। जबकि निर्यातक जहाज में माल लदा कर जहाजी बिल्टी प्राप्त कर लेता है, तो उसकी प्रतिभूति स्वरूप वह विनियम बिल लिखकर उसकी कटौती कराकर वित्त प्राप्त सकता है। इन बिलों को निर्यातक लिखता है तथा आयातक इन पर स्वीकृति देता है। कभी-कभी निर्यातक की बैंक ही इन बिलों पर स्वीकृति दे देती है, जिससे निर्यातक इन्हें शीघ्र ही भुना कर वित्त प्राप्त कर लेता है अथवा इनका पृष्ठांकन कर सकता है। भारत में यह कार्य व्यापारिक बैंक ही करता है। भारत में लदानोत्तर साख के अन्तर्गत कटौती किये गये बिलों के पुनर्वित्त की सुविधा भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा दी जाती है। लदानोत्तर साख का प्रायः निर्यातकों द्वारा

अत्यधिक उपयोग किया जाता है। लदानोत्तर साख-व्यवस्था में विनिमय बिलों की कटौती ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण साधन है।

16.8 अल्पकालीन वित्त व्यवस्था के स्रोत (Sources of Short-term Finance)

अल्पकालीन वित्त व्यवस्था में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका बैंकों की रहती है। अधिकतम 6 माह के लिए साख उपलब्ध कराने की दिशा में व्यापारिक बैंकों की सबसे बड़ी भूमिका रहती है। इस उद्देश्य के लिए इन बैंकों द्वारा अधिविकर्ष की सुविधा दी जाती है, अल्पकालीन ऋण भी उपलब्ध कराये जाते हैं तथा सबसे महत्वपूर्ण कार्य विनिमय बिलों की कटौती तथा साख-पत्र की सुविधा देकर किया जाता है। अल्पकालीन वित्त के स्रोत निम्नलिखित है-

(1) **आयातक**-जब स्वयं आयातक साधन सम्पन्न होता है अर्थात् उसके पास अर्थाभाव नहीं होता है तो वह निर्यातक को पेशगी राशि अपने स्वयं के साधनों से भेज सकता है। इस प्रकार पूर्व भेजी गई राशि का समायोजन माल की सुपुर्दगी पर कर लिया जाता है। अत: आयातक स्वयं ही अल्पकालीन वित्त का स्रोत हो सकता है।

(2) **निर्यातक**-जब निर्यातक एक साधन सम्पन्न व्यवसायी होता है तथा उसके पास कार्यशील पूंजी का अभाव नहीं होता है तो वह आयातक को साख पर माल निर्यात करने की सुविधा प्रदान कर देता है। ऐसी परिस्थिति में निर्यातक स्वयं ही अल्पकालीन वित्त उपलब्ध कराने का महत्वपूर्ण स्रोत हो जाता है।

(3) **आढ़तिया**-अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में आढ़तियों की भूमिका भी महत्वपूर्ण रहती है। आढ़तिये अपने प्रधान के लिए माल का विक्रय करते हैं। वे अपने प्रधान से माल मंगा लेते हैं तथा अपने स्वयं के साधनों से उसका भुगतान कर देते हैं। माल की वास्तविक बिक्री पर वे राशि का समायोजन कर लेते हैं। इस प्रकार ये अल्पकालीन वित्त उपलब्ध कराने में महत्वपूर्ण भूमिका का कार्य करते है।

(4) **स्वीकृति गृह**-स्वीकृति गृह परोक्ष रूप से अल्पकालीन वित्त की व्यवस्था करते हैं। ये गृह प्रमुख व्यापारिक केन्द्रों व बन्दरगाहों पर अपने कार्यालय रखते हैं तथा आयातकों व निर्यातकों की साख की जानकारी भी रखते हैं तथा स्वीकृति साख देने का व्यवसाय करते हैं। ये आयातक के साथ अनुबन्ध करते हैं तथा इस अनुबंध के अन्तर्गत निर्यातक द्वारा आयातक के स्थान पर उसके स्वीकृति गृह पर बिल लिखा जाता है जिसे स्वीकृति गृह स्वीकार कर लेता है। निर्यातक फिर इस बिल को या तो बैंक से कटौती करा लेता है अथवा पृष्ठांकन कर देता है। स्वीकृति बिलों का पृष्ठांकन होने पर बिना किसी हिचकिचाहट के इसे स्वीकार कर लिया जाता है। यह परोक्ष वित्त का स्रोत है।

(5) **कटौती गृह**-कटौती गृह अल्पकालीन वित्त का प्रमुख महत्वपूर्ण स्रोत हैं। ये व्यापारिक संस्थान होते हैं, जिनका प्रमुख कार्य विनिमय-बिलों की कटौती करना होता है। स्वीकृति गृहों से स्वीकृत अथवा अन्यत्र स्वीकृति बिलों को ये गृह बैंकों की तरह ही कटौती करने

का व्यवसाय करते हैं। ये बिलों की निश्चित कमीशन पर कटौती करते है तथा भुगतान तिथि पर स्वीकृति से भुगतान प्राप्त कर लेते हैं।

(6) **बैंक**-अल्पकालीन वित्त उपलब्ध कराने में बैंकों की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण है। अल्पकालीन वित्त उपलब्ध कराना व्यापारिक बैंकों का प्रमुख कार्य होता है। बैंक अधिविकर्ष, ऋण तथा कटौती एवं साख-पत्र आदि सुविधाओं के द्वारा अल्पकालीन वित्त की पूर्ति करते हैं। अधिविकर्ष एवं ऋण सुविधा के अलावा आयातक व निर्यातक को जो प्रमुख सुविधा दी जाती है वह आयातक को तो प्रलेखीय साख सुविधा है तथा निर्यातक को उसके द्वारा लिखे गये बिलों की कटौती की सुविधा है।

आयातक को अल्पकालीन वित्त की सुविधा के अन्तर्गत बैंक आयातक की प्रार्थना पर प्रलेखीय साख खोलता है। इस योजना के अन्तर्गत बैंक निर्यातक से माल रवानगी से संबंधित सभी प्रपत्र प्राप्त करके उसके बदले आयातक की ओर से निर्यातक को सम्पूर्ण भुगतान कर देता है तथा फिर आयातक को प्रलेख सुपुर्द कर उससे भुगतान वसूल कर लेता है। इस अवधि में अल्पकाल के लिए बैंक द्वारा वित्तीय सुविधा प्रदान कर दी जाती है जो आयातक के लिए अल्पकालीन साख होती है। निर्यातक को अल्पकालीन वित्त की सुविधा के अन्तर्गत बैंक निर्यातक द्वारा आयातक पर लिखे बिल की कटौती की सुविधा निर्यातक को दे देता है। कभी-कभी निर्यातक द्वारा लिखे गये बिल पर बैंक स्वयं स्वीकृति दे देता है इस तरह बैंक स्वीकृति बिल की ख्याति अच्छी मानी जाती है जिसे निर्यातक अन्यत्र भुना कर अल्पकालीन ऋण प्राप्त कर सकता है।

16.9 विनिमय बिलों की स्वीकृति तथा कटौती (Acceptance and Discount of Bills of Exchange)

जब निर्यातक माल का निर्यात कर देता है तो भुगतान प्राप्ति के उद्देश्य से आयातक पर विनिमय बिल लिखता है, जिसके अन्तर्गत वह आयातक को एक निश्चित अवधि पश्चात् स्वयं लेखक अथवा उसके आदेशित किसी अन्य व्यक्ति या संस्था को भुगतान करने का आदेश देता है। यही आदेश पत्र विनिमय बिल कहलाता है। विनिमय बिल तब लेखक द्वारा माल के अन्य अधिकार पत्रों सहित देनदार के सामने प्रस्तुत किया जाता है। देनदार लेखपत्र प्राप्त होने पर बिल की वैधता स्वीकार करता है जिसे तकनीकी भाषा में 'स्वीकृति' कहते हैं।

विनिमय बिलों की स्वीकृति तथा कटौती (Acceptance of Bills of Exchange)

स्वीकृति के अन्तर्गत विनियम-बिल पर देनदार की 'स्वीकृति' शब्द लिखकर अपने हस्ताक्षर किये जाते हैं। ऐसा करने पर यह विनिमय बिल की स्वीकृति कहलाती है। कभी-कभी देनदार 'स्वीकृति' न लिखकर केवल अपने हस्ताक्षर ही कर देता है। तब भी यह परिस्थिति 'विनिमय बिल' की 'स्वीकृति' की कहलायेगी। विनियम साध्य विलेख अधिनियम, 1881 की धारा 61 के अनुसार दर्शन-पश्चात्-देय (Payable After Sight) बिल की स्वीकृति के लिए प्रस्तुत करना आवश्यक होता है। ऐसे विनिमय बिल

जो **'मांग पर देय'** हो अथवा लिखी हुई तिथि से निश्चित अवधि पश्चात् देय हो तो उनको देनदार के पास स्वीकृति के लिए प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं है। इससे धारक को भुगतान का विश्वास हो जाता है तथा कटौती की सुविधा रहती है। व्यवसायी वर्ग द्वारा विनिमय बिलों को प्राप्त करते ही प्रायः उनकी किसी बैंक अथवा कटौती गृह से कटौती करवा ली जाती है परन्तु यह संस्थायें प्रायः ऐसे बिलों की ही कटौती करती है जिन पर कम से कम दो श्रेष्ठ हस्ताक्षर हों। अत: वे प्रायः बिना स्वीकृत किये गये बिल की कटौती नहीं करते हैं। इसका कारण यह भी है कि बिल की राशि देने से पूर्व बैंक कम से कम यह तो निश्चय करना चाहेगा कि जिस पक्षकार पर बिल लिखा गया है वह उसका भुगतान करने के लिए सहमत है या नही। अत: बिल की स्वीकृति कटौती करवाने के लिए भी आवश्यक है। इसके अलावा किसी बिल का देनदार तक भुगतान करने के लिए उत्तरदायी नहीं होगा, जब तक कि उस बिल की स्वीकृति नहीं दे दी गई है। बिल का धारक देनदार पर बिल की स्वीकृति के पूर्व संबंधित धनराशि का दावा नहीं कर सकता है। परन्तु यदि बिल स्वीकृत हो चुका है तो कोई भी धारक स्वीकारक पर सीधे दावा कर सकता है। इस दृष्टि से भी बिल स्वीकृति करा लेना वांछनीय है।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में निर्यातक को आयातक की साख के बारे में ज्यादा जानकारी नहीं होती है। अत: निर्यातक द्वारा आयातक की ओर से किसी प्रतिष्ठित संस्था की स्वीकृति की अपेक्षा की जाती है। ऐसी परिस्थिति में आयातक की प्रार्थना पर उसकी बैंक अथवा स्वीकृति गृह आयातक की ओर से स्वीकृति दे सकते हैं। इस कार्य के लिए बैंक अथवा स्वीकृति गृह कुछ शुल्क वसूल करते हैं। स्वीकृति सामान्य अथवा शर्त सहित हो सकती है।

(i) **सामान्य स्वीकृति** के अन्तर्गत देनदार बिना किसी शर्त व विरोध के अपनी स्वीकृति दे देता है। बह बिल पर स्वीकार शब्द लिखकर अपने हस्ताक्षर अथवा खाली हस्ताक्षर कर देता है। ऐसी स्वीकृति सामान्य स्वीकृति कहलाती है।

(ii) **शर्त सहित स्वीकृति** के अन्तर्गत देनदार द्वारा अपनी स्वीकृति के साथ किसी तरह की शर्त लगा दी जाती है। कम राशि के लिए स्वीकृति देना, अधिक अवधि के बाद भुगतान देना आदि शर्त देनदार द्वारा लगाई जा सकती है। इस प्रकार की स्वीकृति प्राप्त होने पर निश्चित शर्त के अनुरूप ही भुगतान प्राप्त होता है। ऐसी परिस्थिति में यह लेखक पर निर्भर करता है कि वह शर्त सहित स्वीकृति को स्वीकार करे या नही करे। शर्त स्वीकार नहीं होने की अवस्था में बिल को अनादृत माना जा सकता है। धारक अथवा बैंक द्वारा शर्त सहित स्वीकृति की स्थिति में बिल के लेखक से विचार विमर्श कर लेना चाहिए अन्यथा बिल के लेखक की कोई जिम्मेदारी नहीं होगी। विदेशी बिलों में प्रायः इस संभावना से बचने के लिए **"स्वीकृति के विरूद्ध प्रलेख"** लिखे जाते हैं। इन बिलों में बैंक को यह हिदायत रहती है कि आयातकर्ता द्वारा बिल पर स्वीकृति दिये जाने पर ही माल से संबंधित अन्य प्रलेख (जैसे- बीजक, जहाजी बिल्टी, बीमा-प्रपत्र आदि) सुपुर्द किये जायें। इस प्रकार विदेशी बिलों में प्रायः सामान्य स्वीकृति ही दी जाती है।

स्वीकृति के लाभ (Advantages of Acceptance)-

विनिमय बिल की स्वीकृति कराने के निम्नाकिंत लाभ होते हैं-

(1) **अनिवार्य**-कुछ विनिमय बिलों पर स्वीकृति कराना अनिवार्य होता है जैसे- 'स्वीकृति के पश्चात् निश्चित तिथि ज्ञात ही नहीं हो सकती है।

(2) **विश्वास**-बिल पर स्वीकृति हो जाने से प्राप्यक को यह विश्वास हो जाता है कि भुगतान की तिथि पर इस बिल का भुगतान देनदार कर देगा। स्वीकृति नहीं देने की परिस्थिति में प्राप्यक द्वारा इसे अनादृत माना जा सकता है।

(3) **कटौती**-बिल पर स्वीकृति मिलने से प्राप्यक द्वारा विनियम बिल की कटौती कराई जा सकती है। बैंक अथवा कटौती गृहों द्वारा स्वीकृति बिलों की ही कटौती की जाती है।

(4) **दावा**-स्वीकृत बिल के अनादृत होने की दशा में प्राप्यक अथवा धारक द्वारा सीधे देनदार पर मुकदमा दायर किया जा सकता है। जबकि बिना बिल स्वीकृति की स्थिति में केवल लेखक को ही दावे का अधिकार मिलता है।

(5) **पृष्ठाकंन**-स्वीकृति प्राप्त बिल का बिना किसी कठिनाई के पृष्ठाकंन भी किया जा सकता है। स्वीकृति बिल के प्राप्तकर्ता को ऐसे बिल पर पूर्ण विश्वास रहता है।

विनिमय बिलों की कटौती (Discounting of Bills of Exchange)

विनिमय बिल जहां भुगतान का एक बहुप्रचलित माध्यम है, वहीं इसका उपयोग अल्पकालीन वित्त प्राप्ति के साधन के रूप में बहुतायत होता है। जैसा कि हमने ऊपर देखा है, विनिमय बिल के लेखक द्वारा बिल पर देनदार की स्वीकृति प्राप्त होने पर धारक अथवा लेखक इस बात से तो आश्वस्त हो जाते हैं कि भुगतान की तिथि पर इस बिल का भुगतान मिल जायेगा परन्तु धारक द्वारा भुगतान की तिथि तक इंतजार करना एक बडा दुष्कर एवं कठिनाई युक्त कार्य होता है। प्रायः धारक को तुरन्त भुगतान की आवश्यकता रहती है, ऐसे में भुगतान तिथि तक इंतजार करना संभव नहीं है।

ऐसी परिस्थिति में विनिमय बिल का धारक, आवश्यकता के समय विनिमय बिलों का किसी अन्य पक्ष को 'पृष्ठाकंन' कर सकता है परन्तु ऐसे में फिर वही वित्तीय समस्या उस व्यक्ति के सम्मुख प्रकट हो जायेगी, जिसके पक्ष में पृष्ठाकंन किया गया है। अत: धारक विनिमय बिल की जमानत पर किसी अन्य व्यक्ति या बैंक से ऋण ले सकता है। चूंकि, विनिमय बल की जमानत पर दिये जाने वाले ऋण की भुगतान तिथि सुनिश्चित है अत: धारक बैंक को दिल से खरीद लिये जाने की प्रार्थना करता है। बैंक द्वारा बिल की राशि से कम राशि पर इसकी खरीद कर ली जाती है तथा भुगतान की तिथि पर इसका पूरा भुगतान प्राप्त कर लिया जाता है। इस कम मूल्य पर बिल की खरीद ही 'बिल की कटौती' कहलाती है।

बिलों की कटौती की व्यवस्था में प्रचलित व्यापारिक ब्याज दर का बहुत महत्व है। जो ब्याज दर प्रचलन में होती है, प्रायः उसी के अनुसार कटौती की जाती है। जितनी अवधि का बिल होता है, उसी के अनुसार ब्याज की गणना करते हुए उतनी ही राशि

कटौती के रूप में काट कर शेष राशि का धारक को भुगतान कर दिया जाता है। कटौती काटने का गणितीय सूत्र इस प्रकार है-

बिलों की कटौती का गणितीय सूत्र- बिलों की कटौती के गणितीय सूत्र को निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है-

$$P = \frac{A}{1+r}$$

उपर्युक्त सूत्र में-

P = प्रदान की जाने वाली राशि (Offer Price)

A = बिल की वास्तविक राशि (Actual Value of B/E)

उदाहरण

एक विनिमय बिल 10,000 रुपये का इण्डिया टी कम्पनी लि. कलकत्ता द्वारा ३ माह की अवधि का ऑस्ट्रेलिया टी कं. लि., सिडनी पर लिखा गया। इण्डिया टी कं. लि. इस बिल को स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया से तुरन्त कटौती करना चाहती है। प्रचलन में ब्याज दर 12% प्रतिवर्ष है। कटौती के उपरान्त प्रदान की जाने वाली राशि ज्ञात कीजिए।

हल-

उपर्युक्त प्रश्न में रु. है। ब्याज की दर 12% प्रतिवर्ष है, जिसकी 3 माह के लिये प्रभावी दर 0.03 होगी (इसका आलंकन $12/100x3/12 = 0.03$) इस प्रकार उपर्युक्त सूत्र में मूल्य रखने पर-

$$P = \frac{10,000}{(1+0.03)} = Rs.9708.74$$

उपर्युक्त उदाहरण के हलानुसार 10,000 रुपये के विनिमय बिल की कटौती कराने पर बैंक द्वारा कटौती कराने वाले को 9708.74 रुपये प्रदान किये जायेगें। बैंक की कटौती के रूप में 2914.26 रुपये काटेगा। यह राशि वस्तुतः प्रदान की जाने वाली राशि 9708.74 रुपये की 12% की दर से 3 माह के ब्याज बराबर है। भुगतान तिथि पर बैंक को 10,000 रुपये का भुगतान प्राप्त हो जायेगा।

कटौती किये हुए बिल के अनादरण की दशा में कटौती करवाने वाले पक्ष का दायित्व बना रहता है। अनादरण की दशा में कटौती गृह या बैंक द्वारा नोटेरी आफिसर से अवलोकन अथवा प्रमाणन करा लिया जाता है। अनादरण पर हुए संबंधित खर्चो की राशि को वापिस प्राप्त करने का अधिकार बैंक का रहता 'है। विदेशी बिलों में अनादरण की दशा में 'प्रमाणन' कराना ही ज्यादा सुविधाजनक रहता है, जिसके अन्तर्गत 'नोटेरी पब्लिक' द्वारा अनादरण का प्रमाण पत्र दिया जाता है। जबकि 'अवलोकन' में अनादरण को केवल प्रमाणित ही किया जाता है।

इस प्रकार विनिमय-बिलों की कटौती द्वारा बिल के धारक-पत्र या लेखक को तुरन्त राशि 'मिल जाती है वहीं देनदार को भुगतान करने के लिए पर्याप्त व निश्चित समय मिल जाता है तथा कटौती गृह व बैंकों के लिए एक लाभप्रद व्यवसाय होता है।

16.10 स्वीकृति गृहों की भूमिका (Role of the Acceptance Houses)

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है कि भिन्न-भिन्न देशों के होने के कारण, निर्यातक को आयातक की साख के बारें में ज्यादा जानकारी नहीं होती है। अत: निर्यातक द्वारा लिखे गये विनिमय बिल पर आयातक के स्थान पर किसी प्रतिष्ठित संस्था द्वारा स्वीकृति की प्राप्यक द्वारा अपेक्षा की जाती है। अत: व्यवसाय के रूप में 'स्वीकृति' प्रदान करने का कार्य लंदन मुद्रा बाजार में कुछ संस्थायें करने लगी है। इन्हीं स्वीकृति प्रदान करने वाली संस्थाओं को **स्वीकृति-गृह** कहते हैं।

स्वीकृति-गृह विशिष्ट संस्थायें हैं जो विनिमय बिलों पर स्वीकृति प्रदान करने का व्यवसाय करती है। लंदन मुद्रा बाजार में ऐसे स्वीकृति गृहों की संख्या 40 है। इन स्वीकृति गृहों को **मर्चेन्ट बैंक** भी कहते हैं। लंदन में कार्यरत प्रमुख स्वीकृत गृह हैं : एन्थोनी गिब्स लि., ब्राउन शिप्ले (जेसी) लि., ग्यूनेस माहान एण्ड कि.लि, हैम्ब्रास (जेसी)लि., रीआ ब्रादर्स लि. सिंगर फ्रिंडलेण्डर (इस्ते ऑफ मैन) लि., आदि। इन स्वीकृति गृहों के ऊपर एक सर्वोच्च स्वीकृति गृह संघ कार्यरत है।

विनिमय बिल से वित्त प्राप्ति की अवस्था में स्वीकृति गृहों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। ब्रिटेन के ये स्वीकृति गृह सभी प्रमुख व्यापारिक स्थानों पर अपने कार्यालय रखते हैं एवं व्यवसायियों की साख की जानकारी का पूर्ण ब्यौरा एकत्र करते हैं। जब कोई व्यवसायी इनको स्वीकृति देने के लिए प्रार्थना करता है तो ये कुछ कमीशन वसूल करते हुए देनदार की ओर से स्वीकृति प्रदान कर देते हैं। स्वीकृति गृहों से स्वीकृति मिल जाने पर बिल की विनिमय-साध्यता पर बहुत अनुकूल असर पड़ता है, क्योंकि भुगतान की तिथि पर ऐसे स्वीकृत बिलों का भुगतान स्वीकृति गृह द्वारा ही किया जाता है। इससे ऐसे बिलों को कोई भी व्यक्ति बिना किसी हिचकिचाहट के ग्रहण करने को तैयार रहता है। स्वीकृति गृहों से स्वीकृत बिलों की कटौती गृहों अथवा बैंकों से आसानी से भुनाया जा सकता है तथा ऐसे स्वीकृत बिलों पर कटौती गृहों या बैंकों द्वारा कटौती भी न्यून दर पर ही कर दी जाती है। ऐसे बिलों की बैंक ऑफ इंग्लैण्ड द्वारा पुनर्कटौती भी करवाई जा सकती है। स्वीकृति गृहों द्वारा अपनी इस सेवा के बदले बिल की राशि के 1% से 3% वार्षिक तक शुल्क वसूल किया जाता है। पक्षकारों की साख के अनुसार दर में परिवर्तन संभव है।

16.11 कटौती गृहों की भूमिका (Role of the Discount Houses)

अल्पकालीन वित्त प्रदान करने में कटौती गृहों का स्थान महत्वपूर्ण है। विनिमय-बिल पर स्वीकृति मिल जाने के बाद सबसे बड़ी बात तुरन्त राशि प्राप्त करने की होती है। स्वीकृत बिलों को फिर भुनाया जाता है। यह कार्य प्रायः व्यापारिक बैंकों द्वारा किया जाता है। अपनी सेवा के कमीशन स्वरूप कुछ राशि काट कर विनिमय बिलों के बदले धारक को राशि उपलब्ध करा दी जाती है। यह कमीशन इन कटौती करने वाली संस्थाओं की आय होती है। लंदन मुद्रा बाजार में इस कटौती के कार्य करने के लिए कुछ विशिष्ट संस्थायें हैं, इन्हीं संस्थाओं को 'कटौती गृह' कहते हैं। लंदन मुद्रा बाजार में वर्तमान में 12 कटौती गृह कार्य कर रहे हैं। इन कटौती गृहों का एक संघ भी है जिसे 'लंदन कटौती गृह संघ' कहा जाता है। इन कटौती गृहों के अलावा कुछ निजी व्यक्ति भी कटौती का व्यवसाय करते हैं। कटौती गृह वस्तुतः लंदन मुद्रा बाजार की अपनी ही विशेषता है। संसार के अन्य देशों में सिर्फ कटौती का व्यवसाय करने वाले स्वतन्त्र गृह नहीं है। यह कार्य प्रायः सभी देशों में व्यापारिक बैंकों द्वारा किया जाता हैं।

कटौती गृहों द्वारा विनिमय बिलों की कमीशन पर कटौती की जाती है। इनके द्वारा प्रदान की जाने वाली राशि पूर्व में उल्लिखित गणितीय सूत्र से आंकलन कर ज्ञात की जाती है। कटौती गृहों पर बैंक ऑफ इंग्लैण्ड का प्रभावी नियन्त्रण है। इनको कटौती किये गये बिलों की पुनर्कटौती की सुविधा भी उपलब्ध है। प्रायः वे अपने द्वारा कटौती किये हुये बिलों की व्यवसायिक बैंकों 'से पुर्न कटौती करवा लेते हैं, जिससे अपने सीमित आर्थिक साधनों से ये अत्यधिक बड़ा व्यवसाय कर सकने में सक्षम हो जाते हैं। स्वीकृति गृहों द्वारा स्वीकृत बिलों को इन गृहों द्वारा कम दर पर भी कटौती की सुविधा उपलब्ध करा दी जाती है, जिससे इन दोनों गृहों का व्यवसाय पारस्परिक सहायक के रूप में चलता रहता है।

16.12 आयतकों के लिए अल्पकालीन वित्त की आवश्यकता

साख-पत्र के माध्यम से बैंकों द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में अल्पकालीन साख प्रदान की जाती है। यही साख-पत्र व्यवस्था प्रलेखीय साख कहलाती है।

(अ) **प्रलेखीय साख के प्रकार (Types of Documentary Credit)**

प्रलेखीय साख के विभिन्न प्रकार निम्नांकित हो सकते हैं-

(1) **खण्डनीय साख (Revocable Credit)-**खण्डनीय साख के अन्तर्गत बैंक को यह अधिकार रहता है कि वह जब चाहे तब साख की राशि जारी करने के बाद खण्डित या निरस्त कर सकता है। इसमें लाभार्थी को बगैर सूचना दिये साख की शर्तों में परिवर्तन अथवा साख को समाप्त किया जा सकता है। इससे बैंक पर कोई कानूनी बाध्यता पैदा नहीं होती है।

(2) **अखण्डनीय साख (Inevocable Credit)-**अखण्डनीय साख में बैंक की स्थिति कानून से बाध्य होती है। ऐसी साख को जारी करने के बाद बैंक अपनी मर्जी से इसे खण्डित नहीं

कर सकता है। इसके खण्डन के लिए सभी पक्षकारों की सहमति की आवश्यकता पड़ती है। इस साख में बैंक द्वारा भुगतान करना अनिवार्य होता है। यही ज्यादा प्रचलित साख है।

(3) **पुष्टिकृत साख (Confirmed Credit)-**जब साख खोलने वाला बैंक भुगतान करने वाले बैंक से साख-पत्र की शर्तों की पुष्टि माँगता हो तो भुगतानकर्ता बैंक द्वारा इस बात की पुष्टि कर दी जाएगी कि वह प्रलेखों की प्राप्ति पर भुगतान अवश्य कर देगी। पूर्व सूचना द्वारा साखपत्र के अनुसार व्यवहार करने की पुष्टि के कारण ऐसी साख को पुष्टिकृत साख कहा जाता है।

(4) **अपुष्टिकृत साख (Unconfirmed Credit)-**जब साख खोलने वाली बैंक द्वारा भुगतानकर्ता बैंक से किसी तरह की पुष्टि नहीं माँगी जाती है तो ऐसी साख को अपुष्टिकृत साख कहते हैं। अपुष्टिकृत साख में निर्यातकर्ता का दायित्व बना रहता है। यदि भुगतानकर्ता बैंक को किन्हीं कारणों से साख खोलने वाले बैंक से पुन: भुगतान नहीं मिलता है तो अपुष्टिकृत साख के अन्तर्गत लाभार्थी से राशि वापिस वसूल की जा सकती है।

(5) **दर्शनी साख (At Sight Credit)-**इस साख के अन्तर्गत निर्यातक द्वारा माल के निर्यात से सम्बन्धित सभी प्रलेखों के साथ एक विनिमय बिल लिखकर भुगतानकर्ता बैंक को देता है। यह विनिमय बिल दर्शनी अर्थात् माँग पर देय होता है। इस विनिमय बिल का भुगतान बैंक द्वारा तुरन्त कर दिया जाता है। अत: इसे दर्शनी साज कहते हैं।

(6) **सावधि साख (Term Credit)-**सावधि साख के अन्तर्गत निर्यातक बिल के अन्तर्गत एक निश्चित समयावधि दी हुई होती है जिसकी समाप्ति के बाद ही उस बिल का भुगतान मिलता है। इस पर बैंक द्वारा स्वीकृति दी जाती है तदुपरान्त भुगतान तिथि पर उसका भुगतान किया जाता है।

(7) **स्थायी साख (Fixed Credit)-**इस साख के अन्तर्गत साख-पत्र का समय व साख पत्र की राशि स्थायी रहती है। जैसे कि कोई साख-पत्र 2 माह के लिए 10,000 US $ के लिए लिखा जाए तो दो माह की अवधि में जब तक 10,000 $ का भुगतान नहीं हो जाए, यह प्रलेखीय-साख सुदृढ़ता से संचालित होती रहेगी। अत: इसे स्थायी साख कहते हैं।

(8) **आवर्ती साख (Revolving Credit)-**इस साख के अन्तर्गत साख-पत्र का समय व साख पत्र की राशि स्थायी रहती है। इसमें साख की राशि आवर्ती रूप से चलती रहती है। जैसे कोई 10,000 $ की आवर्ती साख खोली गई तो उसमें से 5,000 डालर के भुगतान के बाद यदि इस राशि का प्रार्थी द्वारा तत्काल भुगतान वापिस कर दिया जाए तो साख की राशि पुन: 10,000 डालर स्वत: ही हो जाती है। अत: इसे आवर्ती साख कहते हैं।

(9) **संचयी साख (Cumulative Credit)-**इस साख व्यवस्था के अन्तर्गत एक अवधि मे साख की पूरी मात्रा का प्रयोग न करने के बाद भी वह बची हुई राशि भविष्य में प्रयोग की जा सकती है। जैसे प्रतिमाह 10,000 $ की साख होने पर यदि किसी माह 5,000 $ ही प्रयोग हो सके तो अगले माह 15,000 $ साख का प्रयोग किया जा सकता है। यही संचयी साख है।

(10) **असंचयी साख (Non-cumulative Credit)-**असंचयी साख के अन्तर्गत जिस समय के लिए जितनी साख की राशि तय हुई होती है उतनी राशि उसी समय प्रयोग करनी पड़ती है, अन्यथा वह साख राशि समाप्त हो जाती है। यदि 10,000 प्रति माह की साख से किसी माह केवल 5,000 $ ही प्रयोग किया जाता है तो शेष 5,000 $ की राशि समाप्त मानी जावेगी। अगले माह केवल 10,000 $ की राशि का ही प्रयोग किया जा सकता है।

(11) **परक्रामण साख (Negotiation Credit)-**इस साख के अन्तर्गत साख खोलने वाले बैंक द्वारा भुगतानकर्ता बैंक को केवल एक आदेश दिया जाता है कि वह परक्रामण साख का भुगतान कर दे। इसमें लाभार्थी द्वारा आयातक पर सीधे बिल लिखा जाता है न कि साख खोलने वाली बैंक पर। इसलिए चूँकि यह बिल किसी दूसरे के नाम है अत: इसे परक्रामण साख कहते हैं।

(12) **खुली साख (Clean Credit)-**इस प्रकार की साख के अन्तर्गत बैंक द्वारा केवल मात्र विनिमय बिल के दर्शन पर ही भुगतान कर दिया जाता है। लाभार्थी द्वारा किन्हीं लेख पत्रों को विनिमय बिल के साथ नत्थी नहीं किया जाता है। ऐसी साख की स्थिति में माल से सम्बन्धित सभी लेख-पत्र आयातक को सीधे ही भेज दिये जाते हैं। ऐसी साख में विभिन्न पक्षों का एक-दूसरे से अच्छी तरह पूर्व परिचित होने की आवश्यकता होती है।

(13) **लाल वाक्य साख (Red Clause Credit)-**इस साख व्यवस्था के अन्तर्गत साख-पत्र में एक वाक्य लाल स्याही से लिखा रहता है जिसमें यह व्यवस्था होती है कि लाभार्थी को साख राशि का कुछ हिस्सा पेशगी दिया जा सकता है। उस राशि को प्राप्त कर निर्यातक माल एकत्र कर भेज सकता है। इस लाला स्याही के वाक्य के कारण इसे 'लाल-वाक्य' साख कहते हैं।

(14) **हरा वाक्य साख (Green Clause Credit)-**इस साख के अन्तर्गत हरी स्याही से साख-पत्र का एक वाक्य लिखा होता है। इसमें भी लाभार्थी को पेशगी रकम देने की व्यवस्था होती है परन्तु जिस माल के लिए जो पेशगी रकम दी जाती है, उस माल पर बैंक का स्वामित्वाधिकार माना जाता है, जबकि लाल-वाक्य में साख स्वामित्वाधिकार लाभार्थी का ही रहता है।

(15) **पैकिंग साख (Packing Credit)-**पैकिंग साख के अन्तर्गत एक तरह से साख-पत्रों की जमानत पर देश में माल निर्माण करने के उद्देश्य से साख उपलब्ध कराई जाती है। अग्रिम देने वाले बैंक के साथ इस साख व्यवस्था में लाभार्थी के स्वयं के द्वारा पहले समझौता करना पड़ता है। यह साख बैंक के लिए भी जोखिम की नहीं होती है क्योंकि कि वास्तविक साख पत्र से राशि प्रदान करते समय ऐसी पैकिंग साख की राशि पहले समायोजित कर ली जाती है।

(16) **हस्तांतरणीय साख (Transferable Credit)-**जब साख-पत्र में हस्तान्तरणशीलता का गुण हो तो इसे हस्तान्तरणीय साख कहते हैं। ऐसी साख में लाभार्थी को छूट रहती है कि वह साख-पत्र की राशि स्वयं प्राप्त करे अथवा वह अगर चाहे तो उस राशि के लिए

साख पत्र का किसी अन्य पक्षकार को हस्तांतरण भी कर सकता है। तब उस साख-पत्र की राशि हस्तांतरित को उपलब्ध हो जावेगी।

(17) **प्रथम पर आधारित दूसरी साख (Back to Back Credit)**-इस साख व्यवस्था के अन्तर्गत प्रथा अगर चाहे तो अपनी स्वयं की वित्तीय आवश्यकता के लिए साख-पत्र के आधार पर एक अन्य साख-पत्र खुलवा सकता है। प्रार्थी बैंक से प्रार्थना करके उस व्यक्ति के पक्ष में साख-पत्र खुलवाता है जिससे वह निर्यात करने के लिए माल खरीद रहा है। इस तरह एक साख-पत्र के आधार पर दुसरा साख-पत्र खोला जाता है, यह प्रथम पर आधारित दूसरी साख कहलाती है।

(18) **विलम्ब से भुगतान साख (Delayed Payment Credit)**-इस साख व्यवस्था के अन्तर्गत लाभार्थी माल से सम्बन्धित सभी लेख-पत्र तो तुरन्त आयातक के पास सीधे भेज देता है, परन्तु अपना विनिमय बिल कुछ दिन तक रूक कर बैंक के सामने प्रस्तुत करता है। इस तरह कुछ दिन रुकने के कारण आयातक को भुगतान करने का कुछ समय मिल जाता है। इस कारण इसे विलम्ब से भुगतान साख कहते हैं।

16.13 बैंक साख का नियमन (Regulation of Bank Credit)

बैंक उपरोक्त प्रकार की अल्पकालीन साख अपने ग्राहकों को देता है। बैंक साख का नियमन टण्डन **समिति** तथा **चोरे समिति** की सिफारिशों के अनुसार किया जाता है। टण्डन समिति ने बैंक लाख के नियमन के लिए अनेक सुझाव दिये थे। टण्डन समिति के सुझावों का सार निम्न था-उद्योगों के लिए स्कन्ध के मापदण्ड निर्धारित किये जायें, कम्पनियों की बैंकों पर निर्भरता क्रमिक रूप से कम की जाये, साख के प्रयोग पर निगरानी रखी जाये तथा ऋणियों से नियमित रूप से साख की मात्रा और उसके प्रयोग पर सूचना एकत्र की जाये। टण्डन समिति ने व्यावसायिक प्रतिष्ठानों को प्रदान की जाने वाली अधिकतम ऋण अथवा साख की मात्रा के निर्धारण के लिए तीन विधियाँ बतायीं जिनमें दूसरी विधि अधिक उपयुक्त है तथा इसका प्रयोग बैंकों द्वारा आज भी किया जाता है। इस विधि के अनुसार कुल चालू सम्पत्तियों का 25 प्रतिशत भाग उधारकर्ता द्वारा दीर्घकालीन साधनों से प्राप्त करना चाहिए तथा इसके बाद शेष कार्यशील पूँजी अन्तर बैंक साख द्वारा प्रदान की जानी चाहिए। सूत्र रूप में-

अधिकतम बैंक साख = 0.75(CA) - CL

जहाँ, पर CA = Total Current Assets

CL = Non-bank Current Liabilities

टण्डन समिति की सिफारिशों का सन्तोषजनक क्रियान्वयन न होने के कारण रिजर्व बैंक ने 1997 में चोरे समिति नियुक्त की तथा चोरे समिति की सभी सिफारिशें स्वीकार कर ली गई। चोरे समिति ने अधिकतम बैंक साख के निर्धारण के लिए टण्डन समिति द्वारा विकसित द्वितीय विधि का उपयोग करने की सिफारिश की। बैंकों को शीर्ष स्तर तथा गैर-शीर्ष स्तर की साख आवश्यकताओं की सीमाओं का अलग-अलग निर्धारण करना चाहिए। सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र के मध्यम एवं बड़े उपक्रमों की बैंक साख पर

अत्यधिक निर्भरता को कम करना चाहिए। साख सीमाओं के निर्धारण में बैंकों को विलम्ब रोकना चाहिए। आकस्मिकताओं के लिए स्वीकृति सीमाओं से अधिक साख की आवश्यकता होने पर यह स्वीकृति अलग माँग खाते अथवा गैर-परिचालित नगद साख खाते द्वारा दी जानी चाहिए।

16.14 जन-निक्षेप (Public Deposit)

गैर-बैंकिंग तथा गैर-वित्तीय कम्पनियों द्वारा जनता से निक्षेप प्राप्त करने की परम्परा भारत में बहुत पुरानी है। अहमदाबाद, सूरत तथा मुम्बई की कपड़ा मिलों ने इस वित्तीय साधन का श्री गणेश किया था, जो आगे चलकर बहुत लोकप्रिय हो गया। जन-निक्षेप को भारतीय कम्पनी अधिनियम की धारा 58 (अ) तथा धारा 58 (ब) के अनुसार नियन्त्रित किया जाता है। कम्पनियों द्वारा निक्षेप स्वीकार नियम 1975 में बनाये गये तथा इनमें 1978 में संशोधन किया गया। जन-निक्षेपों के सम्बन्ध में प्रमुख प्रावधान निम्न प्रकार हैं-

(i) **नियम 3 के तहत** एक गैर-बैंकिंग तथा गैर-वित्तीय - कम्पनी अपने अंशधारियों से अथवा अपने आरक्षित ऋण-पत्रों के विरूद्ध अथवा अपने संचालकों द्वारा गारण्टी किये गये निक्षेप अल्पकालिक निक्षेपों को सम्मिलित करते हुए, अपने अंश-पूँजी तथा मुक्त संचितियों के 10 प्रतिशत तक स्वीकार कर सकती है।

(ii) अन्य सभी निक्षेप कम्पनी अपनी प्रदत्त पूँजी एवं मुक्त सम्पत्तियों के 25 प्रतिशत तक स्वीकार कर सकेगी।

मुक्त सम्पतियों में किसी विशिष्ट उद्देश्य के लिए बनाई गई संचिति अथवा सम्पत्तियों के पुनर्मूल्यांकन के फलस्वरूप उत्पन्न संचिति सम्मिलित नहीं होगी।

कोई भी कम्पनी जब भी जन-निक्षेप प्राप्त करना चाहती है उसे एक प्रमुख अंग्रेजी दैनिक पत्र तथा एक स्थानीय भाषा मे प्रकाशित कम्पनी के रजिस्टर्ड कार्यालय वाले राज्य में प्रसारित दैनिक पत्र में निक्षेपों के सम्बन्ध में विज्ञापन करना आवश्यक होता है। इस विज्ञापन की विषय-सामग्री नियम 4 के अनुसार होनी चाहिए तथा प्रकाशन से पूर्व इसकी संचालक मण्डल से स्वीकृति प्राप्त होनी चाहिए। नियम 7 के अनुसार कम्पनी निक्षेपकर्ताओं का एक रजिस्टर बनायेगी जिसमें निक्षेपकर्ताओं के नाम, पते, निक्षेप की तिथियाँ, अवधि, वापसी, ब्याज का भुगतान आदि का पूर्ण विवरण दिया जायेगा।

जन-निक्षेपों के लाभ -जन निक्षेपों से वित्त प्राप्ति के निम्न लाभ होते हैं-

(i) **सरल (Simple**)-जन-निक्षेप वित्त प्राप्त करने की बड़ी ही सरल विधि है, क्योंकि इसमें विशेष औपचारिकताएँ पूरी करने की आवश्यकता नहीं रहती है। प्रविवरण जारी करना, अभिगोपन अनुबन्ध करना अथवा सम्पत्ति बन्धक रखना इस विधि में आवश्यक नहीं है।

(ii) **कम खर्चीली (Economical)-**यह विधि कम खर्चीली तथा वित्त प्राप्ति के अन्य साधनों की तुलना में सस्ती होती है, क्योंकि इस पर देय ब्याज बैंक ऋणों की तुलना में कम होता है।

(iii) **लोचपूर्ण (Flexible)-**इस विधि के प्रयोग में कम्पनी के वित्तीय ढाँचे में लोच रहती है, क्योंकि इनका पुन: भुगतान करके कम किया जा सकता है अथवा अधिक निक्षेप स्वीकार करके इनकी मात्रा बढ़ायी जा सकती है।

(iv) **जन अभिरुचि (People Preference)-**भारत में जन-निक्षेपों पर ब्याज दर बैंकों में विभिन्न प्रकार की जमाओं पर प्राप्त ब्याज दरों से अधिक होती है, अत: लोग इनमें अधिक रुचि लेने लगे हैं।

(v) **सुरक्षा (Secure)-**जन-निक्षेपों का नियमन करने के लिए केन्द्रीय सरकार ने जो नियम बनाये हैं वे जमाकर्ताओं के हितों को सुरक्षित बनाते हैं।

जन-निक्षेपों के दोष-जन-निक्षेप से वित्त प्राप्त करने के निम्न दोष हैं-

(i) **अच्छे समय का साथी (Fair Weather Friend)-**जन-निक्षेप अच्छे मौसम के साथी के समान होते हैं। जब अच्छी परिस्थितियाँ होती हैं तब जन-निक्षेप सरलता से प्राप्त हो जाते हैं, परन्तु बुरे समय में अतिरिक्त जन-निक्षेप प्राप्त करना कठिन ही नहीं होता है बल्कि पहले से प्राप्त जन-निक्षेप भी जनता द्वारा वापस माँगे जाते हैं। अत: इनके आधार पर किसी दीर्घकालीन योजना पर विचार नहीं किया जा सकता है।

(ii) **सट्टे को प्रोत्साहन (Promotes Speculation)-**जब किसी व्यापारिक प्रतिष्ठान को आवश्यकता से अधिक जन-निक्षेप प्राप्त हो जाते हैं तब वह इनका उपयोग सट्टे के व्यापार में करता है, जो एक सामाजिक अभिशाप है।

(iii) **नई कम्पनियों के लिए अनुपयुक्त (Not Suitable for New Companies)-** जन-निक्षेप लाभ कमाने वाली पूर्व-स्थापित कम्पनियों को ही प्राप्त होते हैं, अत: यह विधि नई कम्पनियों के लिए उपयुक्त नहीं है।

(iv) **पूँजी बाजार के विकास में बाधक (Obstacles in the Development of Capital Market)-**जब जन-निक्षेपों में अधिक धन लगाया जाता है तो स्वस्थ पूँजी बाजार के विकास में बाधा उपस्थित होती है ।

उपरोक्त बुराइयों के होते हुए भी भारत में जन-निक्षेप वित्त प्राप्ति का एक महत्वपूर्ण साधन है तथा 2,500 से 3,000 करोड़ रुपये विभिन्न कम्पनियों को प्रति वर्ष जन-निक्षेपों से प्राप्त होते हैं।

अन्तर-कम्पनी निक्षेप (Inter-Company Deposits)

एक कम्पनी द्वारा दूसरी कम्पनी को दिये गये निक्षेप अन्तर-कम्पनी निक्षेप कहलाते हैं। ये अल्पकालीन अथवा सावधि हो सकते हैं। अल्पकालीन निक्षेप (i) आहवान निक्षेप (Call Deposits) जो एक दिन की सूचना पर वापस प्राप्त किये जा सकें, (ii) त्रैमासिक निक्षेप, तथा (iii) अर्द्ध-वार्षिक निक्षेप के रूप में हो सकते हैं।

भारत में अन्तर-कम्पनी निक्षेपों का विकास वर्तमान शताब्दी के सातवें दशक से हुआ। इसके लिए इनकी माँग व पूर्ति दोनों ही कारण जिम्मेदार रहे।

अन्तर-कम्पनी: निक्षेप बाजार के अल्पकालिक भाग पर कोई नियन्त्रण नहीं है। दीर्घावधि के निक्षेपों को तो कम्पनी अधिनियम की धारा 58 (अ) के अन्तर्गत सम्मिलित कर लिया गया है, परन्तु अल्पकालिक निक्षेप स्वतन्त्रतापूर्वक कम्पनियों के मध्य लिये एवं दिये जाते हैं।

16.15 नवीन वित्तीय पुर्जे (New Financial Instruments)

अल्पकालीन वित्त के क्षेत्र में कुछ नवीन सम्पत्तियाँ अथवा पुर्जे विकसित हुए हैं जिनमें निम्न दो का वर्णन आवश्यक है-(i) व्यापारिक पत्र (Commercial Paper or CP), तथा (ii) जमा प्रमाण-पत्र (Certificate of Deposit or CD)।

(i) **व्यापारिक पत्र (Commercial Paper)-**अप्रैल, 1989 से बड़ी कम्पनियों को सीधे मुद्रा बाजार से धन एकत्र करने के लिए व्यापारिक पत्र निर्गमित करने की अनुमति दी गई, इसकी प्रमुख विशेषताएँ निम्न होती हैं-

(i) ये उच्च मूल्य वाले निगमों या कम्पनियों द्वारा निर्गमित किये जाते हैं तथा ये जमानत रहित वायदा पत्र होते हैं तथा निवेशकर्ता को सीधे निर्गमित किये जाते हैं।

(ii) ये अंकित मूल्य से कम मूल्य पर निर्गमित किये जाते हैं तथा बट्टे की दरें मुद्रा बाजार की परिस्थितियों पर निर्भर करती हैं।

(iii) इनका उपयोग व्यापारिक बैंकों से अनुमति प्राप्त कार्यशील पूँजी की साख सीमाओं के बदले किया जाता है, अत: निगमों की साख सीमा नहीं बढती है।

(iv) इनको एक निगम अधिकतम मात्रा में अपनी सकल कार्यशील पूँजी के 75 प्रतिशत के बराबर कर सकती है तथा न्यूनतम मात्रा 25 लाख रुपये है। ये पाँच-पाँच लाख रुपये की राशि में निर्गमित किये जा सकते हैं।

(v) इनका खुले रूप से हस्तान्तरण संभव नहीं है।

इसके निम्न लाभ हैं-

(a) कम ब्याज दर पर धन उपलब्ध।

(b) अल्पकालीन साख का अच्छा साधन।

(c) तरलता व लोचशील साधन।

(d) निवेशकर्ता को मान्यता।

(ii) **जमा के प्रमाण-पत्र (Certificates of Deposit)-**इनके परिचालन की अनुमति भी मार्च 1989 में प्रदान की गई। सीडी एक निश्चित अवधि के लिए सावधि जमा के स्वामित्व का प्रमाण-पत्र है जो बिक्री योग्य होता है। यह प्रमाण-पत्र बैंक अवधि प्रमाण-पत्रों की तरह ही होता है, परन्तु कुछ अर्थों मे उनसे भिन्न होता है। इनकी ब्याज दर निर्धारित नहीं होती है तथा इनका निर्गमन अंकित मूल्य से कम काज पर किया जाता है। इनकी अवधि 15 दिन से 1 वर्ष तक होती है तथा न्यूनतम राशि 5 लाख होती है तथा ये एक-

एक लाख रुपये में व्यक्त करके निर्गमित किये जा सकते हैं। यदि विक्रय साध्य होता है तो वह (विनियोक्ता) इसे बाजार में विक्रय कर सकता है।

आन्तरिक स्रोत (Internal Sources)

1. **ग्राहकों से अग्रिम (Advances from Customers)-**
   अनेक बार कुछ उत्पादक अपने ग्राहकों से माल की सम्पूर्ण राशि अथवा आशिक राशि अग्रिम प्राप्त कर लेते हैं तथा यह राशि माल की आपूर्ति तक उनके पास रहती है। सामान्यतया इस पर कोई ब्याज नहीं दिया जाता है। अत: यह अल्पकालीन वित्त का सस्ता साधन है, परन्तु यह केवल प्रतिष्ठित संस्थाओं द्वारा ही उपयोग में लाया जा सकता है। जिन उद्योगों में अधिक प्रतिस्पर्धा की स्थिति होती है वहाँ ग्राहकों से अग्रिम प्राप्त नहीं होता है, बल्कि ग्राहकों को उधार की शर्तों पर माल बेचना पड़ता है।
2. **प्रतिधारित अर्जनें (Retained Earnings)**
   पुरानी संस्थाएँ अपने विकास कार्यो हेतु दीर्घकालीन वित्त व्यवस्था प्रतिधारित अर्जनों से कर सकती हैं। सामान्यतया संस्थाएँ अपने सम्पूर्ण लाभ को अंशधारियों में वितरित न कर कुल लाभ के एक भाग को बचाकर रख लेती हैं। यह बचत विभिन्न संचयों अथवा लाभ-हानि खाते के रूप में संस्था के पास रहती है। इसे जब स्थिर अथवा कार्यशील पूँजी के रूप में प्रयोग किया जाए तो आन्तरिक साधनों द्वारा **वित्त प्रबन्धन. प्रतिधारित अर्जनें अथवा लाभों का पुनर्विनियोजन कहा जाता है।**
   अत: लाभों का पुनर्विनियोजन वित्तीय प्रबन्ध की वह तकनीक है जिसके अन्तर्गत समस्त लाभों को अंशधारियों में न बाँटकर लाभों का एक भाग संस्था में रोक लिया जाता है, अथवा पुनर्विनियोजित कर दिया जाता है।
   लाभों के पुनर्विनियोजन से कम्पनी की न केवल आर्थिक सुदृढ़ता आती है वरन् अंशों के मूल्यों में भी वृद्धि की प्रवृत्ति का विकास होता है।

लाभों के पुनर्विनियोजन से लाभ (Advantages of Ploguhing Back of Profits):

1. कम्पनी को लाभ
2. अंशधारियों को लाभ
3. समाज को लाभ

I. कम्पनी को लाभ (Advantages to Company)

1. **ऋणों के भुगतान की सुविधा**-लाभों के पुनर्विनियोजन के माध्यम से संस्था अपने अल्पकालीन व दीर्घकालीन ऋणों का भुगतान कर सकती है जिससे संस्था को न केवल ब्याज की बचत होती है वरन् संस्था के लाभों में भी वृद्धि होती है।
2. **मितव्ययतापूर्ण**-संस्था के कोषों की प्राप्ति हेतु बैंकों, वित्तीय संस्थाओं, जन-निक्षेपों एवं ऋण-पत्रों पर निर्भरता नहीं रहने के कारण यह वित्त पोषण का सबसे मितव्ययी साधन है तथा पुनर्विनियोजित लाभों से कम्पनी को लागत रहित पूँजी की प्राप्ति होती है जिससे कम्पनी की औसत पूँजी लागत में भी कमी आती है।

3. **लाभांश नीति में स्थिरता**-लाभों के पुनर्विनियोजन से संस्था द्वारा स्थिर लाभांश नीति अपनाई जा सकती है अर्थात् लाभांश नियमित रूप से चुकाया जा सकता है।
4. **कार्यकुशलता में सुधार**-संस्था के पास पर्याप्त कोषों की उपलब्धता से मशीनों एवं संयन्त्रों को अच्छी स्थिति में रखा जा सकता है जिसके आधार पर उत्पादन की मात्रा एवं लाभों में वृद्धि की जा सकती है।
5. **व्यापार चक्रों से सुरक्षा**-लाभों के पुनर्विनियोजन से संस्था मन्दी के समय बाजार की अनिश्चितता का मुकाबला करने में पूर्ण रूप से सक्षम हो सकती है।
6. **आयोजनों की कमी की पूर्ति**-लाभों के पुनर्विनियोजन से कम्पनी डूबते ऋण, हास आदि आयोजनों की कमी की पूर्ति कर सकती है।

अंशधारियों को लाभ (Advantages to Shareholders)

1. **लाभांश में वृद्धि**-लाभों के पुनर्विनियोजन से लाभों में वृद्धि, संस्था की कार्यकुशलता में सुधार एवं सम्पत्तियों की कार्यक्षमता में वृद्धि होने से अंशधारियों को प्राप्त होने वाले लाभांश में वृद्धि होती है।
2. **विनियोगों की सुरक्षा**-लाभों के पुनर्विनियोजन से संस्था की लाभांश नीति में स्थिरता, बाजार में अंशों की मूल्य वृद्धि एवं व्यापार चक्रों में सुरक्षा के कारण अंशधारियों द्वारा किए गए विनियोगों में सुरक्षा एवं अंशों के मूल्यों में बढ़ोत्तरीहोगी।
3. **अंशों के मूल्यों में बढ़ोत्तरी**-लाभों के पुनर्विनियोजन से संस्था की लाभांश नीति में स्थिरता एवं नियमितता आती है जिससे न केवल संस्था की ख्याति में वृद्धि होती है वरन् अंशों के मूल्यों में भी बढ़ोत्तरी होती है।
4. **ऋण प्राप्ति में सुविधा**-अंशों के मूल्यों में बढ़ोत्तरी होने से उनका समपाश्विक मूल्य भी बढ़ जाता है। इससे अंशधारी अंशों की जमानत पर बैंकों से अधिक मात्रा में ऋण प्राप्त कर सकते है।
5. **नियन्त्रण में स्थायित्व**-लाभों के पुनर्विनियोजन के कारण कम्पनी की पूँजी सम्बन्धी आवश्यकताओं हेतु अंशों की मात्रा में वृद्धि हेतु विद्यमान अंशधारियों को ही बोनस अंशों का निर्गमन किया जा सकता है, जिससे विद्यमान अंशधारियों के नियन्त्रण में कमी नहीं पाई जाती है।

III. समाज को लाभ (Advantages to Society)

1. **पूँजी-निर्माण को बढ़ावा**-आन्तरिक स्रोतों से संस्था के विकास एवं विस्तार के कारण लाभों की मात्रा में वृद्धि एवं उत्पादित वस्तुओं की लागत में कमी पाई जाती है इससे समाज को कम मूल्यों पर अच्छी वस्तुओं की प्राप्ति होती है।
2. **जीवन-स्तर में सुधार**-लाभों के पुनर्विनियोजन से उपभोक्ताओं को सस्ती व अच्छी किस्म की वस्तुओं की प्राप्ति होती है। इसके साथ ही व्यवसाय में संलग्न व्यक्तियों को भी नौकरी की सुरक्षा एवं पर्याप्त मात्रा में पारिश्रमिक की प्राप्ति होती है, जिससे सामाजिक जीवन स्तर में सुधार होगा।
3. **औद्योगिक सफलता में वृद्धि**-लाभों के पुनर्विनियोजन के कारण अनेक संस्थाएँ व्यापार चक्रों के प्रभाव के बावजूद भी प्रतिस्पर्धा में बनी रहती हैं। पूँजी-निर्माण से न केवल

औद्योगिक विकास की दर में वृद्धि होती है वरन् देश में वित्तीय स्थिरता भी आती है। अत: औद्योगिक असफलता में कमी एवं सफलता में वृद्धि की जा सकती है।

4. **वैज्ञानिक प्रबन्ध का विकास**-लाभों के पुनर्विनियोजन के माध्यम से समय एवं धन की बचत कर उसका उपयोग संयन्त्रों के नवीनीकरण एवं स्वचालन तथा यन्त्रीकरण में किया जाकर संस्था के लाभों एवं उत्पादकता में वृद्धि की जा सकती है।

लाभों के पुनर्विनियोजन की हानियाँ (Losses of Ploughing Back of Profit)

1. **अंशधारियों में असन्तोष**-लाभों के पुनर्विनियोजन से अंशधारियों को मिलने वाले लाभांश की वर्तमान दरों की कमी हो जाती है जिसके कारण उनमें असन्तोष पाया जाता है।
2. **बचत के सदुपयोग का अभाव**-लाभों का पुनर्विनियोजन करना जितना सरल होता है उतना ही इस राशि का उपयोग करना कठिन होता है, जिससे अंशधारियों के हितों पर कुठाराघात होता है। इसके अलावा प्रबन्धकों द्वारा बचत को अपने समूह की दूसरी संस्थाओं में विनियोजित कर दुरुपयोग किया जाता है।
3. **पूँजी के प्रवाह पर रोक**-कम्पनियों द्वारा अधिकांश लाभों का व्यवसाय में पुनर्विनियोजन कर देने से पूँजी का प्रवाह समुचित ढंग से नहीं हो पाता है। पूँजी का एक भाग बाजार में आने से वंचित रह जाता है। इससे जिन उद्योगों को पूँजी की आवश्यकता है, उन्हें पूँजी उपलब्ध नहीं हो पाती है अर्थात् पूँजी का प्रवाह रुक जाता है।
4. **अंशों के मूल्यों में कमी**-प्रबन्धकों द्वारा अधिक लाभों का संचय कर अंशधारियों को लाभांश की दर में कमी कर दी जाती है जिससे अंशों के बाजार मूल्यों में कमी हो जाती है, जिसे बाद में प्रबन्धकों द्वारा क्रय कर ऊँची दरों से लाभांश घोषित किया जाता है जिसको अंशों के बाजार-मूल्यों में वृद्धि हो जाती है। अत: साधारण विनियोजक प्रबन्धकों की जालसाजी का शिकार हो जाता है।
5. **नई संस्थाओं के प्रवेश में बाधित**-लाभों के अत्यधिक पुनर्विनियोजन से वर्तमान इकाईयाँ बहुत शक्तिशाली हो जाती है तथा नई संस्थाओं के प्रवेश में बाधा उत्पन्न होती है, क्योंकि वे पूर्व से स्थापित संस्थाओं से प्रतिस्पर्धा नहीं कर पाती है।

16.16 शब्दावली

1. बाह्य स्रोत (External Sources)
2. आन्तरिक स्रोत (Internal Sources)
3. व्यापारिक साख (Trade Credit)
4. जन निक्षेप (Public Deposit)
5. प्रतिधारित अर्जने (Retained Earnings)
6. प्रतियोगिता (Competition)
7. नकद बट्टा (Cash Discount)
8. व्यापारिक बट्टा (Trade Discount)
9. प्रतिज्ञापत्र (Promisory Note)
10. विनिमय विपत्र (Bills of Exchange)

11. अधिविकर्ष (Bank Overdraft)
12. अग्रिम (Advance)
13. बीमा प्रीमियम (Insurance Premium)
14. जहाजी व्यय (Ship Expenditure)
15. दलाली (Brokerage)
16. निर्यातक (Exporter)
17. आयातक (Importer)
18. कटौती गृह (Discount Houses)
19. स्वीकृति गृह (Acceptance Houses)
20. संचयी साख (Commulative Credit)
21. खण्डनीय साख (Revocable Credit)
22. लाल वाक्य साख (Red Clause Credit)
23. हरा वाक्य साख (Green Clause Credit)
24. बन्धक पत्र (Mortgage Paper)
25. बैंक साख (Bank Credit)
26. व्यापारिक पत्र (Commercial Paper)
27. कर आयोजन (Tax Provision)
28. लाभों का पुर्नविनियोजन (Plough back of Profit)

16.17 अभ्यास प्रश्न

1. वित्त प्राप्ति के अल्पकालीन साधन क्या हैं?
2. व्यापारिक साख का अर्थ बताइए।
3. अल्पकालीन बैंक वित्त के विभिन्न साधन बतलाए।
4. अधिविकर्ष तथा बैंक ऋण में कोई दो अन्तर स्पष्ट कीजिए।
5. जन-निक्षेप क्या होता है?
6. अन्तर-कम्पनी निक्षेप क्या होते हैं?
7. 'वाणिज्यिक पत्रों' से आप क्या समझते हैं?
8. लाभों के पुनर्विनियोजन का अर्थ बताइये।
9. व्यापारिक पत्र क्या होता है? इसकी प्रमुख विशेषताएँ बतलाइए।
10. जमा पत्र क्या होता है? इसकी प्रमुख विशेषताएँ बतलाइए।
11. व्यापारिक पत्र एवं जमा पत्र में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
12. क्या संस्था का दिन-प्रति-दिन का कुशल संचालन अल्पकालीन साधनों की पर्याप्त पूर्ति पर अधिक निर्भर करता है? स्पष्ट कीजिए।
13. 'जन-निक्षेप सुख के साथी है'। समझाइये।
14. लाभों के पुनर्विनियोजन के चार लाभ बताइये।
15. जहाजी व्यय से आप क्या समझते हैं?

16. लदान पूर्व साख एवं लदानोत्तर साख में क्या अन्तर है?
17. विनिमय बिल कटौती का सूत्र लिखो।

16.18 व्यावहारिक प्रश्न

1. अल्पकालीन वित्त का अर्थ बताइये। आयात-निर्यात व्यापार में साख की आवश्यकता क्यों पड़ती है? समझाइए।
2. साख पत्र पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
3. अल्पकालीन वित्त के साधनों का वर्णन कीजिए।
4. लाभों के पुनर्विनियोजन से आप क्या समझते हैं? इसके लाभ-हानियों का वर्णन कीजिए।
5. अल्पकालीन वित्त की नवीन प्रकृतियों पर प्रकाश डालिए।

16.19 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. **वित्तीय प्रबन्ध के तत्व,** अग्रवाल-अग्रवाल, रमेश बुक डिपो, जयपुर 2008-09
2. **फाइनेसिंग ऑफ इंडियाज फोरेन ट्रेड,** केसर सिंह, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर 2002
3. **वित्तीय प्रबन्ध,** आई.एम. पाण्डे, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई 2007
4. **भारतीय अर्थव्यवस्था,** प्रतियोगिता दर्पण, उपकार प्रकाशन, आगरा, 2008-09
5. **बैंकिंग एवं वित्त,** गुप्ता, वशिष्ठ स्वामी, रमेश बुक डिपो, जयपुर 2008
6. **व्यावसायिक संगठन,** शर्मा, कोठारी, रतन प्रकाशन मन्दिर, आगरा 2002
7. **वित्तीय प्रबन्ध,** एम.आर. अग्रवाल, गरिमा पब्लिकेशन, जयपुर 2009

इकाई-17 :वित्त प्राप्ति के दीर्घकालीन साधन
(Sources of Long-term Finance)

इकाई संरचना

17.1 परिचय
17.2 अंशों के प्रकार
17.2.1 इक्विटी या सामान्य अंश
17.2.2 पूर्वाधिकारी अंश
17.2.3 पूर्वाधिकारी अंशों का विश्लेषण
17.2.4 समता तथा पूर्वाधिकारी अंशों का तुलनात्मक अध्ययन
17.2.5 स्वेट इक्विटी अंश
17.2.6 सम-मूल्य रहित अंश
17.3 ऋण पूँजी
17.4 ऋणत्रों के प्रकार
17.5 ऋण पत्र एवं अंश में अन्तर
17.6 ऋण पत्रों का मूल्यांकन
17.7 सावधि ऋण
17.8 नवीन ऋण परिसम्पत्तियाँ
17.9 अन्तर्राष्ट्रीय वित्तयन
17.10 शब्दावली
17.11 अभ्यास प्रश्न
17.12 व्यावहारिक प्रश्न
17.13 प्रमुख ग्रन्थ

17.1 परिचय (Introduction)

एक कम्पनी दीर्घकालीन वित्त अंश पूँजी तथा दीर्घकालीन ऋण पूँजी से प्राप्त करती है। सरकारी क्षेत्र के उपक्रमों को प्रारम्भ से ही वित्तीय संस्थाओं अथवा स्वयं सरकार से दीर्घकालीन ऋण पूँजी प्राप्त हो जाती है। किन्तु निजी क्षेत्र के उपक्रमों को सर्वप्रथम अंश पूँजी से ही वित्तीय ढाँचा तैयार करना होता है तथा जब संस्था का व्यवसाय चलने लगता है तब वह ऋण-पत्र निर्गमित करके अथवा वित्तीय निगमों से ऋण पूँजी प्राप्त कर सकती है।

प्रो. ए.एस. डेविंग के शब्दों में, “विद्यमान उद्योगों के सुधार एवं वृद्धि तथा नए उद्योगों की स्थापना हेतु अनेक योजनाओं एवं उपायों के क्रियान्वयन के लिए

दीर्घकालीन वित्त की आवश्यकता होती है।" दीर्घकालीन वित्त का प्रयोग मुख्यतः स्थायी सम्पत्तियों को खरीदने हेतु किया जाता है।

ऋण-पूँजी के दीर्घकालीन साधनों की अवधि पाँच या सात वर्ष से लगाकर दस बारह वर्ष तक होती है। भारतीय कम्पनियों द्वारा जारी किये जाने वाले ऋणपत्रों की अवधि प्रायः दस बारह वर्ष से अधिक नहीं होती है। भारतीय निगमों (Financial Corporation) द्वारा कम्पनियों को दिये जाने वाले दीर्घकालीन ऋणों की अवधि सामान्यत: दस वर्ष की होती है किन्तु पश्चिम के अनेक देशों में दीर्घकालीन ऋण साधनों की अवधि पन्द्रह से बीस वर्ष तक की होती है। दीर्घकालीन साधनों से प्राप्त ऋण-पूँजी, स्वामी-पूँजी की अनुपूरक होती है और इसका प्रयोग किसी कॉपीराइट, पेटेण्ट, साख या 'गुडविल' आदि के भुगतान के लिए किया जा सकता है। साथ ही नियमित-कार्यशील पूँजी' (जिसे स्थायी कार्यशील पूँजी कहा जाता है) की पूर्ति भी दीर्घकालीन ऋण-पूँजी से की जा सकती है।

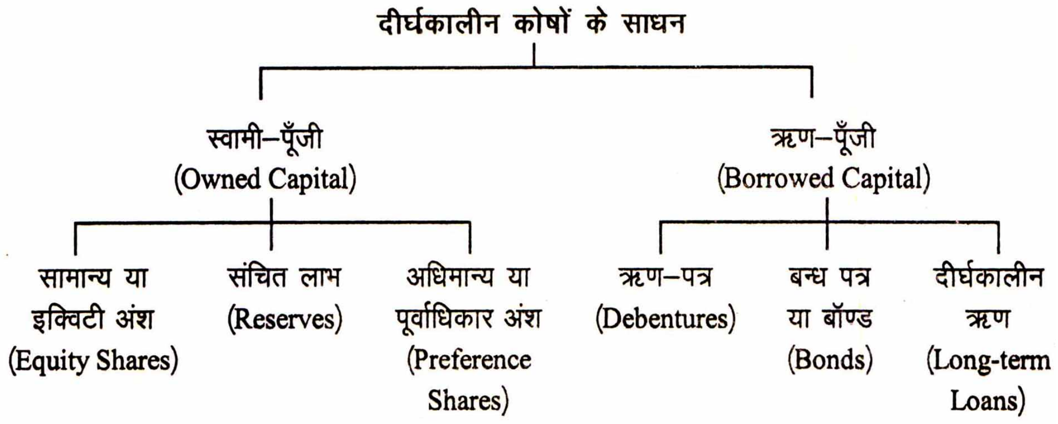

अंश किसी कम्पनी की पूँजी का एक भाग है। **कम्पनी अधिनियम की धारा 2(46)** में अंश की परिभाषा इस प्रकार की गयी है, "अंश का तात्पर्य किसी कम्पनी के अंश-पूँजी के भाग से है जिसमें स्कन्ध (Stock) को भी सम्मिलित किया जाता है जब तक कि अंश और स्कन्ध में स्पष्टत: या गर्भित रूप में अन्तर न किया जाय।"

उपर्युक्त परिभाषा कानूनी परिभाषा है, किन्तु फिर भी 'अंश' शब्द के अभिप्राय को पूर्णत: स्पष्ट नहीं करती। अंश वस्तुतः पूँजी का एक भाग ही नहीं है वरन् उसका धारक कम्पनी में अपना स्वत्व एवं दायित्व भी स्थापित करता है।

न्यायाधीश लिण्डले के अनुसार, "पूँजी का आनुपातिक भाग जिसका प्रत्येक सदस्य अधिकारी होता है, उसका अंश कहलाता है।" कम्पनी प्रत्येक अंश के लिए पृथक संख्या निर्धारित करती है और अंशधारी को उसके द्वारा लिये हुए अंशों के लिए अंश प्रमाण-पत्र देती है। अंशों को चल सम्पत्ति माना जाता है और प्रत्येक अंशधारी कम्पनी के अन्तर्नियमों के अनुसार अपने अंशों को अन्य व्यक्तियों को हस्तान्तरित कर सकता है।

परिभाषा : कम्पनी अधिनियम 1956 की धारा 2(46) के अनुसार - अंश का अर्थ किसी कम्पनी की अंशपूँजी के उस भाग से है, जिसमें स्टॉक भी शामिल है, केवल उस स्थिति को छोड़कर जहाँ स्पष्ट या गर्भित रूप से स्टॉक एवं अंश में अन्तर किया जा सके।

अंशों के निर्गमन से प्राप्त अंश की कुछ विशेषताएं होती हैं जिनकी वित्तीय प्रबन्धकों को जानकारी होनी चाहिए। अंश पूँजी की कुछ प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित है -

1. **स्थायी पूँजी की प्राप्ति** (Getting Permanent Capital) - अंशों के निर्गमन से कम्पनी को स्थायी पूँजी (Permanent Capital) की प्राप्ति होती है जिसका कम्पनी प्रबन्ध द्वारा तब तक उपयोग किया जा सकता है जब तक कम्पनी का व्यापार चलता रहे। अंश पूँजी को वापस लौटाने की चिन्ता नहीं होती है।
2. **लाभांश देने की अनिवार्यता नहीं** (Payment of Dividend not Compulsory) - अंश पूँजी पर प्रतिवर्ष निश्चित दर से ऋण पूँजी की तरह से ब्याज देने की आवश्यकता नहीं रहती। कम्पनी के लिए अपनी आय को अंशधारियों में वितरण करना अनिवार्य नहीं है। कम्पनी प्रबन्ध चाहे तो कम्पनी की समस्त आय को व्यवसाय में पुनर्विनियोजित कर सकती है।
3. **सम्पत्ति को बन्धक रखने की आवश्यकता नहीं** (No Mortgage of Property) - अंश पूँजी प्राप्त करने के लिए कम्पनी की सम्पत्ति को प्रभार अथवा बन्धक पर रखने की आवश्यकता नहीं होती है।
4. **कम्पनी के जीवनकाल में धन वापसी नहीं** (Non-returnable in the Life of the Company) - अंश पूँजी में विनियोजकों द्वारा लगाया गया धन स्थायी विनियोजन है जिसे विनियोजक अपनी इच्छा से जब चाहे तब वापस प्राप्त नहीं कर सकता हैं।
5. **कम्पनी के समापन पर समस्त देनदारियों के भुगतान के बाद धन की वापसी** (In case of Liquidation Last payment to equity-holders) - अंश पूँजी से प्राप्त धन कम्पनी के व्यापार के समापन की स्थिति में ही वापस लौटाया जाता है तथा यह भी उस समय ही लौटाया जाता है, जब कम्पनी की समस्त देनदारियों के भुगतान के बाद भी कम्पनी में धन शेष बचा रहता है।
6. **अंशधारियों को अपने अंश बेचने का अधिकार** (Right to get sell own shares) - कम्पनी के अंशधारियों को अपनी इच्छानुसार अपने अंशों को बेचने का अधिकार है। अत: एक अंशधारी किसी भी समय अपने अंशों को बेचकर प्राप्त धन को अन्यत्र कहीं भी विनियोजित कर सकता है।
7. **आय में हिस्सा प्राप्त करने का अधिकार** (Right to get share in Income) - अंशधारियों को कम्पनी की शुद्ध आय में भाग लेने का अधिकार प्राप्त है अंशधारी अधिक आय की स्थिति में अधिक लाभांश प्राप्त करते हैं और कम आय की स्थिति में कम लाभांश प्राप्त करते हैं।

8. **कम्पनी के प्रबन्ध का अधिकार** (Right of Management) - कम्पनी के अंशधारी कम्पनी के मालिक होते हैं, अत: उन्हें कम्पनी प्रबन्ध का पूरा अधिकार होता है जिसका प्रयोग वे अपने प्रतिनिधि के रूप में संचालक नियुक्त करके करते हैं।
9. **सीमित दायित्व** (Limited Liability) - प्रत्येक अंशधारी का दायित्व अपने द्वारा क्रय किये गये अंशों के अंकित मूल्य तक सीमित रहता है।
10. **विभिन्न प्रकार के अंशों का निर्गमन** (Issue of Varied Shares) - कम्पनियों द्वारा विभिन्न प्रकार के विनियोक्ताओं को आकर्षित करने के लिए विभिन्न प्रकार के अंश निर्गमित किये जाते हैं।

17.2 अंशों के प्रकार (Types of Shares)

एक देश में विभिन्न प्रकार के विनियोक्ता होते हैं। कुछ विनियोक्ता कम जोखिम उठाने तथा निश्चित आय प्राप्त करने के इच्छुक होते हैं। कुछ विनियोक्ता अधिक जोखिम सहन करने को तैयार होते हैं यदि उन्हें अधिक आय प्राप्त होने की आशा हो। अत: इन विभिन्न प्रकार के विनियोक्ताओं से धन प्राप्त करने के लिए कम्पनी प्रबन्ध विभिन्न प्रकार के अंशों का निर्गमन करता है।

भारतीय कम्पनी अधिनियम, 1956 के अनुसार दो प्रकार के अंशों का निर्गमन किया जा सकता है-

(1) समता अंश (Equity Shares) तथा (2) पूर्वाधिकारी अंश (Preference Shares) भारतीय कम्पनी अधिनियम, 1956 के अधिनियम के पूर्व तक कम्पनियाँ स्थगित अंशों (Deferred Shares) का निर्गमन कर सकती थी, परन्तु 1956 के अधिनियम द्वारा इस प्रकार के अंशों के निर्गमन पर रोक लगा दी गई है।

17.2.1 इक्विटी या सामान्य अंश (Equity Shares)

सामान्य अंश कम्पनी में पूँजी ढाँचे के आधार होते हैं। इनके धारक (Holders) कम्पनी के मूल स्वामी बन जाते हैं। कम्पनी के लाभ एवं उसकी सम्पत्ति में इनका असीमित हित होता है और इन पर लाभांश की - कोई सीमा निश्चित नहीं की जाती। अन्य देनदारियाँ चुकाने के बाद जो लाभ शेष रह जाता है उस पर उन्हीं का अधिकार होता है, चाहे वह तत्काल उन्हें लाभांश के रूप में वितरित कर दिया जाय अथवा संचित कोष में सुरक्षित रख दिया जाय। सम्पत्ति के मूल्य में वृद्धि के फलस्वरूप भी यदि कोई पूँजीगत लाभ (Capital Gain) होता है, तो उसके भी अधिकारी साधारण अंशधारी ही होते हैं। तात्पर्य यह है कि सामान्य अंशधारी कम्पनी के वास्तविक स्वामी होते हैं और वे ही कम्पनी का प्रबन्ध अप्रत्यक्ष रूप से करते हैं। उन्हें मतदान का पूर्ण अधिकार होता है जिसके आधार पर वे नियमानुसार संचालकों का चुनाव करते हैं और संचालक मण्डल उनकी ओर से कम्पनी का प्रबन्ध करता है। स्वामित्व के साथ संलग्न लाभों के साथ-साथ उससे सम्बन्धित दायित्वों का भार भी इन्हें वहन करना होता है।

ब्याज एवं अन्य निश्चित देनदारियों के भुगतान के पश्चात् जो कुछ भी बचता है उसी में इन्हें सन्तोष करना होता है। अवसायन (Liquidation) की दशा में अन्य ऋणदाताओं को चुकाने के बाद जो शेष रहता है वह इन्हें समानुपातिक (Pro-rata) रूप में वितरित कर दिया जाता है। यह इनकी मूल पूँजी से कम भी हो सकता है, तथा अधिक भी। अत: कम्पनी के लाभों एवं सम्पत्ति में सामान्य अंशधारी अवशिष्ट दावेदार (Residual Claimant) माने जाते हैं। सामान्य अंश-पूँजी कम्पनी के लिए एक सुरक्षात्मक दीवार की भाँति होती है, जो हानि संकटों के धक्कों को स्वयं सहन करके कम्पनी की सत्ता को कायम रखती है।

कम्पनी के वित्तीय ढाँचे में समता अंश पूँजी का महत्वपूर्ण स्थान होता है। यह पूँजी की व्यापार की आधारशिला है जिसके बिना कम्पनी के अस्तित्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती। इसी के बल पर कम्पनी के प्रबन्धक पूर्वाधिकार पूँजी तथा ऋण पूँजी प्राप्त करते हैं। समता अंशधारी ही कम्पनी के वास्तविक स्वामी तथा जोखिम वहन करने वाले होते हैं। समता पूँजी की सहायता से ही कम्पनी के प्रबन्धक वित्तीय संकटों का सामना करते हैं।

भारतीय कम्पनी अधिनियम के अनुसार सामान्य अंश वे हैं जो पूर्वाधिकारी अंश नहीं है। दूसरे शब्दों में समता अंश वे अंश हैं जिन पर लाभांश एवं समापन पर पूँजी की वापसी का पूर्वाधिकार नहीं होता है। सामान्य अंशधारी अन्तिम जोखिम धारक तथा अवशिष्ट आय एवं सम्पत्ति को बांटने वाले होते हैं। **समता अंशों की निम्नलिखित विशेषताएं** हैं-

1. **परिपक्वता (Maturity)** - समता अंशों से प्राप्त पूँजी कम्पनी की स्थायी पूँजी होती है। इसे लौटाने के लिए कम्पनी बाध्य नहीं है। समता अंशों से प्राप्त पूँजी कभी भी देय नहीं होती है। समता अंशधारी कम्पनी के समापन के पश्चात् ही अपनी अंश पूँजी वापस प्राप्त कर सकते हैं। कम्पनी अपने अंशधारियों को अंशों को बेचने के लिए बाध्य नहीं कर सकती है यदि वे अंश पूर्णदत्त है तथा अंशधारी किसी प्रतिस्पर्धात्मक व्यापार में नहीं लगा हुआ है।
2. **आय पर अधिकार (Claim on Income)** - समता अंशधारी कम्पनी की अवशिष्ट आय के स्वामी होते हैं। इसलिए कम्पनी की आय पर इनका अधिकार समस्त देनदारों को चुकाने के बाद भी होते हैं। कम्पनी कानूनी तौर पर समता अंशधारियों में लाभ वितरण के लिए बाध्य नहीं है। सामान्यतया कम्पनी को अधिक लाभ होने पर अंशधारियों में अधिक लाभांश वितरित किया जाता है तथा कम लाभ होने पर कम लाभांश। लाभांश का वितरण कम्पनी के प्रबन्ध की नीति पर निर्भर करता है। प्रबन्ध चाहे तो कम्पनी की समस्त शुद्ध आय को संचित कोषों में हस्तान्तरित कर सकता है और चाहे तो उसे अंशधारियों में वितरित कर सकता है।
3. **सम्पत्तियों पर अधिकार (Claim on Assets)** - कम्पनी की सम्पत्तियों पर अन्तिम समता अंशधारियों का होता है। कम्पनी के समापन की स्थिति में समस्त देनदारियों

का भुगतान करने के बाद जो भी सम्पत्ति शेष रहती है उसमें से सर्वप्रथम पूर्वाधिकारी अंशधारियों को भुगतान किया जाता है तथा उसके बाद भी जो सम्पत्ति रहती है तो उसे समता अंशधारियों में उनके द्वारा धारित अंशों के अनुपात में बाँट दिया जाता है।

4. **प्रबन्ध एवं नियन्त्रण का अधिकार (Right of Control and Management)** - कम्पनी के व्यवसाय के नियन्त्रण एवं प्रबन्ध का अधिकार समता अंशधारियों के हाथों में होता है। यह अधिकार उन्हें मताधिकार के कारण प्राप्त होता है। यह तथ्य सामान्यतया बड़ा हास्यास्पद लगता है कि कम्पनी का प्रबन्ध एवं नियन्त्रण कुछ ही व्यक्तियों के हाथों में होता है। परन्तु हमें यहाँ नहीं भूलना चाहिए कि कम्पनी का प्रबन्ध संचालक मण्डल द्वारा किया जाता है। संचालक मण्डल में संचालकों को नियुक्त करने तथा उन्हें हटाने का अधिकार पूर्णत: समता अंशधारियों के पास ही होता है। इसके अतिरिक्त सभी महत्वपूर्ण मामलों में संचालक मण्डल को अंशधारियों की सहमति प्राप्त करना आवश्यक होता है।
5. **जोखिम (Risk)** - समता अंशधारियों की पूँजी जोखिम पूँजी कहलाती है, यदि संस्था को लाभ हो रहे हैं तो समता अंशधारियों को अधिक लाभांश मिलेगा एवं हानि एवं विघटन के समय इन्हें अधिक नुकसान होता है।
6. **लाभांश की अस्थिरता (Unstability of Dividend)** - कम्पनियों द्वारा अपने समस्त व्ययों एवं पूर्वाधिकार अंशधारियों को लाभांश का भुगतान करने के पश्चात् शेष लाभ में से समता अंशधारियों को लाभांश का भुगतान किया जाता है। अत: समता अंशधारियों को दिए जाने वाले लाभांश की मात्रा एवं दर में परिवर्तन होता रहता है।
7. **मताधिकार (Voting Right)** - समता अंशधारियों को कम्पनी की सभा में भाग लेने एवं प्रस्तुत प्रस्ताव पर अंश-पूँजी में उनके भाग के अनुसार मत देने का अधिकार होता है। इसके अलावा मताधिकार के लिए प्रतिपुरूष की नियुक्ति का अधिकार भी समता अंशधारियों को प्राप्त होता है।
8. **अंशों के क्रय का पूर्वाधिकार (Right of Pre-emption)** - समता अंशधारियों को कम्पनी द्वारा अंश निर्गमित करने की स्थिति में अंशों के क्रय का पूर्वाधिकार प्राप्त होता है। भारतीय कम्पनी अधिनियम, 1956 की धारा 81 के अनुसार कम्पनी द्वारा नये निर्गमित किये जाने वाले अंशों को पहले विद्यमान अंशधारियों को क्रय के लिए प्रस्तुत करना होता है। समता अंशधारियों के सबसे पहले अंश के क्रय के इस अधिकार को ही अंशों का पूर्वाधिकार (Right of Pre-emption) कहते हैं। यह अधिकार समानुपात में होता है। इस अधिकार का उद्देश्य विद्यमान अंशधारियों के समानुपातिक मताधिकार की रक्षा करना समता को पूर्ववत् रखना तथा आय को बनाये रखना होता है।

इस अधिकार का मूल्यांकन निम्न सूत्र द्वारा किया जा सकता है -

$$V = \frac{Pm - Pe}{n + 1}$$

Where- V = the Value of a Right

Pm = the current market price of a share

Pe = subscription price per share

N = the number of right necessary to purchase on share.

Illustration-1 :

If the market price of a share is Rs. 100 and the subscription price Rs. 90 per share and it takes four rights to buy an additional share, calculate the value of the right.

Solution:

Calculation of the Value of a right

$$V = \frac{Pm - Pe}{n+1} = \frac{100-90}{4+1} = \frac{10}{5} = Rs.2$$

इक्विटी या सामान्य अंशों के लाभ (Advantage of Equity Shares)

(क) **कम्पनी के दृष्टिकोण से**

(1) सामान्य अंश - पूँजी कम्पनी की स्थायी पूँजी होती है और इसे लौटाने के लिए कम्पनी बाध्य नहीं होती।

(2) इन पर लाभांश की दर न तो निश्चित होता है आर न कम्पनी लाभांश के वितरण के लिए बाध्य ही होती है। अत: कम्पनी लोचपूर्ण लाभांश नीति का अनुसरण कर सकती है।

(3) चूँकि लाभांश देना अनिवार्य नहीं होता, इसलिए विकास के लिए आवश्यक पूँजी की व्यवस्था लाभ के पुनर्वियोग (Ploughing back of Profit) द्वारा सरलता से हो जाती है।

(4) सामान्य अंश-पूँजी द्वारा प्रतिनिधि सम्पत्ति पर चूँकि कोई प्रभार नहीं होता, अत: उसकी जमानत कम्पनी दीर्घकालीन ऋण लेकर अतिरिक्त पूँजी की व्यवस्था कर सकती है।

(5) सामान्य अंश पूँजी कम्पनी के लिए सुरक्षात्मक दीवार की भाँति होती है जिसके आधार पर वित्तीय संकटों एवं हानि का मुकाबला सरलता से किया जा सकता है।

(6) इन सब गुणों के कारण कम्पनी के लिए पूँजी प्राप्ति का सबसे महत्वपूर्ण साधन है।

(ख) **विनियोक्ताओं के दृष्टिकोण से**

(1) लाभ के वर्षो में लाभांश की दर बढ़ जाने से आय में वृद्धि की सम्भावना रहती है।

(2) इन्हें कम्पनी के प्रबन्ध में मतदान का पूर्ण अधिकार होता है इस प्रकार ये कम्पनी के प्रबन्ध में सक्रिय भाग ले सकते हैं।

(3) तेजी के काल में तथा कम्पनी द्वारा लाभों का संचय करने की दशा में इनके बाजार मूल्य में वृद्धि हो जाती है और इस प्रकार पूँजीगत लाभ (Capital Gain) की सम्भावनाएँ बढ़ जाती हैं।

(4) साहस एवं जोखिम उठाने को तत्पर निवेशकों के लिए पूँजी लगाने का यह उत्तम साधन है।

(5) स्वामित्व का तत्व संलग्न होने से ऐसे अंशधारी कम्पनी की सम्पन्नता एवं प्रगति में अधिक से अधिक रूचि लेते हैं।

इक्विटी या सामान्य अंशों के दोष (Disadvantage of Equity Shares)

(क) कम्पनी के दृष्टिकोण से

(1) चूँकि ये हस्तान्तरणीय होते हैं और इन्हें मतदान का अधिकार प्राप्त होता है, अत: कभी-कभी कुछ व्यक्ति अपने स्वार्थो की सिद्धि के लिए अधिक अंशों को खरीदकर कम्पनी के नियन्त्रण एवं प्रबन्ध को हथियाने का प्रयत्न करने लगते हैं। कम्पनियों के अधिग्रहण (Corporate take-overs) का चलन पिछले कुछ वर्षो से भारत में भी बढ़ता जा रहा है।

(2) केवल सामान्य अंश-पूँजी के द्वारा कम्पनी ट्रेडिंग-ऑन-इक्विटी (Trading on Equity) का लाभ नहीं उठा सकती। अत: इनके साथ-साथ ऋणपत्र अथवा बॉण्डों का भी निर्गमन कम्पनी समय समय पर करती है। दूसरे शब्दों में यह कहना उचित होगा कि सामान्यत: इक्विटी अंश-पूँजी की लागत (Cost of Equity Share Capital) ऋण-पूँजी की लागत से अधिक होती है ।

(3) अति-पूँजीकरण (Over-capitalisation) की दशा में उसका उपचार करने के उद्देश्य से सामान्य अंश-पूँजी की राशि में या अंशों की संख्या में कमी करना अत्यन्त कठिन होता है जबकि शोध्य अधिमान्य अंशों को एवं ऋणपत्रों को परिपक्व होने पर लौटाया या परिवर्तित किया जा सकता है।

(4) जोखिम की मात्रा अधिक होने से अंशों में निरर्थक परिकल्पना (Hectic speculation) होने की अधिक सम्भावना रहती है, जिससे इसके मूल्यों में कृत्रिम कारणों से अधिक उतार-चढ़ाव होता है जिससे कम्पनी की साख को ठेस पहुँच सकती है।

(ख) विनियोक्ता के दृष्टिकोण से

(1) स्थायी आय चाहने वालों को इससे निराशा हो सकती है: क्योंकि वे लाभ के अवशिष्ट दावेदार **(Residual Claimants)** होते हैं। सबको चुकाने के बाद जो कुछ शेष रहता है उसी में उन्हें सन्तोष करना पड़ता है। कभी-कभी लाभ इतना अपर्याप्त होता है कि कर-सम्बन्धी दायित्वों को पूरा करने के बाद कुछ भी नहीं बचता है और इसलिए साधारण अंशधारियों को लाभांश से वंचित रहना पड़ता है।

(2) इसके साथ आय की अनिश्चितता का तत्व सदैव बना रहता है। लाभ न होने की दशा में तो आय का कोई प्रश्न ही नहीं उत्पन्न होता। लाभ होने की दशा में भी इसकी कोई गारण्टी नहीं होती कि लाभांश वितरित किया ही जाय। लाभ का व्यवसाय में पुनर्विनियोग किया जा सकता है। साधारण अंशधारियों का लाभ में भाग अवश्य होता है, किन्तु लाभांश के वितरण के लिए वे कम्पनी को बाध्य नहीं कर सकते। लाभांश की घोषणा करने अथवा न करने का सम्पूर्ण अधिकार संचालक-मण्डल में निहित रहता है। संचालक-मण्डल लाभ होते हुए भी कम्पनी के हित में यह निश्चय कर सकता है कि सम्पूर्ण लाभ कम्पनी में ही पुनर्विनियोजित रहने दिया जाय।

(3) **मन्दी के काल** में लाभ के साथ-साथ इनका बाजार मूल्य और भी गिर जाता है तथा विनियोजित पूँजी के मूल्य में गिरावट आ जाती है।

(4) **अवसायन (Liquidation)** की दशा में सम्पत्ति में हुई हानि एवं घाटे की सबसे अधिक चोट इन्हें ही सहनी पड़ती है। अन्य सब दावेदारों के भुगतान के पश्चात फिर कहीं इनकी बारी आती है ।

इन सब गुण-दोषों के होते हुए भी सामान्य अंश कम्पनी प्रतिभूतियों (Corporate Securities) के रूप में सबसे अधिक महत्वपूर्ण एवं लोकप्रिय है। प्रायः यह देखने में आता है कि सामान्य अंश-पूँजी का अधिक भाग संस्थापकों, संचालकों एवं उनसे सम्बद्ध व्यक्तियों द्वारा धारित होता है तथा शेष भाग अनेक बिखरे हुए अंशधारियों में विभाजित होता है। इस प्रकार एक समूह विशेष को कम्पनी पर पूर्ण नियंत्रण प्राप्त होता जाता है, क्योंकि बिखरे हुए अनेक अंशधारी संगठित विरोध नहीं कर सकते। **इस प्रकार के निगम को निकटस्थ-धारित (Closely Held) निगम कहा जा सकता है।** इन्हीं निहित स्वार्थों के कारण सामान्य अंशधारियों को विधान द्वारा कुछ अधिकार प्रदान किये जाते हैं, जिनका प्रयोग करके वे अपने हितों की रक्षा कर सकते हैं। यद्यपि ये कम्पनी के स्वामी होते हैं, किन्तु समामेलित अथवा निगमित संस्थाओं में स्वामित्व एवं प्रबन्ध में निकट एवं प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता। कम्पनी का स्वामित्व अनेक छोटे-बड़े सामान्य अंशधारियों में निहित होता है, जबकि कम्पनी का प्रबन्ध नियमानुसार इनके द्वारा चुने हुए संचालक-मण्डल के द्वारा किया जाता है। कभी-कभी ऐसी स्थिति हो जाती है कि संचालक-मण्डल साधारण अंशधारियों की कोई परवाह नहीं करते और कम्पनी का संचालन अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए करने लगते हैं। इसलिए अब अंशधारियों के अल्पमत की सुरक्षा के उद्देश्य से कम्पनी कानून मण्डल (Company Law Board) को अधिक व्यापक अधिकार दिये गये हैं।

ऐसी परिस्थिति पर नियन्त्रण पाने के लिए ही सामान्य अंशों के साथ कुछ सुरक्षात्मक अधिकार संलग्न होते हैं, जैसे महत्वपूर्ण मामलों में मतदान का अधिकार, कम्पनी के विषय में आवश्यक सूचनाएँ प्राप्त करने का अधिकार, वार्षिक साधारण सभा में उपस्थित होने तथा वहाँ अपने विचार व्यक्त करने का अधिकार तथा अंशों के विक्रय या हस्तान्तरण का अधिकार आदि। इसके अतिरिक्त, इन्हें कम्पनी द्वारा निर्गमित अतिरिक्त **अंश-पूंजी के अग्रक अधिकार** (Right of Pre-emption) भी प्राप्त होता है, अर्थात् अतिरिक्त अंश-पूँजी के निर्गमन में उनके द्वारा धारित अंशों के अनुपात में उन्हें प्रथम विकल्प (First Option) प्राप्त होता है जिसका प्रयोग वे कम्पनी के अन्तर्नियमों के अनुसार कर सकते हैं। यदि संचालन-मण्डल, कम्पनी अधिनियम, पार्षद सीमानियमों तथा अन्तर्नियमों द्वारा प्राप्त अधिकारों से परे (Ultra vires) कार्य करते हैं, तो अंशधारी उनके विरूद्ध कार्यवाही के लिए न्यायालय की शरण ले सकते हैं। कम्पनी अधिनियम के अधीन कम से कम 200 सदस्यों अथवा कुल मतदान शक्ति के कम से कम 1/21 वें भाग के धारकों द्वारा प्रार्थना-पत्र देने पर केन्द्रीय सरकार जाँच (Investigation) की आज्ञा दे सकती है और जाँच के फलस्वरूप दोषी व्यक्तियों के विरूद्ध कार्यवाही कर सकती है।

समता अंशों का विश्लेषण (Analysis of Equity Share) दीर्घकालीन वित्तीय साधनों का विश्लेषण तीन तत्वों के आधार पर किया जाता है। ये तत्व हैं - नियंत्रण, जोखिम एवं आय।

समता अंश भी दीर्घकालीन वित्त का प्रमुख स्रोत है, अत: इनका विश्लेषण भी इन्हीं तत्वों के आधार पर किया जाना चाहिए। नीचे तीन तत्वों के आधार पर विश्लेषण किया जा रहा है :-

(1) **नियंत्रण (Control)** सामान्यतया यह देखा जाता है कि कम्पनी का नियन्त्रण कुछ व्यक्तियों के हाथों में होता है। इन व्यक्तियों के पास या तो अंश पूँजी का आधे से अधिक भाग केन्द्रित होता है अथवा इनके पास एक साथ बहुत अंश होते हैं तथा शेष अंशधारी दूर-दूर तक बिखरे रहते हैं, अत: वे अपनी मत शक्ति का प्रभावपूर्ण उपयोग नहीं कर पाते हैं। ऐसी स्थिति में कम्पनी का नियन्त्रण अल्प पूजी वाले कुछ ही लोगों के हाथों में बना रहता है। ये व्यक्ति अपने नियन्त्रण को बनाये रखने के लिए आवश्यकता के समय बहुत से प्रतिपत्र (Proxy) एकत्र कर लेते हैं। वैसे भी सामान्य अंशधारी की रूचि उसे प्राप्त होने वाली सम्भावित आय से अधिक होती है तथा कम्पनी के नियन्त्रण में बहुत कम। ऐसी कम्पनियाँ जिनका नियन्त्रण कुछ ही व्यक्तियों के हाथों में होता है, उनके प्रबन्धक पूँजी व्यवस्था की किसी भी ऐसी योजना कों लाग करने से कतराते हैं जिससे कम्पनी पर उनका नियन्त्रण ढीला होता है, अत: अतिरिक्त वित्तीय साधन एकत्र करने के लिए ऐसी प्रतिभूतियों का सहारा लिया जाता है, जिन्हें सामान्यतया मतदान का अधिकार प्राप्त नहीं होता है जैसे ऋण-पत्र अथवा पूर्वाधिकार अंश। यदि सामान्य अंशों का निर्गमन करना आवश्यक हो तो यह इस प्रकार किया जाता है जिससे स्वामित्व एवं मतदान में उनका प्रतिनिधित्व पूर्ववत् बना रहे। यह व्यवस्था राइट्स निर्गमन (Rights Issue) के आधार पर की जाती है।

(2) **जोखिमं (Risk)** प्रत्येक विनियोग क्रिया में कम अथवा अधिक मात्रा में जोखिम निहित रहती है। एक विनियोक्ता विनियोग करते समय न केवल विनियोजित पूँजी पर उचित आय की ही आशा करता है बल्कि वह यह भी चाहता है कि उसकी विनियोजित पूँजी सुरक्षित रहें। यदि कम्पनी में विनियोजित धन का प्रतिनिधित्व सामान्य मूल्य की उतनी ही अथवा अधिक सम्पत्तियों द्वारा किया जाता है तब तक विनियोजित पूँजी सुरक्षित रहती है। परन्तु कम्पनी को निरन्तर हानि होने पर पहले सुरक्षित कोष समाप्त हो जाते हैं तथा फिर पूँजी घटने लगती है। ऐसा होते-होते एक दिन वह स्थिति आ सकती है जब कम्पनी देनदारियों का समय पर भुगतान न कर सके तथा कम्पनी का अवसायन (Liquidation) आवश्यक हो जाए। कम्पनी के अवसायन अथवा समापन की स्थिति में सुरक्षित ऋणों एवं अन्य देनदारियों का पहले भुगतान किया जायेगा, इसके बाद बची सम्पत्ति में से पूर्वाधिकारी अंशधारियों को भुगतान किया जायेगा तथा अन्त में समता अंशधारियों को भुगतान किया जायेगा। अत: समता अंशों में जोखिम ऋण पत्र तथा पूर्वाधिकारी अंशों की तुलना में अधिक होती है।

कम्पनी में अवसायन की स्थिति न आने पर भी समता अंशों में जोखिम रहती है। जब तेजी के काल में कम्पनी के व्यापार एवं आय का विस्तार होता है तब समता अंशों का बाजार मूल्य बढ़ जाता है। इससे उन्हें पूँजीगत लाभ प्राप्त होता है। मन्दी काल में कम्पनी के व्यापार एवं आय में कमी होने के कारण अंशों का मूल्य घट जाता है तथा

उनकी विनियोजित पूँजी की जोखिम बढ़ जाती है। कम्पनी प्रबन्धकों द्वारा नये समता अंशों का निर्गमन तेजी के काल में करना चाहिए।

(3) **आय (Income)** : विनियोग को निर्धारित करने वाले तत्वों में विनियोग की सुरक्षा के साथ-साथ उस पर प्राप्त होने वाली आय भी एक महत्वपूर्ण तत्व है। सनक अंशों में जहाँ विनियोजित पूँजी के सम्बन्ध में अधिक जोखिम होती है जहाँ जोखिम की मात्रा आय के 'सम्बन्ध में भी अधिक होती है, क्योंकि कम्पनी की आय में ऋणपत्र धारियों एवं पूर्वाधिकारी अंशधारी का पूर्वाधिकार होता है। इनको भुगतान करने के बाद शेष बची राशि संचालक मण्डल चाहे तो समता अंशधारियों में बाँट सकता है। समता अंशधारी अवशिष्ट आय के दावेदार अधिक होते हैं। अधिक आय उपार्जन क्षमता वाली कम्पनियों के प्रबन्धक समता पर व्यापार की नीति को अपना कर समता अंश पर प्रत्याय की दर बढ़ाने में सफल होते हैं।

यहाँ यह तथ्य स्पष्ट कर देना उपयुक्त है कि समता अंशधारी कम्पनी के स्वामी होते हैं, अत: उन्हें ही अधिक जोखिम उठानी होती है। कम्पनी को पर्याप्त लाभ होने पर उनकी स्थिति दयनीय होती है, कम्पनी प्रबन्ध समुचित कोषों का निर्माण करके तथा उचित लाभांश नीति का अनुसरण करके समता अंशों की आय की अनिश्चितता एवं विनियोग की असुरक्षा की स्थिति को समाप्त कर सकता है।

17.2.2 पूर्वाधिकारी अंश (Preference Shares)

पूर्वाधिकारी अंश जैसा कि इनके नाम से ही स्पष्ट होता है कि वे अंश होते हैं जिनके धारकों को कुछ पूर्वाधिकारी प्राप्त होते हैं। ये वे अंश होते हैं जिनके स्वामियों को लाभांश प्राप्त करने तथा कम्पनी के समापन के समय सम्पत्तियों के वितरण में समता अंशधारियों की अपेक्षा पूर्वाधिकार प्राप्त होता है। अत: इन्हें समता अंशों से पूर्व लाभांश एवं समापन के समय समता अंशों से पूर्व अंश पूँजी प्राप्ति का पूर्वाधिकार होता है। पूर्वाधिकार अंशों की निम्न विशेषताएँ होती हैं -

(1) **परिपक्वता (Maturity)** : समता अंशों की तरह ही पूर्वाधिकारी अंशों से प्राप्त पूँजी को वापस लौटाने की कोई अवधि नहीं होती है तथा इसे लौटाने के लिए कम्पनी बाध्य नहीं होती है। परन्तु अनेक बार पूर्वाधिकारी अंशों के निर्गमन के समय से ही उनके शोधन का प्रावधान रख दिया जाता है। ऐसी स्थिति में ये पूर्वाधिकारी अंश, शोध्य पूर्वाधिकारी अंश (Redeemable Preference Shares) कहलाते हैं। शोध्य पूर्वाधिकारी अंश तो कम्पनी की स्वेच्छा पर शोध्य होते हैं अथवा स्वत: एक नियत तिथि पर अथवा कम्पनी द्वारा किसी सूचना के बाद लौटाना सम्भव होता है। अन्य प्रकार के पूर्वाधिकारी अंशों से प्राप्त पूँजी को वापस नहीं लौटाया जाता है। शोधनीय पूर्वाधिकारी अंशों का निर्गमन कम्पनी के वित्तीय ढाँचे को लचीला रखने के लिए किया जाता है।

कुछ कम्पनियाँ कभी-कभी पूर्वाधिकारी अंशों के स्वामियों को यह अधिकार भी देती है कि वे चाहें तो कुछ समय बाद पूर्वाधिकारी अंशों को समता अंशों में बदल सकते हैं, ऐसे अंशों को परिवर्तनशील पूर्वाधिकारी। अंश कहते हैं।

(2) **आय पर पूर्वाधिकार** (Preference Over Income). कम्पनी के समस्त व्ययों का भुगतान करने के पश्चात जो आय बचती है, उस पर पूर्वाधिकारी अंशधारियों का पूर्वाधिकार होता है अर्थात् एक बार कम्पनी लाभांश की घोषणा कर देती है तो सर्वप्रथम निश्चित दर से पूर्वाधिकारी अंशों पर लाभांश बांटा जाता है। पूर्वाधिकारी अंशों पर लाभांश दिये बगैर समता अंशों पर लाभांश नहीं बांटा जा सकता है। कभी-कभी कम्पनी की बढ़ी हुई आय में पूर्वाधिकारी अंशधारियों को शामिल करने की व्यवस्था की जा सकती है। ऐसे पूर्वाधिकारी अंशों को भागीदार पूर्वाधिकारी अंश (Participating Preference) कहते हैं। ऐसी व्यवस्था करने पर इन अंशों के धारकों को निर्धारित दर से लाभांश प्राप्त करने के साथ कम्पनी के असामान्य लाभ प्राप्त होने पर अतिरिक्त लाभ का हिस्सा प्राप्त करने का अधिकार होता है।

यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि पूर्वाधिकारी अंशधारियों को अंशों पर सदैव आय प्राप्त होने की गारन्टी नहीं होती है। कम्पनी को आय न होने अथवा कम होने पर कम्पनी के प्रबन्धक यदि लाभांश नहीं वितरित करने का निर्णय लेते हैं तो ऐसी स्थिति में पूर्वाधिकारी अंशधारियों का उस वर्ष लाभांश प्राप्त करने का अधिकार समाप्त हो जाता है। वे कम्पनी को लाभांश वितरित करने के लिए बाध्य नही कर सकते। परन्तु अनेक कम्पनियाँ पूर्वाधिकारी अंशों में विनियोजन को आकर्षित करने के लिए पूर्वाधिकारी अंशों के निर्गमन के समय ऐसी व्यवस्था कर सकती है कि किसी वर्ष पूर्वाधिकारी अंशधारियों को कम्पनी को लाभ न होने अथवा कम होने के कारण लाभांश नहीं मिल पाता है तो यह देय लाभांश दूसरे वर्षो मे कम्पनी को अधिक लाभ होने पर चुका दिया जाता है। इस प्रकार के अंशों को संचयी पूर्वाधिकारी अंश (Cumulative Preference Shares) कहते हैं।

(3) **सम्पत्तियों पर पूर्वाधिकार** (Preference Over Assets). पूर्वाधिकारी अंशधारियों को कम्पनी की सम्पत्तियों के वितरण में भी पूर्वाधिकार प्राप्त होता है। कम्पनी के समापन की दशा में समस्त देनदारियों को भुगतान करने के बाद यदि सम्पत्तियाँ शेष रहती है तो उन्हें सबसे पहले पूर्वाधिकारी अंशधारियों में वितरित किया जाता है।

(4) **प्रबन्ध एवं नियन्त्रण का अधिकार नहीं** (No Right in Management and Control) सामान्यतया पूर्वाधिकारी अंशधारियों को कम्पनी के प्रबन्ध एवं नियंत्रण का अधिकार नहीं होता है, क्योंकि इन्हें समता अंशधारियों की तरह संचालक चुनने एवं कम्पनी के विभिन्न मामलों में मत देने का अधिकार प्राप्त नहीं होता है। इन्हें कम्पनी अधिनियम की धारा 87 के अनुसार केवल ऐसे मामलों में ही मत देने का अधिकार प्राप्त है जो उनके पूर्वाधिकारों को प्रभावित करते हैं।

(5) **प्रसंकर प्रतिभूति** (Hybrid Security) पूर्वाधिकार अंश में समता अंश एवं ऋण-पत्रों दोनों की विशेषता पाई जाती है जिसमें इन्हें प्रसंकर प्रतिभूति कहते हैं।

पूर्वाधिकार अंशों के प्रकार (Types of Preference Share)

(1) **संचयी अधिमान अंश** (Cumulative Preference Shares): यदि कम्पनी किसी वर्ष लाभ अपर्याप्त होने के कारण इन अंशों पर लाभांश देने में असमर्थ रहती है, तो न दिया

गया लाभांश संचित ही रहता है और जब कभी कम्पनी को लाभ होता है और लाभांश वितरित करने का निश्चय किया जाता है तो उन लाभों में से सर्वप्रथम संचयी अधिमान अंशों पर पूर्व संचित लाभांश चुकता कर देने के पश्चात ही उस वर्ष के लिए लाभांश दिये जाते हैं। सामान्यत: कम्पनी के सभी अधिमान अंश संचयी अधिमान अंश होते हैं, जब तक कि कम्पनी के अर्न्तनियमों में इसके विपरीत कुछ व्यवस्था न दी गई हो।

(2) **असंयमी अधिमान अंश** (Non-Cumulative Preference Shares) ऐसे अधिमान अंशों को जिन पर कम्पनी के लाभांश देने में असमर्थ होने पर न दिये गये लाभांश को भविष्य के लाभ में से प्राप्त नहीं किया जा सकता, असंचयी अधिमान अंश कहते हैं।

(3) **अवशिष्टभागी अधिमान अंश** (Participating Preference Shares). अवशिष्टभागी अधिमान अंशों के धारकों को निश्चित दर से लाभांश पाने का पूर्वाधिकार तो होता ही है, परन्तु इसके अतिरिक्त सामान्य अंशधारियों को एक निश्चित लाभांश देने के बाद भी यदि लाभ शेष बचता है, तो उसमें से भी उन्हें भागीदार प्राप्त होता है। कम्पनी अर्न्तनियमों में इस प्रकार की व्यवस्था होने पर ही अधिमान अंश अवशिष्टभागी अधिमान अंश माने जायेंगे, अन्यथा नहीं।

(4) **अनावशिष्टभागी अधिमान अंश** (Non-Participating Preference Share) जिन अधिमान अंशों के धारकों को एक निश्चित दर से लाभांश प्राप्त करने का पूर्वाधिकार होता है तथा शेष लाभ में से अतिरिक्त लाभांश प्राप्त करने का अधिकार नहीं होता है, उन्हें अनावशिष्टभागी अधिमान अंश कहते हैं।

(5) **शोध्य अधिमान अंश** (Redeemable Preference Share) वे अधिमान अंश जिनका निर्गमन एक निश्चित अवधि के लिए किया जाता है और उस अवधि के समाप्त होने पर कम्पनी के जीवनकाल में ही उनका भुगतान उनके अंशधारियों को कर दिया जाता है, शोध्य अधिमान अंश कहलाते हैं।

(6) **अशोध्य अधिमान अंश** (irredeemable Preference Share) वे अधिमान अंश जिनका शोधन कम्पनी के जीवनकाल मे नहीं होता है, वरन् कम्पनी के समापन के समय ही किया जाता है, अशोध्य अधिमान अंश कहलाते हैं। कम्पनी संशोधन अधिनियम, 1988 के लाग होने के पश्चात् कोई भी कम्पनी ऐसे अंशों का निर्गमन नहीं कर सकती है। अब किसी भी कम्पनी द्वारा 20 वर्षो से अधिक शोधनीय अधिमान अंशों का निर्गमन नहीं किया जा सकता है।

(7) **परिवर्तनीय अधिमान अंश** (Convertible Preference Share) जिन अधिमान अंशों के धारकों को यह अधिकार दिया जाता है कि यदि वे चाहे तो एक निश्चित अवधि में अथवा एक निश्चित तिथि को अपने अधिमान अंशों को इक्विटी अंशों में परिवर्तित करा सकते हैं, उन्हें परिवर्तनीय अधिमान अंश कहते है।

(8) **अपरिवर्तनीय अधिमान अंश** (Non-Convertible Preference Share) जिन अधिमान अंशों के धारकों को यह अधिकार नहीं दिया जाता है कि वे अपने अंशों में परिवर्तन करा सकें, तो उन्हें अपरिवर्तनीय अधिमान अंश कहते हैं।

(9) **संचयी परिवर्तनीय अधिमान अंश** (Cumulative Convertible Preference Share) ऐसे अधिमान अंश जिनमें संचयी तथा परिवर्तनीय - दोनों प्रकार के अंशों की विशेषता पाई जाती है, संचयी परिवर्तनीय अधिमान अंश कहलाते हैं। अत: संचयी परिवर्तनीय अधिमान अंश ऐसे होते हैं जिन पर यदि कम्पनी किसी वर्ष लाभांश देने में असमर्थ रहे तो न दिया गया लाभांश संचित होता रहता है और जब कम्पनी लाभांश वितरित करने का निश्चय करती है तो सर्वप्रथम इन अंशों पर संचित लाभांश का चुकारा किया जाता है तथा साथ ही साथ इन अंशों का एक निश्चित अवधि के भीतर इक्विटी अंशों में परिवर्तन कर दिया जाता है। इन अंशों के निर्गमन के 3 से 5 वर्ष के अन्दर इक्विटी अंशों में परिवर्तित करना होता है।

पूर्वाधिकारी अंशों के लाभ (Advantage of Preference Share)

पूर्वाधिकारी अंशों से कम्पनी तथा विनियोक्ता को अनेक लाभ प्राप्त होते हैं, ये निम्न प्रकार हैं -

कम्पनी को लाभ (Advantage of Company) एक कम्पनी की दृष्टि से पूर्वाधिकारी अंश निम्न प्रकार लाभदायक होते हैं।

(1) **सरलता से बाजार की प्राप्ति** (Easy Availability of the Market) : कम्पनी को पूँजी प्राप्त करने के लिए सरलता से विस्तृत बाजार मिल जाता है, क्योंकि भीरू स्वभाव के विनियोक्ता भी पूर्वाधिकारी अंशों में विनियोग के लिए आकर्षित हो जाते हैं।

(2) **स्वतन्त्र प्रबन्ध** (Independent Management) : पूर्वाधिकारी अंशधारी कम्पनी के प्रबन्ध एवं नियन्त्रण में हस्तक्षेप नहीं कर सकते हैं। अत: पूर्वाधिकारी अंशों से प्रबन्ध का अधिकार दिये बिना पूँजी प्राप्त हो जाती है।

(3) **प्रभार रहित पूँजी** (No Change Capital) : इन अंशों से पूँजी प्राप्त करने के लिए कम्पनी को अपनी सम्पत्ति बन्धक अथवा गिरवी रखने की आवश्यकता नहीं होती है। अत: पूँजी पूर्णतया प्रभार रहित होती है।

(4) **मितव्ययी अर्थ-प्रबन्धन** (Economical Financing) : पूर्वाधिकारी अंशों के निर्गमन का व्यय बहुत कम होता है। अत: इस साधन का प्रयोग मितव्ययी रहता है।

(5) **लोचदार पूँजी ढाँचा** (Flexible Capital). पूर्वाधिकारी अंशों के निर्गमन से कम्पनी का पूँजी ढाँचा लोचदार बना रहता है। कम्पनी शोध्य अंशों का निर्गमन कर सकती है जिसे बाद में कभी भी वापस भुगतान किया जा सकता है।

(6) **समता अंशों पर अधिक लाभांश** (More Dividend on Equity Share) : यदि कम्पनी पूर्वाधिकारी अंशों पर देय लाभांश दर से अधिक लाभ अर्जित करती है तो कम्पनी पूर्वाधिकारी अंशों का निर्गमन करके समता अंशों पर लाभ की दर बढ़ाने में सफल हो जाती है।

(7) **अति पूँजीकरण से सुरक्षा** (Safe from Over-Capitalisation) कम्पनी विमोचनशील अथवा शोध्य अंशों का भुगतान करके पूँजी की मात्रा कम कर सकती है।

विनियोक्ताओं को लाभ (Advantages for the Investors)

पूर्वाधिकारी अंश निम्न प्रकार से विनियोक्ताओं के लिए लाभदायक होते हैं -

(1) **नियमित व निश्चित आय** (Fixed and Regular Income) पूर्वाधिकारी अंशों पर निश्चित दर से नियमित आय प्राप्त होती रहती है।

(2) **पूँजी वापस प्राप्त करने में प्राथमिकता** (Preference in Getting Capital Back): कम्पनी के अवसायन की दशा में वापसी में प्राथमिकता प्राप्त होती है।

(3) **कम जोखिम** (Less Risky). पूर्वाधिकारी अंशों में धन विनियोजित करने पर जोखिम कम रहती है।

(4) **निषेद्याधिकार** (Veto Power). अपने हितों की रक्षा करने के लिए कुछ निषेद्याधिकार (Veto Power) प्राप्त होता है।

पूर्वाधिकारी अंशों की हानि (Disadvantages of Preference Share) :

पूर्वाधिकारी अंशों से कम्पनी तथा विनियोक्ता दोनों को ही निम्न हानियाँ होती हैं :-

कम्पनी को हानि (Disadvantages to the Company)

कम्पनी को पूर्वाधिकारी अंशों से निम्न हानियाँ होती हैं -

(1) **समता अंशधारियों को हानि** (Loss of Equity Shareholders). कम्पनी को कम लाभ प्राप्त होने पर भी पूर्वाधिकारी अंशों पर निश्चित दर से लाभांश का भुगतान करना पड़ता है। अतः इससे समता अंशधारियों को मिलने वाला लाभ कम हो जाता है।

(2) **स्थायी आर्थिक भार** (Fixed Economic Burden) : पूर्वाधिकारी अंशों पर निश्चित दर से लाभांश देना पड़ता है, अतः यह कम्पनी पर स्थायी भार हो जाता है।

(3) **अतिरिक्त पूँजी प्राप्त करने में कठिनाई** (Difficulty of Getting Additional Capital). यदि कम्पनी के अन्तर्नियमों में यह व्यवस्था है कि अतिरिक्त पूर्वाधिकारी अंशों या ऋण-पत्रों के निर्गमन करने से पूर्व विद्यमान पूर्वाधिकारी अंशधारियों की सहमति लेना आवश्यक होगा, तो कम्पनी के लिए ऐसी स्थिति में अतिरिक्त पूँजी प्राप्त करना बड़ा कठिन होता है।

(4) **पूँजी प्राप्त करने की ऊँची लागत** (High Cost of Capital) : पूर्वाधिकारी अंश पर देय लाभांश कर के लिए स्वीकृत व्यय नहीं माना जाता है, अतः इस साधन से पूँजी प्राप्त करने की लागत ऋण-पत्रों की तुलना में अधिक ऊँची होती है।

विनियोक्ताओं को हानि (Disadvantages for Investors)

पूर्वाधिकारी अंशों में विनियोजन से विनियोक्ताओं को निम्न हानियाँ होती हैं -

(1) **सीमित मताधिकार** (Limited Voting Right) : पूर्वाधिकारी अंशधारी को संचालकों की नियुक्ति तथा कम्पनी के अन्य महत्वपूर्ण मामलों के सम्बन्ध में मताधिकार प्राप्त नहीं होता है। इन्हें केवल अपने हितों की रक्षा के लिए सीमित मताधिकार प्राप्त होता है।

(2) **स्थिर दर से लाभ** (Fixed Rate of Dividend) यदि ये अंश भागयुक्त नहीं होते हैं तो कम्पनी की समृद्धि का लाभ इन्हें नहीं मिलता है, क्योंकि गैर-भागयुक्त पूर्वाधिकार अंशों पर निश्चित दर से लाभांश प्राप्त होता है।

(3) **शोध्य पूर्वाधिकारी अंशों की अनिश्चित स्थिति** (Uncertain Situation of Redeemable Preference Share) : शोध्य पूर्वाधिकारी अंशों का शोधन प्रायः कम्पनी की इच्छा पर

निर्भर करता है। कम्पनी का प्रबन्ध जब चाहे तब सूचना देकर उनकी पूँजी वापस लौटा सकता है।

(4) **समापन के समय आधिक्य में भाग नहीं** (No Share in Surplus on Liquidation): यदि कम्पनी का समापन हो जाता है तो पूर्वाधिकारी अंशों के धारकों को केवल उतना ही मूल्य चुकाया जाता है जितना उन्होंने विनियोजित किया है जबकि समता अंशधारी कम्पनी के आधिक्य में भी हिस्सा प्राप्त-करते हैं।

17.2.3 पूर्वाधिकारी अंशों का विश्लेषण (Analysis of preference Shares)

कम्पनियों के लिए दीर्घकालीन पूँजी जुटाने में पूर्वाधिकारी अंशों का महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि इनके निर्गमन द्वारा ऐसे विनियोक्ताओं से धन प्राप्त किया जाना सम्भव है जो बिना अधिक जोखिम उठाये उचित आय प्राप्त करना चाहते हैं। निश्चित लाभांश की देनदारी के अनुसार पूर्वाधिकारी अंशों तथा ऋण-पत्रों में कुछ समानता है, परन्तु इन दोनों में आधारभूत अन्तर है कि ऋण-पत्रों पर देय व्याज व्यावसायिक व्यय माना जाता है तथा निगम कर निकालने से पहले लाभ में से घटाया जाता है, परन्तु पूर्वाधिकारी अंशों को स्वामीगत प्रतिभूति माना जाता है, अत: उन पर देय लाभांश को व्यवसायिक व्यय न मान कर लाभ का वितरण किया जाता है।

कम्पनी की वित्त व्यवस्था में पूर्वाधिकारी अंशों का स्थान समता अंशों से पूर्व परन्तु ऋण-पत्रों के बाद आता है। पूर्वाधिकारी अंशों के निर्गमन का निर्णय करते समय कम्पनी प्रबन्ध को यह अवश्य देख लेना चाहिए कि कम्पनी की आय उपार्जन क्षमता इतनी अवश्य है कि कम्पनी ऋण-पत्रों पर देय व्याज एवं निगम कर चुकाने के बाद इतनी आय अवश्य प्राप्त करें जिससे इन पर निश्चित दर से लाभांश चुकाया जा सके। यदि कम्पनी की आय उपार्जन क्षमता इतनी नहीं है तो पूर्वाधिकारी अंशों का निर्गमन नहीं किया जाना चाहिए।

भारत में पूर्वाधिकारी अंशों में अधिकांश विनियोग संस्थागत विनियोक्ताओं द्वारा किया जाता है। ये अंश अधिक लोकप्रिय नहीं है, क्योंकि भारत में अनेक कम्पनियाँ इन पर लाभांश का समय पर भुगतान नहीं करती है तथा असंचयी पूर्वाधिकारी अंशों की स्थिति में लाभांश की कई-कई वर्षो में घोषणा ही नहीं की जाती है। अत: इन अंशों को लोकप्रिय बनाने के लिए इनके धारकों के अधिकारी की रक्षा की जानी चाहिए तथा उन्हें अधिक कानूनी संरक्षण प्रदान करना चाहिए।

17.2.4 समता तथा पूर्वाधिकारी अंशों का तुलनात्मक अध्ययन (A Comparison of Equity and Preference Shares)

समता अंशों तथा पूर्वाधिकारी अंशों के अपने-अपने गुण-दोष हैं तथा विभिन्न प्रकार के विनियोक्ताओं की आवश्यकताओं की संतुष्टि करते हैं। इन दोनों प्रकार के अंशों की तुलना निम्नलिखित आधारों पर की जा सकती है -

(1) **लाभांश पर प्राथमिकता** (Preference as Regards Dividend) : समता अंशों पर लाभांश तब भी दिया जा सकता है जब पूर्वाधिकारी अंशधारियों को समता अंशधारियों पर लाभांश प्राप्त करने में प्राथमिकता रहती है।

(2) **पूँजी पर प्राथमिकता** (Preference as Regards Re-Payment of Capital) प्रमण्डल के अवसायन की स्थिति में पूँजी को वापस चुकाने में पूर्वाधिकारी अंशधारियों को समता अंशधारियों पर प्राथमिकता प्राप्त होती है।

(3) **अंशों का मूल्य** (Share Price) सामान्यतया समता अंशों का मूल्य पूर्वाधिकारी अंशों की तुलना में कम होता है।

(4) **लाभांश दर** (Dividend Rate) : समता अंशों की लाभांश दर निश्चित नहीं है परन्तु पूर्वाधिकारी अंशों की लाभांश दर पूर्व-निर्धारित होती है। सामान्यतया समता अंशों की लाभांश दर पूर्वाधिकारी अंशों की लाभांश दर से ऊँची होती है।

(5) **शोधनशीलता** (Redemption) : समता अंशों का कम्पनी के जीवन काल में शोधन नहीं हो सकता, परन्तु शोध्य पूर्वाधिकारी अंशों का शोधन किया जा सकता है।

(6) **प्रबन्ध का अधिकार** (Right of Management). समता अंशधारियों की पूँजी 'जोखिम पूँजी' होती है, अत: उनको कम्पनी के प्रबन्ध एवं नियंत्रण का अधिकार होता है। पूर्वाधिकार अंशधारियों को कुछ विशेष परिस्थितियों को छोड़कर यह अधिकार प्राप्त नहीं है।

(7) **पूँजी ढाँचे की लोच** (Elasticity of Capital Structure) : पूर्वाधिकारी अंशों का निर्गमन कम्पनी के पूँजी ढाँचे को लोचदार बनाता है जबकि समता अंशों का निर्गमन इसे अलोचशील बनाता है।

(8) **निर्गमन व्यय** (Issuing Expenses): समता अंशों का निर्गमन व्यय पूर्वाधिकारी अंशों के निर्गमन व्यय की तुलना में कम होता है।

(9) **आय** (Income) : समता अंशधारियों को आय की अनिश्चितता होती है जबकि पूर्वाधिकार अंशधारियों को निश्चित दर से आय की प्राप्ति होती है।

(10) **जोखिम** (Risk): समता अंशधारियों को प्राप्त लाभांश एवं समापन पूँजी के सम्बन्ध में अधिक जोखिम का सामना करना पड़ता है जबकि पूर्वाधिकार अंशधारियों को तुलनात्मक दृष्टि से कम जोखिम का सामना करना पड़ता है।

(11) **मताधिकार** (Voting Right): समता अंशधारियों को मताधिकार प्राप्त होता है जबकि पूर्वाधिकार अंशधारियों को केवल विशिष्ट परिस्थितियों में हो केवल सीमित मताधिकार प्राप्त हैं।

17.2.5 स्वेट इक्विटी अंश (Sweat Equity Share)

स्वेट इक्विटी अंशों से तात्पर्य ऐसे इक्विटी अंशों से है जो किसी कम्पनी द्वारा अपने कर्मचारियों या संचालकों को उनके द्वारा प्रदान की गई **तकनीकी जानकारी (Technical Knowledge)** या उनके द्वारा प्रदान किये गये **बौद्धिक सम्पदा अधिकार (Intellectual property rights)** या **मूल्य वर्द्धन (Value additions)**

के प्रतिफल स्वरूप बट्टे पर या रोकड़ के अतिरिक्त अन्य प्रतिफल के बदले में जारी किये गये हो।

कम्पनी संशोधन अधिनियम, 1999 में जोड़ी गई धारा 79A के प्रावधानों के अनुसार एक कम्पनी **निम्नलिखित शर्तों की पूर्ति करके स्वेट इक्विटी अंशों का निर्गमन कर सकती है** :-

(अ) स्वेट इक्विटी अंशों का निर्गमन तभी अधिकृत हो सकता है जबकि कम्पनी द्वारा साधारण सभा में एक विशेष प्रस्ताव पास कर लिया गया हो।

(ब) प्रस्ताव में अंशों की संख्या, वर्तमान बाजार मूल्य, प्रतिफल यदि कोई हो तो एवं संचालकों या कर्मचारियों की श्रेणी या श्रेणियाँ जिन्हें ये अंश निर्गमित करने हो, का वितरण होना चाहिए।

(स) कम्पनी को व्यापार प्रारम्भ करने का अधिकार प्राप्त किये हुये कम से कम एक वर्ष बीत जाना चाहिए।

(द) स्वेट इक्विटी अंश जिस कम्पनी के हैं उसके इक्विटी अंश मान्यता प्राप्त स्टॉक एक्सचेंज में सूचियत है तो उन अंशों का निर्गमन भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड इस सम्बन्ध में जारी किये गये दिशा-निर्देशों के अनुसार होगा।

इक्विटी अंशों के सम्बन्ध में सभी सीमायें, प्रतिबन्ध तथा प्रावधान ऐसे स्वेट इक्विटी अंशों पर लाग होंगे जो उप-धारा (1) के अन्तर्गत निर्गमित किये जाते हैं।

17.2.6 सम-मूल्य रहित अंश (No-Par Value Share)

सम मूल्य रहित अंश' निर्गमित करने का कानून सर्वप्रथम संयुक्त राज्य अमेरिका के न्यूयार्क राज्य में सन् 1912 में पारित किया गया था। बाद में अन्य राज्यों में इसके निर्गमन के कानून पारित किये गये। **गेर्स्टबर्ग** के अनुसार सम मूल्य रहित अंशों का तात्पर्य ऐसे अंशों से है, जिनका कोई सम मूल्य अथवा अंकित मूल्य नहीं होता है। '

सम-मूल्य रहित अंश कहे जाने का तात्पर्य यह नहीं है कि इनका कोई मूल्य नहीं होता है। सम-मूल्य रहित अंशों वाली कम्पनी के समग्र स्वामित्व को अंशों की सहायता से विभाजित करके ऐसे एक अंश का मूल्य निकाला जा सकता है। ऐसे अंशों पर लाभांश प्रतिशत के रूप में घोषित न करके प्रति अंश लाभांश रुपयों में घोषित किया जता है। सम-मूल्य रहित अंशों का प्रचलन सम-मूल्य अंशों की कठिनाई के कारण हुआ। सम-मूल्य अंशों पर अंकित मूल्य होता है जिसे कम्पनी द्वारा अंश प्रमाण-पत्रों पर अंकित कर दिया जाता है। सम-मूल्य उस धन राशि को व्यक्त नहीं करता है जो एक अंशधारी अंशों के विक्रय अथवा निगम के अवसायन के समय प्राप्त कर सकता है। यह एक स्थिर मूल्य है जो कि आर्थिक परिस्थितियों में हुए परिवर्तनों को व्यक्त करने में असफल रहता है। व्यवसाय एक गतिशील उद्यम होता है तथा इसका मूल्य लगातार इसे होने वाले लाभ एवं हानियों के अनुसार परिवर्तित होता रहता है। सम-मूल्य स्थिर रहता है, अत: यह इन परिवर्तनों को मापने में असफल रहता है। सम-मूल्य रहित अंश की धारणा इन्ही कठिनाइयों को समाप्त करने के लिए विकसित हुई। सम-मूल्य रहित

अंशों के मूल्य का निर्धारण कम्पनी की वित्तीय स्थिति के अनुसार समय-समय पर किया जा सकता है।

सम-मूल्य रहित अंशों के लाभ (Advantages of No-Par Value Shares)

सम-मूल्य रहित अंशों के निर्गमन से निम्न लाभ प्राप्त होते हैं -

(1) **सत्य एवं सही स्थिति** (True and Correct Position) का ज्ञान : सम-तुल्य रहित अंश कम्पनी की सत्य एवं सही स्थिति का ज्ञान कराते हैं। इन अंशों का अंकित मूल्य नहीं होता है। इनका मूल्य समय-समय पर कम्पनी की वित्तीय स्थिति के अनुसार निर्धारित किया जाता है जो सत्य के अधिक निकट होता है।

(2) **निर्गमन मूल्यों में लोच** (Flexibility in Issue Price) : सम-मूल्य रहित अंशों के निर्गमन मूल्य में लोचशीलता होती है। कम्पनी प्रारम्भ में इन्हें कम मूल्य पर निर्गमित करके अधिक विनियोक्ताओं को आकर्षित कर सकती है तथा बाद में कम्पनी की आर्थिक स्थिति अच्छी होने पर वह इनके शेष भाग को अधिक मूल्य पर निर्गमित कर सकती है।

(3) **अवांछनीय कार्यो पर रोक** (Check on Undesirable Activities): सम-मूल्य रहित अंशों की दशा में स्थिति विवरण सही स्थिति बताता है, अत: अवांछनीय कार्यों को करने की आवश्यकता नहीं होती है, जबकि सम-मूल्य अंशों की दशा में पूँजी तथा सम्पत्तियों में सन्तुलन स्थापित करने के लिए कपट एवं अवांछनीय कार्यो का सहारा लिया जाता है।

(4) **वितरण की व्यापकता** (Wild Circulation) : सम-मूल्य रहित अंश प्रायः कम मूल्य पर निर्गमित किये जाते हैं, अत: इनकी ओर विनियोक्ता अधिक आकर्षित होते है।

(5) **हिसाव-किताब** में सरलता (Accounting Facilities) : सम-मूल्य अंशों की स्थिति में पूँजी निर्गमन से सम्बन्धित व्ययों को अमूर्त सम्पत्तियों में दिखाने अथवा छिपाने की आवश्यकता नहीं होती है बल्कि इन्हें दायित्व की ओर पूँजी की राशि में से घटाकर दिखाया जाता है।

(6) **अतिपूँजीकरण का उपचार** (Remedy of Over-Capitalisation) : सम-मूल्य रहित अंशों के वर्णित मूल्य (Stated price) को कम अथवा अधिक करने का अधिकार संचालकों को होता है। इसके लिए अंशधारियों अथवा ऋण-पत्रधारियों की सहमति की आवश्यकता होती है। अत: वर्णित मूल्य को कम करके अति-पूँजीकरण की समस्या का समाधान किया जा सकता है ।

(7) **विनियोक्ताओं को प्रेरणा** (Encouragement to Investors) : अंश विनियोक्ताओं को इस बात की प्रेरणा देते हैं कि वे कम्पनी की वास्तविक वित्तीय स्थिति की जाँच करें तथा कम्पनी की क्रियाओं में अधिक रूचि लें।

सम मूल्य रहित अंशों के दोष (Disadvantages of No-Par Value Shares)

सम-मूल्य रहित अंशों के निर्गमन के निम्न दोष देखे जाते हैं -

(1) **सामान्य विनियोक्ता हतोत्साहित** (General Investor Discouraged) : सम-मूल्य रहित अंशों को खरीदते समय विनियोक्ता के सामने मनोवैज्ञानिक दुविधा रहती है कि कहीं बाद में अंश का मूल्य कम न हो जाये। इसलिए वह हतोत्साहित होता है।

(2) **विनियोग के पूर्व आर्थिक विश्लेषण कठिन** (Economic Analysis Difficult). सम-मूल्य रहित अंशों में विनियोग से पूर्व कम्पनी की आर्थिक स्थिति का विश्लेषण किया जाना चाहिए, परन्तु सामान्य विनियोक्ता यह कार्य नहीं कर सकता है।

(3) **छल-कपट की गारन्टी नहीं** (No Guarantee For Frauds). अंशों पर अंकित मूल्य का न होना इस बात की गारन्टी नहीं है कि प्रबन्धक छल कपट नहीं करेगा तथा विनियोक्ता के हितों की रक्षा की जायेगी।

(4) **ऋण प्राप्ति में कठिनाई** (Difficulty in Getting Loans) : सम-मूल्य रहित अंशों की स्थिति में ऋणदाताओं के अधिकार स्पष्ट नहीं होते हैं जिससे कम्पनी की ऋण प्राप्त करने की क्षमता कम हो जाती

(5) **अंशों से प्राप्त धन में से लाभांश वितरण** (Distribution of Dividend out of Funds paid through Shares): सम-मूल्य रहित अंशों की स्थिति में प्राप्त धन को प्रबन्धक दो भागों में बाँटते हैं - एक भाग वर्णित मूल्य (Stated price or Designated Price) कहलाता है तथा दूसरे भाग को पूँजी आधिक्य (Capital Surplus) कहते हैं। प्रबन्धक दूसरे भाग का उपयोग लाभांश वितरण हेतु कर सकते हैं, जो उचित नही है।

(6) **पूर्व विनियोक्ताओं के साथ अन्याय** (Injustice with Old Share- holders) : यदि पहले इन अंशों का निर्गमन अधिक मूल्य पर कर दिया जाये तथा बाद में यह मूल्य कम कर दिया जाये तो यह पूर्व के विनियोक्ताओं के साथ अन्याय ही कहा जायेगा।

(7) **सही स्थिति दर्शाने वाला चिट्ठा बनाना कठिन** (Difficult to Prepare true and Fair Position Balance Sheet) : इन अंशों की स्थिति में कम्पनी का स्थिति विवरण व्यवसाय की आय तथा सम्पत्ति के आधार पर सही होता है जो बड़ा कठिन कार्य है।

(8) **कम्पनी की साख पर बुरा प्रभाव** (Bad Effect on Prestige of the Company). इन अंशों के विरूद्ध लेनदारों के अधिकार सीमित होते हैं, अत: इससे कम्पनी की साख क्षमता कम हो जाती है।

17.3 ऋण पूँजी (Debt Capital)

कम्पनी की दीर्घकालीन वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति में अंश पूँजी के बाद दूसरा महत्त्वपूर्ण स्थान ऋण-पूँजी का है। अंश पूँजी को प्राप्त करने के लिए कम्पनी अंशों का निर्गमन करती है जबकि ऋण पूंजी को प्राप्त करने के लिए वित्तीय संस्थाओं से ऋण लिये जाते हैं अथवा ऋण पत्रों का निर्गमन किया जाता है। एक कम्पनी अपने पार्षद सीमानियम द्वारा अधिकार दिये जाने पर ऋण पत्रों का निर्गमन करके दीर्घकालीन वित्त प्राप्त कर सकती है।

ऋणपत्र का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Debenture)

ऋणपत्र कम्पनी की सार्वमुद्रा के अन्तर्गत निर्गमित किया गया ऋण की स्वीकृति का प्रमाण-पत्र होता है जिससे ऋण की राशि, उस पर देय ब्याज दर तथा अन्य शर्तें अंकित होती है।

भारतीय कम्पनी अधिनियम, 1956 की धारा 2(12) के अनुसार, "ऋण पत्र में ऋणपत्र स्टॉक, बॉण्ड और कम्पनी की अन्य प्रतिभूतियाँ सम्मिलित होती है चाहे वे कम्पनी की सम्पत्तियों पर प्रभार उत्पन्न करें अथवा न करें।"

पामर के शब्दों में, ऋणपत्र ऋण स्वीकार करने का एक प्रमाण-पत्र है जो कम्पनी की सार्वमुद्रा के अधीन दिया जाता है और एक निश्चित तिथि पर मूल राशि लौटाने का अनुबन्ध है। इस राशि पर एक निश्चित दर से उस समय तक ब्याज दिया जाता है जब तक इस राशि का भुगतान न हो जाये। वह पत्र कम्पनी की सम्पत्तियों पर प्रभार उत्पन्न कर सकता है। लेकिन ऐसा सदैव आवश्यक नहीं होता है।

ऋणपत्रों के निर्गमन से प्राप्त राशि कम्पनी के लिए एक ऋण है, जिसका पुनर्भुगतान (शोधन) ऋणपत्रों के निर्गमन की शर्तों के अनुसार निर्धारित तिथि को किया जाता है। ऋणपत्रों के पुनर्भुगतान तक कम्पनी इन पर पूर्व निर्धारित दर से व्याज का भुगतान करती है। यह व्याज की दर ऋणपत्र में पूर्व लिखी होती है, जैसे 12% ऋण पत्र का अर्थ है कि इन पर व्याज की दर 12% है। ऋणपत्र धारकों को कम्पनी की साधारण सभा में मत देने का अधिकार नहीं होता है इसलिए हम कह सकते हैं कि ऋणपत्र धारक कम्पनी की नीति निर्धारण एवं प्रबन्ध में भागीदारी नहीं कर सकते हैं।

ऋणपत्रों की विशेषताएँ (Characteristic of Debentures)

(1) ऋणपत्र कम्पनी द्वारा लिए गए ऋण की 'पावती" (Acknowledgement) है जो एक प्रमाण-पत्र के रूप में ऋणदाता को दी जाती है।

(2) प्रत्येक ऋण पत्र का अंकित मूल्य पूर्व निर्धारित होता है।

(3) ऋणपत्रों पर कम्पनी द्वारा पूर्व निर्धारित एवं घोषित दर से व्याज दिया जाता है।

(4) ऋणपत्रों का निर्गमन कम्पनी की सार्वमुद्रा के अन्तर्गत किया जाता है।

(5) ऋणपत्र धारियों को अंशधारियों के समान मताधिकार प्राप्त नहीं होता है।

(6) निर्गमन की शर्तानुसार एक निश्चित समय के पश्चात् ऋणपत्रों का भुगतान कर दिया जाता है, जिसे शोधन कहते हैं।

(7) सामान्यतया ऋणपत्र कम्पनी की सम्पत्तियों से चल प्रभार द्वारा सुरक्षित होते हैं।

17.4 ऋणपत्रों के प्रकार (Types of Debentures)

कम्पनी द्वारा जारी किए गए ऋणपत्र कई प्रकार के होते हैं जो उनकी विशेषताओं को प्रदर्शित करते हैं। विभिन्न विशेषताओं के आधार पर ऋणपत्र निम्न प्रकार के होते हैं:

1. **स्वामित्व के आधार पर** (On the basis of Ownership): स्वामित्व के आधार पर ऋणपत्र दो प्रकार के होते हैं -

अ. **पंजीकृत ऋणपत्र** (Registered Debentures) : ऐसे ऋणपत्र जिसके धारक का नाम कम्पनी की पुस्तकों में दर्ज होता है। ब्याज भुगतान तिथि को जिनका नाम कम्पनी की पुस्तकों में लिखा होता है, ब्याज प्राप्ति के अधिकारी होते हैं। ऐसे ऋणपत्रों का हस्तान्तरण-प्रलेख (Transfer Deed) के माध्यम से होता है।

ब. **वाहक ऋणपत्र** (Bearer Debentures) : ऐसे ऋणपत्र जिसके धारक का नाम पता आदि कम्पनी अपने पास नहीं रखती। जिस व्यक्ति के पारा ऐसे ऋणपत्र होते हैं वह ही इनका स्वामी बन जाता है। ब्याज भुगतान हेतु कम्पनी इन ऋणपत्रों के निर्गमन के समय विभिन्न तिथियों के कूपन या चैक प्रदान कर देती है। देय तिथि पर धारक इनकी राशि बैंक से प्राप्त कर लेता है।

2. **शोधन के आधार पर** (On the basis of Redemption) : शोधन के आधार पर ऋणपत्र दो प्रकार के होते हैं -

अ **शोधनीय ऋणपत्र** (Redeemable Debentures) : ऐसे ऋणपत्र जिनका कम्पनी एक निश्चित समय पश्चात् भुगतान कर देती है, शोधनीय ऋणपत्र कहलाते हैं।

ब. **अशोधनीय ऋणपत्र** (Irredeemable Debenture). ऐसे ऋणपत्र जिनका भुगतान सामान्यत: कम्पनी अपने जीवन काल में नहीं करती। इनका भुगतान कम्पनी के समापन पर ही होता है। ऐसे ऋणपत्रों को **निरन्तर -ऋणपत्र (Perpetual Debentures)** भी कहते हैं।

3. **परिवर्तनशीलता के आधार पर** (On the basis of Conversion) परिवर्तनशीलता के आधार पर ऋणपत्र दो प्रकार के होते हैं -

अ. **परिवर्तनीय ऋणपत्र** (Convertible Debenture). ऐसे ऋणपत्र जिन्हें कम्पनी एक निश्चित समय पश्चात् अंशों या नये ऋणपत्रों में बदल देती है, परिवर्तनशील ऋणपत्र कहलाते हैं। कम्पनी यदि सम्पूर्ण ऋणपत्र का परिवर्तन करती है तो इसे पूर्णत: परिवर्तनशील ऋणपत्र कहा जाता है।

कम्पनी अधिनियम के अनुसार निर्गमन की तिथि से 36 माह के भीतर इनका परिवर्तन हो जाना चाहिए।

ब. **अपरिवर्तनीय ऋणपत्र** (Non-convertible Debentures) : ऐसे ऋणपत्र जिनका किसी भी प्रकार की प्रतिभूति में परिवर्तन नहीं किया जाता, अपरिवर्तनीय ऋणपत्र कहलाते हैं। अन्य शब्दों में इन ऋणपत्रों का कम्पनी केवल भुगतान ही करती है।

यदि कम्पनी ने अपरिवर्तनीय ऋणपत्र निर्गमित किए हैं तथा बाद में इनका परिवर्तन करना चाहती है तो यह ऋणपत्र धारियों के पास एक विकल्प के रूप में होगा। यदि वे विकल्प उपयोग नहीं करते तो कम्पनी उन्हें नकद भुगतान ही करेगी।

4. **सुरक्षित के आधार पर** (On the basis of Secured Debenture) सुरक्षा के आधार पर ऋणपत्र दो प्रकार के होते

अ. **सुरक्षित ऋणपत्र** (Secured Debenture) ऐसे ऋणपत्र जिनके पास कम्पनी ने कोई प्रतिभूति प्रभार के रूप में रखी हो, सुरक्षित ऋणपत्र कहलाते हैं। ऐसा प्रभार स्थिर व चल दोनों हो सकते हैं। स्थिर प्रभार (Fixed change) के अन्तर्गत कम्पनी निश्चित सम्पत्तियों को ऋणपत्र धारियों को भुगतान हेतु अलग रख लेती है। ऐसी सम्पत्तियों को ऋणपत्र धारियों की सहमति के बिना कम्पनी हस्तान्तरित नहीं कर सकती जबकि चल प्रभार (Floating Change) के अन्तर्गत कोई विशिष्ट सम्पत्ति ऋणपत्र धारियों के लिए

अलग से नहीं रखी जाती है। कम्पनी जिन सम्पत्तियों का क्रय करती है इनमें जुड़ती जाती है व जिन्हें बेच देती है वह हटती जाती है।

ब. **असुरक्षित या नग्न ऋणपत्र** (Unsecured or Naked Debentures). ऐसे ऋणपत्र जिन पर कोई भी सम्पत्ति गिरवी या प्रभार स्वरूप नहीं रखी हो, को असुरक्षित ऋणपत्र कहते हैं।

5. **ब्याज दर के आधार पर** (On the basis of Interest Rate). 31.07.1991 तक ऋणपत्रों की व्याज दर पर सरकारी प्रतिबन्ध था किन्तु 01.08.1991 से ऐसा प्रतिबन्ध हटा लिया गया है। अब ब्याज दरों के आधार पर ऋणपत्र दो प्रकार के होते हैं -

अ. **निश्चित ब्याज दर वाले ऋणपत्र** - ऐसे ऋणपत्रों पर ब्याज की दर निर्गमित करते समय निर्धारित की जाती है। जो इनके शोधन तक रहती है। बाजार गाज दर का इन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

ब. **शून्य ब्याज दर वाले ऋणपत्र** - ऐसे ऋणपत्र जिन पर कम्पनी कोई ब्याज प्रदान नहीं करती है, शून्य ब्याज वाले ऋणपत्र कहलाते हैं। ऐसे ऋणपत्र या तो अधिकतम बट्टे पर निर्गमित होते हैं या अंशों में परिवर्तनशील इन अंशों को कम्पनी बाजार दर से कम दर पर निर्गमित करती है।

6. **समपार्श्विक ऋणपत्र** (Collateral Securities) : जब कोई कम्पनी बैंक से ऋण प्राप्त करती है तो वह प्रतिभूति के रूप में कोई सम्पत्ति गिरवी रख सकती है या कोई व्यक्तिगत गारन्टी दे सकती है या अपने ही ऋणपत्रों को जमानत के रूप में जमा करा सकती है। ऋणपत्रों का निर्गमन, ऋण के जमानत के रूप में किए जाने पर इसे समपार्श्विक प्रतिभूति कहते हैं। समझौते के अनुसार यदि कम्पनी समय पर ऋण या ब्याज या दोनों भुगतान करने में असमर्थ रहती है तो बैंक को एक ऋणपत्र धारी के रूप में ऋण पत्रों की कम्पनी से वसूल करने अथवा इन्हें बाजार में बेचकर ऋण की राशि वसूल करने का अधिकार प्राप्त होता है। इसके विपरीत यदि कम्पनी ऋण या ब्याज या दोनों का भुगतान समयानुसार कर देती है तो बैंक को ऐसे ऋणपत्रों को कम्पनी को लौटाना होगा।

कम्पनियों की वित्त व्यवस्था में ऋण-पत्रों का महत्व (Importance of Debentures) ऋण पत्रों का कम्पनी के वित्तीय ढाँचे में महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। कम्पनी के व्यवसाय का विस्तार होने पर उसके वित्त पोषण के लिए इनका प्रयोग किया जा सकता है। इनके निर्गमन से कम्पनी तथा विनियोक्ताओं दोनों को लाभ प्राप्त होते हैं।

अ. **कम्पनी के लाभ** (Advantages for the company)

इनके निर्गमन से कम्पनी को निम्नलिखित लाभ प्राप्त होते हैं -

(1) **नीची ब्याज दर** (Low Interest Rate) सामान्यतया ऋण-पत्रों पर दी जाने वाली ब्याज दर समता अंशों पर घोषित लाभांश दर से कम होती है तथा इसे व्यवसायिक व्यय माना जाता है। इसलिए ऋण की लागत नीची होती है।

(2) **प्रबन्ध एवं नियन्त्रण में हस्तक्षेप नहीं (**No Interference in Management and Control) ऋण-पत्रों से धन ऋणदाताओं को कम्पनी के प्रबन्ध में भाग लेने का अधिकार दिये बिना प्राप्त किया जाता है। ऋण-पत्र धारियों द्‌वारा कम्पनी के प्रबन्ध एवं नियंत्रण में हस्तक्षेप नहीं किया जाता है।

(3) **धन प्राप्ति की निश्चितता नीची ब्याज दर** (Certainty of Getting Funds) : ऋण-पत्रों का निर्गमन पूर्व स्थापित तथा ख्याति प्राप्त कम्पनियों द्‌वारा किया जाता है। फलतः विनियोक्ता ऋण-पत्रों का शीघ्र क्रय कर लेते हैं।

(4) **पूँजी में लोच** (Flexibility in Capital Structure) ऋण-पत्रों से कम्पनी दीर्घकालीन पूँजी प्राप्त कर सकती है तथा उनका शोधन करके उसे वापस भी लौटा सकती है। अत: कम्पनी के पूँजी ढाँचे में लोच रहती है।

(5) **समता पर व्यापार का लाभ** (Advantage of trading on Equity) : क्या-पत्रों पर देय ब्याज पूर्व-निर्धारित दर पर स्थायी रहता है। यदि कम्पनी की आय-अर्जन क्षमता अधिक है तो वह इसके द्‌वारा समता अंशधारियों के लाभ को बढ़ा सकती है।

(6) **मन्दी काल में उपयुक्त** (More useful in Depression). मन्दी काल में वित्त प्राप्त करने के लिए यह एक अच्छा साधन होता है क्योंकि उस समय अंशों का निर्गमन सफल नहीं होता है।

(7) **अति-पूँजीकरण का उपचार** (Remedy of Over-capitalisation) यदि कम्पनी में अति-पूँजीकरण हो जाता है तो कम्पनी ऋण-पत्रों का शोधन करके इस स्थिति को ठीक कर सकती है।

(8) **शोधन का भार नहीं** (No Burden of Redemption) : एक कम्पनी ऋण-पत्रों को श्रृंखलाबद्ध रूप से इस प्रकार निर्गमित कर सकती है कि प्रत्येक अनुवर्ती निर्गमन से पूर्व निर्गमित ऋण-पत्रों का भुगतान किया जा सके। इससे कम्पनी पर अधिक भार नहीं पड़ता है।

विनियोजकों को लाभ (advantages to Investment)

ऋण-पत्रों के निर्गमन से विनियोजकों को निम्न लाभ प्राप्त होते हैं -

(1) **निश्चित एवं स्थायी आय** (Certain and Fixed Income) ऋण-पत्रधारकों को निश्चित दर से ब्याज प्राप्त होता है। यह ब्याज कम्पनी को हानि होने पर भी मिलता है। अत: उन्हें कम्पनी के लाभ अथवा हानि से कोई मतलब नही होता, उन्हें तो ब्याज निश्चित रूप से प्राप्त होता रहता है।

(2) **सुरक्षा** (Safety) : सामान्यतया ऋण-पत्र कम्पनी की स्थायी अथवा चल सम्पत्तियों की जमानत पर निर्गमित किये जाते हैं, अत: वे सुरक्षित होते हैं।

(3) **तरलता** (Liquidity) ऋण-पत्रों की विशेषतः सुरक्षित ऋण-पत्रों की विक्रयशीलता अधिक होती है, अत: उन्हें शीघ्र बेचकर मुद्रा में बदला जा सकता है।

(4) **अन्य लाभ** (other Advantage) : ऋण-पत्रों के निर्गमन के समय इन्हें समता अंशों में परिवर्तन का विकल्प भी दिया जा सकता है। अत: ऋण-पत्रधारी निश्चित अवधि में समता अंश प्राप्त कर सकते हैं।

ऋणपत्रों की सीमाएँ (Limitation of Debentures).

1. **कम्पनी की दृष्टि से सीमाएँ** -

(1) **ख्याति में कमी** (Decline in Goodwill) अनेक बार ऋण-पत्रों को निर्गमन करने का तात्पर्य कम्पनी की खराब आर्थिक स्थिति का प्रतीक माना जाता है। अत: इससे कम्पनी की ख्याति कम होती है।

(2) **अविश्वसनीय साधन** (Non-reliable Source) : इस साधन का प्रयोग करके केवल वे ही कम्पनियाँ वित्त प्राप्त कर सकती है जिनकी ख्याति अच्छी है। नवीन स्थापित कम्पनी इसका उपयोग नहीं कर सकती है। कम्पनी के अच्छे दिनों में उसके ऋण-पत्र सरलता से बिक जाते हैं, परन्तु खराब स्थिति के दिनों में इनकी बिक्री में बहुत कठिनाईयॉ होती हैं। अत: यह अविश्वसनीय साधन है।

(3) **स्थायी प्रभार** (Fixed Charges). ऋण-पत्रों पर कम्पनी को व्याज अनिवार्य रूप से चुकाना होता है। यदि ब्याज का भुगतान नहीं किया जाये तो ऋण-पत्रधारी कम्पनी के समापन की माँग कर सकते हैं। अत: प्रमण्डल पर स्थायी प्रभार रहता है।

(4) **बैंकों का असहयोग** (Non-Cooperation of Bank). जो कम्पनियाँ ऋण-पत्र निर्गमित करती है, उनको बैंकों का सहयोग प्राप्त नहीं होता है। बैंक ऐसी कम्पनियों के प्रति उपेक्षा का व्यवहार अपनाते हैं।

(5) **भारी निर्गमन व्यय** (More Floating cost). ऋण-पत्रों के निर्गमन का व्यय बहुत अधिक होता है। भारी मुद्रांक कर (stamp Duty) तथा हस्तान्तरण कर (Transfer Duty) के कारण यह साधन महँगा पड़ता है।

(6) **अस्थायी साधन** (Temporary Source) : ऋण-पत्र निश्चित अवधि के होते हैं1 उस अवधि की समाप्ति के बाद उनकी राशि का भुगतान करना होता है। अत: यह एक, अस्थायी साधन है।

2. **विनियोजकों की दृष्टि से सीमाएँ**

(1) **अधिक लाभ में भाग का अधिकार नहीं** (No Right in Profit) : ऋण-पत्रधारियों अधिक लाभ के दिनों में भी केवल निश्चित दर से ही ब्याज मिलता है। उन्हें अधिक लाभ में कोई हिस्सा नहीं मिलता है।

(2) **मताधिकार का अभाव** (Lack of Voting Right) : ऋण-पत्रधारी कम्पनी के स्वामी नहीं होते हैं वरन् लेनदार होते हैं। इसलिए इन्हें न तो मताधिकार है और न ही कम्पनी के प्रबन्ध में हिस्सा लेने का अधिकार है।

(3) **करों का भुगतान** (Payment of Taxes) : ऋण-पत्रधारियों द्वारा करों का भुगतान करना पड़ता है, क्योंकि ब्याज की प्राप्ति कर घटाने के पश्चात् ही होती है।

17.5 ऋण-पत्र एवं अंश में अन्तर (Difference Between Debentures and Shares) :

ऋण पत्र एवं अंश में निम्नलिखित अन्तर पाये जाते हैं :-

क्र.सं.	अन्तर का आधार	ऋणपत्र	अंश
1.	स्थिति	ऋणपत्र धारक कम्पनी के लिए लेनदार होते हैं।	अंशधारक कम्पनी का वास्तविक स्वामी हैं।
2.	ऋण अथवा पूँजी	ऋणपत्र, ऋण की स्वीकृति है।	अंश कम्पनी की पूँजी में एक हिस्सा है।
3.	प्रत्याय	ऋणपत्रों पर ब्याज का भुगतान किया जाता है। चाहे कम्पनी को लाभ हो या हानि।	अंशों पर लाभांश दिया जाता है जो केवल लाभ होने पर ही दिया जाता है।
4.	प्रत्याय की दर	ऋणपत्रों पर ब्याज का भुगतान एक पूर्व निर्धारित निश्चित दर पर किया जाता है।	अंशों पर लाभांश की दर निश्चित नहीं होती है यह लाभ की मात्रा पर निर्भर करती है।
5.	मताधिकार	ऋणपत्र धारकों को मत देने का अधिकार नहीं होता है।	अंशधारकों को मत देने का अधिकार होता है।
6.	शोधन	ऋणपत्रों का शोधन, निर्गमन की शर्तों के अनुसार किया जाता है।	सामान्य अंशो का शोधन कम्पनी के प्रबन्ध अपने जीवनकाल में नहीं कर सकती है।
7.	प्रबन्ध में भागीदारी	ऋणपत्र धारी कम्पनी के प्रबन्ध में भाग नहीं ले सकते हैं।	अंशधारी कम्पनी के प्रबन्ध में भाग ले सकते हैं।
8.	बट्टे पर निर्गमन	ऋणपत्रों का बट्टे पर निर्गमन के सम्बन्ध में कोई प्रतिबन्ध नहीं है।	अंशों का बट्टे पर निर्गमन कम्पनी अधिनियम की धारा 79 के प्रावधानों के अनुसार किया जा सकता है।
9.	समापन पर भुगतान में प्राथमिकता	कम्पनी के समापन की स्थिति में ऋणपत्र धारकों को अंशधारकों से पहले भुगतान किया जाता है।	कम्पनी के समापन की स्थिति में अंशधारकों को भुगतान ऋणपत्र धारकों के भुगतान के बाद किया जाता है।
10.	परिवर्तन	ऋणपत्रों का परिवर्तन अन्य प्रकार की प्रतिभूतियों में किया जा सकता है	सामान्य अंशों का परिवर्तन अन्य प्रकार की प्रतिभूतियों में नहीं किया जा सकता है।
11.	समापन के समय आधिक्य में अधिकर	ऋणपत्र धारकों को केवल ऋण की वापसी का अधिकार होता है । समापन के समय यदि आधिक्य होती है तो इस	कम्पनी के समस्त दायित्वों को चुकाने के बाद यदि समापन के समय कोई अधिक्य रहता है तो इस आधिक्य पर अंशधारकों का अधिकार होता है।

		आधिक्य पर इनका कोई अधिकार नहीं होता है।	

17.6 ऋण-पत्रों का मूल्यांकन (Analysis of Debentures) :

भारतीय कम्पनियों के पूँजी ढाँचे में ऋण-पत्रों का महत्व बढ़ता ही जा रहा है। एक कम्पनी को अपने पूँजी ढाँचे का निर्धारण इस तरह से करना चाहिए कि उसमें अधिकतम लोच हो तथा कम्पनी के लिए पूँजी साधन की लागत न्यूनतम हो। एक नवीन स्थापित कम्पनी प्रारम्भ में ऋण-पत्र निर्गमित करके वित्त प्राप्त करने में सफल नहीं हो सकती है, अत: प्रारम्भ में कम्पनी को अपनी पूँजी समता अंशों एवं पूर्वाधिकारी अंशों से प्राप्त करनी चाहिए और जब कम्पनी का व्यवसाय अच्छा चलने लगें तथा स्थायी एवं नियमित आय प्राप्त होने लगे तब ऋण-पत्रों के निर्गमन से धन प्राप्त करना चाहिए। ऋण-पत्रों का सहारा तब ही लेना चाहिए जब कम्पनी की आय अर्जन क्षमता ऋण-पत्रों पर देय ब्याज दर से अधिक हो। ऋण-पत्रों से पूँजी प्राप्त करने का एक लाभ यह होता है कि कर अधिकारियों द्वारा इन पर देय ब्याज को निगम कर की गणना के लिए व्यवसायिक व्यय माना जाता है, अत: निगम कर निकालने से पूर्व इसे लाभ में से घटाया जा सकता है। इससे निगम कर की राशि कम हो जाती है। उदाहरण के लिए किसी कम्पनी की ब्याज एवं कर-पूर्व आय (Earnings before Interest and Tax or EBIT) 1,00,000 रूपये है तथा ऋण-पत्रों पर ब्याज 20,000 रूपये है एवं निगम कर की सीमान्त दर 50% है तो ऐसी स्थिति में कर रहित लाभ निम्न प्रकार ज्ञात किया जायेगा -

ब्याज एवं कर पूर्व लाभ	1,00,000
घटाओ - ऋण-पत्रों पर ब्याज	20,000
कर पूर्व लाभ (Profit Before Tax)	80,000
घटाओ - निगम कर (50% दर से)	40,000
कर बाद लाभ (Profit after Tax)	40,000

उपर्युक्त स्थिति में निगम कर की राशि 40,000 रूपये हुई।

यदि कम्पनी ने ऋण-पत्र निर्गमित नहीं कर रखें होते तो कर बाद लाभ की स्थिति निम्न प्रकार होगी :

कर पूर्व लाभ (Profit Before Tax)	1,00,000
घटाओ - निगम कर (50% दर से)	50,000
कर बाद लाभ (Profit after Tax)	50,000

उपर्युक्त से स्पष्ट होता है कि ऋण-पत्रों के न होने की स्थिति में राशि 50,000 रूपये है। दोनों स्थितियों की तुलना करने से ज्ञात होता है कि ऋण-पत्र निर्गमित करके कम्पनी ने कर की राशि में 10,000 रूपये की बचत कर ली, अत: कम्पनी के लिए

ऋण-पत्रों पर ब्याज की प्रभावी राशि 20,000 रूपये न होकर 20,000-10,000 रूपये है। इस कर लाभ के प्रभाव को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए।

17.7 सावधि ऋण (Term Loans)

सावधि ऋण वे होते हैं जिनका वापिस भुगतान एक साल से अधिक के बाद किया जाता है। इनका प्रयोग स्थिर सम्पत्तियों की खरीद तथा कार्यशील पूँजी का मार्जिन प्रदान करने के लिए किया जाता है। ये ऋण अल्पकालीन ऋण से इस अर्थ में भिन्न होते हैं कि अल्पकालिक ऋण कार्यशील पूँजी की नियमित आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए होते हैं तथा एक वर्ष से कम की अवधि में स्वत: शोधित होते हैं। सावधि ऋण. भारत में व्यापारिक बैंकों तथा विशिष्ट, वित्तीय संस्थाओं द्वारा प्रदान किये जाते हैं। विशिष्ट वित्तीय संस्थाओं में भारतीय औद्योगिक विकास बैंक, भारतीय औद्योगिक विकास निगम एवं वित्त निगम हैं।

सावधि ऋणों की प्रमुख विशेषताएँ - इन ऋणों की प्रमुख विशेषताएँ निम्न होती है -

(1) **प्रतिभूति** (Security) : सामान्यतया ये सुरक्षित ऋण हैं तथा इनका निर्गमन कुछ प्रमुख सम्पत्तियों की सुरक्षा अथवा बंधक के आधार पर किया जाता है। सम्पत्तियों पर प्रभार दो तरह का हो सकता है, प्रथम स्थायी या स्थिर प्रभार तथा द्वितीय चल प्रभार (Floating Charge)। स्थिर प्रभार विशिष्ट स्थायी सम्पत्तियों पर होता है तथा चल प्रभार विशिष्ट सम्पत्तियों पर न होकर सम्पत्तियों सामान्यत: होता है।

(2) **ब्याज व मूल की वापसी** (Interest and return back of Principle) : वित्तीय संस्थाएँ प्रायः 14% ब्याज लेती है तथा शीघ्र भुगतान के लिए 1% से 1½% छूट देती है तथा दोष की दशा में ऋण राशि एवं अदत्त ब्याज की सम्मिलित राशि 2% की दर से हर्जाने के रूप में वसूल करती है। पिछड़े क्षेत्रों में स्थापित इकाईयों से प्रायः सामान्य ब्याज दर से प्रायः 1½% कम व्याज दर वसूल की जाती है।

प्रारम्भ में 1 से 2 वर्ष की छूट की अवधि के पश्चात् सावधि ऋणों का भुगतान 6 से 8 वर्षों में कर दिया जाता है। विशिष्ट वित्तीय संस्थाएं ऋण अर्द्ध-वार्षिक किश्तों में तथा व्यापारिक बैंक सम-मासिक किश्तों में वसूल करती है।

(3) **प्रतिबन्धात्मक अनुबन्ध** (Restrictive Clauses) : विशिष्ट वित्तीय संस्थाएँ अपने हितों की सुरक्षा के लिए ऋण प्रसंविदों में कई प्रकार की शर्तों का कोई निश्चित प्रारूप तो निर्धारित नहीं है परन्तु परियोजना विशेष के सन्दर्भ में इनका निर्धारण कर दिया जाता है। कुछ प्रमुख शर्तें निम्न हो सकती हैं :-

(a) संचालक मण्डल को व्यापक बनाया जाये तथा इसे वित्तीय संस्थाओं के परामर्श से अन्तिम रूप दिया जाए।

(b) समय अथवा लागत बढ़ जाने पर अतिरिक्त धन आरक्षित ऋण के रूप में लाने की व्यवस्था होनी चाहिए।

(c) वित्तीय संस्था को स्वीकृति के बिना कोई नई परियोजना या विस्तार या निवेश नहीं करना चाहिए।

(d) विभिन्न सरकारी एजेन्सियों से स्वीकृतियाँ तथा अनुज्ञाएँ प्राप्त कर लेनी चाहिए।

(e) विद्यमान ऋणों का भुगतान वित्तीय संस्थाओं की स्वीकृति से किया जाना चाहिए।

(f) अतिरिक्त ऋण नहीं लेने चाहिए।

(g) पूँजी ढाँचे में ऋण का अनुपात अतिरिक्त समता अंश अथवा पूर्वाधिकार अंश निर्गमन द्वारा कर दिया जाना चाहिए।

(h) लाभांश की दर एक सीमा में रखें तथा उससे अधिक करने के लिए वित्तीय संस्थाओं से स्वीकृति प्राप्त की जाए।

(i) सम्पत्तियों पर और अधिक प्रभार निर्गमित न करें।

(j) संगठन सम्बन्धी परिवर्तन करें तथा प्रबन्ध मण्डल पर उपयुक्त व्यवसायी व्यक्तियों की नियुक्ति करें।

4. **परिवर्तनीयता** (Convertibility) : वित्त संस्थाओं द्वारा प्रदान किये गये ऋणों को ऐसी संस्थाएँ अपने विकल्प पर पूर्णत: या अंशतः समता अंशों में परिवर्तित कर सकती है। इसके लिए सरकार ने आवश्यक दिशा-निर्देश जून, 1971 में जारी किये थे। इनका सारांश निम्न हैं -

(अ) जब कुल सहायता 50 लाख रूपये से अधिक हो तब वित्त संस्था के लिए यह विकल्प बनाये रखना अनिवार्य है। सहायता की मात्रा 50 लाख रूपये से कम परन्तु 25 लाख रूपये से अधिक होने पर वित्तीय संस्था इस विकल्प को रख सकती है अथवा हटा सकती है।

(ब) परिवर्तनीयता का वाक्य केवल रुपयों में दिये गये ऋणों पर ही लागू होगा, यद्यपि उसका आधार कुल सहायता होगी।

(स) रुपयों में दी गई सहायता का 20% समता अंशों में परिवर्तन सम-मूल्य पर किया जा सकता है। वित्तीय संस्थाएँ अपने इस विकल्प पर इससे कम प्रतिशत का चयन कर सकती है।

(द) नई इकाईयों को दिये गये ऋणों का समता में परिवर्तन सम-मूल्य पर किया जायेगा। अन्य कम्पनियों की स्थिति में प्रीमियम की राशि का निर्धारण आपसी बातचीत द्वारा किया जायेगा।

17.8 नवीन ऋण परिसम्पत्तियाँ (New Debt Instruments)

तेजी से बदलते हुए वित्तीय पर्यावरण एवं मुद्रा व पूँजी बाजार के विकास से वित्त प्राप्ति के नवीन स्रोतों का विकास हो रहा है। इनमें नवीन ऋण परिसम्पत्तियाँ अथवा ऋण पुर्जे अधिक महत्वपूर्ण हैं, जिनमें से कुछ निम्न हैं -

1. **शून्य ब्याज बॉण्ड** (Zero Interest Bond or ZIB)अथवा शून्य कूपन बॉण्ड (Zero Coupon Bond) : ये वे ऋण बॉण्ड होते हैं जिन पर कोई ब्याज देय नहीं होता है परन्तु इनका निर्गमन बट्टे पर किया जाता है। अत: इन पर लिखित मूल्य तथा इनके निर्गमन मूल्य का अन्तर बॉण्डधारकों के लिए ब्याज को व्यक्त करता है।

2. **शून्य ब्याज पूर्ण परिवर्तनशील ऋणपत्र** (Zero Interest Fully Convertible Debentures) : ये वे ऋण-पत्र होते हैं जिन पर कोई ब्याज देय नहीं होता है, परन्तु ये एक पूर्व निर्धारित तिथि पर पूर्व निर्धारित मूल्य पर समता अंशों में परिवर्तनशील होते हैं। सामान्यतया ऐसे बॉण्ड कम्पनी के बाजार में प्रचलित मूल्य से कम मूल्य पर समता अंशों में परिवर्तित होते हैं जो बॉण्डधारी के लिए लाभदायक होता है।
3. **सुरक्षित प्रब्याजि नोट्स** (Secured Premium Notes) : सुरक्षित प्रब्याजि नोट्स सामान्यतया अलग किये जाने वाले वारन्ट्स के साथ निर्गमित किये जाते हैं तथा 4 से 7 वर्ष की अवधि के बाद विमोचनशील होते हैं। अलग किये जाने वाले वारन्ट्स समता अंशों में परिवर्तनशील होते हैं जिनका समता अंशों में परिवर्तन सूचित अवधि के अन्दर कर दिया जाता है।
4. **गहरा बट्टायुक्त बॉण्ड** (Deep Discount Bonds) : यह भी एक तरह का शून्य ब्याज वाले बॉण्ड जैसा ही पुर्जा होता है। इन बॉण्डों को इनके ऊपर लिखित विमोचनशील मूल्य की तुलना में बट्टे पर निर्गमित किया जाता है। भारतीय औद्योगिक विकास बैंक द्वारा भारत में सर्वप्रथम जनवरी, 1992 में ऐसे बॉण्डों का निर्गमन किया गया था, जिनका निर्गमन 2,700 रूपये बॉण्ड पर किया गया जबकि उनका 25 वर्ष बाद देय मूल्य 1,00,000 रूपया था। इन बॉण्डों में बैंक तथा विनियोक्ता दोनों को हर पाँच वर्ष बाद विमोचन का अधिकार प्राप्त था। IDBI द्वारा निर्गमित गहरे बट्टा युक्त बॉण्डों का 5 वर्ष बाद मूल्य 5,700 रूपये, 10 वर्ष बाद 12,000 रूपये, 15 वर्ष बाद25,000 रूपये, 20 वर्ष बाद 50,000 रूपये तथा 25 वर्ष बाद 1,00,000 रूपया निर्धारित था।
5. **दोहरा विकल्प बॉण्ड** (Double Option Bond) : ये बॉण्ड भी भारतीय औद्योगिक विकास बैंक द्वारा निर्गमित किये गये। इनका अंकित मूल्य 5,000 रूपया था जिन पर 15% ब्याज देय है जो प्रति 6 माह बाद संचयी है। बॉण्ड की परिपक्वता अवधि 10 वर्ष है जिसके दो भाग है तथा दोनों अलग-अलग प्रमाण-पत्र जारी किये गये हैं। एक में 5,000 रूपये मूलधन व्यक्त है तथा दूसरे में विमोचन प्रब्याजि सहित ब्याज के 16,500 रूपये के लिए है। दोनों प्रमाण-पत्र स्टॉक एक्सचेंज में सूचिबद्ध है तथा दोनों में अलग-अलग व्यवहार होता है। बॉण्डधारक किसी भी एक या दोनों को बेच सकता है।
6. **चलायमान दर बॉण्ड** (Floating Rate Bonds) : यह वह ऋण-पत्र या बॉण्ड है जिस पर ब्याज दर स्थिर नहीं है, बल्कि बाजार दशाओं के अनुसार परिवर्तनशील होती है। यह बॉण्ड निर्गमनकर्ता को ब्याज दरों में परिवर्तन के विरूद्ध सुरक्षा प्रदान करता है। ऐसे बॉण्डों का निर्गमन अधिक लोकप्रिय हो रहा है।
7. **स्फीति बॉण्ड** (Inflation Bonds) : ये बॉण्ड वे बॉण्ड होते हैं जो बॉण्डधारक को स्फीति के विरूद्ध सुरक्षा प्रदान करते हैं। इसमें धारक को स्फीति विहीन ब्याज दर प्राप्त होती है, जैसे Inflation Bonds की व्याज दर 10% निर्धारित है तथा देश में स्फीति की दर 6% है तो धारक को 16% की दर से ब्याज दिया जायेगा।

8. **बहुविकल्पी बॉण्ड** (Multi Option Bonds) : ये बॉण्ड वे होते हैं जिनमें बॉण्डधारक को ब्याज का भुगतान प्राप्त करने तथा मूलधन वापस करने के अनेक विकल्प दिये जाते हैं। इस तरह के बॉण्ड IDBI, ICICI आदि द्वारा निर्गमित किये गये हैं।

17.9 अन्तर्राष्ट्रीय वित्तयन (International Financing)

आज भारत में अनेक उपक्रम अन्तर्राष्ट्रीय वित्तयन का भी सहारा ले रहे हैं। यह वित्त निम्न स्रोतों से प्राप्त होता है -

1. **व्यवसायिक बैंक से ऋण** (Loans from Commercial Banks) : घरेलू व्यवसायिक बैंकों की तरह ही विदेशी बैंक भी विदेशी मुद्रा में अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहारों के लिए उधार या ऋण देते हैं।
2. **विकास बैंक** (Development Banks) : बहुत से देशों के बैंक उनके देश के निर्यातकों द्वारा अन्य देशों में कार्य करने के लिए उनके देश से आयात करने के लिए ऋण देते हैं, जैसे - संयुक्त राज्य अमेरिका का EXIM Bank of USA या जापान का EXIM Bank of Japan।
3. **अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएँ** (international Agencies) : अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम (IFC), अन्तर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण एवं विकास बैंक (IBRD), अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, एशियाई विकास बैंक आदि संस्थाएँ भी ऋण सहायता भारतीय संस्थाओं को देती है। इनका उपयोग किया जा सकता है।
4. **अन्तर्राष्ट्रीय पूँजी बाजार** (International Capital Market) : अन्तर्राष्ट्रीय पूँजी बाजारों से अनेक प्रकार से वित्त प्राप्त किया जा सकता है। भारतीय फर्मों ने GDR (Global Depository Receipts) के माध्यम से साधन प्राप्त करने के प्रयत्न किये हैं तथा इसमें सफलता भी प्राप्त हुई है।

   जी.डी.आर. किसी भारतीय कम्पनी जो इनका निर्गमन करती है, द्वारा जारी की गई एक लिखत है जो जी.डी.आर. विदेशी मुद्रा प्रायः डालर में जारी की जाती है तथा यह जारीकर्ता कम्पनी के एक या अधिक शेयरों का प्रतिनिधित्व करती है। यह एक परक्राम्य है जिसका धारक इसे किसी भी समय समता अंशों में बदलवा सकता है। जब तक जी.डी.आर. को समता अंशों में नहीं बदला जाता, इसका क्रय-विक्रय विदेशी स्टॉक एक्सचेंज में किया जाता है तथा इस पर लाभांश विदेशी जमाकर्ता के माध्यम से दिया जाता है। इन्हें मताधिकार प्राप्त नहीं होता है, परन्तु समता अंशों में बदलाव के बाद यह अधिकार प्राप्त हो जाता है। एक जी.डी.आर. कितने समता अंशों में परिवर्तनशील होगी यह निर्गमन के समय ही निर्धारित कर दिया जाता है।

   ए.डी.आर. भी जी.डी.आर. की तरह ही परक्राम्य साध्य लिखत होती है जिसका आधार गैर-अमेरिकन कम्पनी के समता अंश होते हैं। यह लिखत अमेरिका के स्टॉक एक्सचेंजों में क्रय-विक्रय की जाती है तथा यह किसी गैर-अमेरिकन कम्पनी के एक अथवा अधिक अंशों का प्रतिनिधित्व करती है। इसमें संयुक्त राज्य अमेरिका के विनियोक्ता अपना

धन विनियोग कर सकते हैं। इसका धारक इसे सम्बन्धित कम्पनी के अंशों में बदलवा सकता है। इसके लाभ जी.डी.आर. की तरह के ही होते हैं।

17.10 शब्दावली

1. दीर्घकालीन वित्त (Long-term Finance)
2. समता अंश (Equity Shares)
3. अधिमान अंश (Preference Shares)
4. ऋणपत्र (Debenture)
5. लाभांश (Dividend)
6. मताधिकार (Voting Right)
7. विनियोग (Investment)
8. संचयी अधिमान अंश (Cumulative Preference Shares)
9. असंचयी अधिमान अंश (Non-Cumulative Preference Shares)
10. अल्प पूँजीकरण (Under Capitalisation)
11. अति पूँजीकरण (Over Capitalisation)
12. पूँजीगत हानि (Capital Loss)
13. पूँजीगत लाभ (Capital Gain)
14. सुरक्षित ऋणपत्र (Secured Debentures)
15. असुरक्षित ऋणपत्र (Unsecured Debentures)
16. सावधि ऋण (Term Loans)
17. समपार्श्विक प्रतिभूतियाँ (Collateral Securities)
18. विकास बैंक (Development Banks)
19. आई.एम.एफ. (International Monetary Fund)
20. आई.बी.आर.डी (International Bank for Reconstruction & Development)

17.11 अभ्यास प्रश्न

1. दीर्घकालीन वित्त क्या होता है?
   What is long term finance?
2. दीर्घकालीन वित्त के प्रमुख साधनों के नाम बतलाइए।
   Enumerate the major Sources of Long-term finance.
3. समता अंश पूँजी क्या होती है?
   What is equity share capital?
4. समता अंश पूँजी के कोई दो प्रमुख दोष बतलाइए।
   Give any two important demerits of equity share capital.

5. पूर्वाधिकारी अंश क्या है?

   What are preference shares?

6. पूर्वाधिकार अंशों के कोई दो लाभ अथवा कोई दो दोष बतलाइए।

   Give any two merits or any two demerits of preference shares.

7. ऋण-पत्र क्या होता है?

   What is debenture?

8. गहरा बट्टा युक्त बॉण्ड क्या है?

   What is deep discount bond?

9. शून्य ब्याज बॉण्ड क्या है?

   What is Zero Interest bond?

10. अंश से आप क्या समझते हैं?

    What do you understand by Share?

11. बन्धक ऋण-पत्र क्या है?

    What is mortgage debentures?

12. सावधि ऋण क्या होता है इसकी प्रमुख विशेषताएँ बतलाइए।

    What is term loan? Give its Characteristics.

13. अंश तथा ऋण-पत्र में अन्तर बतलाइए।

    Give differences between Shares and Debentures.

14. प्रत्याभूति ऋण-पत्र क्या होता है?

    What is meant by guaranteed Debentures?

15. संचयी व असंचयी अधिमान अंशों में अन्तर बताइये।

    State difference between Cumulative and Non-cumulative preference shares.

16. समता एवं पूर्वाधिकार अंशों में अन्तर बताइये।

    State difference between Equity and Preference share.

17. 'ऋण-पत्र वित्त का सस्ता साधन है।' वर्णन कीजिए।

    'Debenture is a cheeper source of finance.' Describe.

17.12 व्यवहारिक प्रश्न

1. दीर्घकालीन पूँजी से आप क्या समझते हैं? इसके निर्धारण में किन तत्वों पर विचार किया जाता है, उनका वर्णन कीजिए?

What do you understand by Long-term Capital? Discuss the factors to be taken into consideration while determining the amount of long-term capital?

2. एक कम्पनी के वित्तीय स्रोत के रूप में पूर्वाधिकारी अंशों एवं समता अंशों का मूल्यांकन कीजिए।

   Evaluate the preference shares and equity shares as a source of finance for a company.

3. एक सार्वजनिक कम्पनी को किन स्रोतों से दीर्घकालीन वित्त की प्राप्ति होती है? इनमें से प्रत्येक की विशेषताएँ स्पष्ट कीजिए और बतलाइए कि अनुकूलतम पूँजी सम्मिश्रण को किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है?

   What are the various of long-term finance available to a public limited company? Explain the characteristics of each and indicate how an optimal capital mix can be arrived at?

4. कम्पनियों द्वारा ऋण-पूँजी का प्रयोग क्यों किया जाता है? कम्पनियों की ऋण लेने की सीमाओं का वर्णन कीजिए।

   Why companies use debt capital? What are the limitations on their borrowing capacity?

5. भारत में निगमों के वित्त प्रबन्धन में ऋण-पत्रों का महत्व स्पष्ट कीजिए। भारत में ऋण-पत्र लोकप्रिय क्यों नहीं हो रहे हैं?

   Discuss the significance of debentures in corporation finance. Why debenture finance has not been popular in India?

6. भारतीय उद्योगों को दीर्घकालीन वित्त के लिए उपलब्ध विभिन्न साधनों का संक्षेप में परीक्षण कीजिए।

17.13 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. **वित्तीय प्रबन्ध के तत्व,** अग्रवाल-अग्रवाल, रमेश बुक डिपो, जयपुर 2008-09
2. **फाइनेसिंग ऑफ इंडियाज फोरेन ट्रेड,** केसर सिंह, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर 2002
3. **वित्तीय प्रबन्ध,** आई.एम. पाण्डे, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई 2007
4. **भारतीय अर्थव्यवस्था,** प्रतियोगिता दर्पण, उपकार प्रकाशन, आगरा, 2008-09
5. **बैंकिंग एवं वित्त. गुप्ता,** वशिष्ठ स्वामी, रमेश बुक डिपो, जयपुर 2008
6. **व्यावसायिक संगठन, शर्मा,** कोठारी, रतन प्रकाशन मन्दिर, आगरा 2002
7. **वित्तीय प्रबन्ध,** एम.आर. अग्रवाल, गरिमा पब्लिकेशन, जयपुर 2009

इकाई - 18 : तन्त्र विश्लेषण की प्रविधियाँ : पर्ट एंव सी.पी.एम. (Network Analysis Techniques : PERT and C.P.M)

इकाई संरचना

18.0 उद्देश्य
18.1 प्रस्तावना
18.2 तन्त्र विश्लेषण की प्रविधियाँ. पर्ट एवं सी.पी.एम.
18.3 पर्ट एवं सी.पी.एम. के प्रयोग
18.4 पर्ट एवं सी.पी.एम. का तुलनात्मक अध्ययन
18.5 तन्त्र विश्लेषण में उपयोगी तकनीकी शब्दावली
18.6 तन्त्र चित्र का निर्माण एवं क्रान्तिक पथ निर्धारण
18.7 ढील की अवधि
18.8 कार्यक्रम मूल्यांकन एवं समीक्षा तकनीक
18.9 परियोजना अवधि व लागत में सम्बन्ध
16.10 सारांश
18.11 बोध प्रश्नों के उत्तर
18.12 स्व-परख प्रश्न
18.13 सन्दर्भ ग्रन्थ

18.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- इस इकाई में आप परियोजना नियोजन तथा विश्लेषण के लिए तन्त्र विश्लेषण प्रविधियों का अध्ययन करेंगे;
- कार्यक्रम मूल्यांकन एवं समीक्षा तकनीक (पर्ट) को समझ सकेंगे
- चरम पथ विश्लेषण पद्धति के बारे में जानकारी प्राप्त कर उसका उपयोग कर सकेंगे;
- यह बता सकने में समर्थ होंगे कि किसी परियोजना को सामान्य स्थिति में कितनी अवधि में पूरा कर सकते हैं; एवं
- किसी परियोजना को सामान्य से कम अवधि में पूरा करने पर उसकी लागत पर पड़ने वाले प्रभाव की गणना कर सकने में समर्थ होंगे।

18.1 प्रस्तावना

उद्योग तथा व्यावसायिक प्रबन्धन के लिए किसी परियोजना के क्रियान्वयन में लगने वाली समयावधि तथा लागत का अध्ययन महत्त्वपूर्ण होता है। अनेक बार परियोजना को सामान्य समय से कम समय में पूर्ण करना लाभदायक होता है। सामान्य से कम समय में परियोजना पूर्ण करने पर परियोजना की लागत बढ़ जाती है। इस बढ़ने वाली लागत की गणना करने में तन्त्र विश्लेषण प्रविधियाँ बहुत सहायक होती हैं। इस इकाई में आप परियोजना नियोजन, विश्लेषण तथा नियन्त्रण के क्षेत्र में तन्त्र-विश्लेषण प्रविधियों की भूमिका के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

18.2 तन्त्र विश्लेषण प्रविधियाँ : पर्ट एवं सी.पी.एम.

वर्तमान समय में वृहद् परियोजनाओं को सफलतापूर्वक पूर्ण करना प्रबन्धन के सामने एक बड़ी चुनौती है। परियोजना से तात्पर्य अन्तर्सम्बन्धित क्रियाओं के ऐसे समूह से है जिनमें से प्रत्येक को सम्पूर्ण कार्य को पूरा करने के लिए एक पूर्व निश्चित क्रम में पूर्ण करना आवश्यक है। परियोजना को सफलतापूर्वक पूरा करने के लिए प्रबन्धन उसे अनेक उपकार्यों एवं क्रियाओं में विभाजित करता है। इसके साथ ही प्रत्येक क्रिया में लगने वाले समय तथा लागत को ज्ञात कर परियोजना अवधि एवं लागत का निर्धारण किया जाता है। यह सब कार्य कुशलतापूर्वक पूर्ण करने के लिए प्रबन्धन द्वारा तन्त्र विश्लेषण तकनीकों का उपयोग किया जाता है।

तन्त्र विश्लेषण की दो प्रमुख तकनीकें निम्नलिखित हैं :-

(i) कार्यक्रम मूल्यांकन एवं समीक्षा तकनीक (Programme Evaluation and Review Technique) जिसे पर्ट (PERT) के नाम से जाना जाता है।

(ii) चरम पथ विश्लेषण विधि (Critical Path Analysis Method) जिसे सी.पी.एम. (C.P.M.) के नाम से जानते हैं।

तन्त्र विश्लेषण तकनीकों का विकास -

वैज्ञानिक प्रबन्धन के विकास के साथ ही तन्त्र विश्लेषण तकनीकों का विकास हुआ है। तन्त्र विश्लेषण की दोनों ही तकनीकों का विकास क्रम 1950 से प्रारम्भ हुआ है। **पर्ट तकनीक** का सर्वप्रथम प्रयोग अमेरिका में रक्षा क्षेत्र में बैलास्ट मिसाइल की परियोजना को गति देने के लिए किया गया था। इस तकनीक के प्रयोग से इस परियोजना को निर्धारित अवधि से दो वर्ष पूर्व ही पूरा कर लिया गया था। इस तकनीक की उपयोगिता के कारण वर्तमान में ऐसी प्रत्येक परियोजना, जिसमें क्रियाएें एक निश्चित अनुक्रम में सम्पादित की जाती हैं तथा जिसके क्रियान्वयन में लगने वाले समय में अनिश्चितता बनी रहती है, को पूरा करने के लिए यह तकनीक काम में आ जाता है।

चरम पथ विश्लेषण (सी.पी.एम.) विधि का प्रयोग प्रारम्भ में निर्माण परियोजनाओं के नियोजन एवं अनुसूचियन (Scheduling) में किया गया था। सी.पी.एम. प्रविधि का उपयोग मुख्यतः किसी परियोजना में लगने वाले समय तथा लागत में समन्वय

स्थापित करने के लिए किया जाता है। यह प्रविधि इस मान्यता पर आधारित है कि किसी परियोजना के निष्पादन में लगने वाले समय तथा लागत के बारे में निश्चित व सही अनुमान लगाये जा सकते हैं। इस तकनीक में प्रत्येक क्रिया को पूर्ण होने में लगने वाले समय तथा लागत के बारे में दो प्रकार के अनुमान - सामान्य तथा विशेष परिस्थिति के लिए लगाये जाते हैं। विशेष परिस्थिति में अतिरिक्त साधन लगाकर परियोजना पूर्ण करने की अवधि को कम किया जा सकता है। परियोजना पूर्ण करने के लिए अतिरिक्त साधन लगाने पर परियोजना की लागत बढ़ जायेगी। वर्तमान में यह तकनीक उद्योग, व्यापार, कृषि, परिवहन, बैंकिंग तथा बीमा सम्बन्धी परियोजनाओं में व्यापक रूप से प्रयोग में ली जा रही है।

इस प्रकार पर्ट एवं सी.पी.एम. दोनों ही प्रविधियों में सर्वप्रथम परियोजना को अनेक उपकार्यों तथा क्रियाओं में विभाजित कर उनके लिए आवश्यक साधन आवंटित किये जाते हैं। चरम पथ के मार्ग में आने वाली क्रियाओं पर विशेष ध्यान देते हुए कठिनाइयों का पहले से ही समाधान खोजा जाता है। इस प्रक्रिया को अपनाते हुए परियोजना को निर्धारित समयावधि में पूर्ण करने में सफलता प्राप्त की जाती है।

18.3 पर्ट एवं सी.पी.एम. के प्रयोग (Application of PERT and C.P.M.)

इन दोनों तकनीकों का उपयोग राजकीय एवं निजी क्षेत्र में संचालित विभिन्न प्रकार की परियोजनाओं में किया जाता है। उपयोग के कुछ महत्वपूर्ण क्षेत्र निम्नलिखित हैं -

(i) रक्षा परियोजनाएँ

(ii) अनुसंधान परियोजनाएँ

(iii) जल संसाधन परियोजनाएँ - जैसे बांध बनाने, नहर निकालने आदि;

(iv) अन्तरिक्ष यान प्रक्षेपण

(v) राष्ट्रीय राजमार्ग का निर्माण आदि।

18.4 पर्ट एवं सी.पी.एम. का तुलनात्मक अध्ययन

पर्ट एवं सी.पी.एम. प्रविधियों में अन्तर - यद्यपि पर्ट एवं सी.पी.एम. दोनों ही तन्त्र चित्र विश्लेषण पर आधारित तकनीकें हैं। तथा इनमें काफी समानता है। परन्तु फिर भी इन दोनों तकनीकों में निम्न अन्तर पाये जाते हैं -

(i) पर्ट तकनीक घटना केन्द्रित है जबकि सी.पी.एम. क्रिया केन्द्रित तकनीक है। दूसरे शब्दों में पर्ट तकनीक में उद्देश्यों पर अधिक ध्यान दिया जाता है जबकि सी.पी.एम. में क्रियाओं पर।

(ii) पर्ट तकनीक में एक क्रिया के पूरे होने के लिए तीन समयानुमान दिये जाते हैं जबकि सी.पी.एम. में केवल एक ही समयानुमान दिया हुआ होता है।

(iii) पर्ट तकनीक प्रायिकता मॉडल पर आधारित है जबकि सी.पी.एम. तकनीक निश्चितता मॉडल पर आधारित होती है।

(iv) पर्ट तकनीक का प्रयोग परियोजना समय तथा लागत के नियोजन तथा नियन्त्रण के लिए किया जाता है जबकि सी.पी.एम. का प्रयोग परियोजना समय के नियोजन एवं नियन्त्रण हेतु किया जाता है।

(v) पर्ट तकनीक में परियोजना के निर्धारित समय में पूर्ण हो सकने की सम्भाव्यता जाँचने के लिए सांख्यिकी विधियों यथा प्रमाप विचलन, प्रसरण, सामान्य वितरण तालिका आदि का उपयोग किया जाता है जबकि सी.पी.एम. में किसी सांख्यिकी विधि का उपयोग नहीं किया जाता है।

परियोजना समय का निर्धारण : परियोजना समय को निर्धारित करने के लिए निम्न प्रक्रिया अपनाई जावेगी -

(i) परियोजना पूरी करने के लिए आवश्यक क्रियाओं की जानकारी की जाती है।

(ii) परियोजना सम्बन्धी सभी क्रियाओं को उनके पूरा किये जाने के लिए क्रमबद्ध किया जाता है। इस हेतु विभिन्न क्रियाओं में तार्किक एवं ऐतिहासिक आधार पर अन्तःसम्बन्ध स्थापित कर उनकी अन्तर्निर्भरता ज्ञात की जाती है।

(iii) क्रियाओं की अन्तःनिर्भरता के आधार पर यह ज्ञात किया जाता है कि कौन सी क्रिया किस क्रिया को प्रारम्भ करने से पूर्व पूर्ण की जानी है, कौन-कौन सी क्रियाएँ एक साथ प्रारम्भ की जा सकती हैं तथा कौन सी क्रिया उस क्रिया को पूर्ण करने के बाद शुरू की जा सकती है।

(iv) प्रत्येक क्रिया के क्रियान्वयन में लगने वाले समय तथा साधन के बारे में अनुमान लगाया जाता है।

(v) परियोजना पूरी किये जाने के दौरान आ सकने वाली कठिनाइयों की जानकारी तथा उनके समाधान खोजे जाते हैं।

(vi) उक्त जानकारी के आधार पर परियोजना का तन्त्र चित्र बनाया जाता है।

(vii) तन्त्र चित्र में चरम पथ का निर्धारण किया जाता है।

(viii) चरम पथ की अवधि ही परियोजना समय कहलाता है।

18.5 तन्त्र विश्लेषण में उपयोगी तकनीकी शब्दावली

तन्त्र विश्लेषण (Network Analysis) : यह परियोजना नियोजन के लिए संक्रिया विज्ञान की एक तकनीक है। ऐसी परियोजनाएँ जिनमें विभिन्न क्रियाओं को एक निश्चित क्रम में पूरा करना होता है, को पूर्ण करने में इस तकनीक का उपयोग किया जाता है।

क्रिया (Activity) : एक कार्य जिसे पूरा करने के लिए समय, साधन एवं धन का उपयोग किया जाता है, क्रिया कहलाती है। एक परियोजना को पूरा करने के लिए अनेक क्रियाएँ एक निश्चित अनुक्रम में सम्पादित की जाती हैं। क्रिया को तन्त्र चित्र में एक तीरयुक्त रेखा (→) द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। प्रत्येक क्रिया को बड़े अक्षरों यथा A,B,C... द्वारा नामांकित किया जाता है। इन्हें तीरयुक्त रेखा के ऊपर लिखा जाता है, जैसे $\xrightarrow{A\ 6\ days}$। तीरयुक्त रेखा की लम्बाई का क्रिया के पूरा होने में

लगने वाले समय से कोई सम्बन्ध नहीं होता है। क्रियाओं के कुछ उदाहरण जैसे - भवन निर्माण परियोजना में - भूमि क्रय करना, भवन का नक्शा बनवाना, नींव खुदाई, भवन निर्माण सामग्री क्रय करना आदि।

क्रियाएँ कई प्रकार की होती हैं, जिनमें से कुछ प्रमुख निम्नलिखित हैं :-

पूर्ववर्ती क्रिया (Preceeding Activity) : एक घटना के घटित होने से पहले पूरी की जाने वाली क्रिया पूर्ववर्ती क्रिया कहलाती है, जैसे $\xrightarrow[\text{6 Days}]{B}$ ❹ यहाँ घटना 4 की पूर्ववर्ती क्रिया B है। (वृत्त में अंकित अंक घटना के क्रम को बताते हैं।)

उत्तरवर्ती क्रिया (Succeeding Activity) : एक घटना के घटित होने के बाद की जाने वाली क्रिया उत्तरवर्ती क्रिया कहलाती है। जैसे 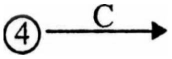

क्रिया घटना 4 के घटित होने के बाद प्रारम्भ हुई है, अत: यहाँ C क्रिया घटना 4 की उत्तरवर्ती क्रिया है।

समवर्ती क्रिया (Concurrent Activity) : ऐसी क्रिया जो किन्हीं अन्य क्रियाओं के साथ एक ही समय में साथ-साथ सम्पन्न की जा सकती है, समवर्ती क्रिया कहलाती है, जैसे 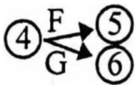

यहाँ 'F' और 'G' समवर्ती क्रियाएँ हैं।

डमी क्रिया (Dummy Activity) : वह क्रिया जिसे पूरा करने में कोई समय या साधन नहीं लगता तथा जिसे केवल तकनीकी रूप से क्रियाओं की अन्तःनिर्भरता प्रकट करने के लिए काम में लेते हैं, डमी क्रिया कहलाती है। इसे टूटे हुए तीरयुक्त रेखाखण्ड (➔) द्वारा दिखाया जाता है। उदाहरण के लिए किसी परियोजना में A और B क्रियाएँ C क्रिया की पूर्ववर्ती क्रियाएँ हैं तथा B क्रिया D क्रिया की पूर्ववर्ती क्रिया है, तब तन्त्र चित्र में क्रियाओं को सही कम में समझाने हेतु डमी क्रिया टूटे हुए रेखाखण्ड द्वारा प्रदर्शित की गई है -

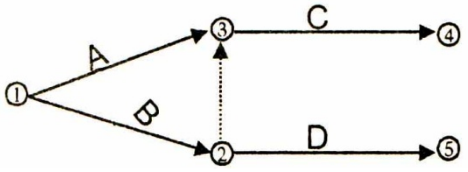

उक्त तन्त्र चित्र में A और B दोनों क्रियाएँ C की पूर्ववर्ती क्रियाएँ हैं, यह डमी क्रिया द्वारा आसानी से प्रदर्शित किया जा सका है।

क्रान्तिक या चरम क्रिया (Critical Activity) : ऐसी क्रियाएँ जो चरम पथ से सम्बन्धित होती हैं, उन्हें क्रान्तिक क्रियाएँ कहते हैं। इन क्रियाओं को पूरा करने में विलम्बित होने से परियोजना पूर्ण होने में भी देरी हो जायेगी, अत: इन्हें निर्धारित समय में पूरा करने पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है।

गैर क्रान्तिक क्रियाएँ (Non-Critical Activities) : ऐसी सभी क्रियाएँ जो क्रान्तिक पथ से बाहर होती हैं, गैर-क्रान्तिक क्रियाएँ कहलाती हैं। इन क्रियाओं के विलम्बित होने से परियोजना पूर्ण होने में लगने वाले समय पर प्रभाव नहीं पड़ता है।

घटना (Event) : किसी क्रिया के प्रारम्भ होने या पूर्ण होने के बाद का बिन्दु जिसे वृत्त में एक अंक द्वारा प्रदर्शित किया जाता है, घटना कहलाती है, जैसे -

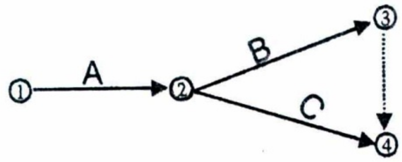

उक्त चित्र में बिन्दु ①, ②, ③ तथा ④ घटनाएँ हैं। एक घटना उसकी पूर्ववर्ती क्रियाओं के पूर्ण होने के बाद ही घटित होगी। उक्त चित्र में घटना 3 क्रिया A और B के पूर्ण होने के बाद तथा घटना 4 A,B और C क्रियाओं के पूर्ण होने के बाद ही घटित होगी। घटना के घटित होने में समय एवं साधन नहीं लगता है। सामान्यत: हम कह सकते हैं कि घटना एक उद्देश्य है तथा क्रियाऐं उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए किये जाने वाले प्रयत्न हैं। घटनाओं को अंक प्रदान करने की क्रिया i-j नियम अर्थात् पहले घटने वाली घटना को उसके बाद घटित होने वाली घटना से एक अंक छोटा प्रदान किया जाता है। घटनाएँ निम्न प्रकार की होती हैं -

प्रारम्भिक घटना (Tail Event) : प्रारम्भिक घटना वह घटना है जिससे एक क्रिया प्रारम्भ होती है। जैसे नीचे दिये गये चित्र में क्रिया B घटना 2 से प्रारम्भ होती है, अत: घटना 2 क्रिया B के लिए प्रारम्भिक घटना है।

शीर्ष घटना (Head Event) : जिस बिन्दु पर एक क्रिया समाप्त होती है उसे उस क्रिया की शीर्ष घटना कहते हैं, जैसे यदि C क्रिया समाप्त होने वाले बिन्दु पर घटना 4 घटित होती है तो घटना 4 को C क्रिया की शीर्ष घटना कहेंगे।

नोड घटना (Node Event) : एक ही समय में दो क्रियाओं के पूर्ण होने के बाद घटित होने वाली घटना नोड घटना कहलाती है।

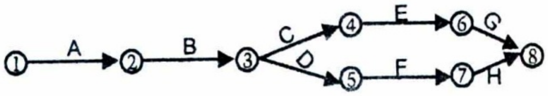

उक्त तन्त्र चित्र में घटना 8 क्रिया G और H के एक साथ पूर्ण होने पर घटित होती है, अत: घटना 8 नोड घटना कहलायेगी।

तन्त्र चित्र (Network Diagram) : किसी परियोजना की विभिन्न क्रियाओं तथा घटनाओं का तार्किक एवं क्रमबद्ध रूप से चित्र के रूप में प्रदर्शन तन्त्र चित्र कहलाता है। इस चित्र में क्रियाओं को तीरयुक्त रेखाखण्डों तथा घटनाओं को वृत्त रूप में व्यक्त किया जाता है। प्रत्येक वृत के अन्दर उस घटना का क्रम अंकित कर दिया जाता है। प्रत्येक क्रिया का प्रारम्भ किसी घटना से होता है तथा अन्त भी किसी घटना पर ही होता है। तीरयुक्त रेखाखण्ड के ऊपर लिखे हुए A,B,C आदि अक्षर क्रियाओं के क्रम को व्यक्त करते हैं।

क्रान्तिक पथ (Critical Path) : किसी परियोजना की प्रथम तथा अन्तिम घटना को जोड़ने वाला वह मार्ग जिसमें सर्वाधिक अवधि लगती है, क्रान्तिक पथ कहलाता है। यह मार्ग किसी परियोजना के पूर्ण होने में लगने वाले सम्भावित समय को बताता है। इस मार्ग में आने वाली सभी क्रियाएँ क्रान्तिक क्रियाएँ कहलाती हैं। परियोजना को निर्धारित अवधि में पूर्ण करने के लिए इन सब क्रान्तिक क्रियाओं को समय पर पूरा किया जाना जरूरी है। क्रान्तिक क्रियाओं के लिए कोई ढील की अवधि उपलब्ध नहीं होती है।

बोध प्रश्न (क)

(1) परियोजना किसे कहते हैं?

(2) तन्त्र विश्लेषण तकनीकों के नाम लिखिये।

(3) पूर्ववर्ती क्रिया किसे कहते हैं?

(4) डमी किया का अर्थ बताइये।

(5) घटना व क्रिया में अन्तर समझाइये।

(6) बताइये कि निम्नलिखित कथन सत्य हैं या असत्य -

(i) पर्ट व सी.पी.एम. तन्त्र विश्लेषण की तकनीकें हैं।

(ii) डमी क्रिया क्रियान्वित करने में समय लगाना पड़ता है।

(iii) तीरयुक्त रेखा की लम्बाई क्रिया के पूरा होने में लगने वाले समय पर निर्भर करती है।

(iv) वृत्त में लिखे अंक घटना के क्रम को व्यक्त करते हैं।

18.6 तन्त्र चित्र का निर्माण एवं क्रान्तिक पथ निर्धारण

परियोजना के सम्बन्ध में दी हुई सूचनाओं के आधार पर तन्त्र चित्र का निर्माण निम्नलिखित नियमों की पालना करते हुए किया जाता है -

(i) क्रियाओं को प्रदर्शित करने वाली तीनयुक्त रेखाएँ सदैव बांयी ओर से दाहिनी ओर अन्तिम घटना की ओर बढ़ती हुई होनी चाहिये। प्रत्येक तीरयुक्त रेखा की एक निश्चित दिशा होनी चाहिये। अलग-अलग क्रियाओं को प्रदर्शित करने के लिए अलग-अलग तीरयुक्त रेखाओं का उपयोग करना चाहिये।

(ii) जहाँ तक सम्भव हो तीरयुक्त रेखाखण्ड एक दूसरे को नहीं काटना चाहिये।

(iii) एक नोड से एक या अधिक क्रियाएँ प्रारम्भ हो सकती हैं तथा एक नोड पर एक या अधिक क्रियाएँ समाप्त भी हो सकती हैं।

(iv) प्रथम नोड की कोई पूर्ववर्ती तथा अन्तिम नोड की कोई उत्तरवर्ती क्रिया नहीं होती है।

(v) कोई भी दो क्रियाओं की प्रारम्भिक व शीर्ष दोनों घटनाएँ समान नहीं होनी चाहिये।

(vi) तन्त्र चित्र चक्रीय आकार में नहीं होना चाहिये।

(vii) तन्त्र चित्र का एक प्रारम्भिक तथा एक ही अन्तिम बिन्दु होना चाहिये।

तन्त्र चित्र निर्माण की प्रक्रिया को हम निम्नलिखित उदाहरण की सहायता से समझ सकेंगे

उदाहरण सं. 1

मारूति लिमिटेड कार का एक नया मॉडल बनाने की परियोजना पर कार्य कर रही है। कार के एक नये मॉडल के लिए की जाने वाली क्रियाओं का विवरण निम्न प्रकार है -

	क्रिया	पूर्ववर्ती क्रिया
A	नये मॉडल की ड्राइंग बनाना	-
B	लागत का विवरण तथा विश्लेषण करना	A
C	वित्तीय विश्लेषण करना	A
D	नये मॉडल के लिए टूल्स बनाना	C
E	सामग्री के लिए आदेश देना (Raw Material)	B,C
F	सामग्री प्राप्त करना	D,C
G	सहायक असेसरीज के लिए आदेश देना	E
H	सहायक असेसरीज प्राप्त करना	G
I	नये मॉडल के अवयवों Components का निर्माण	F
J	असेम्बलिंग का कार्य करना	H,I
K	परीक्षण तथा विक्रय के लिए जारी करना	J

उपरोक्त उदाहरण में A क्रिया के लिए कोई पूर्ववर्ती क्रिया नहीं है तथा B और C क्रियाएँ A के पूर्ण होने के बाद प्रारम्भ की जाती हैं। क्रिया D को शुरू करने से पूर्व क्रिया C का पूर्ण होना आवश्यक है। क्रिया E के शुरू होने के लिए पहले B व C का पूर्ण होना आवश्यक है। अत: क्रिया E की B व C पर अन्तःनिर्भरता है जो निम्न तन्त्र चित्र से स्पष्ट है -

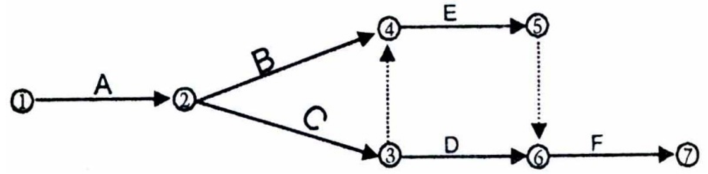

E क्रिया की B व C पर निर्भरता प्रकट करने के लिए घटना 3 व 4 के बीच डमी क्रिया प्रदर्शित की गई है। क्रिया F को प्रारम्भ करने से पूर्व D तथा E क्रियाओं का पूर्ण होना आवश्यक है, इसको व्यक्त करने के लिए घटना 5 व 6 के बीच डमी क्रिया प्रदर्शित की गई है। इसके बाद शेष क्रियाओं को सम्बद्ध करते हुए पूर्ण तन्त्र चित्र निम्न प्रकार होगा-

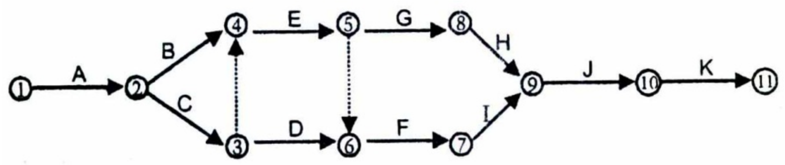

घटनाओं का अंकन :

तन्त्र चित्र का निर्माण कर लेने के बाद विभिन्न घटनाओं को क्रमवार अंक प्रदान किये जाते हैं। घटनाओं को अंक देने का कार्य डी.आर. फल्करसन के नियम के अनुसार किया जाता है, जो निम्नानुसार है -

प्रथम प्रारम्भिक घटना को 1 अंक प्रदान किया जाता है। इस घटना की ओर कोई तीरयुक्त रेखाखण्ड नहीं आता है।

अब प्रथम प्रारम्भिक घटना से निकलने वाले समस्त तीरयुक्त रेखाखण्ड हटा देने पर कोई अन्य प्रारम्भिक घटना प्राप्त होगी जिसे 2 अंक प्रदान करेंगे।

इस क्रिया को तब तक दोहरायेंगे जब तक कि अन्तिम घटना का अंकन नहीं हो जाये।

इस प्रकार पहले घटने वाली घटना को उसके बाद घटने वाली घटना से छोटा अंक प्रदान किया जाता है।

नोट : घटनाओं को 10, 20, 30.... आदि अंक भी प्रदान किये जा सकते हैं।

उदाहरण सं. 2

निम्नलिखित सूचनाओं से एक तन्त्र चित्र बनाइये तथा घटनाओं का अंकन कीजिये -

क्रिया	पूर्ववर्ती क्रिया
A	-
B	-
C	A
D	A,B
E	C
F	D
G	E,F

हल - सबसे पहले तन्त्र चित्र का निर्माण करेंगे।

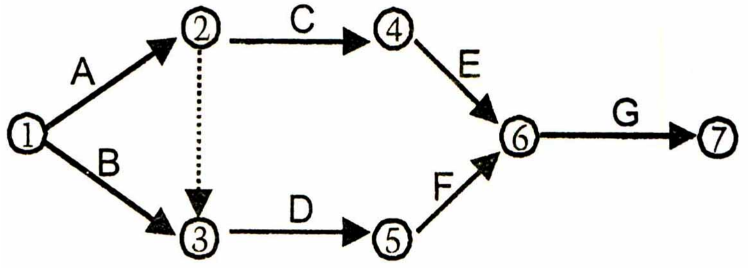

उक्त तन्त्र चित्र में वृत्त में दिये गये अंक घटनाओं के घटित होने के क्रमानुसार हैं। घटनाओं को अंक प्रदान कर देने के बाद अब क्रियाओं को उनकी प्रारम्भिक व शीर्ष घटनाओं के क्रमांक के आधार पर निम्न प्रकार से भी व्यक्त कर सकते हैं -

क्रियाएँ	A	B	C	D	E	F	G
अंकन के आधार पर	1-2	1-3	2-4	3-5	4-6	5-6	6-7

तन्त्र चित्र में विभिन्न क्रियाओं के निष्पादन में लगने वाले समयानुमान सम्बन्धित क्रियाओं वाली तीरयुक्त रेखाखण्ड पर अंकित कर दिये जाते हैं। सी.पी.एम. तकनीक में क्रिया को पूरा करने के लिए एक ही समयानुमान दिया हुआ होता है जिसे सम्बन्धित क्रिया पर लिख देते हैं। पर्ट तकनीक में प्रत्येक क्रिया के लिए तीन समयानुमान (आशावादी, निराशावादी एवं अधिकतम सम्भाव्य अनुमान) दिये होते हैं। इन तीन

अनुमानों से आशान्वित समय की गणना की जाती है। इस आशान्वित समय को क्रिया के पूरा होने में लगने वाला समय माना जाता है जिसे सम्बन्धित क्रिया वाली रेखाखण्ड पर अंकित किया जाता है।

(नोट - आशान्वित समय की गणना करने की प्रक्रिया आगे बताई गई है।)

क्रान्तिक पथ का निर्धारण :

पर्ट एवं सी.पी.एम. तकनीकों द्वारा परियोजना नियन्त्रण का मुख्य आधार क्रान्तिक पथ का निर्धारण ही है। पर्ट एवं सी.पी.एम. दोनों तकनीकों में क्रान्तिक पथ निर्धारण की एक समान रीति है। इसे हम निम्न उदाहरण द्वारा समझने की कोशिश करेंगे -

नोट. प्रथम घटना से अन्तिम घटना तक पहुँचने के लिए जिस पथ की अवधि सर्वाधिक होती है वही पथ चरम पथ या क्रान्तिक पथ होता है तथा इस अवधि को ही परियोजना समय भी कहते हैं।

उदाहरण सं. 3

क्रिया	समयानुमान.
1-2	5
2-3	9
2-4	12
3-4	0
3-5	7
4-5	18
5-6	15

सबसे पहले हम तन्त्र चित्र का निर्माण करेंगे।

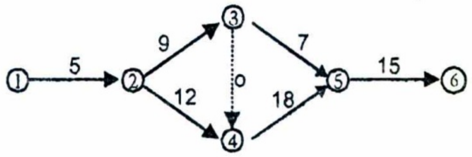

उक्त तन्त्र चित्र में 3-4 डमी क्रिया है। तीरयुक्त रेखाखण्डों के ऊपर अंकित अंक क्रिया को पूरा में लगने वाली समयावधि के अनुमान हैं।

क्रान्तिक पथ ज्ञात करने के लिए प्रथम घटना से अन्तिम घटना तक पहुँचने वाले सभी मार्ग ज्ञात लिये जाते हैं, जो निम्न हैं :

पथ	क्रियाएँ	समय
1.	1-2-3-5-6	5 + 9 + 7 + 15 = 36
2.	1-2-3-4-5-6	5 + 9 + 0 + 18 + 15 = 47
3.	1-2-4-5-6	5 + 12 + 18 + 15 = 50

क्रान्तिक पथ वह होता है जिसमें आने वाली क्रियाओं को पूरा करने में लगने वाला समयानुमानों का योग सर्वाधिक होता है। इस पथ का निर्माण करने वाली घटनाएँ क्रान्तिक घटनाएँ तथा इस मार्ग में आने वाली क्रियाएँ क्रान्तिक क्रियाएँ कहलाती हैं। उपरोक्त उदाहरण में पथ क्रमांक 3 क्रान्तिक पथ है क्योंकि' इस पथ में आने वाली क्रियाओं को पूरा करने में लगने वाले समयानुमान का योग सर्वाधिक है।

अत: क्रान्तिक पथ, पथ क्रमांक तीन तथा क्रान्तिक क्रियाएँ 1-2-4-5-6 है। पथ की अवधि 50 दिन अर्थात् परियोजना पूरी होने में 50 दिन की समयावधि लगेगी।

क्रान्तिक पथ ज्ञात करने की उक्त विधि **पूर्ण गणनात्मक** विधि है। इसका उपयोग छोटी परियोजना में चरम पथ ज्ञात करने के लिए किया जाता है।

बड़ी परियोजनाओं में क्रान्तिक पथ ज्ञात करने के लिए **विश्लेषणात्मक विधि** का प्रयोग करते हैं। विश्लेषणात्मक विधि को समझने के लिए निम्न तकनीकी शब्दों को समझना आवश्यक है -

अग्रप्रेषित विधि (Forward Pass Method) : यह विधि प्रत्येक क्रिया को शीघ्रतम प्रारम्भ होने के समय को बताती है तथा अप्रत्यक्ष रूप से प्रत्येक घटना के शीघ्र घटित होने के समय को व्यक्त करती है।

शीघ्रतम प्रारम्भ समय (Earliest Start Time) : घटना I से प्रारम्भ होने वाली किसी या क्रियाओं का शीघ्रतम प्रारम्भ होने का समय घटना I के शीघ्रतम घटित होने के समय के बराबर होता है। घटना I के शीघ्र घटित होने या I से प्रारम्भ होने वाली क्रिया के शीघ्र प्रारम्भ समय को E के द्वारा व्यक्त किया जाता है। उदाहरण सं. 3 के लिए विभिन्न घटनाओं के शीघ्रतम घटित होने के समय की गणना निम्न प्रकार की जावेगी -

घटना 1 - यह प्रारम्भिक प्रथम घटना है। इसके पहले कोई क्रिया नहीं की गई है। इसका शीघ्र घटित होने का समय परियोजना के प्रारम्भ करने का समय ही होगा। जब तक अन्य कुछ निर्देश नहीं दिये हो, इसे शून्य माना जाता है।

अत: $E_1 = 0$

घटना 2 - घटना 1 व 2 के बीच केवल 1 क्रिया 1-2 है। इस क्रिया को पूरा करने में 5 दिन लगते हैं, अत: घटना 2 के लिए शीघ्र घटित होने का समय $E_2 = E_1$ क्रिया 1-2 के पूरा होने का समय = 0 + 5 = 05

अत: $E_2 = 5$

घटना 3 - E3 =E2 + क्रिया 2-3 के पूरा होने का समय

= 5+9 = 14

अत: E3 = 14

घटना 4 - घटना 4 पर दो क्रियाएँ 2-3 तथा 2-4 मिलती है, अत:

$$E = \text{अधिकतम} = \begin{bmatrix} E2 + \text{क्रिया } 2-4 \text{ का समय} = 5 + 12 = 17 \\ E3 + \text{क्रिया } 3-4 \text{ का समय} = 14 + 0 = 14 \end{bmatrix}$$

अतः $E_4 = 17$

घटना 5 - घटना 5 पर दो क्रियाएँ 3-5 तथा 4-5 मिलती है अत:

$$E_5 = \text{अधिकतम} = \begin{bmatrix} E3 + \text{क्रिया } 3-5 \text{ का समयानुमान} = 14 + 7 = 21 \\ E4 + \text{क्रिया } 4-5 \text{ का समयानुमान} = 17 + 8 = 35 \end{bmatrix}$$

अत: $E_5 = 35$

घटना 6 - $E_6 = E_5$ + क्रिया 5-6 का समयानुमान

= 35 + 15 = 50

अत: $E_6 = 50$

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि अन्तिम घटना के घटित होने का शीघ्रतम समय 50 दिन है। दूसरे शब्दों में यह परियोजना न्यूनतम 50 दिन में पूरी हो सकती है।

पश्चप्रेषित गणना (Backward Pass Computation Method)

इस विधि की सहायता से हम परियोजना की अवधि को बढ़ाये बिना किसी क्रिया को प्रारम्भ करने में कितना विलम्ब कर सकते हैं, की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। यह विलम्ब केवल गैर क्रान्तिक क्रियाओं में ही किया जा सकता है। इसका उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रत्येक घटना के घटित होने के विलम्बित समय की गणना की जाती है।

अन्तिम स्वीकार्य समय (Latest Allowable Time)

किसी घटना I के घटित होने की अन्तिम स्वीकार्य तिथि चरम पथ की अवधि में से घटना I से अन्तिम घटना तक पहुँचने वाले सर्वाधिक लम्बे पथ की अवधि के अन्तर के बराबर होती है। किसी घटना के अन्तिम स्वीकार्य समय को L के द्वारा व्यक्त करते हैं।

उदाहरण संख्या 3 के लिए अन्तिम स्वीकार्य समय की गणना

अन्तिम स्वीकार्य समय की गणना अन्तिम घटना से प्रारम्भ की जाती है। उदाहरण संख्या 3 में अन्तिम घटना क्रमांक 6 है। इसकी अन्तिम स्वीकार्य तिथि परियोजना समय की अवधि 50 दिन ही होगी।

अत: घटना 6 के लिए $L_6 = 50$

घटना 5 - घटना 6 को घटना 5 से मिलाने वाली केवल एक क्रिया 5-6 है, अत: घटना 5 का अन्तिम स्वीकार्य समय L_5, = L_6 - क्रिया 5-6 के पूरे होने का समयानुमान = 50 - 15 = 35

अत: $L_5 = 35$

घटना 4 के लिए

$L_4 = L_5$ - क्रिया 4-5 के पूरे होने का समयानुमान

= 35 - 18 = 17

अत: $L_4 = 17$

घटना 3 पर मिलने वाली दो क्रियाएँ 3-5 तथा क्रिया 3-4 है, अत: घटना 3 के लिए

$$L_3 = \text{न्यूनतम} \begin{bmatrix} L4 - \text{क्रिया } 3-4 \text{ के पूरे होने का समयानुमान} = 17 - 0 = 17 \\ L5 - \text{क्रिया } 3-5 \text{ के पूरे होने का समयानुमान} = 37 - 7 = 28 \end{bmatrix}$$

अत: $L_3 = 17$

घटना 2 के लिए

$$L_2 = \text{न्यूनतम} = \begin{bmatrix} L3 - \text{क्रिया } 2-3 \text{ के पूरे होने का समयानुमान} = 17 - 9 = 8 \\ L4 - \text{क्रिया } 2-4 \text{ के पूरे होने का समयानुमान} = 17 - 12 = 5 \end{bmatrix}$$

अत: L_2 = 5

घटना 1 के लिए

L_1, = L_2 - क्रिया 1 - 2 के पूरे होने का समयानुमान

= 5 - 5 = 0

अत: L_1 = 0

निम्नलिखित तन्त्र चित्र जो उदाहरण संख्या 3 से सम्बन्धित है, में विभिन्न क्रियाओं में लगने वाले समय तथा E तथा L को अंकित कर बताया गया है -

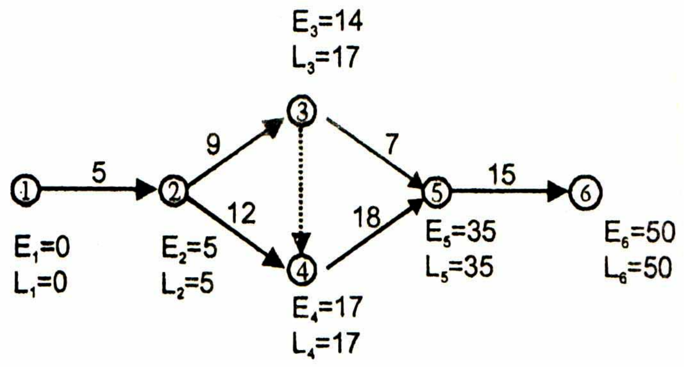

क्रान्तिक घटनाओं को पहचानना -

जिन घटनाओं के लिए शीघ्र घटित होने का समय (E) तथा अन्तिम स्वीकार्य समय (L) एक समान होता है, वे घटनाएँ क्रान्तिक घटनाएँ होती हैं। अपने उदाहरण में घटना 1,2,4,5 तथा 6 क्रान्तिक घटनाएँ हैं। क्रान्तिक पथ के मार्ग में आने वाली सभी घटनाएँ क्रान्तिक घटनाएँ होती हैं।

क्रान्तिक पथ

क्रान्तिक घटनाओं से होकर गुजरने वाला मार्ग क्रान्तिक पथ कहलाता है। इस पथ में आने वाली क्रियाएँ क्रान्तिक क्रियाएँ कही जाती हैं।

उपरोक्त उदाहरण 1-2-4-5-6 क्रान्तिक पथ है। प्रथम घटना से अन्तिम घटना तक पहुँचने वाला वह मार्ग जिसकी लम्बाई (अवधि) सर्वाधिक हो, क्रान्तिक या चरम पथ कहलाता है।

18.7 ढील की अवधि

घटना में ढील की अवधि (Event Stock)

किसी घटना में उसकी अन्तिम स्वीकार्य तिथि तथा उसके शीघ्रतम घटने की तिथि का अन्तर घटना में ढील की अवधि कहलाती है।

क्रिया में ढील की अवधि (Activity Float)

किसी क्रिया में ढील की अवधि उस क्रिया के विलम्बित प्रारम्भ व शीघ्र प्रारम्भ या विलम्बित समापन व शीघ्र समापन की अवधि में अन्तर के बराबर होती है।

किसी क्रिया के विलम्बित प्रारम्भ व शीघ्र समापन समय की गणना निम्न प्रकार की जाती है -

किसी क्रिया के विलम्बित प्रारम्भ होने का समय	= उस क्रिया की शीर्ष घटना की विलम्बित अवधि (L of End Event)	- उस क्रिया के लिये समयानुमान - (Time of Activity)
किसी क्रिया के शीघ्र समापन का समय	= उस क्रिया के शीघ्र प्रारम्भ का समय	+ उस क्रिया के लिए समयानुमान

क्रियाओं में ढील की अवधि निम्न प्रकार की होती है :-

कुल ढील की अवधि (Total Float) -

किसी क्रिया के विलम्बित प्रारम्भ व शीघ्र प्रारम्भ या विलम्बित समापन व शीघ्र समापन की अवधि का अन्तर ही कुल ढील की अवधि होती है।

ढील की अबाध अवधि (Free Float) -

यह कुल ढील की अवधि का यह भाग है जितना अन्य क्रियाओं की ढील की अवधि को छोड़े बिना उस क्रिया में ढील की अवधि को बढ़ाया जा सकता है।

क्रिया I-J के लिए ढील की अबाध अवधि	= क्रिया I-J के लिए ढील की कुल अवधि	घटना J के नोड के L- व E का अन्तर

ढील की स्वतन्त्र अवधि (Independent Float) -

यह कुल ढील की अवधि का वह भाग है जितना उस क्रिया की पूर्ववर्ती या उत्तरवर्ती क्रियाओं की ढील की अवधि को बिना बदले उस क्रिया को विलम्बित किया जा सकता है।

क्रिया I-J के लिए स्वतन्त्र अवधि	=क्रिया I-J के लिए अबाध ढील	घटना I के नोड के L - व E का अन्तर

यहीं यह उल्लेखनीय है कि कुल ढील तथा अबाध ढील की अवधि ऋणात्मक या धनात्मक हो सकती है किन्तु ढील की स्वतन्त्र अवधि सदैव धनात्मक ही होती है। यदि किसी क्रिया की ढील की स्वतन्त्र अवधि का मान ऋणात्मक आता है तो उसे शून्य मान लिया जाता है।

व्यतिकारक ढील की अवधि (Interfering Float) -

किसी क्रिया के प्रारम्भ होने के शीघ्र समय तथा उसकी पूर्ववर्ती क्रिया के देरी में समाप्त होने वाले समय के अन्तर को व्यतिकारक ढील की अवधि कहते हैं।

उदाहरण सं. 3 के सम्बन्ध में प्राप्त सभी सूचनाओं को एक तालिका के रूप में निम्न प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है

Activity	Time	Start		Finish		Float		
(1)	(2)	Early (3)	Late (4) (6-2)	Early (5)	Late (6)	Total (7) (6-5) या (4-3)	Free (8)	Independent (9)
-2	5	0	0	5	5	0	0	0
2-3	9	5	8	14	17	3	0	0
2-4	12	5	5	17	17	0	0	0
3-4	0	14	17	14	17	3	3	0
3-5	7	14	28	21	35	14	14	11
4-5	18	17	17	35	35	0	0	0
5-6	15	35	35	50	50	0	0	0

इस तालिका का निर्माण निम्न प्रकार किया गया है -

क्रियाओं के शीघ्र प्रारम्भ होने का समय (Early Start Time)

हमने पूर्व में विभिन्न घटनाओं के लिए जो E1, E2 आदि की गणना की है वे शीघ्र प्रारम्भ होने के समय है। जिस क्रिया से सम्बन्धित Early Start Time लिखना है उसके छोटे अंक का E जैसे क्रिया 1-2 के लिए E1 तथा क्रिया 3-5 के लिए E3 का मान Early Start Time के खाने में लिखेंगे।

विलम्बित समापन का समय (Late Finish Time)

इसकी गणना हमने L के रूप में को है। इसमें क्रिया वर्ग की बढ़ी संख्या जैसे 2-3 में L_3 तथा क्रिया 5-6 के लिए L_6 का मान Late Finish वाले खाने में खाना नं. 6 में सम्बन्धित क्रियानुसार लिखेंगे।

क्रिया के विलम्बित प्रारम्भ समय की गणना सम्बन्धित क्रिया में लगने वाले समय को घटाकर की गई है।

क्रिया के शीघ्र समापन समय थे गणना गे उस क्रिया के शीघ्र प्रारम्भ समय में क्रिया का समयानुमान जोड़कर की गई है।

क्रियाओं से सम्बन्धित ढील की अवधि की गणना सम्बन्धित सूत्रानुसार की गई है।

हमें यहाँ क्रिया 2-3 के लिए कुल ढील की अवधि 3 दिन है अत: क्रिया 2-3 का प्रारम्भ 3 दिन तक विलम्बित किया जा सकता है। इसी प्रकार क्रिया 3-5 का प्रारम्भ 14 दिन तक विलम्बित किया जा सकता है।

परियोजना समापन का समय क्रान्तिक पथ की अवधि से कम या अधिक रखना

अनेक बार परियोजना समापन की अवधि क्रान्तिक पथ द्वारा ज्ञात अवधि से कम या अधिक रखी जाती है। जब परियोजना समापन की अवधि बढ़ाकर तय की जाती है तो क्रान्तिक तथा गैर क्रान्तिक सभी क्रियाओं में ढील की अवधि धनात्मक होगी। इसके

फलस्वरूप क्रान्तिक क्रियाओं को प्रारम्भ करने में बढ़ी हुई अवधि के बराबर ढील दी जा सकती है अर्थात् क्रान्तिक क्रियाओं के प्रारम्भ की तिथि को किसी एक क्रिया के लिए या अलग-अलग क्रियाओं के लिए ढील की उपलब्ध अवधि अर्थात् बढ़ी हुई अवधि के बराबर विलम्बित किया जा सकता है। इसके विपरीत जब परियोजना की अवधि शीघ्रतम समापन की तिथि से कम तय की जाती है तो परियोजना की कई क्रियाओं विशेष रूप से क्रान्तिक क्रियाओं के लिए ढील की अवधि ऋणात्मक होगी। ऐसी स्थिति में क्रियाओं पर साधन बढ़ाकर क्रिया को शीघ्र पूरा करना पड़ता है। प्रश्न में परियोजना समापन की अवधि निर्धारित अवधि से भिन्न रखे जाने पर तन्त्र चित्र का निर्माण, क्रान्तिक पथ का निर्धारण तथा शीघ्र प्रारम्भ समय की गणना तक की क्रियाएँ पूर्व की भांति होगी। परियोजना की अन्तिम स्वीकार्य तिथि की गणना में अन्तिम घटना के लिए परिवर्तित समय को अन्तिम स्वीकार्य मानकर आगे की गणना सामान्य रीति के अनुसार की जावेगी। जैसे यदि उदाहरण तीन में परियोजना अवधि जो 50 दिन है उसे बढ़ाकर 53 दिन मान लिया जाता है तो अन्तिम घटना 6 के लिए अन्तिम स्वीकार्य समय अर्थात् L6 = 53 दिन माना जायेगा। अब इस L6 के आधार पर शेष गणनाएँ की जावेंगी।

उदाहरण सं. 3 के लिए परियोजना अवधि 3 दिन बढ़ाने पर नई तालिका का निर्माण-

L_6	= 53 दिन
L_5=53-15	= 38
L_4=38-18	= 20
L_3=20-0	= 20
L_2=20-12	= 8
L_1=8-5	= 3

शीघ्र प्रारम्भ समय की गणना पूर्ववत रहेगी जो निम्न प्रकार है। E_1 = 0,E_2 = 5, E_3 =14, ,E_4 = 17, E_3, = 35 तथा E_6 = 50

Activity	Time	Start		Finish		Float	
(1)	(2)	Early (3)	Late (4) (6-2)	Early (5) (2+3)	Late (6)	Total (7) (6-5) या (4-3)	Free (8)
1 - 2	5	0	3	5	8	3	0
2 - 3	9	5	11	14	20	6	0
2 - 4	12	5	8	17	20	3	0
3 - 4	0	14	20	14	20	6	3
3 - 5	7	14	31	21	38	17	14
4 - 5	18	17	20	35	38	3	0
5 - 6	15	35	38	50	53	3	0

इस प्रकार स्पष्ट है कि परियोजना समापन की अवधि 3 दिन बढ़ाने के फलस्वरूप प्रत्येक क्रिया की कुल ' ढील की अवधि 3 दिन बढ़ गई है।

बोध प्रश्न - (ख)

1. घटनाओं का अंकन किस नियम के आधार पर किया जाता है?
2. प्रथम घटना का शीघ्रतम प्रारम्भ समय क्या माना जाता है?
3. ढील की अबाध अवधि ज्ञात करने का सूत्र लिखिये।
4. वृहद् परियोजनाएँ जिनमें गणना कार्य जटिल होता है, के लिए चरम पथ का निर्धारण करने की विधि का नाम बताइये।
5. सामान्यत: अन्तिम घटना के लिए अन्तिम स्वीकार्य समय कितना माना जाता है?
6. ढील की स्वतन्त्र अवधि किसे कहते हैं?
7. बताइये कि निम्नलिखित कथन सत्य है या असत्य -
   (i) तीरयुक्त रेखाखण्ड तन्त्र चित्र में एक-दूसरे को काटते हुए आगे बढ़ते हैं।
   (ii) अन्तिम स्वीकार्य समय की गणना अन्तिम घटना से प्रारम्भ करते हैं।
   (iii) क्रान्तिक पथ की अवधि अधिकतम होती है।
   (iv) किसी क्रिया के विलम्बित प्रारम्भ व शीघ्र प्रारम्भ के समय का अन्तर ही ढील की अबाध अवधि कहलाती है।
   (v) सी.पी.एम. तकनीक का उपयोग उन परियोजनाओं में किया जाता है जिनमें क्रिया पूरी होने के समयानुमान अनिश्चित होते हैं।

18.8 कार्यक्रम मूल्यांकन एवं समीक्षा तकनीक (पर्ट) (Programme Evaluation and Review Technique-PERT)

अब तक हमने सी.पी.एम. प्रविधि द्वारा परियोजना अवधि के निर्धारण की प्रक्रिया का अध्ययन किया है। जैसा कि हम पढ़ चुके है, सी.पी.एम. प्रविधि का उपयोग केवल उन परियोजनाओं में किया जा सकता है जिनकी क्रियाओं के निष्पादन में लगने वाले समय के बारे में निश्चित अनुमान लगाये जा सकते हैं। अत: ऐसी परियोजनाएँ जिनकी क्रियाओं के समयानुमान के सम्बन्ध में अनिश्चितता रहती है, के समय निर्धारण हेतु पर्ट प्रविधि का उपयोग किया जाता है। इस प्रकार की परियोजनाओं की क्रियाओं के क्रियान्वयन में लगने वाले समय के सम्बन्ध में तीन प्रकार के समयानुमान - आशावादी, निराशावादी एवं अधिकतम सम्भावित लगाये जाते हैं। इन तीन समयानुमानों के आधार पर आशान्वित समय की गणना की जाती है।

आशावादी समय (Optimistic Time)

सब परिस्थितियाँ सामान्य रहने पर किसी क्रिया के क्रियान्वयन में लगने वाला न्यूनतम समय आशावादी समय कहलाता है। इसे TO के द्वारा व्यक्त किया जाता है।

निराशावादी समय (Pessimistic Time)

सब परिस्थितियाँ विपरीत होने पर किसी क्रिया के पूर्ण होने में लगने वाला समय, जिस समय में क्रिया अवश्य पूरी हो जायेगी, ऐसा समयानुमान निराशावादी समय कहलाता है। इसे TP के द्वारा व्यक्त किया जाता है।

अधिकतम सम्भाव्य समय (Most Likely Time)

वह समयावधि जिसमें किसी क्रिया के पूरी होने की अधिकतम सम्भावना होती है, अधिकतम सम्भाव्य समय कहलाता है। इसे Tm के द्वारा व्यक्त किया जाता है।

उक्त तीनों समयानुमानों में निराशावादी समय की अवधि सर्वाधिक तथा आशावादी समय की अवधि न्यूनतम होती है। अधिकतम सम्भाव्य समय इन दोनों के बीच की अवधि वाला होता है।

इन तीनों समयानुमानों के आधार पर किसी किया के निष्पादन में लगने वाले आशान्वित समय की गणना $Te = \left(\frac{To+4Tm+Te}{6}\right)$ सूत्र के द्वारा की जाती है।

इस प्रकार प्राप्त प्रत्याशित समय Te को क्रिया के क्रियान्वयन का समय मानकर पूर्व की भांति तन्त्र चित्र बनाकर चरम पथ का निर्धारण कर लिया जाता है। अन्य सभी सूचनाएँ यथा घटना घटित होने का शीघ्रतम समय, विलम्बित समय, ढील की अवधि आदि की गणना पूर्व की भांति की जाती है। इसके अतिरिक्त पर्ट तकनीक द्वारा ज्ञात परियोजना समय की विश्वसनीयता का परीक्षण समयानुमानों के बंटन की प्रमाप त्रुटि ज्ञात करके किया जाता है।

क्रिया की प्रमाप त्रुटि= $6 = \left(\frac{TP-TO}{6}\right)$

क्रिया का विचरण = $\sigma२ = \left(\frac{TP-To}{6}\right)^2$

उदाहरण-4

एक परियोजना के सम्बन्ध में निम्न सूचनाएँ उपलब्ध हैं -

क्रिया	पूर्ववर्ती क्रिया	समय		
		TO	TP	Tm
A	-	2	12	4
B	A	3	15	6
C	A	2	6	4
D	B,C	5	17	8
E	B	4	14	6
F	D,E	3	13	5
G	D	5	17	8

(i) तन्त्र चित्र का निर्माण कर चरम पथ ज्ञात कीजिए '। परियोजना अवधि मी बताइये।

(ii) 95% प्रायिकता पर परियोजना किस अवधि में पूर्ण होगी ?

हल -

सबसे पहले परियोजना की विभिन्न क्रियाओं तथा उनकी पूर्ववर्ती क्रियाओं के आधार पर तंत्र चित्र बनायेंगे जो निम्नानुसार बनेगा -

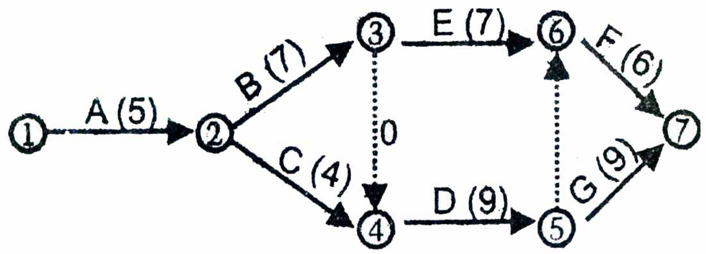

क्रिया के पूर्ण होने में लगने वाले आशान्वित समय की गणना निम्न सूत्र द्वारा की जावेगी -

$$\text{Te} = \left(\frac{To + 4Tm + Tp}{6}\right)$$

प्रमाप विचलन $\sigma = \left(\frac{Tp+To}{6}\right)$ द्वारा और

विचरण की गणना की गणना $\sigma^2 = \left(\frac{TP+To}{6}\right)^2$ सूत्र द्वारा की जायेगी।

	Activity	To	TM	TP	Expected Time Te = $\left(\frac{To + 4Tm + Tp}{6}\right)$	Std.Deviation Error $\sigma = \left(\frac{TP - To}{6}\right)$	Variance $\sigma^2 = \frac{(Tp+Tp)^2}{6}$
A	1-2	2	4	12	$\frac{2 + 4x4 + 12 = 5}{6}$	$\frac{12-2=}{6}=\frac{10}{6}$ =1.67	2.78
B	2-3	3	6	15	$\frac{3 + 4x6 + 15 = 7}{6}$	$\frac{15-3}{6}$ =2.00	4.00
C	2-4	2	4	6	$\frac{2 + 4x4 + 6 = 4}{6}$	$\frac{6-2}{6}$ =0.67	0.45
D	4-5	5	8	17	$\frac{5 + 4x8 + 17 = 9}{6}$	$\frac{17-5}{6}$ =2.00	4.00
E	3-6	4	6	14	$\frac{4 + 4x6 + 14 = 7}{6}$	$\frac{14-4=}{6}=\frac{10}{6}$ =1.67	2.78
F	6-7	3	5	13	$\frac{3 + 4x5 + 13 = 6}{6}$	$\frac{13-3=}{6}=\frac{10}{6}$ =1.67	2.78
G	5-7	5	8	17	$\frac{5 + 4x8 + 17 = 9}{6}$	$\frac{17-5=}{6}=$ =2.00	4.00

इस प्रकार गणना से प्राप्त प्रत्याशित समय संबंधित क्रियाओं के पूर्ण होने में लगने वाला समयानुमान मान लिया जाता है। इस समय को तंत्र चित्र में संबंधित क्रिया के रेखाखण्ड पर कोष्ठक में अंकित कर दिया जावे।

चरम पथ का निर्धारण करने के लिए प्रथम घटना। से अंतिम घटना 7 तक पहुँचने के विभिन्न पथ ज्ञात करेंगे -

पथ	मार्ग	अवधि		
1	1-2-3-6-7	5+7+7+6	=	25
2	1-2-3-4-5-6-7	5+7+0+9+0+6	=	27
3	1-2-4-5-7	5+4+9+9	=	27
4	1-2-4-5-6-7	5+4+9+0+6	=	24
5	1-2-3-4-5-7	5+7+0+9+9	=	30

जिस पथ की अवधि सर्वाधिक है, वही चरम पथ कहलाता है। अत: पथ 5 चरम पथ है तथा परियोजना की अवधि 30 दिन है। चरम पथ का प्रसरण 2.78+4+0+4+4 = 14.78 है। चरम पथ का प्रमाप विचलन व $\sigma = \sqrt{3.84}$ है।

95% प्रायिकता पर परियोजना पूरी होने में लगने वाला समयावधि -

95% प्रायिकता के लिए तालिका से 2 का मान 1.645 है।

$$Z = \frac{X - \overline{X}}{\sigma}$$

क्रांतिक पथ की अवधि 30 दिन है। क्रांतिक पथ की अवधि में परियोजना पूरी होने की संभावना (प्रायिकता) 50% होती है। अत:

X = 30

95% प्रायिकता के लिए वाधित अवधि

$$Z = \frac{x - x}{\sigma}$$

$$1.645 = \frac{x - 30}{3.84}$$

X - 30 = 1.645 x 3.84

X = 30 + 1.645 x 3.84

X = 30 + 6.31

X = 36.31

इसका अभिप्राय यह हुआ कि 95% प्रायिकता पर परियोजना पूरी होने में 36.31 दिन लगेंगे अर्थात् इस बात की 95% सम्भावना है कि परियोजना 36.31 दिन में पूर्ण हो जायेगी।

18.9 परियोजना अवधि व लागत में सम्बन्ध (Relationship between Project Duration and Cost)

किसी परियोजना के विश्लेषण में परियोजना अवधि के साथ परियोजना की लागत भी महत्वपूर्ण होती है। यदि किसी परियोजना को निर्धारित समय से पहले पूरा करना है तो उस परियोजना की विभिन्न क्रियाओं पर अतिरिक्त साधन लगाने पड़ेंगे। इसके फलस्वरूप परियोजना लागत में वृद्धि होगी। इस प्रकार परियोजना अवधि में कमी का अर्थ परियोजना लागत में वृद्धि करना होगा। अनेक बार परियोजना को शीघ्र पूरा करने से कई लाभ प्राप्त हो जाते हैं, इसलिए प्रबन्ध परियोजना अवधि को न्यूनतम रखे जाने का विचार रखता है।

परियोजना अवधि में कमी लाने की प्रक्रिया के दौरान चरम पथ में आने वाली क्रियाओं के समय में कमी पर ज्यादा ध्यान देना चाहिये। चरम पथ अवधि कम करते समय यह ध्यान रहे कि यह कमी चरम पथ एवं निकट चरम पथ की लम्बाई के अन्तर से अधिक न हो। किसी क्रिया की अवधि कम करते समय ध्यान रखना चाहिये कि उसकी अवधि उसे पूरा करने की न्यूनतम अवधि से कम न हो जाये।

समय लागत संबंध के अध्ययन में उपयोगी शब्दावली

क्रियान्वयन लागत (Activity cost)

किसी क्रिया को पूरा करने की अवधि में कमी करने के फलस्वरूप क्रमबद्ध रूप से बढ़ी हुई लागत क्रियान्वयन लागत कहलाती है।

न्यूनतम क्रियान्वयन समय (Crash Time)

किसी क्रिया को पूरा करने की न्यूनतम अवधि न्यूनतम क्रियान्वयन समय कहलाता है। इससे कम अवधि में क्रिया पूर्ण नहीं हो सकती है। इसे TC के द्वारा व्यक्त किया जाता है।

सामान्य समय (Normal Time)

यह वह समय है जो सामान्य लागत के आधार पर किसी क्रिया को पूरा करने में लगता है। इसे Tn के द्वारा व्यक्त किया जाता है।

न्यूनतम क्रियान्वयन लागत (Crash cost)

न्यूनतम समय में क्रिया को पूर्ण करने पर लगने वाली लागत न्यूनतम क्रियान्वयन लागत कहलाती है। इसे Cc के रूप में अभिव्यक्त करते हैं।

सामान्य लागत (Normal cost)

यह वह न्यूनतम लागत है जो सामान्य समय में क्रिया को पूरा करने पर आती है। इसे Cn के द्वारा व्यक्त किया जाता है।

लागत प्रवणता (Cost Slope)

किसी क्रिया को पूरा करने की समयावधि में एक इकाई की कमी करने से लागत में जो वृद्धि होती है उसे उस क्रिया की लागत प्रवणता कहते हैं। इसे निम्न सूत्र द्वारा ज्ञात किया जाता है -

$$\text{लागत प्रवणता} = \frac{\text{न्यूनतम क्रियान्वयन लागत} - \text{सामान्य लागत}}{\text{सामान्य समय} - \text{न्यूनतम समय}}$$

$$\text{Cost Slope} = \frac{Cc - Cn}{Tn - Tc}$$

जब किसी परियोजना को पूर्ण करने की अवधि कम करने पर विचार किया जाता है तो निम्न प्रक्रिया अपनाई जाती है -

(i) विभिन्न क्रियाओं पर लगने वाले सामान्य समय के आधार पर परियोजना. का तंत्र चित्र बनाया जाता है उसके बाद पूर्ण की भाँति चरम पथ ज्ञात किया जाता है।

(ii) क्रियाओं की सामान्य लागत को जोड़कर परियोजना की सामान्य लागत ज्ञात की जाती है।

(iii) इसके उपरान्त सभी क्रियाओं की अवधि में की जा सकने वाली कमी का निर्धारण करेंगे। किसी किया की अवधि में कमी करने की सीमा उसकी -न्यूनतम अवधि तक सीमित रहती है। चरम पथ की अवधि में कमी करने की सीमा निकटतम चरम पथ की अवधि तक सीमित होगी।

अवधि में कमी करने के लिए क्रिया का चुनाव उसकी लागत प्रवणता के आधार पर किया जाता है। जिस क्रिया की लागत प्रवणता न्यूनतम होगी उस क्रिया की अवधि में कमी की जायेगी।

(iv) इसके उपरान्त कम की हुई अवधि के लिए पुन: तंत्र चित्र बनायेंगे तथा नये क्रांतिक पथ का निर्धारण कर पुन: ऊपर दी हुई प्रक्रिया के अनुसार ही क्रियाओं के क्रियान्वयन समय में कमी करनी होगी।

(v) इस प्रकार हम चयनित क्रियाओं की अवधि में कमी करते हुए अन्त में न्यूनतम समय पर पहुँच जायेंगे।

समय की प्रत्येक कमी के साथ लागत में क्रमशः बढ़ती हुई लागत प्रवणता के अनुसार होगी। इस प्रकार इस प्रक्रिया के माध्यम से हम वांछित अवधि में परियोजना सम्पादन की न्यूनतम लागत ज्ञात कर सकते हैं।

उदाहरण सं. 5

नीचे दी गई तालिका में एक परियोजना से संबंधित विभिन्न सूचनाऐं दी गई हैं। परियोजना को न्यूनतम अवधि में पूरा करने के लिए अनुकूलतम लागत योजना दीजिये एवं अतिरिक्त लागतों का परिकलन कीजिये -

क्रिया Activity	सामान्य समय Normal Time Tn	सामान्य लागत Normal Cost Cn	न्यूनतम समय Crash Time Tc	न्यूनतम लागत Crash Cost Cc
1-2	3	100	2	800
1-3	7	400	4	1000
2-3	5	300	3	500
2-4	8	150	6	550
3-4	4	400	2	1200

हल:

सर्वप्रथम हम तंत्र चित्र बनाकर चरम पथ ज्ञात करेगें। यह क्रिया सामान्य समय के आधार पर करेंगे-

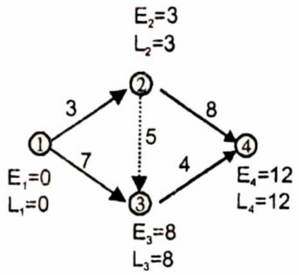

प्रथम घटना से अंतिम घटना तक पहुँचने वाले विभिन्न पथ

पथ	क्रियाएँ	अवधि		
1.	1-2-4	3+8	=	11
2.	1-2-3-4	3+5+4	=	12
3.	1-3-4	7+4	=	11

स्पष्ट है कि 1-2-3-4 क्रांतिक पथ है जिसकी अवधि 12 दिन है। यदि हम परियोजना समय में कमी करना चाहते हैं तो सर्वप्रथम 1-2-3-4 मे आने वाली क्रियाओं की अवधि में ही कमी करनी होगी।

यह कमी 1 दिन से अधिक नहीं हो सकती क्योंकि निकटतम चरम पथ की अवधि 11 दिन है-अर्थात चरम पथ तथा निकटतम चरम पथ की अवधियों में 1 दिन का ही अन्तर हैं। अवधि में कमी के लिए क्रिया का चयन उसकी लागत प्रवणता के आधार पर करेंगे। लागत प्रवणता का परिकलन निम्नानुसार किया गया है -

लागत प्रवणता तालिका

क्रिया	सामान्य समय Tn	न्यूनतम समय Tc	सामान्य लागत Cn	न्यूनतम समय की लागत Cc	लागत प्रवणता (Cc-Cn) (Tn-Tc)
1-2	3	2	100	800	$\frac{800-100}{3-2}$ =700
1-3	7	4	400	1000	$\frac{1000-400}{7-4}$ =200

2-3	5	3	300	500	$\frac{500-300}{5-3}$ =100
2-4	8	6	150	550	$\frac{550-150}{8-6}$ =200
3-4	4	2	400	1200	$\frac{1200-400}{4-2}$ =400

क्रांतिक पथ में 3 क्रियाएँ 1-2, 2-3 तथा 3-4 हैं। इनमें से 2-3 की लागत प्रवणता न्यूनतम है अत: क्रिया 2-3 में 1 दिन की कमी करेंगे। अब 11 दिन की अवधि के लिए नया तंत्र चित्र बनायेंगे - (लागत में वृद्धि= 100 रू.)

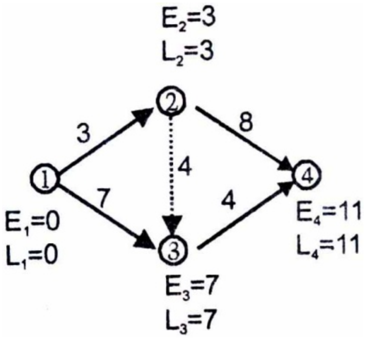

अब तीनों ही पथों की अवधि 11 दिन है। अत:

पथ	अवधि		
1-2-4	3+8	=	11
1-2-3-4	3+4+4	=	11
1-3-4	7+4	=	11

तीनों ही पथ चरम पथ हैं। अत: परियोजना की अवधि में कमी करने के लिए हमें तीनों ही पथों से संबंधित क्रियाओं की अवधि में साथ साथ कमी करनी होगी। विभिन्न उपलब्ध विकल्प एवं संबंधित लागतें निम्न प्रकार हैं -

क्रमांक	विकल्प (क्रियाएँ जिनमें कमी होनी है)	लागत वृद्धि
1.	1-2 व 1-3	700+200=900
2.	1-2 व3-4	700+400=1100
3.	2-4 व 3-4	200+400=600
4.	1-3, 2-3 व 2-4	200+100+200=500

चौथे विकल्प में लागत सबसे कम है, अत: परियोजना की अवधि में कमी के लिए इसी विकल्प को चुनेंगे। इस विकल्प में आने वाली क्रियाओं में से क्रिया 2-3 की अवधि में 1 दिन की कमी और संभव है क्योंकि इस क्रिया की न्यूनतम अवधि 3 दिन है। हम इस क्रिया (2-3) की अवधि को घटाकर 4 दिन पूर्व में ही कर चुके हैं। 1 - 3, 2-3 तथा 2-4 आदि सभी क्रियाओं की अवधि को एक एक दिन घटाने पर परियोजना की अवधि 10 दिन हो जाती है। अब 10 दिन की अवधि के लिए परियोजना का तंत्र चित्र बनायेंगे - लागत वृद्धि = 100 + 500 =600 रू.

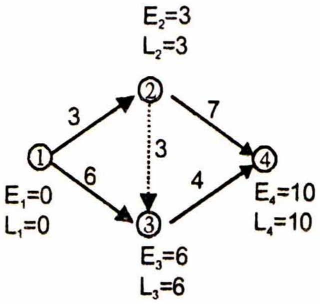

नोट - जिस क्रिया की अवधि में और कटौती संभव नहीं है उसे काट देते हैं। अब किया 2-3 की अवधि में और कमी सम्मव नहीं है अत: अब विकल्प 4 उपलब्ध नहीं है। अत: शेष तीन विकल्पों में से ही चुनना है। शेष विकल्पों में से क्रमांक 3 वाला विकल्प न्यूनतम लागत वृद्धि वाला है, अत: इसी विकल्प का चुनाव करेंगे। क्रिया 2-4 की न्यूनतम अवधि 6 दिन है, अत: इसमें केवल 1 दिन की कमी और संभव है। विकल्प 3 में आने वाली दोनों क्रियाओं 2-4 तथा 3-4 में एक एक दिन की कमी करने के बाद 9 दिन की अवधि के लिए परियोजना का तंत्र चित्र बनायेंगे -

लागत वृद्धि - 500 +100 + 600 = 1200 रू.

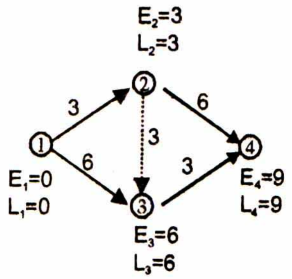

चूँकि क्रिया 2-4 की अवधि न्यूनतम अवधि के बराबर हो जाने के कारण और कम नहीं की जा सकती अत: अब विकल्प 3 का उपयोग नहीं कर सकते। अब शेष विकल्पों में विकल्प 1 कम लागत वाला है, अत: इसी का चुनाव करेंगे। किया 1-2 की अवधि में केवल 1 दिन की कमी करना संभव है। अत: 1 दिन की कमी दोनों क्रियाओं 1-2 तथा 1-3 में करने के बाद 8 दिन की अवधि के लिए तन्त्र चित्र बनायेंगे -

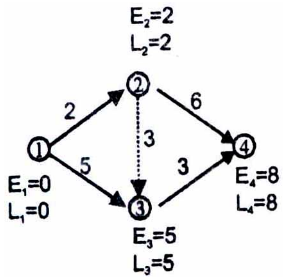

अब पथ 1-2-4 में आने वाली क्रियाओं में और अधिक कटौती नहीं हो सकती। अत: परियोजना को 8 दिन से कम में पूरा नहीं किया जा सकता।

कुल अतिरिक्त लागत की गणना

किया जिसकी अवधि कमी की अवधि (1)	कमी की अवधि (2)	लागत प्रवणता (3)	लागत वृद्धि (2x3) (4)
1-2	1	700	1 X700 =700
1-3	2	200	2 X200 =400
2-3	2	100	2 X100 =200
2-4	2	200	2 X200 =400
3-4	1	400	1 X400 =400
योग			2100

अत: परियोजना की अवधि 12 दिन से घटाकर 8 दिन करने में लगी अतिरिक्त लागत 2100 रु. होगी। इसलिए 8 दिन की अवधि के लिए परियोजना की कुल लागत (सामान्य लागत + लागत वृद्धि) = 1350 + 2100 रु. 3450 होगी।

उदाहरण सं. 6

एक परियोजना से सम्बन्धित निम्नलिखित समयानुमान दिये हुए हैं -

क्रिया	आशावादी समयानुमान TO	निराशावादी समयानुमान TP	अधिकतम सम्भाव्य समयानुमान Tm
1-2	4	28	4
1-3	4	28	16
1-4	8	32	8
2-5	4	4	4
3-5	8	56	20
4-6	8	32	20
5-6	12	60	24

आपको ज्ञात करना है -

(i) परियोजना का तन्त्र चित्र
(ii) क्रान्तिक पथ, अवधि तथा प्रसरण
(iii) 76 दिन में परियोजना पूर्ण होने की प्रायिकता
(iv) 90% प्रायिकता के लिए परियोजना सम्पन्न होने की अवधि

हल :

सर्वप्रथम आशान्वित समय Te, प्रमाप विचलन तथा प्रसरण ज्ञात करेंगे।

Activity	To	Tm	TP	Te $\frac{(TO + 4Tm + TP)}{6}$	6 $\frac{TP - TO}{6}$	Variance=6^2 $\frac{(TP + TO)}{6}$
1-2	4	4	28	8	4	16
1-3	4	16	28	16	4	16
1-4	8	8	32	12	4	16
2-5	4	4	4	4	0	0
3-5	8	20	56	24	8	64
4-6	8	20	32	20	4	16
5-6	12	24	60	28	8	64

तन्त्र चित्र :

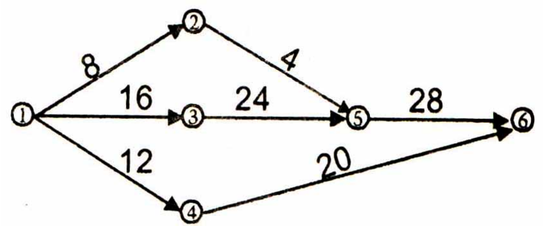

चरम पथ की जानकारी के लिए विभिन्न उपलब्ध पथ

पथ	मार्ग	अवधि	
1	1-2-5-6	8+4+28	40
2	1-3-5-6	16+24+28	68
3	1-4-6	12+20	32

पथ क्रमांक 2 की लम्बाई जो 68 दिन है वह सर्वाधिक है, अत: पथ की अवधि 68 दिन है।

चरम पथ का विचरण = 16 + 64 + 64 = 144

चरम पथ का प्रमाप विचलन = $\sqrt{144}$ = 12

76 दिन में परियोजना पूरी होने की प्रायिकता

$$Z = \frac{X - \overline{X}}{\sigma}$$

जैसा कि हम जानते हैं पर्ट तकनीक से ज्ञात अवधि (चरम पथ हारा निर्धारित)'में परियोजना पूरी होने की 50%प्रायिकता होती है। अत: चरम पथ की अवधि ही $\overline{X}$ का मान होती है -

$\overline{X}$ = 68 दिन, X = 76

$$Z = \frac{76-68}{12}$$

$$Z = \frac{8}{12} = .67$$

Z = .67 के बांई ओर का क्षेत्रफल = 0.7486

अत: 68 दिन में परियोजना पूर्ण होने की प्रायिकता = .7486 = 74.86%

.90% प्रायिकता के लिए परियोजना पूर्ण होने की अवधि

90% क्षेत्रफल के लिए तालिका से Z का मान = 1.28

$$Z = \frac{X - \overline{X}}{\sigma}$$

$$1.28 = \frac{X - 68}{12}$$

X - 68 = 1.28 X 12

X = 15.36 + 68

X = 83.36

अर्थात् 83॰38 दिन में परियोजना सम्पन्न होने की 90% प्रायिकता है अर्थात् 83.36 दिन में परियोजना पूर्ण नहीं होगी इसकी केवल 10% प्रायिकता है।

बोध प्रश्न - (ग)

1. आशावादी समय किसे कहते हैं?
2. पर्ट तकनीक के लिए आशान्वित समय कैसे ज्ञात किया जाता है?
3. क्रियान्वयन लागत किसे कहते हैं?
4. किसी परियोजना को पूर्ण करने का समय कम करने पर परियोजना की लागत पर क्या प्रभाव पड़ेगा?
5. पर्ट तकनीक में चरम पथ की अवधि में परियोजना पूरी होने की कितनी सम्मावना रहती है?
6. बताइये कि निम्नलिखित कथन सत्य हैं या असत्य -
   (i) पर्ट तकनीक में दिये गये समयानुमानों में निराशावादी समयानुमान सबसे कम अवधि वाला होता ।
   (ii) परियोजना पूरी करने की अवधि कम करने पर परियोजना की लागत भी कम हो जाती है।
   (iii) परियोजना समय कम करने का निश्चय कर लेने पर सबसे पहले चरम पथ की क्रियाओं में लगने वाले समय में कमी करनी चाहिये।
   (iv) किसी क्रिया की अवधि कम करने के लिए सबसे पहले उस क्रिया का चयन किया जाता है जिसकी लागत प्रवणता सर्वाधिक होती है।

पर्ट एवं सी.पी.एम. के लाभ

(1) **परियोजना के प्रत्येक पहलू की जानकारी** - परियोजना समय तथा लागत के नियंत्रण के लिए इन दोनों तकनीकों में परियोजना को अनेक छोटे-छोटे भागों में विभक्त कर उनकी सूक्ष्म जानकारी भी ली जाती है। इससे प्रबन्धन परियोजना के हर पहलू से वाकिफ हो जाता है।

(2) **नियोजन एवं समन्वय में सुगमता** - इन तकनीकों के प्रयोग से विभिन्न क्रियाओं के क्रियान्वयन का कार्य उनके सम्बन्धित विभागों द्वारा किया जाता है। इससे विभागों में समन्वय बना रहता है तथा प्रत्येक किया का ठीक प्रकार नियोजन सम्मव हो जाता है।

(3) **मूल्यांकन एवं नियंत्रण** - परियोजना की विभिन्न क्रियाओं के क्रियान्वयन करते समय उनका बीच-बीच में मूल्यांकन एवं समीक्षा करते रहते हैं। इससे क्रियान्वयन में आ रही कठिनाइयों की जानकारी हो जाने से उनका निराकरण समय रहते सम्भव होता है।

(4) **परियोजना लागत पर नियंत्रण** - इन तकनीकों की सहायता से प्रत्येक क्रिया का निष्पादन न्यूनतम समय में तथा न्यूनतम लागत पर सम्भव हो पाता है।

(5) **परियोजना समय में कमी करते हुए भी लागत पर नियंत्रण** - पर्ट तकनीक की सहायता से चरम पथ की क्रियाओं के पूरा करने का समय इस प्रकार कम किया जाता है कि लागत में वृद्धि न्यूनतम हो।

(6) पर्ट तकनीक का कार्य देश स्वीकार करने में विशेष उपयोग होता है। इस तकनीक में हम यह भी ज्ञात कर पाते हैं कि किस अवधि में परियोजना पूरी होने की कितनी प्रायिकता है। इससे किसी परियोजना से सम्बन्धित कार्यादेश को किस अवधि में पूरा कर पाना सम्भव होगी इसकी जानकारी आसान हो जाती है।

पर्ट एवं सी.पी.एम. की सीमाएँ -

1. परियोजना में कई कार्य ऐसे होते हैं जिनका छोटे भागों में विभाजन सम्मव नहीं हो पाता है।
2. अनेक बार क्रियाओं की अन्त:सम्बद्धता तथा अन्त:निर्भरता समझने में बहुत कठिनाई आती है, ऐसे में इन क्रियाओं के विषय में लगाये गये अनुमान गलत हो सकते हैं।
3. पर्ट तकनीक में लगाये गये समयानुमानों में व्यक्तिपरक अशुद्धियों की सम्भावना रहती है।
4. पर्ट में प्रत्याशित समय ज्ञात करते समय यह माना जाता है कि एक क्रिया के विभिन्न समयानुमान बीटा बंटन का अनुपालन करते हैं, अनेक परिस्थितियों में सही नहीं होता।
5. पर्ट में चरम पथ का निर्धारण प्रत्याशित समयानुमानों की निश्चितता व सही होने पर आधारित होता है, परन्तु अनेक बार ये अनुमान सही नहीं होते हैं।

18.10 सारांश

वृहद् परियोजनाओं को पूरा करने में लगने वाले समय तथा उनकी लागत का अध्ययन प्रबन्धकों के लिए महत्वपूर्ण है। परियोजनाओं की अवधि तथा लागत के निर्धारण के लिए पर्ट एवं सी.पी.एम. पद्धतियों का प्रयोग किया जाता है। इन दोनों प्रविधियों में परियोजना अवधि तथा लागत निर्धारण के लिए परियोजना का 'तन्त्र चित्र बनाकर चरम पथ का निर्धारण किया जाता है। चरम पथ की अवधि ही परियोजना पूरी होने की अवधि होती है। सी.पी.एम. प्रविधि का उपयोग उन परियोजनाओं में किया जाता है जिनकी विभिन्न क्रियाओं के पूरा करने में लगने वाले समय के बारे में निश्चित अनुमान लगाये जा सकते हैं। इसके विपरीत ऐसी परियोजनाएँ जिनकी क्रियाओं के

निष्पादन में लगने वाले समयानुमान अनिश्चित होते हैं, उनके लिए पर्ट पद्धति का प्रयोग किया जाता है। पर्ट पद्धति में तीन प्रकार के समयानुमान आशावादी, निराशावादी तथा अधिकतम सम्भाव्य पहले से लगाये होते हैं, जिनके आधार पर आशान्वित समय ज्ञात कर लेते हैं।

तन्त्र चित्र निर्माण में क्रियाओं के अनुक्रम तथा उनकी अन्त:निर्भरता पर ध्यान देना आवश्यक है। क्रियाओं की अन्तः सम्बद्धता व अन्तःनिर्भरता को बनाये रखने के लिए डमी क्रियाओं का उपयोग करना होता है। परियोजना की प्रत्येक किया के लिए शीघ्र प्रारम्म समय (E), विलम्बित प्रारम्भ समय, अन्तिम सम्मान्य समय (L) तथा शीघ्र समापन समय की गणना करके प्रत्येक क्रिया के लिए ढील की अवधि ज्ञात की जाती है। ढील की अवधि चार प्रकार की - कुल ढील की अवधि, स्वतन्त्र ढील की अवधि, अबाध ढील की अवधि तथा व्यतिकारक ढील की अवधि होती है। जिन क्रियाओं के लिए ढील की अवधि उपलब्ध होती है, उन क्रियाओं को विलम्बित करने पर भी परियोजना को निर्धारित समय में पूरा किया जा सकता है।

जब परियोजना को निर्धारित समय से पहले पूरी करना होता है तो विभिन्न क्रियाओं के लिए अतिरिक्त संसाधन लगाये जाते हैं। इसके फलस्वरूप परियोजना अवधि तो कम हो जाती है किन्तु परियोजना की लागत बढ़ जाती है। परियोजना की अवधि में कमी करने के लिए विभिन्न क्रियाओं - विशेषकर चरम क्रियाओं का निष्पादन काल कम करने के लिए चयन किया जाता है। इस हेतु क्रियाओं का चयन. उनकी लागत प्रवणता के आधार पर किया जाता है। इस प्रकार हम यह ज्ञात करने में सफल होते हैं कि परियोजना को न्यूनतम कितनी अवधि में और कितनी लागत पर पूरी कर सकते हैं। इस प्रकार तन्त्र विश्लेषण की उक्त दोनों पद्धतियाँ परियोजनाओं के समय निर्धारण के लिए बहुत ही उपयोगी हैं। पर्ट तकनीक का उपयोग परियोजना समय और लागत दोनों के नियोजन तथा नियंत्रण के लिए किया जाता है।

18.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न - क

प्रश्न क्रमांक 6 - (i) सत्य, (ii) असत्य, (iii) असत्य, (iv) सत्य

बोध प्रश्न - ख

प्रश्न क्रमांक 7 - (i) सत्य, (ii) सत्य, (iii) सत्य, (iv) असत्य, (v) असत्य

बोध प्रश्न - ग

प्रश्न क्रमांक 6 - (i) असत्य, (ii) असत्य, (iii) सत्य, (iv) असत्य

18.12 स्व-परख प्रश्न

सैद्धान्तिक प्रश्न

1. तन्त्र चित्र में डमी क्रिया का प्रदर्शन क्यों किया जाता है?

2. क्रान्तिक पथ का निर्धारण किस प्रकार किया जाता है?
3. पर्ट तकनीक का उपयोग किन परियोजनाओं के लिए किया जाता है?
4. किसी क्रिया में ढील की अवधि होने तथा किसी में ढील की अवधि नहीं होने से दोनों क्रियाओं पर क्या प्रभाव हो सकता है?
5. लागत प्रवणता से क्या अभिप्राय है?
6. पर्ट एवं सी.पी.एम. में अन्तर बताइये।
7. तन्त्र चित्र निर्माण की प्रक्रिया समझाइये।
8. पर्ट तकनीक के उपयोग बताइये।
9. घटना जिस पर दो क्रियाएँ आकर मिलती है, उस घटना के लिए शीघ्र प्रारम्भ समय (E) की गणना कैसे की जाती हैं?
10. परियोजना अवधि में कमी करने के लिए क्रियाओं जिनकी अवधि कम करनी है, उनके चयन में क्या प्रक्रिया अपनाई जायेगी, समझाइये?

व्यावहारिक प्रश्न

1. 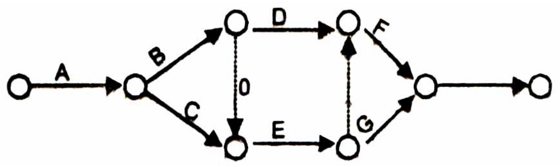

(अ) उक्त तन्त्र चित्र में घटनाओं का अंकन कीजिये।

(ब) नोड घटना तथा अन्तिम घटना का क्रमांक बताइये।

उत्तर - नोड घटना (7) अंतिम घटना (8)

2. प्रश्न संख्या 1 में दी गई क्रियाओं की पूर्ववर्ती क्रिया का निर्धारण कीजिये।

3. 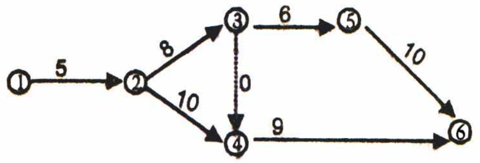

उक्त तन्त्र चित्र में क्रान्तिक पथ का निर्धारण कर क्रान्तिक क्रियाओं की पहचान कीजिये तथा क्रांतिक पथ की अवधि भी बताइये।

उत्तर - 29 दिन

4. प्रश्न संख्या 3 के लिए शीघ्र प्रारम्भ समय (E) तथा अन्तिम स्वीकार्य समय (L) की गणना 'कीजिये।

उत्तर - $E_1 = 0, E_2 = 5, E_3 = 13, E_4 = 15, E_5 = 19, E_6 = 29$

$E_5 = 19, E_6 = 29$

$L_6 = 29, L_5 = 19, L_4 = 20, L_2 = 13, L_2 = 5, L_1 = 0$

5. एक परियोजना से सम्बन्धित निम्न सूचना दी गई है -

क्रिया	समय
1-2	20
1-3	25
2-3	10
2-4	12
3-4	6
4-5	10

ज्ञात कीजिए -

(i) क्रान्तिक पथ

(ii) ढील की कुल अवधि, अबाध अवधि एवं स्वतन्त्र अवधि

उत्तर - 1-2-3-4-5, 46 दिन

6. एक परियोजना के सम्बन्ध में निम्न सूचना दी गई हैं -

क्रिया	समय
1 - 2	2
1 - 3	2
1 - 4	1
2 - 5	4
3 - 6	8
3 - 7	5
4 - 6	3
5 - 8	1
6 - 9	5
7 - 8	4
8 - 9	3

(i) तन्त्र चित्र का निर्माण कर चरम पथ की लम्बाई बताइये।

(ii) ढील की अवधि की गणना कीजिये।

उत्तर - 1-3-6-9,अवधि 15 दिन

7. किसी परियोजना के सम्बन्ध में निम्नलिखित सूचना दी गई है -

क्रिया	आशावादी समय	अधिकतम संभाव्य समय	निराशावादी समय
	TO	Tm	TP
1 - 2	4	8	12
2 - 3	1	4	7
2 - 4	8	12	16
3 - 5	3	5	7

4 - 5	0	0	0
4 - 6	3	6	9
5 - 7	3	6	9
5 - 8	4	6	8
7 - 9	4	8	12
8 - 9	2	5	8
9 - 10	4	10	16
6 - 10	4	6	8

(i) तन्त्र चित्र का निर्माण कीजिये तथा क्रान्तिक पथ ज्ञात करें।

(ii) क्रियाओं में ढील की अवधि की गणना कीजिये।

(iii) 48 दिन में परियोजना पूरी होने की प्रायिकता बताइये।

उत्तर - 1-2-4-5-7-9-10, 89.25%

8. किसी परियोजना से सम्बन्धित निम्नलिखित सूचना दी हुई है -

क्रिया	सामान्य		विशेष (न्यूनतम)	
	समय (Time) Tn	लागत (Cost) Cn	समय (Time) Tc	लागत (Time) Cc
1 - 2	6	60	4	100
1 - 3	4	60	2	200
2 - 4	5	50	3	150
2 - 5	3	45	1	65
3 - 4	6	90	4	200
4 - 6	8	80	4	300
5 - 6	4	40	2	100
6 - 7	3	45	2	80

अप्रत्यक्ष लागत 30 रु. प्रति दिन है।

आपको ज्ञात करना है -

(i) चरम पथ

(ii) परियोजना पूरी होने की न्यूनतम अवधि तथा तत्सम्बन्धी लागत

उत्तर - 14 दिन, रू. 1065

9. यदि किसी परियोजना में चरम पथ की अवधि 20 महिने तथा प्रमाप विचलन 4 महिने है तो परियोजना 20 महिने में, 18 महिने में तथा 24 महिने में पूरी हो जायेगी, इनकी प्रायिकता ज्ञात कीजिये।

उत्तर - 5०%, 31%, 84.13%

10. एक परियोजना के सम्बन्ध में निम्नलिखित सूचना दी गई है -

क्रिया	सामान्य		विशेष (न्यूनतम)	
	समय Tn	लागत Nc	समय Tc	लागत Cc
1-2	3	5,000	1	9,000
2-3	4	8,000	3	14,000
2-4	3	4,000	2	6,000
2-5	8	5,000	7	6,000
3-6	4	3,000	2	5,000
4-6	6	2,000	4	3,600
5-7	5	1,000	4	14,000
6-7	3	7,000	1	10,600

आपको यह ज्ञात करना है कि परियोजना को न्यूनतम कितनी अवधि में पूरी किया जाना संभव है तथा उसके लिए लागत भी ज्ञात कीजिये।

18.13 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. **वित्तीय प्रबन्ध के तत्व,** अग्रवाल-अग्रवाल, रमेश बुक डिपो, जयपुर 2008 - 09
2. **फाइनेसिंग ऑफ इंडियाज फोरेन ट्रेड,** केसर सिंह, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर 2002
3. **वित्तीय प्रबन्ध,** आई. एम. पाण्डे, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई 2007
4. **भारतीय अर्थव्यवस्था,** प्रतियोगिता दर्पण, उपकार प्रकाशन, आगरा, 2008-09
5. **बैंकिंग एवं वित्त, गुप्ता,** वशिष्ठ, स्वामी, रमेश बुक डिपो, जयपुर 2008
6. **व्यावसायिक संगठन,** शर्मा, कोठारी, रतन प्रकाशन मन्दिर, आगरा 2002
7. **वित्तीय प्रबन्ध,** एम. आर. अग्रवाल, गरिमा पब्लिकेशन, जयपुर 2009

ISBN - 13/978-81-8496-025-9